ज्ञानदिवाकर, प्रशान्तमूर्ति, मर्यादाशिष्योत्तम आचार्य श्री भरतसागर जी के २८वाँ दीक्षा दिवस महोत्सव के उपलक्ष में

विमल भक्ति
विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका

अनुवादकर्त्री
आर्यिकाश्री स्याद्वादमती माताजी

अर्थसहयोगी

१. श्री कमलकुमार चिन्तामणि बज, जयपुर–बम्बई
२. श्री राजीव कुमार, संजीव कुमार जैन सराफ प्रो० सत्येन्द्र कुमार जैन सराफा बाजार, सहारनपुर, (उत्तर प्रदेश)
३. श्री प्रकाशचंदजी सरोज देवी जैन, जयपुर
४. श्री श्रीमती वसुधा देवी स्व० कपूर चंदजी जैन बैंगिल स्टोर, मुज्जफरपुर, बिहार
५. श्री रवीन्द्र कुमार जी जैन, महामंत्री वैशाली दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मुज्जफरपुर (बिहार)

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प संख्या - ९

आशीर्वाद : **आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज**

वाचना प्रमुख : **श्रमणरत्न मुनि श्री अमितसागरजी**

अनुवादकर्त्री : **आर्यिका स्याद्वादमती माता जी**

संयोजन : **ब्र० प्रभा पाटनी B.Sc.L.L.B.**

ग्रन्थ : **विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका**

सर्वाधिकार सुरक्षित : भा० अ० वि० परि०

संस्करण : संशोधित द्वितीय
वीर नि० सं० २५२६ सन् २०००

पुस्तक प्राप्ति स्थान : आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज संघ

मूल्य : : ६०.०० रुपये

मुद्रक : बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१०
फोन: ३११८४८

आचार्य श्री विमल सागर जी
तुभ्य नम परम धर्म प्रभावकाय
तुभ्य नम परम तीर्थ सुवन्दकाय।
स्याद्वाद सूक्ति सरणि प्रतिबोधकाय
तुभ्य नम विमल सिन्धु गुणार्णवाय।।

आचार्य श्री भरत सागर जी
आचार्य श्री भरतसिन्धु नमोस्तु तुभ्य
हे भक्तिप्राप्त गुरुवर्य्य नमास्तु तुभ्य।
हे कीर्तिप्राप्त जगदीश नमास्तु तुभ्य
भव्याब्ज सूर्य गुरुवर्य्य नमास्तु तुभ्य।।

समर्पण

परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर

आचार्य विमलसागर जी महाराज के

पट्ट शिष्य

मर्यादा शिष्योत्तम

ज्ञान दिवाकर

प्रशान्तमूर्ति

वाणी भूषण

भुवन भास्कर

समतामूर्ति

गुरुदेव आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज के

कर कमलों में

समर्पित

आशीर्वाद

आचार्य श्री १०८ भरतसागरजी

जैनदर्शन आत्म-दर्शन का एक अलौकिक दर्शन है। यहाँ श्रावक व मुनिधर्म के अपने-अपने मुख्य कर्तव्य हैं। स्तुति-स्तवन-वन्दना प्रतिक्रमण आदि साधुधर्म व श्रावक धर्म के मूलगुण हैं। पूर्वाचार्यों ने करुणापूर्ण दृष्टि में प्राकृत-संस्कृत भाषा में प्रतिक्रमण व भक्तियों की रचना की। वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल में जीवों में बुद्धि का ह्रास होता जा रहा है। आज प्राकृत-संस्कृत भाषामय प्रतिक्रमण व भक्तियों का अर्थ समझने वाले व्युत्पन्नमति जीव अल्पसंख्यक नजर आते हैं। अर्थ के बिना भाव-भासना नहीं होती अत: सब लोगों को अर्थ का ज्ञान हो इस दृष्टि से पूर्व मे भी अर्थ, भावार्थ आदि की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पर तीनों प्रतिक्रमण-दैवसिक, पाक्षिक व श्रावक तथा दस भक्तियों का एक साथ अन्वयार्थ, भावार्थ एक पुस्तक में उपलब्ध न होने से पाठकों को परेशानी अनुभव होती थी। इसकी मांग भी सतत आती रही है।

मैंने इस कार्य के लिये स्याद्वादमतीजी को आज्ञा की। माताजी ने आज्ञा को शिरोधार्य कर अल्पावधि में कार्य को पूर्ण कर एक बहुत बड़ी कमी को पूरा किया। माताजी को मेरा आशीर्वाद है। आपके द्वारा लिखित यह विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका सरस, सुन्दर व सूपयोगी बने यही भावना है।

●

आवश्यकों के झरोके से...

मुनि अमितसागर
[शिष्य आचार्य श्रीधर्मसागरजी]

पॉच पापो के प्रपंच से पूर्णत: परिमुक्त आत्मा ही परमात्मा कहलाते है। क्योकि पॉच पाप ही चित्त को अपवित्र कर देते है। जिससे जीव अपराधी कहलाता है और पूज्यता से दूर हो जाता है। अत: अपराध शोधन की प्रक्रिया का नाम ही प्रतिक्रमण है। जो जीव पॉच पापो को त्यागकर मोक्षमार्ग की साधना मे आरूढ़ होते है उनके कथंचित प्रमादवश परिणाम विशुद्धि गिर जाती है। जिससे जीव मोक्षमार्ग की दृष्टि से अपराधी कहलाता है पुन: उसी अपराध को मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना आदि भेदो से स्वीकार कर अपने चित्त को पवित्र बना लेता है। अत: परिणामो को पवित्र बनाने की प्रक्रिया का नाम ही प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण मात्र प्रमादजन्य दोषो के परिहार के लिये किया गया उपक्रम है। या यो कहे कि मन-वचन-कायादि से दिये गये पॉच पापो के समर्थन वापसी की उद्घोषणा है प्रतिक्रमण। यानि जितने प्रकार से समर्थन दिया उतने प्रकार से पुन: असमर्थन करना है प्रतिक्रमण।

प्रायश्चित विधि मे प्रतिक्रमण की महती भूमिका है। अत: संयमीजन प्रतिदिन अपने व्रतो मे प्रमाद से लगे दूषणो के परिमार्जन हेतु प्रतिक्रमण करते है। इसका एक कारण यह भी है कि साधुओ के छह आवश्यको मे एक प्रतिक्रमण आवश्यक भी है। अत· चाहे साधु से प्रमादजन्य अपराध हुआ हो अथवा नही, लेकिन उसे प्रतिक्रमण करना आवश्यक है। क्योकि ऐसा ही जिनेन्द्र प्रभु का उपदेश है संयमी-साधुओ के लिये प्रत्येक चौबीसी के प्रथम तीर्थकरो के समय मे होने वाले एवं अंतिम तीर्थकरो के समय में होने वाले संयमी-साधुओ को प्रतिक्रमण आवश्यक है क्योकि प्रथम तीर्थकरो के समय होने वाले साधु सरल चित्त होने से अपराध कर देते है एवं अन्तिम तीर्थकरो के समय मे होने वाले साधु कुटिल चित्त वाले होने से प्रमादजन्य अपराध करते रहते है। अत: प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्रतिक्रमण आवश्यक के साथ-साथ स्तुति-वन्दना भी साधु चर्या के अभिन्न अंग है। स्तुति-वन्दना मे प्रयुक्त होने वाली भक्तियो का विशेष महत्त्व

है। अतः इसी के साथ ही भक्तियो की विवेचना आवश्यक है। क्योकि किन-किन श्रद्धेयो के प्रति कौन-कौन सी भक्ति कहाँ-कहाँ आवश्यक है इसका ज्ञान होना भी आवश्यक है।

अपने श्रद्धेय के प्रति विशुद्ध भावो की अभिव्यक्ति ही भक्ति है। संसार मे श्रद्धेय के रूप-स्वरूप की मान्यताये विभिन्न प्रकार की है। अतः हमारे जैनाचार्यो ने यथार्थ श्रद्धेय के रूप स्वरूप को भक्ति के माध्यम से सुस्पष्ट किया है। जैसे सिद्ध-भक्ति मे सिद्धो का स्वरूप मत-मतान्तरो मे किस प्रकार है ? एवं वास्तविक स्वरूप क्या होना चाहिये, खण्डन-मण्डन करते हुए, यथार्थ भक्ति का परिचय दिया है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि ये वे भक्तियाँ है, जिनमे जैन सिद्धान्त के मूलभूत सिद्धान्तो-मान्यताओ को सुस्पष्ट करते हुए अपने इष्ट का गुणानुवाद किया गया है। जिसमे यह भी बतलाया गया है कि हमे किस प्रकार से इष्ट का स्मरण करना चाहिये ? क्योकि भक्ति तो एक निमित्त है, अपने इष्ट के समीप जाने के लिये पूजा-प्रार्थना, वन्दना, स्तुति, स्तोत्र, स्मरणादि सब इसी के अविनाभावी है अतः किसी-न-किसी बहाने से अपने इष्ट-प्रभु को गुणानुवाद करते हुये पुकारना भक्ति है।

भक्ति का अर्थ याचना नही, बल्कि निष्काम प्रार्थना है, फिर भी कही-कही भक्त अपने भावो को भक्ति से निमित्त से अपने दु:ख निवारण हेतु प्रार्थना भी करता है लेकिन उस प्रार्थना मे दीनता-याचना नही, समर्पण होता है। "**यत्कर्त्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणं**" यानि अपने मिथ्या मन-वचन-काय के बल का विसर्जन करना ही भक्ति है। भक्ति का यथार्थ फल मुक्ति है। इसी उद्देश्य से हमारे जैनाचार्यो ने भक्ति को भी महत्त्व दिया है।

हमारे आचार्यो द्वारा प्रख्यापित-सम्पादित प्रतिक्रमण एवं भक्तियो के मूलभूत भावो को समझने के लिये इनकी अन्वयार्थ सहभावार्थ रूप "**विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका**" वात्सल्यरत्नाकर आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज की सुशिष्या प्रशान्तमूर्ति, मर्यादा शिष्योत्तम आचार्य श्री भरतसागर जी की प्रेरणा से आर्यिका स्याद्वादमती माता जी ने की है। जो समस्त अर्थ जिज्ञासुजनो के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। आर्यिका जी को अनन्त आशीर्वाद है कि वे आचार्यश्री की पावन प्रेरणा से ज्ञानवर्द्धन सामग्री का सम्पादन करती रहे।

मकर संक्रान्ति
सम्मेदाचल १४-१-९८

मनोभावना

जैनदर्शन मे आचार्यो ने श्रावक व साधुवृन्द के लिये बार-बार एक ही प्रेरणा दी है कि अपने आत्मसंरक्षणार्थ सर्वप्रथम "आदहिदं कादव्वं" आत्मा का हित करो। आत्म हित के लिये व्यवहार रत्नत्रय की साधना से निश्चय रत्नत्रय को साध्य करो।

सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान के भी आठ अंग कहे है। सम्यग्ज्ञान के आठ अंगो मे प्राय: श्रावक व साधुजीवन मे व्यञ्जनाचार की प्रमुखता देखी जा रही है, अर्थाचार की ओर प्राय· लक्ष्य ही नही है। आचार्य कहते है व्यञ्जनाचार यदि अर्थाचार सहित हो तो आस्रव का द्वार बन्द होगा और संवर, निर्जरा का द्वार सहज खुल जायेगा, क्योकि शब्दो की भाव भासना होने पर परिणामो मे विशेष निर्मलता, विशुद्धि आती है। इसी भावना को लेकर गुरु आशीर्वाद से "विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका" तैयार की गई है। इस टीका के कार्य मे मेरा कोई परिश्रम नही एकमात्र गुरुदेव के आशीर्वाद का ही यह फल है।

परमपूज्य आचार्य गुरुदेव विमलसागरजी महाराज की महती अनुकम्पा थी, जिन्होने मुझे आर्यिका व्रत की दीक्षा देकर सुयोग्य बनाया और आचार्य गुरुदेव भरतसागरजी महाराज की सद्प्रेरणा व आशीर्वाद सदा बना ही रहता है। आचार्यश्री मुझे सदैव लेखन कार्य की प्रेरणा देते ही रहते है, आपकी ही सम्यक् प्रेरणा व असीम अनुकम्पा, आशीर्वाद से यह "विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका" तीन प्रतिक्रमण व द्वादश भक्तियो का अर्थ अन्वय सहित तैयार हुआ। इस कार्य मे मुनि श्रमणरत्न अमितसागर जी का सहयोग भी मुझे प्राप्त हुआ, मेरा उनके लिये नमोस्तु। इस महत् कार्य मे अल्पज्ञतावश चूक रह जाना स्वाभाविक है, अत: विज्ञजन सुधार कर पढ़े, तथा सूचित कर मार्गदर्शन देवे। अन्त मे आचार्यश्री के चरणो मे सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति पुरस्सर नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु। आचार्य श्री के स्वर्ण-जयन्ती के पावन अवसर पर आचार्यश्री के कर-कमलो मे यह छोटी सी कृति समर्पित है।

आ० स्याद्वादमती

विषयानुक्रमणिका

●

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! (त्रैलोक्याधिपते.) हे तीन लोक के अधिपति ! मुझ (पापिष्ठेन) पापी (दुरात्मना) दुष्ट (जड़धिया) जड़ बुद्धि (मायाविना) मायाचारी (लोभिना) लोभी (रागद्वेष-मलीमसेन) राग-द्वेष रूपी मल से मलिन (मनसा) मन से (यत्) जो (दुष्कर्म) अशुभ कर्म (निर्मितं) किये है। (सततं) निरन्तर (सत्पथे) सन्मार्ग मे (वर्वर्तिषु:) प्रवृत्ति करने की इच्छा करने वाला (अहं) मै (अधुना) इस समय (भवत:) आपके (श्री-पादमूले) अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न चरण-कमलो मे (निन्दापूर्व) निन्दापूर्वक (जहामि) छोड़ता हूँ।

भावार्थ—हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्र देव ! मुझ पापी, दुष्ट, अज्ञानी, मायाचारी, लोभी के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल से मलीन मन के द्वारा जिन पाप-कर्मो का उपार्जन किया गया है, उन पाप कर्मो को मै अनंत चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सम्पन्न आपके चरण-कमलो मे निन्दापूर्वक छोडता हूँ। तथा अब इस समय निरन्तर सन्मार्ग मे प्रवृत्ति करने की इच्छा करता हूँ। [जिनेन्द्र की साक्षीपूर्वक पाप-कर्मो का त्याग करता हूँ" इस प्रकार यह संकल्प सूत्र है]

संकल्प सूत्र

खम्मामि सव्व-जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व-भूदेसु वैरं मज्झं ण केण वि ।।३।।

अन्वयार्थ—(सव्वजीवाणं) समस्त जीवो को (खम्मामि) मै क्षमा करता हूँ (सव्वे जीवा) सभी जीव (मे खमंतु) मुझे क्षमा करे। (मे) मेरा (सव्वभूदेसु) सभी जीवो मे (मित्ती) मैत्रीभाव है, (केण वि) और किसी के प्रति (मज्झं) मेरा (वैरं) वैरभाव (ण) नही है।

भावार्थ—मै संसार के समस्त प्राणियो के प्रति क्षमा भाव धारण करता हूँ। समस्त प्राणी भी मुझ पर क्षमा भाव धारण करे। संसार के सभी जीवो मे मेरा मैत्री भाव है तथा किसी भी जीव के साथ मेरा वैर-विरोध नही है।

राग परित्याग सूत्र

राग-बन्ध-पदोसं च हरिसं दीण-भावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदि-मरदिं च वोस्सरे ।।४।।

अन्वयार्थ–(राग-बंध-पदोसं) राग-बन्ध-द्वेष [हरिसं] हर्ष (च) और (दीणभावयं) दीनभाव, (उस्सुगत्तं) पञ्चेन्द्रिय विषयों की वासना की उत्सुकता (भयं) भय (सोगं) शोक, (रदिं) रति (च) और (अरदिं) अरति को मैं (वोस्सरे) छोड़ता हूँ।

भावार्थ–हे जिनेन्द्र ! मैं आपकी साक्षीपूर्वक राग-द्वेष-बन्ध, हर्ष, दैन्य प्रवृत्ति/भावना, पञ्चेन्द्रिय विषयों की वासना का आकर्षण, लोलुपता, आसक्ति, भय, शोक, रति और अरति का त्याग करता हूँ।

पश्चात्ताप सूत्र

हा ! दुट्ठ-कयं हा ! दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा !
दुट्ठं अंतो-अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेदंतो ।।५।।

अन्वयार्थ–(हा दुट्ठकयं) हा ! मैने जो दुष्ट कार्य किया है, (हा दुट्ठचिंतियं) हा ! मैंने जो दुष्ट चिन्तन किया है, (च) और (हा दुट्ठं भासियं) हा ! मैंने जो दुष्ट वचन कहे हैं। (वेदंतो) उन सबका वेदन करता हुआ (अंतो अंतो) मैं अन्दर ही अन्दर (पच्छत्तावेण) पश्चात्ताप से (डज्झमि) जल रहा हूँ।

भावार्थ–

१. हा ! यदि मैंने काय से कोई दुष्ट कार्य किया हो।

२. हा ! यदि मैंने मन से कोई दुष्ट चिन्तन किया हो और

३. हा ! यदि मैंने कोई दुष्ट वचन बोला हो तो मैं उन मन-वचन-काय की दुष्ट क्रियाओं को दुष्कृत-अशुभ समझता हुआ, पश्चात्ताप से भीतर ही भीतर पीड़ित हुआ जल रहा हूँ अर्थात् अपने दुष्कृत्यों से मेरा अन्तःकरण जल रहा है अतः हे जिनेन्द्र ! आपकी साक्षीपूर्वक इनका त्याग करता हूँ।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराह-सोहणयं ।
णिंदण-गरहण-जुत्तोमण-वच[1]-कायेण पडिक्कमणं ।।६।।

अन्वयार्थ–(दव्वे) द्रव्य में (खेत्ते) क्षेत्र में (काले) काल में (य) और (भावे) भाव में (कदावराह सोहणयं) किये अपराधों की शोधना करने के लिये (णिंदण-गरहण-जुत्तो) निंदा और गर्हा से युक्त होता हुआ (मण-वच-कायेण) मन-वचन-काय से (पडिक्कमणं) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

---

१. वय पाठ भी है।

भावार्थ–

द्रव्य— आहार, शरीर आदि ।

क्षेत्र— वसतिका, मार्ग, जिनालय आदि ।

काल— पूर्वाण्ह, मध्यान्ह और अपराण्ह आदि ।

भाव— संकल्प-विकल्प आदि ।

मै, द्रव्य-शरीर आदि, क्षेत्र-वसतिका, मार्ग आदि, काल-भूत-भावी, वर्तमान अथवा पूर्वाह्न और अपरान्ह मे किये गये अपने अपराधों की शुद्धि के लिए मन-वचन-काय से प्रतिक्रमण करता हूँ ।

ए-इंदिया, बे-इंदिया, ते-इंदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढवि-काइया-आउ-काइया, तेउ-काइया, वाउ-काइया, वणप्फदि-काइया, तस-काइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ–(ए-इंदिया) एकेन्द्रिय (बे-इंदिया) दो इन्द्रिय (ते इंदिया) तीन इंद्रिय (चतुरिंदिया[१]) चार इन्द्रिय (पंचिंदिया) पञ्चेन्द्रिय (पुढवि काइया) पृथ्वीकायिक (आउ-काइया) जलकायिक (तेउ-काइया) अग्निकायिक (वाउ-काइया) वायुकायिक (वणप्फदि-काइया) वनस्पति-कायिक (तस-काइया) त्रस कायिक (एदेसिं) इन जीवों का (उद्दावणं) मारण (परिदावणं) संतापन (विराहणं) विराधन (उवघादो) उपघात अर्थात् एकदेश घात (कदो) किया हो (वा) अथवा (कारिदा) दूसरो से कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो वा समणुमण्णिदो) करने वालों की अनुमति की हो (तस्स) उससे होने वाले (मे दुक्कडं) मेरे दुष्कृत्य/पाप (मिच्छा) मिथ्या होवे ।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव ! मैने एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीव को मारना, पीड़ा देना, एकदेश प्राणो का घात करना, विराधना करना आदि पाप-कार्यो को स्वयं किया हो, दूसरो से कराया हो अथवा करने वालो की अनुमोदना की हो तो मेरे पाप मिथ्या होवें ।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च ।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

अन्वयार्थ— (वद-समि-दिंदियरोध:) पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध (लोचो) लोच करना (आवासयं) षट् आवश्यक (अचेलं)

१. चउरिंदिया भी गलत है ।

वस्त्र मात्र का त्याग अर्थात् नग्नता (अण्हाणं) स्नान का त्याग (खिदि-सयणं) भूमि शयन (अदंतवणं) दंत धवन नही करना (ठिदि-भोयणं) भूमि पर खड़े होकर भोजन करना (च) और (एयभत्तं) दिन में एक बार भोजन करना (खलु) निश्चय से (एदे) ये (समणाणं) मुनियो के (मूलगुणा) अट्ठाईस मूलगुण (जिणवरेहिं) जिनेन्द्र देव ने (पण्णत्ता) कहे हैं। (एत्थ) इन मूलगुणों में (पमाद कदादो) प्रमाद जनित (अइचारादो) अतिचारों से (अहं) मै (णियत्त:) निवृत्त होता हूँ।

भावार्थ—जो महान व्रत हैं उन्हे महाव्रत कहते हैं। अथवा महापुरुषो के द्वारा जिनका आचरण किया जाता है वे महाव्रत हैं। अथवा स्वत: ही मोक्ष को प्राप्त कराने वाले होने से ये महान व्रत महाव्रत कहलाते है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत है।

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनो वच: कायै: ।
कृतकारितानु-मोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥ र.श्रा.॥

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं ।
जं च महल्लाणि तदो महल्लया इत्तहे ताइं ॥३०॥ चा.पा. ॥

महापुरुष जिनका साधन करते हैं, पूर्ववर्ती महापुरुषों ने इनका आचरण किया है और ये स्वयं ही महान हैं अत: इन्हें महाव्रत कहते हैं।

काय, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणा, कुल, आयु और योनि इनमे जीवों को जानकर इनमें प्रमत्तयोग से होने वाली हिंसा का परिहार करना **अहिंसा महाव्रत** है।

रागादि से असत्य बोलने का त्याग करना और पर को ताप करने वाले सत्य वचनों का भी त्याग करना तथा सूत्र और अर्थ के कहने में भी अयथार्थ वचनों का त्याग करना **सत्य महाव्रत** है।

ग्राम, नगर आदि में गिरी हुई, भूली हुई इत्यादि जो भी छोटी-बड़ी वस्तु है और जो पर के द्वारा संगृहीत है ऐसे परद्रव्य को ग्रहण नहीं करना सो **अचौर्य महाव्रत** है।

वृद्ध-बाला-युवती अथवा देव-मनुष्य-तिर्यंच तीन प्रकार की स्त्रियो वा उनके प्रतिरूप (चित्र) को माता, पुत्री और बहन के समान समझ उन स्त्रियो से विरक्त होना **ब्रह्मचर्य महाव्रत** कहलाता है।

चेतन, अचेतन और मिश्र ऐसे तीन प्रकार के परिग्रह है। अथवा १४ प्रकार [मिथ्यात्व, क्रोधादि ४ व ९ नोकषाय] अन्तरंग परिग्रह और १० प्रकार [क्षेत्र, वास्तु आदि] का बाह्य परिग्रह, इन समस्त परिग्रहो से विरक्त होना **अपरिग्रह महाव्रत** है।

समिति—सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहते है। समिति पॉच है—१. ईर्या २. भाषा ३. एषणा ४ आदाननिक्षेपण और ५ प्रतिष्ठापना या उत्सर्ग समिति।

ईर्या समिति—प्रयोजन के निमित्त चार हाथ आगे जमीन देखने वाले साधु के द्वारा दिवस मे प्रासुकमार्ग से जीवो का परिहार करते हुए जो गमन है वह ईर्या समिति है।

भाषा समिति—चुगली, हॅसी, असभ्य, अश्लील, कठोरता, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर अपने और पर के लिये हितरूप वचन बोलना भाषा समिति है।

एषणा समिति—छयालीस दोषो से रहित शुद्ध, कारण से सहित, नवकोटि से विशुद्ध और शीत, उष्ण आदि मे समान भाव से भोजन करना एषणा समिति है।

आदाननिक्षेपण समिति—ज्ञान का उपकरण, संयम का उपकरण, शौच का उपकरण अथवा अन्य भी उपकरण को प्रयत्न पूर्वक ग्रहण करना और रखना आदाननिक्षेपण समिति है।

प्रतिष्ठापना समिति—एकान्त स्थान मे जीव जन्तु रहित, दूरस्थित, मर्यादित, विस्तीर्ण और विरोध रहित स्थान मे मल-मूत्रादि का त्याग करना प्रतिष्ठापना समिति है।

एषणा समिति के ४६ दोष—१६ उद्गम दोष, १६ उत्पादन दोष, १० एषणा के दोष, १. सयोजना दोष, १. अप्रमाण दोष, १. अंगार दोष और १ अध·कर्म दोष = ४६ दोषर हित आहार शुद्धि।

१६ उद्गम दोष—१ औद्देशिक-जो आहार नागादि देव या पाखण्डी साधु वा दीन हीनो के उद्देश्य से तैयार किया जाता है या दिगम्बर मुनियो को उद्देश्य करके बनाया गया आहार हो वह औद्देशिक कहलाता है।

२. **अध्यधि**—आहार को आते हुए संयमियों को देखकर पकते हुए चावलों में और चावलादि मिला देना अध्यधि दोष है।

३. **पूति दोष**—जिस पात्र से मिथ्यादृष्टि साधुओं को आहार दिया गया है उसी पात्र में रखा हुआ अन्न दिगम्बर साधुओं को दिया जावे तो पूति दोष लगता है।

४. **मिश्र दोष**— प्रासुक और अप्रासुक को मिलाकर आहार देना मिश्र दोष है।

५. **स्थापित दोष**—पाक भाजन से अन्न को निकाल कर स्वगृह में अथवा किसी अन्य गृह में स्थापित करके देना या एक भाजन से निकाल कर दूसरे भाजन में स्थापित करना, उस भाजन से फिर तीसरे में रखना स्थापित दोष कहलाता है।

६. **बलि दोष**—यक्षादि की पूजा के निमित्त बनाया हुआ आहार संयत को देना बलि दोष है।

७. **प्राभृत दोष**—इस माह, पक्ष, ऋतु अथवा तिथि आदि को मुनियों को आहार दूँगा, इस प्रकार के नियम से आहार देना प्राभृत दोष है।

८. **प्राविष्कृत दोष**—हे भगवान्! यह मेरा घर है इस प्रकार गृहस्थ के द्वारा घर बतलाकर आहार दिया जाना प्राविष्कृत दोष है।

९. **प्रामृष्य दोष**—यतियों के दान के लिये ब्याज देकर वस्तु लाना, कर्ज लेना प्रामृष्य दोष है।

१०. **क्रीत दोष**—विद्या से खरीद कर अथवा द्रव्य, वस्त्र, भाजन आदि के विनिमय से अन्नादि खरीदकर लाना और साधु को आहार में देना क्रीत दोष है।

११. **परावर्त दोष**— अपने घर के घी, चावल आदि देकर बदले में दूसरे चावल आदि लाकर आहार देना परावर्त दोष है।

१२. **अभिहित दोष**—एक ग्राम से दूसरे ग्राम में अथवा एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में ले जाकर साधु को आहार देना अभिहित दोष है।

[सरल पंक्तिबद्ध सात घरों से लाया हुआ आहार साधुओं को देने योग्य है, सात घरों के परे स्थित घरों से लाया हुआ आहार साधुओं को देने योग्य नहीं है]

१३. **उद्घाटित दोष**—आहार के लिये साधु के आ जाने के अनन्तर मुद्रा, शील, मुहर आदि का भेदकर वा किसी पत्थर आदि से आच्छादित वस्तु को खोलकर देना उद्घाटित दोष है।

१४. **मालिकारोहण दोष**—ऊपर भाग में रखी हुई खान-पान आदि की वस्तु को सीढी लगाकर उतारना और साधुओं को देखना मालिकारोहण दोष है।

१५. **आच्छेद्य दोष**—राजा आदि के भय से जो आहार दिया जाता है वह आच्छेद्य दोष है।

१६. **अनिसृष्ट दोष**—ईश और अनीश के अनभिमत से अथवा स्वामी और अस्वामी के असहमति या बिना इच्छा के, अनभिमत से आहार देना अनिसृष्ट दोष है। ये सोलह उद्गम दोष श्रावकों के आश्रित हैं। अतः श्रावकों को इन सोलह बातों का ध्यान रखना चाहिये। यदि श्रावक यह कहता है कि यह रसोई सोला की बनाई है, यानि सोलह दोषों को दूरकर बनाई है, यह उसका तात्पर्य है।

१६ उत्पादन दोष

१. **धातृ दोष**—बालकों के लालन-पालन की शिक्षा देकर आहार ग्रहण करना धातृ दोष है।

२. **दूत दोष**—दूरस्थ बन्धुओं के समाचार लाना-ले जाना दूत दोष है।

३. **भिषग्वृत्ति दोष**—आहार के लिये गजचिकित्सा, बालचिकित्सा, विषचिकित्सा आदि बतलाना भिषग्वृत्ति दोष है।

४. **निमित्त दोष**—स्वर, अन्तरिक्ष, भौम, अंग, व्यंजन, छिन्न, लक्षण और स्वप्न आदि बताकर भिक्षार्जन करना निमित्त दोष है।

५. **इच्छाविभाषण दोष**—किसी श्रावक के यह पूछने पर कि हे

मुनिवर ! दीन हीन प्राणियों को दान देने से पुण्य होता है या नही–उस श्रावक की इच्छानुसार उत्तर देना इच्छाविभाषण दोष है।

६. पूर्वस्तवन दोष—हे सेठ ! तू संसार में प्रसिद्ध दाता है। तेरे पूर्वज भी महादानी थे इस प्रकार प्रशंसारूप वचनो द्वारा गृहस्थ को आनन्दित करके आहार करना पूर्वस्तवन दोष है।

७. पश्चात् स्तवन दोष—आहार के बाद दातार की प्रशंसा करना– हे श्रीमन्न ! तू बड़ा दातार है। तेरे जैसा आहार कोई न बनाता है और न देता है; पश्चात् स्तवन दोष है।

८. क्रोध दोष—क्रुद्ध होकर आहार लेना क्रोध दोष है।

९. मान दोष—मान कषाय सहित आहार लेना मान दोष है।

१०. माया दोष—मायाचार से आहार लेना माया दोष है।

११. लोभ दोष—लोभ कषाय सहित आहार लेना लोभ दोष है।

१२. वश्यकर्म दोष—वशीकरण मंत्र के द्वारा आहार प्राप्त करना वश्यकर्म दोष है।

१३. स्वगुणस्तवन दोष—अपने कुल, जाति, तप आदि का गुणगान करके आहार लेना स्वगुणस्तवन दोष है।

१४. मन्त्रोपजीवन दोष—अंग शृंगारकारी पुरुषों को पठित सिद्ध आदि मन्त्रो का उपदेश देना मन्त्रोपजीवन दोष है।

१५. चूर्णोपजीवन दोष—चूर्णादिक का उपदेश देकर अन्नोपार्जन करना चूर्णोपजीवन दोष है।

१६. विद्योपजीवन दोष—आहार के लिये गृहस्थों को सिद्ध-विद्या-साधित विद्या प्रदान करना विद्योपजीवन दोष है। ये १६ उत्पादन दोष हैं। ये १६ उत्पादन दोष पात्र (साधु) के आश्रित हैं।

१० एषणा दोष

१. शंकित दोष—यह वस्तु सेव्य है या असेव्य है, शंका करते हुए आहार लेना शंकित दोष है।

२. **प्रक्षित दोष**—घृत आदि से चीकने पात्र से या हाथ से आहार लेना प्रक्षित दोष है।

३. **निक्षिप्त दोष**—सचित्त कमल-पत्र आदि पर रखा हुआ आहार लेना निक्षिप्त दोष है।

४. **पिहित दोष**—सचित्त कमलपत्र आदि से ढके हुए अन्न को ग्रहण करना पिहित दोष है।

५. **उज्झित दोष**—दाता के द्वारा दिये गये आहार के बहुभाग को नीचे गिराकर स्वल्प ग्रहण करना उज्झित दोष है।

६. **व्यवहार दोष**—आहार देने के पात्रादि को अच्छी तरह से देखे बिना आहार देना व्यवहार दोष है।

७. **दातृ दोष**—बिना वस्त्र पहने अथवा एक कपड़ा पहनकर आहार देना, नपुंसक, जिसके भूत लगा है, जो अन्धा है, पतित या जाति बहिष्कृत है, मृतक का दाह संस्कार करके आया है, तीव्र रोग से आक्रान्त है, जिसके फोड़ा-फुंसी है, जो कुलिंगी है, नीचे स्थान मे खड़ा है या साधु से ऊँचे स्थान पर खड़ा हो, जो स्त्री पॉच महीनो से अधिक गर्भवती है, वेश्या है, दासी है, लम्बा घूँघट निकाले हुए है, अपवित्र है, मुख मे कुछ खा रही है–इस प्रकार के दाता का आहार लेना दातृ दोष है।

८. **मिश्र दोष**—सचित्तादि से अथवा षट्काय के जीवों से मिश्रित आहार लेना मिश्र दोष है।

९. **अपक्व दोष**—जिस पानी आदि के रूप, रस गन्धादि का अग्नि आदि के द्वारा परिवर्तन नही हुआ हो उसे आहार मे लेना अपक्व दोष है।

१०. **लिप्त दोष**—आटे आदि से लिप्त, चम्मच आदि से अथवा सचित्त जल से लिप्त पात्र या हस्त आदि से दिये हुए आहार को लेना लिप्त दोष है।

४ अंगार दोष

१. **संयोजन दोष**—स्वाद के लिये शीत वस्तु मे उष्ण वस्तु अथवा उष्ण वस्तु मे शीत वस्तु मिलाकर आहार करना संयोजन दोष है। [इस प्रकार के आहार से अनेक रोग भी उत्पन्न होते है तथा असंयम की भी वृद्धि होती है]

२. प्रमाणातिरेक दोष—प्रमाण से अधिक भोजन करना प्रमाणातिरेक कहलाता है। मुनियों के आहार की विधि इस प्रकार बताई गई है—कुक्षि के दो भाग को अन्न से भरे, एक भाग पेय पदार्थों से पूरित करे तथा एक भाग वायु के संचार के लिये खाली रक्खे। आहार के प्रति अत्यधिक लालसा होने पर इस विधि का उल्लंघन किया जाता है तो प्रमाणातिरेक नामक दोष लगता है।

विशेष—शीत ऋतु में २ भाग अन्न व एक भाग पानी तथा उष्ण ऋतु में एक भाग अन्न व दो भाग पानी से उदर की पूर्ति करें।

प्रामाणातिरेक आहार से ध्यान भंग होता है, अध्ययन का विनाश तथा निद्रा व आलस्य की उत्पत्ति होती है।

३. *अंगार दोष*—इष्ट अन्न पानादि की प्राप्ति होने पर राग के वशीभूत होकर अधिक सेवन करना अंगार दोष है।

४. धूम दोष—अनिष्ट अन्न पान आदि की प्राप्ति होने पर द्वेष करना धूम दोष है।

३२ अन्तराय

१. काक, २. अमेध्य, ३. छर्दी, ४. रोधन, ५. रुधिर, ६. अश्रुपात, ७. जान्वध स्पर्श, ८. जानू परिव्यतिक्रम, ९. नाभ्यधः निर्गमन, १०. प्रत्याख्यात सेवन, ११. जीववध, १२. काकादि पिण्डहरण, १३. पिण्ड पतन, १४. जन्तुवध, १५. मांस दर्शन, १६. उपसर्ग, १७. पादान्तर पञ्चेन्द्रिय जीवगमन १८. भाजन सम्पात, १९. उच्चार, २०. प्रस्रवण, २१. अभोज्य गृह प्रवेश, २२. पतन, २३ उपवेशन, २४. दंष्ट्र, २५. भूमिस्पर्श २६. निष्ठीवन, २७. कृमि निर्गमन, २८. अदत्त ग्रहण, २९. शस्त्रप्रहार, ३०. ग्राम दाह, ३१. पादेन–पैरों से ग्रहण, ३२. हस्तेन–हाथ से ग्रहण।

१४ मल दोष

१. रोम (बाल), २. जीव रहित शरीर, ३. हड्डी, ४. कुण्ड (अर्थात् चावल आदि के भीतर के सूक्ष्म अवयव, ५ कण, अर्थात् गेहूँ, जौ आदि के बाहरी अवयव, ६. नख, ७. पीव, ८. रुधिर, ९. चर्म, १०. मांस, ११. बीज, १२. फल १३. कन्द और १४ मूल। ये १४ अशुभ मल कहलाते हैं।

इनमे कुछ तो बहुत बड़े मल है—चमड़ा, हड्डी, रुधिर, मांस, नख और पीव ये महामल कहलाते है आहार मे इनके आने पर आहार का भी त्याग करे व प्रायश्चित्त भी लेवे।

दो, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवो का शरीर और बाल आहार मे निकलने पर आहार त्यागना चाहिये। तथा कण, कुण्ड, फल, बीज, कंद, मूल, दल ये अल्प मल कहलाते है, इनके आहार मे आने पर भोजन मे से इन्हे निकाल सकते है यदि निकालना अशक्य हो तो आहार का त्याग कर देना चाहिये।

इस प्रकार ४६ दोष रहित, ३२ अन्तराय और १४ मल दोष टालकर उत्तम श्रावक के घर आहार लेना एषणा समिति है।

मुनिराज छह कारणों से आहार ग्रहण करते हैं—

(१) क्षुधा वेदना को शान्त करने के लिये (२) मुनियो की वैयावृत्ति करने के लिये (३) छह आवश्यको को निर्दोष पालने के लिये (४) संयम की रक्षा के लिये (५) प्राणो की रक्षा के लिये (६) और उत्तम क्षमादि दस धर्मो का पालन करने के लिये।

पञ्चेन्द्रिय निरोध

१. स्पर्शन-इन्द्रिय निरोध—जीव और अजीव से उत्पन्न हुए कठोर व कोमल आदि आठ भेदो से युक्त सुख और दुख रूप स्पर्श मे मोह रागादि नही करना स्पर्शन इन्द्रिय निरोध है।

२. रसना इन्द्रिय निरोध—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के भेद रूप पंच रसयुक्त, प्रासुक, निर्दोष, पर के द्वारा दिये गये रुचिकर अथवा अरुचिकर आहार मे लम्पटता नही होना रसना इन्द्रिय निरोध है।

३. घ्राण इन्द्रिय निरोध—जीव और अजीव स्वरूप सुख और दुःख रूप प्राकृतिक तथा पर-निमित्तक सुगंध-दुर्गन्ध मे राग-द्वेष नही करना घ्राण इन्द्रिय निरोध है।

४. चक्षुइन्द्रिय निरोध—सचेतन और अचेतन पदार्थो के क्रिया, आकार और वर्ण के भेदो मे मुनि के जो राग-द्वेष आदि संग का त्याग है वह चक्षु इन्द्रिय निरोध है।

५. **श्रोत्र इन्द्रिय निरोध**—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद सप्त स्वर जो जीव या अजीव से उत्पन्न हों उनमें राग का उत्पन्न नहीं होना श्रोत्र इन्द्रिय निरोध है।

षट् आवश्यक

सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग= ६ आवश्यक

१. **सामायिक**—जीवन-मरण में, लाभ-अलाभ में, संयोग-वियोग में, मित्र-शत्रु में तथा सुख-दुःख इत्यादि में समभाव होना सामायिक है।

२. **स्तुति**—ऋषभ आदि चतुर्विंशति तीर्थंकरों के नाम का कथन, उनके गुणों का कीर्तन, पूजा तथा उन्हें मन-वचन-काय पूर्वक नमस्कार करना स्तव नामक आवश्यक है।

३. **वन्दना**—अर्हंत आदि पंच परमेष्ठी का या चतुर्विंशति तीर्थंकरों का अलग-अलग वन्दन, गुणकीर्तन व मन-वचन काय से प्रणाम करना वन्दना है।

४. **प्रतिक्रमण**—निन्दा और गर्हापूर्वक मन-वचन-काय के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के विषय में किये गये अपराधों का शोधन करना प्रतिक्रमण है।

५. **प्रत्याख्यान**—भविष्य में आने वाले पापास्रव के कारणभूत अयोग्य नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का मन-वचन-काय से त्याग करना प्रत्याख्यान है।

६. **व्युत्सर्ग**—दैवसिक, रात्रिक आदि नियम क्रियाओं में आगम कथित प्रमाण के द्वारा आगम में कथित काल में जिनेन्द्र देव के गुणों के चिन्तवन से सहित होते हुए शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।

सप्त शेष गुण

१. **लोच**—प्रतिक्रमण सहित दो, तीन, चार मास में उत्तम, मध्यम, जघन्यरूप सिर व दाढ़ी, मूछ के केशों का लोच उपवास पूर्वक ही करना चाहिये।

२. **अचेलकत्व**—वस्त्र, चर्म, वल्कल से अथवा पत्ते आदि से नग्न शरीर को नहीं ढकना, निर्ग्रन्थ और निर्भूषण शरीर का धारण करना अचेलकत्व है।

३. **अस्नान**—स्नान आदि के त्याग कर देने से जल्ल मल्ल और पसीने से सर्वांग लिप्त हो जाना मुनि के प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम पालन करने रूप, घोर गुणस्वरूप अस्नान है।

४. **भूमिशयन**—किंचित् मात्र से संस्तर से रहित एकान्त स्थान रूप प्रासुक भूमि प्रदेश में दण्डाकार या धनुषाकार शयन करना अथवा एक पखवाड़े से सोना क्षितिशयन है।

५. **अदन्तधावन**—अंगुली, नख, दांतोन और तृण विशेष के द्वारा, पत्थर या छाल आदि के द्वारा दाँत के मल का शोधन नहीं करना यह संयम की रक्षा रूप अदन्तधावन है।

६. **स्थितिभोजन**—दीवाल, खंभा आदि का सहारा न लेकर पैरों में आगे-पीछे चार अंगुल प्रमाण का अन्तर रखकर जीव-जन्तु रहित भूमि पर खड़े होकर दोनों हाथों की अंजली बनाकर, तीन स्थानों की भूमि—अपने पैर रखने का स्थान, उच्छिष्ट गिरने का स्थान और परोसने वाले स्थान को देखकर भोजन करना स्थितिभोजन है।

७. **एकभक्त**—उदय और अस्त के काल में से तीन-तीन घड़ी से रहित मध्यकाल में से एक, दो अथवा तीन मुहूर्त काल में एक बार भोजन करना यह एकभक्त मूलगुण है।

इस प्रकार पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक और सात शेष गुण इस प्रकार ५+५+५+६+७=२८ मूलगुण साधु परमेष्ठी के होते हैं।

"छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं" ।

अन्वयार्थ—(मज्झं) मेरे (छेदोवट्ठावणं) छेदोपस्थापना अर्थात् प्रमाद से लगे दोषों का निराकरण होकर पुनः व्रतों की स्थापना (होदु) होवे।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रिय-रोध-षडावश्यकक्रिया-लोचादयो अष्टाविंशति-मूलगुणाः, उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्-त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि, दश-लाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शील-सहस्राणि, चतु-रशीति-लक्षगुणाः, त्रयोदश-विधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्-सिद्धा-चार्योपाध्याय-सर्व-साधु-साक्षिकं, सम्यक्त्व-पूर्वकं, दृढ़-व्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ।

अन्वयार्थ—(पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रिय-रोध षडावश्यकक्रिया लोचादयो) अहिंसा आदि पाँच महाव्रत, ईर्याभाषा आदि पाँच समिति, पाँचों इन्द्रियों का निरोध, समता आदि छह आवश्यक क्रिया और लोच आदि (अष्टाविंशति-मूलगुणाः) मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण हैं। (उत्तम-क्षमा मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यागा-किंचन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः) १. उत्तम क्षमा, २. उत्तम मार्दव, ३. उत्तम आर्जव, ४. उत्तम शौच, ५. उत्तम सत्य, ६. उत्तम संयम, ७. उत्तम तप, ८. उत्तम त्याग ९. उत्तम आकिंचन्य और १०. उत्तम ब्रह्मचर्य रूप दसलक्षण धर्म (*अष्टादश-शील-सहस्राणि*) *अठारह हजार शील* (*चतुरशीति लक्षगुणा*) चौरासी लाख गुण (त्रयोदशविधं चारित्रं) पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति १३ प्रकार का चारित्र (च) और (द्वादशविधं तपः) बारह प्रकार का तप (इति) इस प्रकार (सकलं) सम्पूर्ण उत्तम व्रत (अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं) अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु--इन पञ्चपरमेष्ठी की साक्षी से (सम्यक्त्वपूर्वकं) सम्यक्त्वपूर्वक (मे) हमारे लिये (ते) तुम्हारे लिये (दृढव्रतं) दृढव्रत (सुव्रतं) सुव्रत (समारूढं भवतु) समारूढ़ होवें।

भावार्थ—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक तथा लोच, अचेलकत्व, अदन्तधावन, भूमि शयन, खड़े होकर भोजन करना, दिन में एक बार भोजन करना ये साधु के २८ मूलगुण हैं। उत्तमक्षमादि दसधर्म, अठारह हजार शील के भेद, ८४ लाख उत्तरगुण, तेरह प्रकार का चारित्र और बारह प्रकार का तप ये सब उत्तम व्रत अरहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु—इन पाँचों परमेष्ठियों की साक्षी से सम्यक्त्वपूर्वक हमारे और तुम्हारे लिये ये व्रत दृढ़ होवें।

दस धर्म—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ।

अठारह हजार शील—३ योग= मन, वचन, काय, ३ करण= मन, वचन, काय ४. संज्ञा, [आहार, भय, मैथुन और परिग्रह] ५ इन्द्रिय-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ।

१० प्रकार के जीव—पृथ्वीकायिक, जलकायिक अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय ।

१० धर्म = उत्तम क्षमादि

३x३x४x५x१०x१०=१८००० शील के भेद ।

अशुभ मन, वचन, काय का निराकरण शुभ मन, वचन, काय से किया जाता है अत: तीन को तीन से गुणा करने पर नव भेद होते हैं । इन नौ को चार संज्ञाओं से गुणा करने पर ९x४=३६ भेद होते हैं । इनको पंचेन्द्रिय से गुणा करने पर ३६x५=१८० होते हैं । १८० को १० जीवों से गुणा करने पर १८०x१०=१८०० तथा १८००x१० धर्म से गुणा करने पर १८००x१० = १८००० शील के भेद होते हैं ।

अथवा

स्त्री ४ प्रकार की, ३ योग, ३ कृत, कारित, अनुमोदना, ५ इन्द्रिय, शृंगार रस के १० भेद १. स्त्री-संसर्ग २. पुष्ट रस सेवन ३. गंधमाला धारण ४. सुन्दर शयनासन ५. भूषण ६. गीत ७. धन संप्रयोग ८. कुशील सेवा ९. राज सेवा १०. रात्रि संचरण १. शरीर शृंगार, २. शृंगार रस कथा, ३. हास्य क्रीड़ा, ४. स्त्री संगति की इच्छा, ५. स्त्री अवलोकन, ६. स्त्री के शरीर का शृंगार, ७. स्नेहयुक्त वस्तु देना, ८. पूर्व भोगों का स्मरण, ९. विषय सेवन का संकल्प, १०. विषय सेवन की अभिलाषा और काय चेष्टा के १० भेद इस प्रकार ४x३x३x५x१०x१०=१८००० शील के भेद ।

अथवा

विषयाभिलाषा आदि १० मैथुन कर्म [विषयाभिलाषा, वस्तिमोक्ष, प्रणीतरससेवन, संसक्त द्रव्य सेवन, शरीरांगोपांगावलोकन, प्रेमिका-सत्कार-पुरस्कार, शरीर संस्कार, अतीत भोगस्मरण, अनागत आकांक्षा और इष्ट विषय सेवन] चिन्ता आदि १० अवस्थाएँ [चिन्ता, दर्शनाभिलाषा, दीर्घ निश्वास, ज्वर, दाह, भोजन में अरुचि, मूर्च्छा, उन्माद, जीवन-सन्देह, मरण] ५ इन्द्रियाँ, ३ योग, ३ कृत-कारित-अनुमोदना २ जागृत, स्वप्न

अवस्थाएँ, चेतन व अचेतन २ प्रकार की स्त्री—इन सबका परस्पर गुणा करने से शील के १८००० भेद निकल आते है।

[१०×१०×५×३×३×२×२=१८००० शील के भेद]

१३ प्रकार का चारित्र– पॉच महाव्रत, पॉच समिति और मन गुप्ति, वचन गुप्ति तथा काय गुप्ति=५+५+३=१३।

८४ लाख उत्तरगुण— हिंसादि के भेद २१, अतिक्रमादि ४, काय १०, धर्म १०, शील की विराधना के भेद १०, आलोचना के भेद १०, शुद्धि के भेद १० = २१×४×१०×१०×१०×१०×१०=८४००००० ।

हिंसादि के २१ भेद—१. प्राणीवध, २. मृषावाद, ३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. भय, ११. अरति, १२. जुगुप्सा, १३. रति, १४. मन दुष्टत्व, १५ वचन दुष्टत्व, १६. काय दुष्टत्व, १७. मिथ्यात्व, १८. प्रमाद, १९. पैशुन्य, २० अज्ञान और २१. इन्द्रिय अनिग्रहत्व।

२. **अतिक्रमादि ४—१. अतिक्रम**– मन की शुद्धि की हानि। **व्यतिक्रम**–शीलव्रतो का उल्लंघन। **अतिचार**–विषयो मे एक बार प्रवृत्त होना और **अनाचार**—विषयो मे अति आसक्ति। कहा भी है—

अतिक्रमो मानस-शुद्धि-हानि, र्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः।
तथातिचारः करणालसत्वं, भंगो ह्यनाचार इह व्रतानाम्॥

३. **काय के दस भेद**—१. पृथ्वीकायिक २. जलकायिक ३. अग्निकायिक ४. वायुकायिक ५. प्रत्येक वनस्पति ६. साधारण वनस्पति ७. द्वीन्द्रिय ८. त्रीन्द्रिय ९. चतुरिन्द्रिय और १०. पंचेन्द्रिय।

४. **शील की दस विराधना**—१. स्त्री संसर्ग २. प्रणीत रस सेवन (सरसाहार) ३. शरीर संस्कार ४. कोमलशयनासन ५. सुगन्ध संस्कार ६. गीत वादित्र श्रवण ७. अर्थ ग्रहण ८. कुशील संसर्ग ९. राजसेवा और १०. रात्रिसंचरण।

५. **आलोचना के १० दोष**—१. आकम्पित दोष २. अनुमानित दोष ३. दृष्ट दोष ४. बादर दोष ५. सूक्ष्म दोष ६. छिन्न दोष ७. शब्दाकुलितदोष ८. बहुजन दोष ९. अव्यक्त दोष और १०. तत्सेवी दोष।

६. शुद्धि के १० भेद—१. आलोचना २. प्रतिक्रमण ३. तदुभय ४. विवेक ५. व्युत्सर्ग ६. तप ७. छेद ८. परिहार ९. उपस्थापना और १०. श्रद्धान।

७. संयम के १० भेद—५ प्रकार का प्राणी [एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवो की रक्षा करना] तथा पॉचो इन्द्रियो को वश मे करना ५ प्रकार का इन्द्रिय, इस प्रकार इन्द्रिय संयम के ५ भेद और प्राणी संयम के ५ भेद इस प्रकार कुल संयम के १० भेद।

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां, कृत–दोष निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्म क्षयार्थं भाव पूजा–वंदना–स्तव समेतं आलोचना सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ) इसके बाद (अहं) मै (सर्व अतिचार विशुद्ध्यर्थ) समस्त अतिचारो की शुद्धि करने के लिये [रात्रिक-दैवसिक प्रतिक्रमण क्रियायां] रात्रि-दिन मे होने वाली प्रतिक्रमण की क्रिया मे (कृत-दोष-निराकरणार्थ) किये दोषो के निराकरण के लिये (पूर्वाचार्यानुक्रमेण) पूर्ववर्ती आचार्यों के अनुसार से (सकल-कर्म-क्षयार्थ) सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने के लिये (भाव पूजा वन्दना स्तव समेतं) भाव पूजा, वन्दना और स्तवन सहित (आलोचना सिद्धभक्ति-कायोत्सर्ग) आलोचना सहित सिद्धभक्ति पूर्वक (कायोत्सर्ग) कायोत्सर्ग को (करोमि) करता हूँ।

विशेष—प्रातःकाल रात्रिक सम्बन्धी प्रतिक्रमण के लिये रात्रिक शब्द का प्रयोग करना चाहिये और अपराह्न मे दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण के लिये दैवसिक शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

(इति प्रतिज्ञाप्य) इस प्रकार प्रतिज्ञा करके, यहॉ नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके (णमो अरहंताणमित्यादि सामायिकदंडकं पठित्वा) णमो अरहंताणं आदि सामायिक दंडक पढ़कर (कायोत्सर्ग कुर्यात्) कायोत्सर्ग करे।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अन्वयार्थ—(अरहंताणं णमो) घातिया कर्मों से रहित, वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी अरहंत परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ (णमो सिद्धाणं) अष्टकर्मों से रहित सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ (आइरियाणं) पंचाचार पालक आचार्य परमेष्ठी को (णमो) नमस्कार करता हूँ (उवज्झायाणं णमो) उपाध्याय परमेष्ठी जो ११ अंग १४ पूर्व के पाठी है को नमस्कार करता हूँ (लोए सव्वसाहूण) अट्ठाईस मूलगुणो से मंडित लोकवर्ती सम्पूर्ण साधुओ को (णमो) नमस्कार करता हूँ।

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा केवलि--पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अन्वयार्थ—(चत्तारि मंगलं) चार मंगल है (अरहंता मंगलं) अरहंत मंगल हैं (सिद्धा मंगलं) सिद्ध मंगल हैं, (साहू मंगलं) साधु मंगल है (केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं) केवली प्रणीत धर्म मंगल है अर्थात् अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म मंगल रूप है, पापो का नाश करने वाले वे सुख को देने वाले है। (चत्तारि लोगुत्तमा) चार लोक मे उत्तम है-(अरहंता लोगुत्तमा) अरहंत लोक मे उत्तम है (सिद्धा लोगुत्तमा) सिद्ध लोक मे उत्तम है, (साहू लोगुत्तमा) साधु लोक मे उत्तम है (केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो) केवली प्रणीत धर्म लोक मे उत्तम है। (चत्तारि सरणं पव्वज्जामि) मै चार की शरण को प्राप्त करता हूँ (अरहंते सरण पव्वज्जामि) मै अरहंतो की शरण को प्राप्त करता हूँ (सिद्धे सरणं पव्वज्जामि) सिद्धो की शरण को प्राप्त करता हूँ (साहू सरणं पव्वज्जामि) साधुओ की शरण को प्राप्त करता हूँ (केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि) केवलीप्रणीत धर्म की शरण को प्राप्त करता हूँ।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारगयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसगाणं, धम्म-णायगाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं, सदा करेमि, किरियम्मं।

अन्वयार्थ—[अड्ढाइज्जदीव दो समुद्देसु] जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और अर्द्धपुष्कर द्वीप—इन ढाई द्वीपों तथा लवण और कालोदधि इन दो समुद्रो मे (पण्णारस कम्मभूमिसु) पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह—इन १५ कर्मभूमियो मे होने वाले (जाव) जितने (अरहंताणं) अरहंत (भयवंताणं) भगवन्त (आदियराणं) आदितीर्थ प्रवर्तक (तित्थयराणं) तीर्थंकर (जिणाणं) कर्मशत्रुओं को जीतने वाले जिनो को (जिणोत्तमाणं) जिनो मे श्रेष्ठ तीर्थंकरों को (केवलियाणं) केवलज्ञान सम्पन्न ऐसे केवलियो को (सिद्धाणं) सिद्धो को (बुद्धाणं) त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों के ज्ञाता जिनसिद्धों को (परिणिव्वुदाणं) मुक्ति को प्राप्त करने वाले सिद्धों को (अन्तयडाणं) अन्तकृतकेवलियो को (पारयडाणं) संसार सागर को पार करने वालो को (धम्माइरियाणं) धर्माचार्य को (धम्मदेसयाणं) धर्मोपदेश देने वाले उपाध्यायों को (धम्मणायगाणं) धर्मानुष्ठान करने वाले धर्मनायक साधु (धम्मवर चाउरंग चक्कवट्टीणं) उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरंग सेना (चार आराधना) के अधिपति (देवाहिदेवाणं) देवाधिदेव अर्थात् चतुर्निकाय देवों के द्वारा वन्दनीय होने से जो देवों के भी देव हैं (णाणाणं) ज्ञान (दंसणाणं) दर्शन (चरित्ताणं) चारित्र का (सदा किरियम्मं करोमि) हमेशा कृतिकर्म करता हूँ।

विशेष—अन्तकृत केवली—सम्पूर्ण कर्म जनित संसार का अन्त करने वाले अन्तकृत कहलाते है। अथवा प्रत्येक तीर्थंकर के काल में घोर उपसर्ग को सहन कर अन्तर्मुहूर्त में घातिया कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर, अघातिया कर्मो का क्षय कर मुक्त होने वाले केवली अन्तकृत केवली कहलाते हैं। ये प्रत्येक तीर्थंकर के समय में १०-१० होते हैं। अर्थात् अन्तकृत केवली उपसर्ग के तत्काल बाद कर्मक्षय कर मोक्ष जाते हैं किंतु उपसर्ग केवली की गंधकुटी होती है उनके तत्काल मोक्षगमन का नियम नही है।

करेमि भंते ! सामायियं सव्व-सावज्ज जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं (जावन्नियमं) तिविहेण मणसा, वचसा , काएण, ण करेमि, ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि । तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवान् ! (सामायियं) मै सामायिक (करेमि) करता हूॅ (सव्वसावज्जजोगं) समस्त सावद्ययोग का (पच्चक्खामि) त्याग करता हूँ (जावज्जीवं) जीवनपर्यत (तिविहेण) तीनो प्रकार से (मणसा-वचसा-काएण) मन-वचन-काय से सावद्ययोग (ण) न स्वयं (करेमि) करता हूॅ (ण कारेमि) न दूसरो से कराता हूॅ (पि) और (ण कीरंतं) न करने वालो की (समणुमणामि) अनुमोदना करता हूॅ। (भंते) हे भगवान् (तस्स) उन अरहंत देव कथित क्रिया कर्म सम्बन्धी (अइयारं) अतिचारो का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूॅ। (अप्पाणं णिंदामि) आत्मसाक्षी पूर्वक निदा करता हूॅ (गरहामि) गुरुसाक्षी पूर्वक गर्हा करता हूॅ (जाव) जितने काल (अरहंताणं) अरहंतो की (भयवंताणं) भगवन्तो की (पज्जुवासं) पर्युपासना (करेमि) करता हूॅ (तावकालं) उतने काल पर्यन्त (पावकम्मं) पापकर्मो को (दुच्चरियं) कुचेष्टाओ को (वोस्सरामि) छोड़ता हूॅ।

[विशेष—इस प्रकार दण्डक पढ़कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके २७ श्वासोच्छ्वास पूर्वक कायोत्सर्ग करे। पश्चात् नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विशति स्तव पढ़े।]

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे।
णर-पवर-लोए महिए विहुय-रय-मले महप्पण्णे ।।१।।

अन्वयार्थ—(णर-पवर) मनुष्यो मे श्रेष्ठ (लोए-महिए) लोक मे पूज्य (विहुयरय मले) क्षय किया है कर्म मल को (महप्पणे) महान् आत्माओ मे (जिणवरे) जिनवरो में (तित्थयरे) तीर्थकरो मे (अणंत केवली जिणे) अनंत केवली जिनेन्द्रो मे (हं थोस्सामि) मै स्तुति करता हूॅ।

भावार्थ—मैं संसार के सर्व मनुष्यो मे श्रेष्ठ/उत्तम, त्रिलोकपूज्य, ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्मरूपी रज के मल को क्षय करने वाली महान् आत्माओ, जिनवरो, तीर्थंकरो, अनंत केवली भगवंतो की स्तुति करता हूॅ।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चौबीसं चेव केवलिणो ।।२।।

अन्वयार्थ—(लोयस्सुज्जोययरे) लोक मे उद्योत को करने वाले (धम्मं तित्थंकरे) धर्म तीर्थ के कर्ता (जिणे) जिनेन्द्र देव मे (वंदे) वन्दना करता हूँ। (चौवीसं अरहंते) अरहंत पदविभूषित चौबीसभगवंतो (चेव) और इसी प्रकार (केवलिणो) केवली भगवंतो का (कित्तिस्से) कीर्तन करूँगा।

भावार्थ—अपनी केवलज्ञानरूप ज्योति से तीन लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ के कर्ता चौबीसो तीर्थकर, जो अरहंत पद से सुशोभित है उनका तथा सर्व केवली भगवंतो का मैं कीर्तन/गुणगान करूँगा।

उसह मजियं च वन्दे संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ।।३।।

अन्वयार्थ—(उसहं) वृषभनाथ तीर्थकर को (अजियं) अजितनाथ तीर्थकर को (वंदे) मै नमस्कार करता हूँ। (च) और (संभव) संभवनाथ (अभिणदण) अभिनन्दननाथ (च) और (सुमइं) सुमतिनाथ (च) और (पउमप्पहं) पद्मप्रभ (सुपासं) सुपार्श्व (जिणं) जिनेन्द्र (च) और (चदप्पहं) चन्द्रप्रभ तीर्थकर को (वंदे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मै वृषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ तीर्थकरो की वन्दना करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ।।४।।

अन्वयार्थ—(सुविहिं) सुविधि (च) अथवा (पुप्फयंतं) पुष्पदन्त (सीयल) शीतल (सेयं) श्रेयांस (च) और (वासुपुज्जं) वासुपूज्य (विमलं) विमलनाथ (अणंतं) अनन्त (भयवं) भगवान् को (च) और (धम्मं) धर्मनाथ (संति) शांतिनाथ भगवान् को (वंदामि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मैं पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ तीर्थकरो को नमस्कार करता हूँ।

कुंथुं च जिण वारिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वदामिरिट्ठ-णेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।

अन्वयार्थ—(च) और (जिणवरिंदं) जिनवरो मे श्रेष्ठ (कुंथुं) कुन्थुनाथ (अरं) अरनाथ (च) और (मल्लिं) मल्लिनाथ (च) और (सुव्वयं) मुनिसुव्रत (च) और (णमिं) नमिनाथ (रिट्ठणेमिं) रिष्टनेमि (तह) तथा (पासं) पारसनाथ (च) और (वड्ढमाणं) वर्धमान तीर्थंकर को (वंदामि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मै जिनवरो मे श्रेष्ठ कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पारसनाथ और महावीर स्वामी तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ।

एवं मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

अन्वयार्थ—(एवं) इस प्रकार (मए) मेरे द्वारा (अभित्थुआ) स्तुति किये गये (विहुय-रय-मला) कर्मरूपी रजोमल से रहित (पहीण-जर-मरणा) नष्ट कर दिया है जरा और मरण को जिन्होने ऐसे (चउवीसं) चौबीसो (पि) ही (जिणवरा) जिनवर (तित्थयरा) तीर्थंकर (मे) मुझ पर (पसीयंतु) प्रसन्न होवे।

भावार्थ—घातिया कर्म रूपी रजोमल से रहित, जरा और मरण के नाशक, मेरे द्वारा स्तुति किये गये, ऐसे चौबीसो तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान् मुझ स्तुति करने वाले पर प्रसन्न होवे।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

अन्वयार्थ—इस प्रकार से (कित्तिय) कीर्तन किये गये (वन्दिय) वन्दना किये गये (महिया) पूजे गये (एदे) ये (लोगोत्तमा) लोक मे उत्तम (जिणा) जिनेन्द्रदेव (सिद्धा) सिद्ध-भगवान् (मे) मेरे लिये (आरोग्ग-णाण-लाहं) ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न निर्मल केवलज्ञान का लाभ (बोहिं) बोधि, रत्नत्रय (च) और (समाहिं) समाधि (दिंतु) प्रदान करे।

भावार्थ—मैं, लोक मे वचन से कीर्तन किये गये, मन से वन्दना किये गये तथा काय से पूजा किये गये उत्तम अरहंत-सिद्ध भगवन्तो

की मन से वन्दना करता हूँ, वचन से कीर्तन करता हूँ तथा काय से पूजा करता हूँ, वे मेरे लिए निर्मल केवलज्ञान, बोधि व समाधि को प्रदान करे। बोधि अर्थात् रत्नत्रय और समाधि अर्थात् जीव के अन्त तक रत्नत्रय पालने की शक्ति प्रदान करे।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पया-संता।
सायर-मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

अन्वयार्थ—(चंदेहि) चन्द्रमा से भी (णिम्मल-यरा) निर्मलतर (आइच्चेहि) सूर्य से भी (अहिय-पया-संता) अधिक प्रभासम्पन्न (सायरं) सागर के (इव) समान (गभीरा) गंभीर (सिद्धा) सिद्ध भगवान् (मम) मुझे (सिद्धि) को (दिंसतु) प्रदान करे।

भावार्थ—जो सिद्ध भगवान् चन्द्रमा से भी निर्मल है, सूर्य से भी अधिक प्रभा से युक्त है तथा सागर के समान गभीर है, वे मुझे भी सिद्धि को प्रदान करे।

[यहाँ तीन आवर्त और एक शिरोनति करके निम्नलिखित मुख्य मंगल पढ़े]

(मुख्य मंगल)

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित-विद्-विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रीमते) जो श्रीमान् है, (नमित-विद्विषे) नमस्कार कराया है सगम नामक [देव पर्याययुक्त] शत्रु को जिन्होने ऐसे (वर्धमानाय) वर्धमान जिनेन्द्र के लिये (नमः) नमस्कार हो (यज्ज्ञानान्तर्गतं) जिनके ज्ञान के अन्तर्गत (भूत्वा) होकर (त्रैलोक्यं) तीन लोक (गोष्पदायते) गाय के खुर के समान आचरण करता है।

भावार्थ—अन्तरंग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी और बहिरंग समव सरण विभूति से सहित होने से जो श्रीमान् है, ऐसे वर्धमान स्वामी के चरणो मे उपसर्ग करने वाला संगम नामक देव भी नमस्कृत हुआ, जिन महावीर भगवान् के ज्ञान मे तीन लोक गाय के खुर के समान झलकता है, उन भगवान् के लिये मेरा नमस्कार हो।

सिद्ध-भक्ति

सम्मत्त णाण दंसण वीरियसुहुमं तहेव अवग्गहणं ।
अगुरुलघुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।
तव-सिद्धे णय-सिद्धे संजम सिद्धे चरित्त-सिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमस्सामि ।।२।।

अन्वयार्थ—(तवसिद्धे) तप सिद्ध (णय सिद्धे) नय सिद्ध (संजमसिद्धे) संयम सिद्ध (णाणम्मि) ज्ञान से (य) और (दंसणम्मि) दर्शन से होने वाले (सिद्धे) सब सिद्धों को (सिरसा) मस्तक झुकाकर (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—यद्यपि सभी सिद्ध यथाख्यातचरित्र व केवलज्ञान पूर्वक ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं अतः सभी सिद्धों में गुण अपेक्षा कोई भेद नहीं है, तथापि भूतप्रज्ञापन नय की अपेक्षा ही ये तपसिद्ध, नयसिद्ध, संयमसिद्ध आदि भेद हैं अर्थात् यथाख्यातचारित्र के पहले किस-किस चारित्र को प्राप्त किया, तथा केवलज्ञान के पूर्व किस-किस ज्ञान को प्राप्त किया उस अपेक्षा सिद्ध भगवन्तों में भेद पाया जाता है ।

"अञ्चलिका"

इच्छामि भंते ! सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं चरित्त-सिद्धाणं अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं,सव्व सिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिन-गुण संपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! मैंने (सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ) सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया है (तस्सालोचेउं) उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ । (सम्मणाण) सम्यक्ज्ञान (सम्म दंसण) सम्यक्दर्शन (सम्मचरित्तजुत्ताणं) सम्यग्चारित्र से युक्त (अट्ठविह-कम्म-मुक्काणं) ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों से मुक्त (अट्ठगुणसंपण्णाणं) सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से युक्त/सम्पन्न (उड्ढलोयमत्थयम्मि) ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर (पयट्ठियाणं) विराजमान (तवसिद्धाणं) तप से सिद्ध (णयसिद्धाणं) नय से सिद्ध (संजमसिद्धाणं) संयम से सिद्ध

(चरित्तसिद्धाणं) चारित्र से सिद्ध (अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं) भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में होने वाले सिद्धों को (सव्वसिद्धाणं) समस्त सिद्धों की मैं (सया) सदा (णिच्चकालं) हमेशा/नित्यकाल/सर्वदा (अंचेमि) अर्चना करता हूँ (पूजेमि) पूजा करता हूँ (वंदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ। (मज्झं) मेरे (दुक्खक्खओ) दुखों का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मों का नाश हो (बोहिलाहो) बोधि का लाभ हो (सुगइगमणं) सुगति में गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (जिनगुणसंपत्ति) जिन भगवान् के गुणो की सम्पत्ति (मज्झं) मुझे (होउ) प्राप्त होवे।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया, उस कायोत्सर्ग में जितने दोष लगे हों उनकी इच्छापूर्वक आलोचना करता हूँ। रत्नत्रय से युक्त, अष्टकर्मों से मुक्त, अष्टगुणों से मंडित लोक के मस्तक पर सिद्ध त्रिकाल सम्बन्धी तपसिद्ध, नयसिद्ध, संयमसिद्ध व चारित्रसिद्ध, सब सिद्धों की मैं सर्वदा अर्चा, पूजा, वन्दना करता हूँ। मेरे दुखों का, कर्मों का क्षय हो, बोधि लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनगुण रूप सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

आलोचना

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरस-विहो, परिविहा-विदो, पंच-महव्वदाणि, पंच-समिदीओ तिगुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे, पाणा-दिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, आउ-काइया-जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउ-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउ-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, वणप्फदि-काइया-जीवा-अणंताणंता, हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा-भिण्णा एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (पंच महव्वदाणि) अहिंसा आदि पाँच महाव्रत (पंच-समिदीओ) ईर्या आदि पाँच समिति (च) और (तिगुत्तीओ) मन गुप्ति आदि तीन गुप्तियों रूप (तेरसविहो) तेरह

प्रकार का (चरित्तायारो) चारित्राचार (परिहाविदो) का खंडन किया हो तो (इच्छामि) मैं उस दोष की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

(तत्थ) उस तेरह प्रकार चारित्राचार मे (पाणादिवादादोवेरमणं) जीवो के प्राणो के व्यतिपात से विरक्ति रूप (पढमे महव्वदे) प्रथम अहिंसा महाव्रत है (से) उस व्रत मे (पुढविकाइया जीवा) पृथ्वीकायिक जीव (असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (आउकाइया जीवा) जलकायिक जीव (असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (तेउकाइयाजीवा) तैजस/अग्नि कायिक जीव (असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (वाउकाइया जीवा) वायुकायिक जीव (असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (वणप्फदिकाइया जीवा) वनस्पतिकायिक जीव (अणंताणंता) अनन्तानन्त (हरिआ) हरित सचित्त (बीआ) बीज (अंकुरा) अंकुर (एदेसिं) इनका (छिण्णा) छेदन (भिण्णा) भेदन (उद्दावणं) उत्तापन (परिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधना (उवघादो) उपघात (कदो) मैने किया हो (वा) अथवा (कीरंतो समणुमण्णिदो) करने वाले की अनुमोदना की हो (तस्स) उस संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) सभी पाप (मिच्छा) मिथ्या होवे ।

भावार्थ—हे भगवन् ! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप पॉच व्रत, ईर्या, भाषा एषणा, आदान-निक्षेपण, व्युत्सर्ग पॉच समिति और मन, वचन, काय, गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार का जो चारित्र है उसकी मेरे द्वारा अवहेलना, उसका खंडन किया गया हो तो मै दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

हे प्रभो ! अहिंसा महाव्रत की आराधना मे एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिकादि जीवो की विराधना की हो, कराई हो, या करने वाले की मेरे द्वारा अनुमोदना हुई हो तो मेरा पाप मिथ्या हो।

बे–इंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, कुक्खि–किमि संख–खुल्लय, वराडय, अक्ख–रिट्ठय–गण्डवाल–संबुक्क सिप्पि, पुलवि–काइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(बे-इंदिया जीवा) दो इन्द्रिय जीव (असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (कुक्खि) कुक्षि (किमि) कृमि/लट (संख) शंख (खुल्लुय) क्षुल्लक बाला (बराउय) वराटक या कौड़ी (अक्ख) अक्ष (रिट्ठबाल) बाल जाति का विशेष जन्तु (संबुक्क) छोटा शंख (सिप्पि) सीप (पुलविकाइया) पुलविक अर्थात् पानी के जोंक (एदेसिं) इनको (उद्दावणं) उत्तापन (वरिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधन (उवघादो) उपघातन (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा (कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो समणुमण्णिदो) करने वाले की अनुमोदना की हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कड़) दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हों।

भावार्थ—दो इन्द्रिय कुक्षि, कृमि, शंख आदि जीवों की मैंने विराधना की हो, कराई हो या अनुमोदना की हो तो तत्संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

ते इंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, कुन्थुदेहिय-विंच्छिय–गोभिंद–गोजुव–मक्कुण–पिपीलियाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु–मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(कुंथु) कुन्थु अर्थात् सूक्ष्म अवगाहना धारक कुन्थु जीव (देहिय) देहिक (विंच्छिय) बिच्छू (गोभिंद) गोभिद (गोजुव) गो जूँ अर्थात् भैस आदि के स्तनादि पर लगी रहने वाला "जूँ" (मक्कुण) खटमल (पिपीलियाइया) चींटी आदि (असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (तेइंदिया) तीन इन्द्रिय (जीवा) जीव (एदेसिं) उनका (उद्दावणं) उत्तापन (परिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधना (उवघादो) उपघात (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा (कारिदो) दूसरों से करवाया हो (वा) अथवा (कीरंतो समणुमण्णिदो) करने वाले की अनुमोदना की हो (तस्स) तो तत्संबंधी (दुक्कडं) दुष्कृत (मे) मेरे (मिच्छा) मिथ्या होवें।

भावार्थ—हे भगवन्! मैंने असंख्यातासंख्यात तीन इन्द्रिय जीव कुन्थु, खटमल, मक्कड, जूँ आदि का उत्तापन, परितापण, विराधन आदि किया हो, कराया हो, करते हुए की अनुमोदना की हो तो मेरे खोटे कार्य मिथ्या हों।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर, गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भ्रमर-महुयर-गोमच्छियाइया) डांस-मच्छर-मक्खी-पतंगा-कीड़ा-भौंरा-मधुमक्खी गोमक्षिका आदि (चउरिंदिया जीवा) चतुरिन्द्रिय जीव (एदेसिं) इनका (उद्दावणं) उत्तापण (परिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधन (उवघादो) उपघात (कदो) मैने किया हो (वा) अथवा (कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो समणुमण्णिदो) करते हुए अनुमोदना की हो (तस्स) तत्सम्बन्धी (दुक्कडं) दुष्कृत/ खोटे कार्य (मे) मेरे (मिच्छा) मिथ्या होवे।

भावार्थ—हे भगवन्! मैने डांस-मच्छर-मक्खी-आदि चतुरिन्द्रिय जीवो की विराधना, उत्तापन, परिदावण किया हो, कराया हो या अनुमोदना की हो तो मेरे दुष्कार्य मिथ्या हो।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदिजोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (पंचिंदिया जीवा) पंचेन्द्रिय जीव (अंडाइया) अण्डज (पोदाइया) पोतज (जराइया) जरायुज (रसाइया) रस से उत्पन्न होने वाले (संसेदिमा) संस्वेदिम (समुच्छिमा) समूर्च्छन (उब्भेदिया) उद्भेदिय (उववादिमा) उपपाद जन्म से उत्पन्न देव-नारकी (अवि) और भी (चउरासीदिजोणि पमुहसदसहस्सेसु) चौरासी लाख योनियो मे प्रमुख पञ्चेन्द्रिय जीव (एदेसिं) इनका (उद्दावणं) उत्तापन (परिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधन (उवघादो) उपघात (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा

(कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो वा समणु-मण्णिदो) करते हुए की अनुमोदना की हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों।

भावार्थ—हे भगवन्! असंख्यातासंख्यात पञ्चेन्द्रिय जीव अंडज, पोतज, जरायुज, उद्भेदिय आदि का उत्तापन, विराधन मैंने स्वयं किया हो, कराया हो या अनुमोदना की हो तो मेरा पापकार्य मिथ्या होवे।

अंडज-अण्डो से उत्पन्न होने वाले कबूतर आदि।

पोतज-पैदा होते ही चलने-फिरने व भागने लगते है उत्पन्न होते समय जिन जीवो के शरीर के ऊपर किसी प्रकार का आवरण नहीं होता उन्हें पोतज कहते हैं यथा—सिंह, हिरण आदि।

जरायुज-जर सहित पैदा होने वाले गाय, भैंस, मनुष्य आदि। जाली के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटा जो जीव जन्म लेता है वह जरायुज है।

संस्वेदिम-पसीना से उत्पन्न होने वाले जूँ आदि।

उद्भेदिय-भूमि को भेदकर उत्पन्न होने वाले।

८४ लाख योनि-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक ७-७ लाख, नित्य निगोद, इतर निगोद ७-७ लाख, वनस्पतिकाय १० लाख, दो-तीन-चार इन्द्रिय २-२ लाख, पञ्चेन्द्रिय पशु ४ लाख, देव-नारकी ४-४ लाख और मनुष्य १४ लाख। इस प्रकार कुल ८४ लाख योनि हैं।

उत्तापनं-त्रस व स्थावर जीवों का प्राणों का वियोग रूप मारण उत्तापन कहलाता है।

परितापनं-त्रस-स्थावर जीवों को संताप पहुँचाना परितापन है।

विराहणं-त्रस-स्थावर जीवों को पीड़ा पहुँचाना, दुखी करना विराधन है।

उपघात-त्रस स्थावर जीवों को एकदेश अथवा पूर्ण रूप से प्राणों से रहित करना उपघात है। सामान्य से ये चारों शब्द प्राय: एकार्थवाचक हैं।

प्रतिक्रमण पीठिका—दण्डक

गद्य

इच्छामि भंते ! राइयम्मि (देवसियम्मि) आलोचेउं, पंच-महव्वदाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं तिदियं महव्वदं अदिण्णा दाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं। इरिया-समिदीए, भासा-समिदीए, एसणा-समिदीए, आदाण-णिक्खेवण-समिदीए, उच्चारपस्स-वण खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठावणिया समिदीए। मणगुत्तीए, वचि-गुत्तीए, काय-गुत्तीए। णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाय-परीसहेसु, पणवीसाय-भावणासु, पणवीसाय-किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदिगुणसय-सहस्सेसु, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, चोद्दसण्हं पुव्वाणं, दसण्हं मुंडाणं, दसण्हं समण-धम्माणं, दसण्हं धम्मज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेर-गुत्तीणं, णवण्हं णो-कसायाणं, सोलसण्हं-कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविह संसाराणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासादणाए, तिण्हं दण्डाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं, दोण्हं अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणं, मिच्छा-णाण, मिच्छा-दंसण, मिच्छा-चरित्ताणं, मिच्छत्त-पाउग्गं, असंयम-पाउग्गं, कसाय-पाउग्गं, जोग-पाउग्गं, अपाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्गगरहणदाए, इत्थ मे जो कोई राइयो (देविसिओ) आदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो। तस्स भंते ! पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं तस्स से सम्मत्त-मरणं, पंडिय-मरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं जिन-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(इच्छामि भंते राइयम्मि/देवसियम्मि आलोचेउं) हे भगवन् ! मैं रात्रि में या दिन में व्रतों में लगने वाले दोषों की आलोचना शुद्धि पूर्वक करने की इच्छा करता हूँ। (पंच महव्वदाणि) पाँच महाव्रत हैं (तत्थ) उनमें (पढमं महव्वदं) पहला महाव्रत (पाणादिवादादो वेरमणं) प्राणों के व्यपरोपण से रहित है (विदियं महव्वदं) दूसरा महाव्रत (मुसावादादो वेरमणं) असत्य भाषण/मृषावाद से रहित है (तिदियं महव्वदं) तीसरा महाव्रत (अदिण्णा दाणादो वेरमणं) बिना दी वस्तु के ग्रहण से रहित है (चउत्थ महव्वदं) चौथा महाव्रत (मेहुणादो वेरमणं) मैथुन सेवन से रहित है (पंचमं महव्वदं) पाचवाँ महाव्रत (परिग्गहादो वेरमणं) परिग्रह से रहित है (छट्ठं अणुव्वदं) षष्ठम/छठा अणुव्रत (राइभोयणादो वेरमणं) रात्रिभोजन से रहित है।

समिदीए–समितियाँ (इरिया समिदीए) ईर्या समिति, (भासा समिदीए) भाषा समिति, (एसणा-समिदीए) एषणासमिति, (आदाण निक्खेवण समिदीए) आदाननिक्षेपण समिति, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठावणियासमिदीए) टट्टी, पेशाब, खँखार, नासिका मल, गोमय आदि पित्तादि विकार को क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है। इसी का दूसरा नाम उत्सर्ग समिति हैं।

(मणगुत्तीए) मनोगुप्ति (वचिगुत्तीए) वचनगुप्ति (कायगुत्तीए) कायगुप्ति। (णाणेसु) ज्ञानों में (दंसणेसु) दर्शन में (चरित्तेसु) चारित्रों में (बावीसाय परीसहेसु) बावीस प्रकार के परीषहों में (पणवीय भावणासु) २५ प्रकार की भावनाओं में (पणवीसाय किरियासु) २५ प्रकार की क्रियाओं में (अट्ठारससीलसहस्सेसु) अठारह हजार शीलों में, (चउरासीदिगुण सय-सहस्सेसु) चौरासी लाख गुणों में (बारसण्हं संजमाणं) बारह प्रकार के संयमों को (बारससंण्हं तवाणं) बारह प्रकार तपों को (बारसण्हं अंगाणं) बारह प्रकार अंगों को (चोंदसण्हं पुव्वाणं) चौदह पूर्वों को (दसण्हं मुंडाणं) दस प्रकार के मुंडों को (दसण्हं समण धम्ममाणं) दस प्रकार के श्रमण धर्मों को (दसण्हं धम्मज्झाणाणं) दस प्रकार के धर्म्यध्यान को (णव्वइं बंभचेर-गुत्तीणं) नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति में।

(णवण्हं णो-कसायाणं) नव प्रकार नौ कषायों को (सोलसण्हं कसायाणं) सोलह प्रकार की १६ कषायों को (अट्ठहं कम्माणं) आठ प्रकार के कर्मो को (अट्ठण्हं पवयण माउयाणं) आठ प्रकार प्रवचन मातृकाओं को (अट्ठण्हं सुद्धीणं) आठ प्रकार की शुद्धियों को (सत्तण्हं भयाणं) सात प्रकार के भयों को (सत्तविह संसाराणं) सात प्रकार के संसार को (छण्हं जीवणिकायाणं) छह प्रकार के जीवों के समूह को (छण्हं आवासयाणं) छह प्रकार के आवश्यको को (पंचण्ह इंदियाणं) पाँच प्रकार की इन्द्रियो को (पंचण्हं महव्वयाणं) पाँच प्रकार के महाव्रतों को (पंचण्ह समिदीणं) पाँच प्रकार समितियों को (पंचण्हं चरित्ताणं) पाँच प्रकार के चारित्र को (चउण्हं सण्णाणं) चार प्रकार की संज्ञाओं को (चउण्हं पच्चयाणं) चार प्रकार के प्रत्ययों को (चउण्हं उवसग्गाणं) चार प्रकार के उपसर्गो को (मूलगुणाणं) मूलगुणों को (उत्तर गुणाणं) उत्तर- गुणों को (दिट्ठियाए) दृष्टिक्रिया से (पुट्ठियाए) पुष्टीक्रिया से (पदोसियाए) प्रादोषिकी क्रिया से (परदावणियाए) परतापनि क्रिया से (से कोहेण वा) क्रोध से अथवा (माणेण वा) मान से अथवा (मायाए वा) माया से अथवा (लोहेण वा) लोभ से अथवा (रागेण वा) राग से अथवा (दोसेण वा) द्वेष से अथवा (मोहेण वा) मोह से अथवा (हस्सेण वा) हास्य से अथवा (भएण वा) भय से अथवा (पदोसेण वा) प्रदोष अपराध से अथवा (पमादेण वा) प्रमाद से अथवा (पिम्मेण वा) प्रेम से अथवा (पिवासेण वा) प्यास से अथवा (लज्जेण वा) लज्जा से अथवा (गारवेण वा) गारव से अथवा (एदेसिं अच्चासणदाय) इनमें अत्यासना को (तिण्हं दंडाणं) तीन प्रकार के दंडों को (तिण्हं लेस्साणं) तीन प्रकार लेश्याओं को (तिण्हं गारवाणं) तीन प्रकार के गारवो को (तिण्ह अप्पसत्थ-संकिलेस परिणामाणं) तीन प्रकार के अप्रशस्त संक्लेश परिणामों को (दोण्हं अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणं) दो प्रकार के आर्त्त-रौद्र संक्लेश परिणामों को (मिच्छणाण) मिथ्या-ज्ञान (मिच्छा-दंसण) मिथ्या दर्शन (मिच्छा चरित्ताणं) मिथ्या चारित्र को (मिच्छत्त-पाउग्गं) मिथ्यात्व प्रयोग (असंजम पाउग्गं) असंयम प्रयोग (कसाय-पाउग्गं) कषाय प्रयोग (जोग पाउग्गं) योग प्रयोग (अपाउग्ग-सेवणदाए) अप्रयोजनीय सेवन से (पाउग्ग-गरहणदाए) प्रयोजनीय में गर्हा से (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा

(राइओ) रात्रि मे (देवसिओ) दिन मे (अदिक्कमो) अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार (आभोग) आभोग (अणाभोगो) अनाभोग किया गया हो (भंते) हे भगवन् ! (तस्स) उन सब दोषो का (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ (मए पडिक्कंतं तस्स) मैने उन दोषो का प्रतिक्रमण किया है (मे सम्मत्त मरणं) मेरा सम्यक्त्व मरण (पंडिय मरणं) पंडितमरण (वीरिय मरणं) वीरमरण (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय (बोहिलाहो) बोधि का लाभ (सुगइगमणं) सुगति गमन (समाहि-मरणं) समाधिमरण, (जिन-गुण संपत्ति होउ मज्झं) जिनेन्द्र गुणो की संपत्ति मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! रात्रि मे या दिन मे अपने व्रतो मे जो भी दोष लगे हो, उन दोषो की आलोचनापूर्वक शुद्धि करने की इच्छा करता हूँ। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, महाव्रत तथा षष्ठम अणुव्रत हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और रात्रिभोजन से रहित है । ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन अथवा व्युत्सर्ग ये पॉच-पॉच व्रतो की रक्षिका समितियॉ है । तीन योगो की रक्षिका मन-वचन-काय तीन गुप्तियाँ है इस प्रकार १३ प्रकार के चारित्र मे लगे दोषो की मै आलोचना करता हूँ । और मति-श्रुत, अवधि, मन·पर्यय और केवलज्ञान रूप पॉच प्रकार के ज्ञानो मे । चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन व केवलदर्शन इन चार प्रकार के दर्शनो में पॉच महाव्रत तथा छठा अणुव्रत ये मेरे व्रत है। ये व्रत सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात रूप ५ प्रकार चारित्रो मे । क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन बाईस परीषहो में ।

२५ भावनाओ मे। अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पॉच महाव्रतो की २५ भावनाएँ है—अहिंसाव्रत की ५ भावनाएँ-वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकित-पान भोजन। सत्यव्रत की की ५ भावनाएँ-क्रोध प्रत्याख्यान, लोभ प्रत्याख्यान, भय प्रत्याख्यान, हास्य प्रत्याख्यान और अनुवीचिभाषण। अचौर्यव्रत की ५ भावनाएँ-शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण,

भैक्ष्यशुद्धि और सधर्मा विसंवाद। ब्रह्मचर्यव्रत की ५ भावनाएँ—१. स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग २. तन्मनोहरांगनिरीक्षणत्याग ३. पूर्वरतानुस्मरण त्याग ४. वृष्येष्टरस त्याग और ५. स्वशरीरसंस्कार त्याग। परिग्रहत्याग व्रत की ५ भावनाएँ–१. स्पर्शन २ रसना ३. घ्राण ४. चक्षु और ५. कर्ण। इन पञ्चेन्द्रियो को इष्ट लगने वाले विषयो से राग नही करना तथा अनिष्ट लगने वाले विषयो से द्वेष नही करना।

पच्चीस क्रियाओ मे—१. सम्यक्त्व क्रिया २. मिथ्यात्व क्रिया ३. शरीरादि के द्वारा गमनागमन से प्रवृत्त होना रूप प्रयोग किया ४. समादान क्रिया ५. ईर्यापथ क्रिया ६. प्रादोषिकी क्रिया ७. कायिकी क्रिया ८ अधिकरण क्रिया ९. पारितापिकी क्रिया १० प्राणातिपातिकी क्रिया ११. दर्शन क्रिया १२. स्पर्शन क्रिया १३. प्रात्ययिकी क्रिया १४. समन्तानुपात क्रिया १५. अनाभोग क्रिया १६ स्वहस्त क्रिया १७ निसर्ग क्रिया १८ विदारण क्रिया १९. आज्ञाव्यापादन क्रिया २०. अनाकांक्षा क्रिया २१. प्रारंभ क्रिया २२. पारिग्रहिकी क्रिया २३ माया क्रिया २४. मिथ्यादर्शन क्रिया २५. अप्रत्याख्यान क्रिया रूप पच्चीस क्रियाओ मे ।

१८ हजार शीलो मे।
चौरासी लाख उत्तरगुणो मे।

बारह प्रकार के संयम–पॉच इन्द्रिय और मन को वश करना तथा छह काय के जीवो की विराधना नही करना बारह प्रकार का संयमो मे।

अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान रूप बारह प्रकार के तपो मे—१. आचारांग २. सूत्रकृतांग ३. स्थानाङ्ग ४.समवायाङ्ग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग ६. ज्ञातृकथाङ्ग ७. उपासकाध्ययनांग ८. अन्तःकृतदशांग ९. अनुत्तरौपपादिकदशांग १०. प्रश्न व्याकरणांग ११. विपाक सूत्रांग और १२. दृष्टिवाद अंग रूप बारह अंगो मे।

१. उत्पादपूर्व २. आग्रायणी पूर्व ३. वीर्यानुवाद पूर्व ४. अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्व ५. ज्ञानप्रवाद पूर्व ६. सत्य प्रवाद पूर्व ७. आत्मप्रवाद पूर्व ८. कर्मप्रवाद पूर्व ९. प्रत्याख्यान पूर्व १०. विद्यानुवाद पूर्व ११

कल्याणवाद पूर्व १२. प्राणवाय पूर्व १३. क्रियाविशाल पूर्व और १४. लोकबिन्दुसार पूर्व रूप चौदह प्रकार के पूर्वों में।

पञ्चेन्द्रिय निरोध—५ : हाथ-पाँव का निरोध, मन निरोध, वचन निरोध और शिर मुण्डन इस प्रकार १० प्रकार के मुण्डन में।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य रूप दस प्रकार के श्रमण धर्म में।

१. अपाय विचय २. उपाय विचय ३. विपाक विचय ४. विराग विचय ५. लोक विचय ६. भवविचय ७.जीव विचय ८. आज्ञा विचय ९. संस्थान विचय और १०. संसार विचय रूप दस प्रकार के धर्म्यध्यान में।

तिर्यंच-मनुष्य और देव—इन तीन प्रकार की स्त्री का मन-वचन-काय से कृत, कारित, अनुमोदना से सेवन नहीं करना ९ प्रकार का ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार नव प्रकार के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना रूप ९ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति में।

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद इस प्रकार नौ प्रकार की नो कषायों में।

अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध मान, माया, लोभ ये १६ कषायों में।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय आठ कर्मों में।

पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप आठ प्रकार की प्रवचन मातृका में – मन शुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, उत्सर्ग शुद्धि, शयनाशनशुद्धि और विनयशुद्धि इस प्रकार आठ प्रकार की शुद्धि में।

–इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, अरक्षाभय और आकस्मिकभय इस प्रकार सात भयों में।

–एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय बादर, दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय असैनी और पञ्चेन्द्रिय सैनी सप्तविध संसार में। सप्तविध संसार बढ़ाने वाला कार्य नहीं करना चाहिये और यदि करें तो आलोचना करनी चाहिये।

–पाँच स्थावर और एक त्रस रूप छहकाय के जीवों मे। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ५ इन्द्रियों में।

–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ५ महाव्रतों में।

–सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात रूप पाँच प्रकार चारित्र मे।

–आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चार प्रकार संज्ञा में।

–मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग चार प्रकार के आस्रव में।

चार प्रकार के उपसर्ग—देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्ग में।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पञ्चेन्द्रिय निरोध, षट् आवश्यक और सप्तशेष गुण=२८ मूल गुणों में ८४ लाख उत्तर गुणों में।

स्त्री पुरुषों के अंगोपांग को देखने की अभिलाषा रूप दृष्टि क्रिया मे। स्त्री पुरुषों के अंग-उपांगों को अनुरागपूर्वक स्पर्श करने की इच्छा रूप पुष्टि क्रिया में। क्रोधादि कषायों से उत्पन्न दुष्ट मन-वचन-काय संबंधी प्रादोषिकी क्रिया में। दुष्ट मन-वचन-काय से दूसरों को पीड़ा पहुँचाने रूप पारतापिकी क्रिया में। क्रोध से या मान से या माया से या लोभ से या राग से या द्वेष या मोह से या हास्य से या भय से या अपराध से या प्रेम से या पिपासा से या लज्जा से या गारव/गौरव से इन व्रतों की जो भी विराधना/अवहेलना/अत्यासादना/आसादना हुई हो [मैं सब पापों की आलोचना करता हूँ]

पुण्य पाप से जीवों को लिप्त करने वाली कृष्ण, नील, कापोत लेश्या रूप प्रवृत्ति और पीत, पद्म शुक्ल लेश्या रूप अप्रवृत्ति।

तीन गारव—रस गारव, ऋद्धि गारव और सात गारव में।

आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान रूप दो प्रकार के संक्लेश परिणाम मे। तीन प्रकार के अप्रशस्त अर्थात् पाप उपार्जन के कारणभूत संक्लेश परिणाम— माया, मिथ्या और निदान मे।

मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र मिथ्यात्व के प्रयोग से अर्थात् मिथ्यात्व के वश से अतत्त्व मे रुचि होना, असंयम का प्रयोग, कषाय का प्रयोग, मन, वचन काय–तीन योग का प्रयोग, अप्रयोग्य का सेवन करना अर्थात् त्याग करने योग्य का सेवन करना, फल–फूल आदि बिना प्रयोजन तोडना, हँसी-ठट्ठा करना, गीत नृत्यादि करना आदि अप्रयोजनीय कार्य किया हो।

प्रयोजनीय ग्रहण करने योग्य सम्यक्त्व-ज्ञान-संयम-तप की वृद्धि करने वाले संयतो की आयतनो की निंदा की हो तो [मै उस पाप की आलोचना करता हूँ]

इस प्रकार मेरे द्वारा रात्रि–दैवसिक क्रियाओ मे जो भी कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग, अनाभोग किया गया हो, हे भगवन् ! उन सब दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। मैने उन सब दोषो का प्रतिक्रमण किया है, उन दोषो को दूर कर अपनी आत्मा को शुद्ध किया है। हे प्रभो ! मै अपने व्रतो का अन्तिम फल यही चाहता हूँ कि मेरा सम्यक्त्व सहित मरण हो, धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान सहित समाधिमरण हो, पंडित मरण हो, वीर मरण हो। मेरे सब शारीरिक–मानसिक दुखो का नाश हो। द्रव्यकर्म, नोकर्म व भावकर्मो का क्षय हो। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय की प्राप्ति हो। मोक्ष गति, श्रेष्ठ गति मे गमन हो। अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य रूप जिनेन्द्र देव के गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

वद–समि–दिंदिय रोधो, लोचावासय–मचेल–मण्हाणं।
खिदि–सयण–मदंतवणं, ठिदि–भोयण–मेय–भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद–कदादो, अइचारादो णियत्तोहं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं (इति प्रतिक्रमण पीठिका दण्डकः)

अथ सर्वातिचार–विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री प्रतिक्रमण-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ) अब (रात्रिक/दैवसिक) रात्रिक/दैवसिक (प्रतिक्रमण क्रियायां) प्रतिक्रमण क्रिया में (कृत-दोष-निराकरणार्थं) किये गये दोषों के निराकरण करने के लिये (पूर्वाचार्यानुक्रमेण) पूर्व आचार्यो के कहे गये क्रम से (सर्व) सब (अतिचार) अतिचार की (विशुद्ध्यर्थं) विशुद्धि के लिए (भावपूजा वन्दना स्तव समेतं) भावपूजा, वन्दना स्तव सहित (श्री प्रतिक्रमण भक्ति) श्री प्रतिक्रमण भक्ति (कायोत्सर्गं) कायोत्सर्ग को (अहम्) मैं (करोमि) करता हूँ ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

णमो अरहंताणं इस प्रकार दण्डक को पढ़कर कायोत्सर्ग करे । पश्चात् थोस्सामि स्तव पढ़े ।

"निषिद्दिकादण्डकाः"

णमो जिणाणं ! णमो जिणाणं ! णमो जिणाणं ! णमो णिस्सिहीए ! णमो णिस्सिहीए ! णमो णिस्सिहीए ! णमोत्थु दे ! णमोत्थु दे ! णमोत्थु दे ! अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सम–मण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! सम–भाव ! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं ! णिब्भय ! णीराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग, णिस्सल्ल ! माण–माय–मोस–मूरण ! तवप्पहाणं ! गुण–रयण–सील–सायर ! अणंत ! अप्पमेय ! महदि–महावीर–वड्ढमाण ! बुद्धि–रिसिणो ! चेदि ! णमोत्थु ए ! णमोत्थु ए ! णमोत्थु ए !

अन्वयार्थ—(णमो जिणाणं)[३] जिनेन्द्र देव को तीन बार नमस्कार हो (णमो णिस्सिहिए)[३] १७ प्रकार के निषिद्दिका स्थानों को नमस्कार हो (णमोत्थु दे–णमोत्थु दे–णमोत्थु दे) नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो । (अरहंत) चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहंत ! (सिद्ध) निःशेष कर्म–क्षय कारण सिद्ध ! (बुद्ध) हेयोपादेय विवेकसम्पन्न बुद्ध ! (णीरय)

ज्ञानावरण, दर्शनावरण रूप कर्म रज से रहित होने से नीरज ! (णिम्मल) निर्मल-द्रव्य व भावकर्म रहित निर्मल ! (सममण) अर्घावतारण असिप्रहारण मे सदा समताधारक ऐसे सममण ! (सुभमण) आर्त्त-रौद्रध्यान रहित शुभमन ! (सुसमत्थ) कायक्लेश-उपसर्ग व परीषहो के सहन करने मे समर्थ होने से सुसमत्थ ! (समजोग) परम उपशम योग वाले होने से समजोग ! (समभाव) संसारवर्द्धक राग-द्वेष परिणामो से रहित होने से समभाव ! इस प्रकार जो अरहंतादि है उन सबको नमस्कार हो। नमस्कार हो। नमस्कार हो।

इस प्रकार यहाँ तक सामान्य अर्हतादिको की स्तुति कर पुनः विशेष रूप से अंतिम तीर्थकर श्री महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए लिखते हैं—(सल्लघट्टाणं) हे संसारवर्द्धक शारीरिक, मानसिक दुख पहुँचाने वाली, बाण के समान चुभने वाली माया-मिथ्यात्व-निदान शल्य के नाशक [सल्लघत्ताणं] हे संसारी जीवो की शल्य के विनाशक (णिब्भय) निर्भय (णीराय) राग रहित (णिद्दोस) निर्दोष—१८ दोषों से रहित (णिम्मोह) निर्मोह (णिम्मम) निर्ममत्व (णिस्संग) निष्परिग्रह (णिस्सल्ल) माया, मिथ्यात्व निदान शल्य रहित। निःशल्य (माण-माया-मोस-मूरण) मान, मायाचार और झूठ का मर्दन करने वाले (तवप्पहावण) हे तप प्रभावक ! (गुणरयण) हे ८४ लाख गुण के स्वामी गुणरत्न ! (सील सायर) हे १८ हजार शीलो के समुद्र सीलसायर (अणंत) हे अन्त रहित होने से अनन्त या अनन्त चतुष्टय धारक हे अनन्त ! (अप्पमेय) इन्द्रिय ज्ञान से जानने योग्य न होने से हे अप्रमेय (महदि महावीर) हे पूज्यनीय महावीर ! (वड्ढमाण) हे वर्द्धमान (बुद्धिरिसिणो) हे बुद्धर्षिन् ! आपको (णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए) आपको तीन बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

भावार्थ—१७ प्रकार के निषिद्ध का स्थान—१. कृत्रिम-अकृत्रिम अरहंत सिद्ध प्रतिबिम्ब २. कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालय ३. बुद्धि और ऋद्धि सम्पन्न मुनि ४. उन मुनियो के द्वारा आश्रित क्षेत्र ५. अवधि मनःपर्यय केवलज्ञानी ६ ज्ञानोत्पत्ति के प्रदेश ७. उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ८. सिद्धजीव ९. निर्वाण क्षेत्र १०. उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ११. सम्यक्त्व गुण युक्त तपस्वी १२. उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र १३. उनके द्वारा छोड़े हुए आश्रित क्षेत्र

१४. योगस्थित तपस्वी १५. उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र १६. उनके द्वारा छोड़े हुए शरीर आश्रित क्षेत्र १७. तीन प्रकार के पंडित मरण में स्थित मुनिगण। कहा भी है— **जिणबिम्बसिद्धणिलया किदगा किदगा य रिद्धिजुदसाहू ।**

णाणजुदामुणिपवरा णाणुप्पत्तीय णाणिजुदखेत्तं ।।

१८ दोष—जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, आर्त, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, स्वेद, राग, द्वेष और मरण।

मम मंगलं–अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जवणाणिणो, चउदसपुव्व–गामिणो, सुद–समिदि–समिद्धा य, तवो य, बारह–विहो तवस्सी, गुणा य, गुणवंतो य, महरिसी, तित्थं, तित्थंकरा य, पवयणं, पवयणी य, णाणं, णाणी य, दंसणं, दंसणी य, संजमो, संजदा य, विणओ, विणदा य, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ चेव, गुत्ति–मंतो य, मुत्तीओ चेव, मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव, समिदि-मंतो य, सुसमय–परसमय–विदु, खंति, खंतिवंतो य, खवगाय, खीण–मोहाय, खीणवंतो य, बोहिय–बुद्धा य, बुद्धिमंतो य, चेइय–रुक्खा–य चेइयाणि ।

अन्वयार्थ—(अरहंता) अरहंत (य) और (सिद्धा) सिद्ध (य) और (बुद्धा) हेय उपादेय ज्ञान से युक्त बुद्ध (य) और (जिणा) जिन (य) और (केवलिणो) केवलज्ञानी (ओहिणाणिणो) अवधिज्ञानी (मणपज्जवणाणिणो) मन:पर्ययज्ञानी (चउदसपुव्व-गामिणो) चौदह पूर्व के ज्ञाता (य) और (सुदसमिदि समिद्धा) श्रुत के समूह से युक्त (तवो वारह विहो) बारह प्रकार का तप (य) और (तवस्सी) बारह प्रकार के तप को धारण करने वाले तपस्वी (गुणा) ८४ लाख गुण (य) और (गुणवंतो) चौरासी लाख गुणो को धारण करने वाले (महरिसी) ऋद्धिधारी मुनि (तित्थं) तीर्थ (य) और (तित्थंकरा) तीर्थंकर (पवयणं) प्रवचन (य) और (पवयणी) प्रवचन देने वाले (णाणं) ज्ञान (य) और (णाणी) पाँच प्रकार के ज्ञान को धारण करने वाले ज्ञानी (दंसणं) औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक दर्शन (य) और (दंसणी) तीन दर्शन के धारक सम्यग्दृष्टि जीव (संजमो) बारह प्रकार का संयम (य) और (संजदा) संयम को धारण करने वाले (विणओ) चार प्रकार का विनय (य) और (विणदा) चार प्रकार विनय के धारक

(बंभचेर वासो) ब्रह्मचर्य आश्रम (य) और (बंभचारी) ब्रह्मचारी (गुत्तीओ चेव) तीन प्रकार की गुप्ति (य) और (गुत्तिमंतो) तीन प्रकार की गुप्ति को धारण करने वाले (मुत्तीओ चेव) तथा बहिरंग अन्तरंग परिग्रह का त्याग (य) और (मुत्तिमंतो) बहिरंग अन्तरंग परिग्रह का त्याग करने वाले (समिदीओ चेव) तथा समिति (य) और (समिदिमंतो) समिति को धारण करने वाले, (सुसमय-परसमय-विदु) स्वसमय परसमय के ज्ञाता (खंति) क्षमा (य) और (खंतिवंतो) क्षमागुणधारक मुनि (य) और (खवगाय) क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले (य) और (खीणमोहा) दर्शनमोह और चारित्रमोह को क्षीण करने वाले (य) और (खीणवंतो) क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती (य) तथा (बोहियबुद्धा) दूसरो के उपदेश से संसार शरीर भोगो से विरक्त होने वाले बोधितबुद्ध (य) और (बुद्धिमंतो) कोष्ठबुद्धि आदि बुद्धि को धारण करने वाले (य) और (चेइय-रुक्खा) चैत्यवृक्ष (च) तथा (चेइयाणि) कृत्रिम--अकृत्रिम आदि चैत्यालय ये सब (मम) मेरे लिये (मंगलं) मंगलदायक हो।

उड्ढ-मह-तिरिय-लोए, सिद्धायदणाणी-णमस्सामि, सिद्ध-णिसीहियाओ, अट्ठावय-पव्वये, सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाय, जाओ अण्णाओ काओ वि-णिसीहियाओ, जीव-लोयम्मि, इसिपब्भार-तल-गयाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, कम्म-चक्क-मुक्काणं, णीरयाणं, णिम्मलाणं, गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं, पव्व-तित्थेर-कुलयराणं, चउवण्णो य, समण-संघो य, दससु भरहेरावएसु, पंचसु महाविदेहेसु, जे लोए संति-साहवो-संजदा, तवसी एदे, मम मंगलं, पवित्तं, एदेहं मंगलं करेमि, भावदो विसुद्धो सिरसा अहि-वंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरण सुद्धो।

अन्वयार्थ—[उड्ढ-मह-तिरिय-लोए] ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक (सिद्धायदणाणि) सिद्धायतनो, सिद्ध प्रतिमा स्थित स्थानो को (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (सिद्ध-णिसीहियाओ) सिद्धो की निषिद्धिका अर्थात् निर्वाण स्थलो (अट्ठावय-पव्वए) अष्टापद कैलाश पर्वत पर (सम्मेदे) सम्मेद-शिखर (उज्जंते) उर्ज्जयन्त/गिरनार पर्वत पर (चंपाए) चम्पापुरी (पावाए) पावापुरी (मज्झिमाए) मध्यमा नगरी

(हत्थिवालिय-सहाए) हस्तिपालक राजा की सभा में यह एक ऐतिहासिक राजा हुआ है जिसने अपने राज्य में बड़ी-भारी सभा करके जैन धर्म के उत्थान के लिये बहुत अच्छा कार्य किया था। (जाओ अण्णाओ काओ वि) और भी जो कोई (णिसीहियाओ) निषिद्धिका स्थान है (जीवलोयम्मि) अढाई द्वीप और दो समुद्रों में (इसिपब्भार-तल गयाणं) ईषत्प्राग्भार मोक्ष शिला पर स्थित (सिद्धाणं) सिद्धों को (बुद्धाणं) बुद्धों को (कम्मचक्क-मुक्काणं) ज्ञानावरणादि कर्मों से रहित (णीरयाणं) पाप रहित (णिम्मलाणं) भावकर्म से रहित निर्मल (गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं) गुरु, आचार्य, उपाध्याय (पव्वत्तित्थेरकुलयराणं) प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर (य) और (चउवण्णो समणसंघो) चार प्रकार के ऋषि, मुनि, यति अनगार आदि चतुर्विध संघ (दंससु भरहेरावएसु) भरत एरावत दस क्षेत्रो मे (पंचसुमहाविदेहेसु) पॉच विदेह क्षेत्रों मे (लोए) और मनुष्य लोक मे (जे साहवो) जो साधु (संजदा) संयमी (तवसी) तपस्वी हैं (एदे) ये सब (मम) मेरा (पवित्तं मंगलं) पवित्र मंगल करें। (एदे) इनको (अहं) मैं (विशुद्धो भावदो) विशुद्ध भाव से (सिरसा) मस्तक झुकाकर (सिद्धे) सिद्धों को (अहिवंदिऊण) नमस्कार करके (मत्थयम्मि अंजलि) मस्तक पर अंजली (काऊण) रखकर (तिविहं) त्रिविध (तियरणसुद्धो) मन–वचन–काय की शुद्धि से (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ। (मंगलं करेमि) मैं मंगल कामना करता हूँ।

मन-वचन-काय द्वारा दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! राइयस्स (देवसियस्स) अइचारस्स, अणाचारस्स, मण-दुच्चरियस्स, वचि-दुच्चरियस्स, काय दुच्चरियस्स, णाणाइचारस्स, दंसणाइचारस्स, तवाइचारस्स, वीरियाइचारस्स, चारित्ताइचारस्स, पंचण्हं-महव्वयाणं, पंचण्हं-समिदीणं, तिण्हं-गुत्तीणं, छण्हं-आवासयाणं, छण्हं-जीवणिकायाणं, विराहणाए, पील-कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (राइयस्स/देवसियस्स) रात्रिक-दैवसिक (अइचारस्स) अतिचार का (अणाचारस्स) अनाचार का (मणदुच्चरियस्स) मानसिक दुष्ट चेष्टाओं का (वचिदुच्चरियस्स) वाचनिक

दुष्ट चेष्टाओ का (काय दुच्चरियस्स) शारीरिक दुष्चेष्टाओ का (णाणाइचारस्स) ज्ञानाचार के अतिचार का (दंसणाइचारस्स) दर्शनाचार के अतिचार का (तवाइचारस्स) तपाचार के अतिचार का (वीरिया-इचारस्स) वीर्याचार के अत्तिचार का (चारित्ताइचारस्स) चारित्राचार के अतिचार का निराकरण करता हूँ, ज्ञानादिक को निर्मल करता हूँ (पंचण्हं महव्वयाण) पॉच महाव्रतो का (पंचण्हं समिदीणं) पॉच समिति का (तिण्ह गुत्तीण) तीन गुत्तियो का (छण्ह आवासयाणं) छह आवश्यको का (छण्हं जीवणिकायाणं) छह काय के जीवो की (विराहणाए) विराधना मे (पील) पीड़ा अर्थात् आगमविरुद्ध प्रवृत्ति करके व्रतो की खंडना (कदो वा कारिदो वा) मैने स्वय की हो, करवाई हो (कीरंतो वा समणुमण्णिदो) या करने वालो की अनुमोदना की हो (तस्स मे) तत्संबंधी मेरे (दुक्कड़ं) दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हो। इसलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! मै मानसिक, वाचनिक, कायिक अतिचार, अनाचार का प्रतिक्रमण करता हूँ। पंचाचार मे लगे अतिचार का निराकरण करता हूँ और पॉच महाव्रत, पॉच समिति, तीन गुप्ति आदि व्रतो की खंडना मैने की हो, कराई हो या अनुमोदना की हो तो तत्संबंधी मेरे पाप मिथ्या हो।

ईर्यापथ गमना-गमन दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, उवत्तणे, आउट्ठणे, पसारणे, आमासे, परिमासे, कुइदे, कक्कराइदे, चलिदे, णिसण्णे, सयणे, उव्वट्टणे, परियट्टणे, एइंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचिंदियाणं, जीवाणं, संघट्टणाए, संघादणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, एत्थ मे जो कोई राइयो (देवसियो) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! (अइगमणे) अति वेग से गमन मे (णिग्गमणे) निर्गमन मे–गमन क्रिया के प्रारंभ मे (ठाणे) स्थान मे—स्थिति क्रिया मे (गमणे) गमन मे (चंकमणे) व्यर्थ परिभ्रमण करने मे (उवत्तणे) उद्वर्तन मे (आउट्ठणे) हाथ और पैरो को संकुचित

करने में (पसारणे) हाथ-पैर पसारने में (आमासे) आमर्श में–नियत शरीर के प्रदेशों को छूने में (परिमासे) परिमर्श में—सर्वशरीर के स्पर्श करने में (कुइदे) कुत्सित में–स्वप्न में बड़बड़ करने मे (कक्कराइदे) दाँतो को कटकटाने में या अत्यन्त कर्कश शब्द करने में या निद्रा में दाँत कटकटाने में (चलिदे) चलने मे—गमन के समय शरीर की हलन–चलन करने में (णिसण्णे) बैठने मे (सयणे) शयन में—सोने मे (उव्वट्टणे) उद्भवन मे—सोकर जागने मे (परियट्टणे) पसवाड़ा फेरने में [आदि क्रियाओं में] (एइंदियाणं) एकेन्द्रिय (बेइंदियाणं) दो इन्द्रिय (तेइंदियाणं) तीन्द्रिय (चउरिंदियाणं) चतुरिन्द्रिय (पंचिंदियाणं) पंचेन्द्रिय (जीवाणं) जीवो का (संघट्टणाए) मैंने परस्पर संघर्षण करके मर्दन किया हो (संघादणाए) इकट्ठे किये हों (उद्दवणाए) संताप उपजाया हो (परिदावणाए) परितापन किया हो (विराहणाए) विराधना की हो (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरी (राइओ–देवसिओ) रात्रिक–दैवसिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो भी कोई (अदिक्कमो) अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुआ हो (तस्स मे दुक्कडं), तत्संबंधी मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों अर्थात् तज्जनित मेरे पाप मिथ्या होवें। इसलिए (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

ईर्यापथ (गमनागमन संबंधी दोषों की) दूसरी आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए, विराहणाए, उड्ढमुहं चरंतेण वा, अहोमुहं चरंतेण वा, तिरियमुहं चरंतेण वा, दिसिमुहं चरंतेण वा विदिसिमुहं चरंतेण वा, पाणचंकमणदाए, बीयचंकमणदाए, हरिय चंकमणदाए, उत्तिंग-पणय-दय–मट्टिय-मक्कडय-तन्तु-संत्ताणु-चंकमणदाए, पुढवि–काइय-संघट्टणाए, आउ-काइय-संघट्टणाए, तेऊ-काइय-संघट्टणाए, वाउ काइय-संघट्टणाए, वणप्फदि-काइय-संघट्टणाए, तसकाइय-संघट्टणाए उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, इत्थ मे जो कोई इरियावहियाए, अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (इरियावहियाए) ईर्या समिति की (विराहणाए) विराधना में (उड्ढमुहं चरंतेण) ऊँचा मुँह करके चलने में (वा) अथवा (अहोमुहं चरंतेण) नीचा मुँह करके चलने में (वा)

अथवा (तिरियमुहं चरंतेण) तिरछा मुँह करके चलने में (वा) अथवा (दिसिमुहं चरंतेण) चारो दिशाओं मे मुँह करके चलने में (वा) अथवा (विदिसिमुहं चरंतेण) विदिशाओं में मुँह करके चलने में (वा) अथवा (पाणचंकमणदाए) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि जीवो पर चलने से (वीयचंकमणदाए) गेहूँ, चना आदि बीजो पर चलने से (हरियचंकमणदाए) हरित वनस्पतिकायिक जीवों पर चलने से (उत्तिंग) पूँछ के अग्रभाग जमीन से स्पर्श करके चलने वाले लट इल्ली उद्देइ आदि जीव (पणय) सेवाल, काई आदि (दय) जल के विकार बर्फ, ओला आदि अथवा अप्रासुक जल (मट्टिय) बहु पादा खजूर सदृशी अथवा खान की मिट्टी आदि (मक्कडय) कोलिक जाति जीव (तंतु) तंतु बनाने वाले जीव (संताण) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक इन सब जीवों पर (चंकमणदाए) चलने मे (पुढविकाइयसंघट्टणाए) पृथ्वीकायिक जीवों का संघट्टन करने मे (आउकाइयसंघट्टणाए) जलकायिक जीवो के संघट्टन करने में (तेउकाइय संघट्टणाए) तेजकायिक जीवो का संघट्टन करने मे (वाउकाइय संघट्टणाए) वायुकायिक जीवों का संघट्टन करने में (वणप्फदिकाइया संघट्टणाए) वनस्पतिकायिक जीवों का संघट्टन करने में (तसकाइयसंघट्टणाए) त्रस कायिक जीवों का संघट्टन करने मे (उद्दावणाए) प्राणो का उत्तापन करने में (परिदावणाए) परितापन (विराहणाए) विराधन करने में (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (इरियावहियाए) ईर्या समिति मे (जो कोई) जो कोई भी (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुआ हो (तस्स मे दुक्कडं) तत्संबंधी मेरे दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों अर्थात् ईर्यासमिति में लगे मेरे सभी पाप मिथ्या हो, इसलिए (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, तिर्यक् मुख, दिशा–विदिशाओं में मुख कर गमन करने से ईर्या समिति मे जो दोष लगे हो वे मेरे दोष मिथ्या हों।

मल-मूत्रादि क्षेपण संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! उच्चार–पस्सवण–खेल–सिंहाण–वियडि–पइट्ठावणियाए, पइट्ठावंतेण जो कोई पाणा वा, भूदा वा, जीवा वा, सत्ता वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (उच्चार) टट्टी (पस्सवण) पेशाब (खेल) खँखार (सिंहाण) नासिका मल (वियडिय) विकृति अर्थात् पसीना आदि (पइट्ठावणियाए) क्षेपण करने मे (जो कोई) जो भी कोई (पाणा वा भूदा वा जीवा वा सत्ता वा) विकलेन्द्रिय या वनस्पतिकायिक जीव या पञ्चेन्द्रिय जीव या पृथ्वी, जल, अग्नि व वायुकायिक जीवो का (संघट्टिदा) संघट्टन किया हो (वा) या (संघादिदा) संघातन किया हो (वा) अथवा (उद्दाविदा) उत्तापन किया हो (वा) अथवा (परिदाविदा) परितापन किया हो (एत्थ) इनमे (मे) मेरे द्वारा (देवसिओ-राइओ) दैवसिक-रात्रिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो भी कोई (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुए हो (तस्स) तत्संबंधी (मे दुक्कडं) मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या होवे, निष्फल होवे इसलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—उच्चार-प्रस्रवण आदि क्रियाओ मे पाण-भूत-जीव और सत्त्व को मेरे द्वारा पीड़ा पहुँची हो तो मेरे दुष्कृत मिथ्या हो।

एषणा [भोजन] दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! अणेस-णाए, पाण-भोयणाए, पणय-भोयणाए, बीय भोयणाए, हरिय-भोयणाए, आहा-कम्मेण वा, पच्छा-कम्मेण वा, पुरा-कम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, दय-संसिट्ठयडेण वा, रस-संसिट्ठयडेण वा, परिसादणियाए, पइट्ठावणियाए, उद्देसियाए, णिद्देसियाए, कीदयडे, मिस्से, जादे, ठविदे, रइदे, अणसिट्ठे, बलिपाहुडदे, पाहुडदे, घट्टिदे, मुच्छिदे, अइमत्त-भोयणाए इत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (अणेसणाए) भोजन के अयोग्य (पाणभोयणाए) पान के भोजन से (पणयभोयणाए) पणय भोजन से (बीयभोयणाए) बीज भोजन करने से (हरियभोयणाए) हरित भोजन करने से (आहाकम्मेण वा) अधःकर्म से या (पच्छाकम्मेण वा) पश्चात्कर्म से या (पुराकम्मेण वा) पूर्वकर्म से या (उद्दिट्ठयडेण वा) उद्दिष्ट कृत से या (णिद्दिट्ठयडेण वा) निर्दिष्टकृत या (दयसंसिट्ठयडेण वा) दया से

दिये गये दान से, (रससंसिट्ठयडेण वा) रज अर्थात् धूल लगे/मिट्टी लगे बर्तनो से आहर से (परिसादणियाए) पाणिपात्र में आहार को बार-बार डालकर भोजन करने से (पइट्ठावणियाए) प्रतिष्ठापनिका भोजन से (उद्देसियाए) उद्देश्य कर दिये गये भोजन से (णिद्देसियाए) निर्देश कर दिये गये आहार से (कीदयडे) क्रीत अर्थात् खरीद कर लाये भोजन से (मिस्से जादे) मिश्र भोजन से (ठविदे) स्थापित मे (रइदे) पौष्टिक भोजन मे (अणिसिट्ठे) अनिसृष्ट मे (बलिपाहुडदे) यक्षनागादिक के लिये लाये गये भोजन से (पाहुडदे) प्राभृत दोष से दूषित भोजन से (घट्टिदे) सर्वाभिघट और देशाभिघट दोष युक्त भोजन से (मुच्छिदे) मूर्च्छित दशा मे भोजन करने से (अइमत्तभोयणाहारे) अधिक मात्रा मे भोजन करने से (इत्थ) इस प्रकार (मे) मुझसे (जो कोई) जो भी कोई (गोयरस्स) आहार संबंधी (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुआ (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो। मै दोषो के निराकरणार्थ (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्। गोचरी वृत्ति मे हिंसा युक्त सावद्य ४६ दोषो युक्त आहार ग्रहण करने से जो दोष हुआ है स्निग्ध, रूक्ष आदि पान के भोजन से, फूलनयुक्त कांजिक, मथितादि भोजन करने से अथवा पौष्टिक आहार से, अग्नि मे नही पके हुए गेहूँ, चना आदि भोजन करने से, नही पके हुए पत्र, पुष्प, मूल आदि का भोजन करने से अध:कर्म अर्थात् षट्जीवनिकाय के जीवो की विराधना से उत्पन्न भोजन से, आहार आदि दान ग्रहण कर दाता की प्रशंसा करने रूप दूषित भोजन से, आहार ग्रहण से पूर्व दाता के दान की, कुल परम्परा मे दान की महत्ता बताते हुए दूषित भोजन से मुनि, पाखंडी, देवता आदि को उद्देश्य कर बनाये गये दूषित भोजन के ग्रहण से, आपके लिये यह भोजन बनाया गया है ऐसा निर्देश करने पर भी दूषित भोजन के ग्रहण से अनुकंपा पूर्वक दिये गये दान से, दातार द्वारा जल से गीले बर्तन, गीले हाथ से दिये गये भोजन को ग्रहण करने से, धूल या मिट्टी से युक्त बर्तन द्वारा दिये गये आहार के ग्रहण से, करपात्र मे आये आहार को बार-बार नीचे डालकर भोजन करने से, प्रतिष्ठापन अर्थात् भोजन के पात्रो को एक स्थान से अन्य स्थान मे ले

जाया गया भोजन करने से, श्रमणो के उद्देशकर, निर्ग्रंथो के उद्देशकर जो अन्न बनाया है, उस भोजन को करने से, आहार देने मे स्वयं समर्थ होकर भी दूसरो से आहार दिलाना, खरीदकर लाये भोजन के करने मे, अन्न प्रासुक होने पर भी पाखडियो के साथ, गृहस्थो के साथ पाखडियो के साथ मुनियो को जो देने का सकल्प किया जाता है ऐसा भोजन करने से जिस पात्र मे आहार पकाया था, उसमे से वह आहार निकालकर अन्य पात्र मे स्थापित करके स्वगृह मे अथवा परगृह मे ले जाकर स्थापित किये भोजन को करने से, रसना इन्द्रिय की पुष्टि करने वाले विविध रसो से बने पौष्टिक भोजन को करने से, घर स्वामी के द्वारा इन्कार किये भोजन के करने स यक्षनाग आदि के लिये तैयार किये भोजन को करने से निश्चित किया हुआ, अथवा पक्ष, माह वर्ष को बदलकर दिये गये भोजन का करन स अपक्तिबद्ध ऐसे घरा मे लाया गया भोजन करन से अथवा शुद्ध-अशुद्ध आहार को मिलाने से जो भोजन दूषित, घट्टित दोषयुक्त हुआ है ऐसा भोजन करने से अत्यत गृद्धता से भोजन करने मे, साधु को अपने आहार म गर्मी के दिनो मे २ भाग पानी १ भाग भोजन और १ भाग खाली रखना तथा ठडी के दिनो मे २ भाग भोजन १ भाग पानी तथा १ भाग खाली मात्रा का ध्यान रखकर आहार करना चाहिये। इस मात्रा का उल्लघन कर मात्रा से अधिक भोजन करने मे मुझे जो भी कोई अतिचार, अनाचार जनित दोष लगे हो वे मेरे दुष्कृत मिथ्या होवे। मैं गोचरी समय लगने वाले दोषो का निराकरण करन के लिये प्रतिक्रमण करता हू।

स्वप्न सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! सुमणिंदियाए, विराहणाए, इत्थिविप्परियासियाए, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणि-विप्परियासियाए, वचि-विप्परियासियाए, काय-विप्परियासियाए, भोयण-विप्परियासियाए, उच्चावयाए, सुमण-दंसण-विप्परियासियाए, पुव्वरए, पुव्वखेलिए, णाणा—चिंतासु, विसोतियासु इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसियो) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! (सुमणिदियाए) स्वप्न मे (विराहणाए) विराधना मे (इत्थि विप्परियासियाए) स्त्री विपर्यासिका मे

(दिट्ठिविप्परियासियाए) दृष्टि विपर्यासिका मे (मणिविप्परियासियाए) मन विपर्यासिका मे (वचि विपर्यासियाए) वचन विपर्यासिका मे (काय विप्परियासियाए) काय विपर्यासिका मे (भोयण विप्परियासियाए) भोजन विपर्यासिका मे (उच्चावयाए) स्त्री के राग से शुक्रस्राव होने में। (सुमणदंसणविप्परियासियाए) स्वप्न दर्शन विपर्यासिका में (णाणाचिंतासु) नाना प्रकार चिताओं में (विसोतियासु) बार-बार सुनने मे (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो भी कोई (राइओ-देवसिओ) रात्रिक-दिवस मे (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुए हों (तस्स) तत्सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों। इसीलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! स्वप्न मे मेरे द्वारा व्रतो की विराधना की गई हो, विपरीत परिणति हुई हो, उनका मै परिशोधन करता हूँ। पूर्वरत अर्थात् गृहस्थावस्था मे जिसका अनुभव किया हो उसमे, पूर्वक्रीड़ा अर्थात् पूर्व की गृहस्थावस्था मे क्रीड़ा की हो उसमे। स्त्री विपर्यासिका-याने स्त्री के विषय मे विपरीतता-सेवन नही करने पर भी स्वप्नादि मे दोष का होना। दृष्टि के विषय मे विपरीतता–स्त्री के अवयव मुँह आदि को देखना तथा नही देखने पर भी देखने की अभिलाषा होना। मन की विपरीतता-स्त्री आदि के विषय मे उनके नही होने पर भी उनके होने की कल्पना करना। वचन विपरीतता-स्त्री संबंधी वार्तालापादि के नही होने पर भी रागादि से युक्त वार्तालापादि करने का भाव करना। काय की विपरीतता-गोद मे स्त्री आदि के नही होने पर भी मै उसी अवस्था मे स्थित हूँ ऐसा विचार करना। भोजन विपरीतता-भोजन नही करते हुए भी मै भोजन कर रहा हूँ ऐसी विपरीत धारणा करना। उच्च्यावजात अर्थात् स्त्री के रागवश वीर्य के स्खलन के कारण होने वाला दोष [स्त्री के अनुरागवश वीर्यस्खलन को सस्कृत मे उच्च्याव कहते है] स्वप्नदर्शन विपरीतता में—स्वप्न मे किसी स्त्री आदि को देखने का विपर्यास हुआ हो। नाना चिन्ताओ से अर्थात् पूर्व मे भोगे हुए भोगो का अनेक प्रकार स्मरण करने से। विसोतिया अर्थात् उनको बार-बार सुनने से। इस प्रकार उपर्युक्त स्वप्न संबंधी दोषों से व्रतो से अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार रूप से कोई भी दोष लगा हो। उस संबंधी मेरा दुष्कर्म मिथ्या हो। मै निर्दोष बनने की भावना से ही प्रतिक्रमण कर रहा हूँ।

विकथा संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! इत्थि-कहाए, अत्थ-कहाए, भत्त-कहाए, राय कहाए, चोर-कहाए, वेर-कहाए, पर-पासंड-कहाए, देस-कहाए, भास-कहाए, अ-कहाए, वि-कहाए, निठुल्ल-कहाए, पर-पेसुण्ण-कहाए, कन्द-प्पियाए, कुक्कुच्चियाए, डंबरियाए, मोक्खरियाए, अप्प--पसंणदाए, पर-परिवादणाए, पर-दुगंछणदाए, पर-पीडा-कराए, सावज्जा-णुमोयणियाए, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! (इत्थिकहाए) स्त्री कथा मे (अत्थ कहाए) अर्थ कथा मे, (भत्थ कहाए) भोजन कथा मे (रायकहाए) राज कथा मे (चोर कहाए) चोर कथा मे, (बैर कहाए) शत्रु कथा मे (परपासंडकहाए) दूसरे पाखंडियो की कथा मे (देसकहाए) देश कथा मे (भास कहाए) भाषा सम्बन्धी कथा मे (अकहाए) असंबद्ध प्रलाप मे (विकहाए) विकथा मे (णिट्ठुल्लकहाए) निष्ठुर कथा मे (परपेसुण्ण-कहाए) पर पैशुन्य कथा मे (कंदप्पियाए) कंदर्पिका कथा के कथन मे (कुक्कुचियाए) कौत्कुच्य मे (डंबरियाए) डंबरिका मे, (मोक्खरियाए) मौखरिकी कथा मे (अप्पपसंसणदाए) आत्म प्रशंसा मे (परपरिवादणाए) पर–परिवादन मे (परदुगंछणदाए) पर जुगुप्सनता मे (परपीडाकराए) पर पीड़ा कारक कथा मे (सावज्जाणुमोयणियाए) सावद्यानुमोदिका कथा मे (इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो भी कोई (राइओ–देवसिओ) रात्रिक या दिवस संबंधी (अइचारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार हुआ (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरा (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! स्त्री कथा अर्थात् स्त्रियो के वदन, नयन, नाभि, नितंब आदि के वर्णन रूप कथा मे, अर्थकथा—धन के उपार्जन, रक्षण आदि वचन रूप अर्थ कथा के करने मे, राजा संबंधी कथा के करने में, चोर कथा मे, वैर विरोध की कथा मे, पर पाखंडियो की कथा अर्थात् परिव्राजक, बंधक, त्रिदंडी, आदि की कथा करने मे, गुर्जर, मालव, कर्णाट, लाट आदि देश तथा ग्राम नगरादि की कथा मे १८ देशो मे बोली

जाने वाली भाषा संबंधी कथा में, तप स्वध्याय आदि से रहित अप्रयोजनीय असंबद्ध प्रलाप रूप कथा मे, तप स्वाध्याय आदि से रहित अप्रयोजनीय असंबद्ध प्रलाप रूप कथा मे, राग–द्वेष–भोग के वर्णन रूप विकथा, निष्ठुर कथा अर्थात् मर्मभेदी, कठोर तर्जन रूप भयंकर वचनयुक्त कथा में, पर पैशुन्य कथा—दूसरो के दोषो को परोक्ष मे प्रकट करने वाली चुगली रूप कथा में, कंदर्पिका कथा राग के उद्रेक सहित हो हास्य मिश्रित अशिष्ट वचनों वाली कथा के प्रयोग में, स्त्रियों की कथा, डम्बर, अर्थात् विरह कलह आदि युक्त कथा में मौखरिकी—दृष्टतायुक्त बहुत प्रलाप करने वाली कथा में, आत्मप्रशंसा रूप कथा में, परपरिवादन–दूसरों के समक्ष दुष्ट भावो से दूसरों की निन्दा करने वाली कथा में, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली कथा मे, सावद्यअनुमोदिका याने हिंसादि का अनुमोदन करने वाली विकथाओं मे, इस प्रकार मेरे द्वार रात्रि में, दिन में अपने व्रतों में जो भी कोई अतिचार अनाचार हुआ तत्संबंधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। इसीलिये मै अपने दोषों के निराकरण के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

आर्त्तध्यानादि अशुभ परिणाम व कषायादि दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, इह-लोय-सण्णाए, पर-लोय-सण्णाए, आहार-सण्णाए, भए-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गह-सण्णाए, कोह-सल्लाए, माण-सल्लाए, माया-सल्लाए, लोह-सल्लाए, पेम्म-सल्लाए, पिवास सल्लाए, मिच्छा-दंसण-सल्लाए, कोह-कसाए, माण-कसाए, माया-कसाए, लोह-कसाए, किण्ह-लेस्स-परिणामे, णील-लेस्स-परिणामे, काउ-लेस्स-परिणामे, आरम्भ-परिणामे, परिग्गह-परिणामे, पडिसयाहिलास-परिणामे, मिच्छादंसण-परिणामे, असंजम-परिणामे, पाव-जोग-परिणामे, काय-सुहाहिलास-परिणामे, सद्देसु, रूवेसु, गंधेसु, रसेसु, फासेसु, काइयाहि करणियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, पाणाइवाइयासु, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते ! पडिक्कमामि) हे भगवान् ! मैं आर्त्तध्यान आदि अशुभ परिणामो के करने से लगे दोषों की आलोचना करता हूँ—(अट्टज्झाणे) चार प्रकार के आर्त्तध्यान में, (रुद्दज्झाणे) चार प्रकार के रौद्रध्यान में

(इहलोयसण्णाए) इस लोक संबंधी सुख की इच्छा मे (परलोयसण्णाए) परलोक संबंधी सुख की इच्छा मे (आहार सण्णाए) आहार संज्ञा मे (भय सण्णाए) भय संज्ञा मे (मेहुण सण्णाए) मैथुनसंज्ञा मे (परिग्गह सण्णाए) परिग्रह संज्ञा मे (कोहसल्लाए) क्रोध शल्य (माण सल्लाए) मानशल्य (माया सल्लाए) माया शल्य मे (लोह सल्लाए) लोभ शल्य मे (पेम्मसल्लाए) प्रेम शल्य (पिवाससल्लाए) पिपासा शल्य (णियाण सल्लाए) निदान शल्य (मिच्छादंसणसल्लाए) मिथ्यादर्शन शल्य (कोह-कसाए) क्रोध-कषाय (माणकसाए) मान कषाय (माया कसाए) माया कषाय (लोह कसाए) लोभ कषाय (किण्हलेस्स परिणामे) कृष्णलेश्या के परिणाम (णीललेस्सपरिणामे) नील लेश्या के परिणाम (काउलेस्सपरिणामे) कापोत लेश्या के परिणाम (आरंभपरिणामे) आरंभ परिणाम (परिग्गह परिणामे) परिग्रह के परिणाम (पडिसयाहिलासपरिणामे) प्रतिश्रयाभिलाषपरिणाम (मिच्छादंसणपरिणामे) मिथ्यादर्शन के परिणाम (असजम परिणामे) असंयम के परिणाम (पावजोगपरिणामे) पापयोग्य परिणाम (कायसुहाहिलास परिणामे) शारीरिक सुख की अभिलाषा के परिणाम (सद्देसु) मनोज्ञ शब्दो के सुनने मे (रूवेसु) रूप देखने मे (गधेसु) सुगंधित कर्पूर, चन्दन आदि की गंध मे (रसेसु) तिक्त मधुरादि रसो मे (फासेसु) मृदु कठोर कोमल स्निग्ध आदि स्पर्श मे (काइयाहिकरणियाए) कायाधिकरण क्रिया मे (पदोसियाए) प्रदोष क्रिया–दुष्ट मन–वचन–काय लक्षण क्रिया मे (परिदावणियाए) परितापन क्रिया मे (पाणाइवाइयासु) प्राणातिपात मे— पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास, आयु–इन दस प्राणो का वियोग करने मे (इत्थं मे) इस प्रकार आर्त्तध्यानादि परिणामो से मेरे द्वारा (राईओ–देवसिओ) रात्रिक दैवसिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो कोई भी (अइचारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार हुए हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो। इसलिए मै दोषो के निराकरणार्थ प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! मै आर्त्त–रौद्रध्यान रूप संक्लेश परिणामो से

व्रतो मे लगने वाले दोषो की आलोचना करता हूँ। इष्टवियोग, अनिष्ट-सयोग, पीडा चिन्तन निदान बंध रूप चार प्रकार के आर्त्तध्यान मे, हिसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी, परिग्रहानन्दी चार प्रकार के रौद्रध्यान मे, इस लोक, परलोक सबंधी इन्द्रिय सुखो की अभिलाषा से, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चार संज्ञाओ मे, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, आसक्ति/पिपासा, निदान शल्यो मे, क्रोधादि चार कषायो मे, मिथ्यादर्शन मे, तीन अशुभ लेश्या के परिणाम, पॉच सूना रूप आरंभ परिणाम, परिग्रह परिणाम मे प्रतिश्रय अर्थात् संस्था. मठ आदि मे, मूर्छा परिणाम मे, मिथ्यादर्शन परिणाम, असंयम परिणाम, शारीरिक सुख की अभिलाषा के परिणाम, गीत वादित्र के मनोज्ञ शब्दो के सुनने, कामिनियो के सुन्दररूप को देखने मे, सुगंधित चन्दन, कर्पूर, आदि की गंधो मे, तिक्त, मधुर, क्षार आदि रसो म, कोमल, कठोर-स्निग्ध, रूक्ष आदि आठ प्रकार के स्पर्शो मे, कार्याधिकरण क्रिया मे, प्रदोष क्रिया अर्थात् दुष्ट मन-वचन-काय लक्षण क्रिया मे, परितापन क्रिया मे, पॉच इन्द्रिय, तीन बल और श्वासोच्छ्वास दस प्राणो के वियोग मे, इस प्रकार आर्त्त-रौद्रध्यान रूप संक्लेश परिणामो से मेरे द्वारा रात्रि मे, दिन मे जो भी कोई दोष लगा हो, अतिचार, अनाचार हुआ तत्सबधी मेरा कुकृत्य/दुष्कृत्य मिथ्या हो। मै दोषो के निराकरण के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ।

शंका—क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय और क्रोध-मान-माया शल्यो मे क्या अन्तर है।

समाधान—क्रोध कषाय से समय परिणामो मे मन्दता होने से कर्मो का अल्पस्थिति बध होता है। परन्तु क्रोध शल्य, बाण की तरह चुभती रहती है। अत कर्मो की स्थिति बध उत्कृष्ट/तीव्र होता है। दोनो मे तीव्रता और मन्दता से स्थित बन्ध की अल्पता और उत्कृष्टता की अपेक्षा अन्तर है।

एक को आदि ले ३३ संख्या पर्यन्त दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! एक्के भावे अणाचारे, दोसु राय– दोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीव–णिकाएसु, छसु आवासएसु,

सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बंभचेर-गुत्तीसु, दसविहेसु समण-धम्मेसु, एयारस-विहेसु, उवासयपडिमासु, बारह-विहेसु भिक्खु-पडिमासु, तेरस-विहेसु किरिया-ट्ठाणेसु, चउदस-विहेसु भूदगामेसु, पणरस-विहेसु पमाय-ठाणेसु, सोलह-विहेसु पवयणेसु, सत्तारस-विहेसु असंजमेसु, अट्ठारस-विहेसु असंपराएसु, उणवीसाय णाहज्झाणेसु, वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु, एक्कवीसाए, सवलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाय सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगार-गुणेसु, अट्ठावीसाए आयार-कप्पेसु, एउणतीसाए पाव-सुत्त-पसंगेसु, तीसाए मोहणी-ठाणेसु, एकत्तीसाए कम्म-विवाएसु, बत्तीसाए जिणो-वएसेसु, तेतीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाण-अच्चासणदाए, अजीवाण अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगररहियं, गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहण—मब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवान् ! (एक्के भावे अणाचारे) एक अनाचार रूप भाव मे (वेसु राय-दोसेसु) दो राग-द्वेष परिणामो मे (तीसु दंडेसु) तीन दण्डो मे (तीसु गुत्तीसु) तीन गुप्तियो मे (तीसु गारवेसु) तीन गारवो मे (चउसु कसाएसु) चार कषायो मे (चउसु सण्णासु) चार संज्ञाओ मे (पंचसु महव्वएसु) पॉच महाव्रतो मे (पंचसु समिदीसु) पॉच समितियो मे (छसु जीव-णिकाएसु) छः जीवनिकायो मे, (छसु आवासएसु) छह आवश्यको मे (सत्तसु भएसु) सात भयो मे (अट्ठसु मएसु) आठ मदो मे (णवसु बंभचेर गुत्तीसु) नौ प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्तियो मे (दसविहेसु समण-धम्मेसु) दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे (एयारसविहेसु उवासय पडिमासु) ग्यारह प्रकार की श्रावक प्रतिमाओ मे, (बारह-विहेसु भिक्खु-पडिमासु) बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमाओ मे (तेरस-विहेसु--किरियाट्ठाणेसु) तेरह प्रकार के क्रिया/चारित्र स्थानो मे (चउदसविहेसु भूदगामेसु) चौदह

प्रकार भूत ग्रामो मे (पणरस-विहेसु पमाय ठाणेसु) पन्द्रह प्रकार प्रमाद स्थानो म (सालह-विहेसु पवयणेसु) सोलह प्रकार प्रवचनो मे (सत्तारस-विहेसु असजमेसु) सत्रह प्रकार असंयमो मे, (अट्ठारस विहेसु असंपराएसु) अठारह प्रकार के असम्परायो मे (उणवीसाय णाहज्झाणेसु) उन्नीस प्रकार के नाथाध्ययनो मे (वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु) बीस प्रकार के असमाधि के स्थानो मे, (एक्कवीसाए सवलेसु) इक्कीस प्रकार की सवल क्रियाओ मे (बावीसाए परीषहेसु) बावीस प्रकार के परीषहो मे (तवीसाय सुद्दयड-ज्झाणेसु) तेवीस प्रकार के सूत्राध्ययन मे (चउवीसाए अरहंतेसु) चौबीस प्रकार के अरहंतो मे (पणवीसाए भावणासु) पच्चीस प्रकार की भावनाओ मे (पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु) पच्चीस प्रकार के क्रिया स्थानो मे, (छव्वीसाए पढवीसु) छब्बीस प्रकार पृथ्वियो म (सत्तावीसाए अणगार गुणेसु) सत्ताईस प्रकार के अनगार गुणो मे (अट्ठावीसाए आयार कप्पेसु) अट्ठाईस प्रकार आचार कल्पो मे, (एउणतीसाए पाव सुत्त पसंगेसु) उनतीस प्रकार के पापसूत्र प्रसगो मे (तीसाए मोहणी ठाणेसु) तीस प्रकार के मोहनीय के स्थानो मे, (एकतीसाए कम्मविवाएसु) इकतीस प्रकार के कर्म विपाको मे (बत्तीसाए जिणोवएसेसु) बत्तीस प्रकार के जिनोपदेश मे (तेतीसाए अच्चासणदाए) तेतीस प्रकार की अत्यासादना मे (संखेवेण जीवाण-अच्चासणदाए) सख्यात प्रकार जीवो की अत्यासादना मे (अजीवाणं अच्चासणदाए) अजीवो की अत्यासादना मे (णाणस्स अच्चासणदाए) ज्ञान की अत्यासादना मे (दसणस्स अच्चासणदाए) दर्शन की अत्यासादना मे (चरित्तस्स अच्चासणदाए) चारित्र की अत्यासादना मे (तवस्स अच्चासणदाए) तप की अत्यासादना मे (वीरियस्स अच्चासदणाए) वीर्य की अत्यासादना म (त) उस (सव्व) सब (पुव्वं दुच्चरियं) पूर्व मे आचरित दुश्चरित की (गरहामि) गर्हा करता हूँ (आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कंत पडिक्कमामि) भूत भविष्य, वर्तमान के दोषो का प्रतिक्रमण करता हूं (अणागयं पच्चक्खामि) भविष्य काल मे पापो का त्याग करता हूं (अगरहियं गरहामि) मे अगर्हित की गर्हा करता हूँ (अणिंदियं णिंदामि) अनिन्दित की मै निन्दा करता हूं (अणालोचियं आलोचेमि) अनालोचित की आलोचना करता हूँ (आराहणं-अब्भुट्ठेमि) आराधना को स्वीकार करता हूँ (विराहणं पडिक्कमामि) विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ।

(इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा व्रतो मे (जो कोई) जो भी कोई (राइओ) रात्रि मे (देवसिओ) दिन मे (अइचारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार लगा हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो। इसीलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! मै एक से लेकर तैतीस संख्या पर्यन्त व्रत मे लगे दोषो की आलोचना करता हूँ। हे प्रभो ! मै प्रतिक्रमण करता हूँ। एक अनाचार परिणाम मे, दो राग–द्वेष परिणामो मे, तीन मन–वचन–काय की दुष्टता से लगने वाले दोषो मे, मन–वचन–काय तीन गुप्तियो, रस गारव, ऋद्धि गारव व स्वाद गारव या शब्द गारव रूप तीन गारव मे, क्रोध–मान–माया–लोभ चार कषायो मे, पॉच महाव्रतो मे, पॉच समितियो मे, पॉच स्थावर, एक त्रस छ· जीवनिकायो मे, इहलोक भय, परलोक भय, अत्राण भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, अकस्मात्‌भय ऐसे सात भयो मे, ज्ञान–पूजा–कुल–जाति–बल–ऋद्धि–तप–वपु आठ मदो मे, स्त्री सामान्य जाति मन–वचन–काय और कृत–कारित–अनुमोदन से सेवन करने रूप नव प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्ति मे, उत्तम क्षमा आदि १० धर्मो मे, दर्शन–व्रत–सामायिक–प्रोषध, सचित्तत्याग–रात्रिभुक्तित्याग–ब्रह्मचर्य–आरंभत्याग–परिग्रह त्याग–अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग रूप ११ प्रतिमाओ मे, उत्तम संहननधारी मुनियो की बारह प्रकार प्रतिमाओ मे—

मासिय दुय तिय चउ पंच मास छ मास सत्त मासेश्च।
तिण्णेव मेदराई सत्तराउ इन्दियराई पढमाओ ।।

उत्तम संहनन वाले मुनिराज किसी देश मे उत्कृष्ट दुर्लभ आहार ग्रहण करने का व्रत ग्रहण करते है। यथा–एक महीने के भीतर–भीतर मुझे ऐसा आहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा नही ऐसी प्रतिज्ञा करना प्रथम प्रतिमा है। महिने के अन्तिम दिन प्रतिमा योग धारण करता है।

प्रथम आहार से सौगुना दुर्लभ आहार दो महिने के भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूँगा नही तो नही—ऐसी प्रतिज्ञा करना दूसरी प्रतिमा है।

इसी तरह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आहार तीन माह, चार माह, पॉच माह, छह व सात माह के भीतर मिलेगा तो करूँगा अन्यथा नही—क्रमश: ऐसी प्रतिज्ञा करना तीसरी, चौथी, पॉचवी, छठी और सातवी प्रतिमा है।

इसके बाद तीन दिन का अवग्रह करना, फिर सात दिन का अवग्रह करना आठवी प्रतिमा है।

इसके बाद किसी भी प्रकार का आहार प्राप्त होने पर क्रम-क्रम से तीन ग्रास लेने का दो ग्रास व एक ग्रास लेने का अवग्रह करना—नौ, दसवी व ग्यारहवी प्रतिमा है उसके बाद वह अहोरात्रि प्रतिमायोग से रहता है। तत्पश्चात् रात्रि मे प्रतिमा योग से स्थित होकर प्रातःकाल केवलज्ञान प्राप्त करता है इन बारह प्रतिमाओ मे।

तेरह प्रकार की क्रिया स्थानो में— ६ आवश्यक, ५ नमस्कार (अरहत-सिद्ध-आचार्य, उपाध्याय, साधु) और निस्सहि, आस्सहि का उच्चारण करना। इन १३ क्रियाओ मे, निस्सहि-जिन मंदिर, सूने मकान, धर्मशाला आदि मे प्रवेश करते समय और मल-मूत्र करते समय निस्सहि-निस्सही-निस्सही पदो का उच्चारण करना चाहिये।

आस्सहि—जिनमंदिर आदि से निकलते समय "आस्सहि-आस्सहि-आस्सहि" पदो का उच्चारण करना चाहिये। इन १३ क्रियाओ मे,

१४ प्रकार के भूतग्राम—एकेन्द्रिय सूक्ष्मबादर=२, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असैनी व सैनी पंचेन्द्रिय=७। इन ७ को पर्याप्त व अपर्याप्त से गुणा करने पर १४ प्रकार के भूतग्राम होते है। १४ जीव समास ही १४ भूतग्राम है अथवा मिथ्यात्त्व, सासादन आदि १४ गुणस्थानो मे जीव के रहने से भी ये भूतग्राम कहे जाते है। इन १४ भूतग्रामो मे

१५ प्रकार के प्रमाद स्थानों में—४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय अभिलाषा, स्नेह और निद्रा ये १५ प्रमाद स्थान है।

१६ प्रकार प्रवचनों में—तीन प्रकार की विभक्ति- एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, तीन काल-भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यत्काल, तीन लिंग-पुरुष/पुलिंग, स्त्रीलिग व नपुंसक लिंग, अधिक, ऊन तथा मिश्र तीन प्रकार के वचन, समय (आगम/शास्त्र) वचन, लौकिक वचन, प्रत्यक्ष व परोक्ष वचन= ३+३+३+३+१+१+१+१=१६ प्रकार के ये प्रवचन है। इन प्रवचनो मे अथवा ७ विभक्ति, ३ लिंग, ३ काल, ३ वचन = १६ प्रवचनो मे।

१७ प्रकार के असंयम भावों में—१. पृथ्वीकाय २ जलकाय ३. वायुकाय ४. अग्निकाय ५. वनस्पतिकाय ६. दो इन्द्रिय ७. तीन इन्द्रिय ८. चार इन्द्रिय ९. पञ्चेन्द्रिय– इन ९ प्रकार के जीवो की विराधना करना १०. पीछे से प्रतिलेखना करना ११. दुष्परिणामो से प्रतिलेखन करना १२ जीवो को उठाकर दूसरी जगह रखना १३. जिन जीवो को उठाकर दूसरी जगह डाला हो उनका फिर से अवलोकन नही करना १४. मन का निरोध नही करना १५. वचन का निरोध नही करना १६ काय का निरोध नही करना १७. अजीव तृण काष्ठादि को नख आदि से छेदना [यह अजीव असंयम है] इस प्रकार इन १७ प्रकार के असंयमो मे, अथवा पॉच प्रकार पापो का त्याग करना, पंचेन्द्रियो का निग्रह करना, चार कषायो को जीतना, तीन—मन-वचन काय को वश मे करना ये १७ प्रकार के संयम है। इन संयमो का पालन नही करना १७ प्रकार के असंयम है।

१८ प्रकार के असाम्परायिक—सम्-समीचीन, पर–मुख्य अय–पुण्य के आगमन अर्थात् समीचीन श्रेष्ठ पुण्य के आगमन मे कारणभूत सम्पराय के भाव को साम्परायिक कहते है और साम्परायिक का नही होना असाम्परायिक है।

क्षमादि दश धर्म, आठ प्रवचनमातृका (पंचसमिति+तीन गुप्ति) ये १८ साम्परायिक गुण है और इनका पालन नही करना १८ असाम्परायिक है।

१९ प्रकार के नाथाध्ययन–१. उक्कोडणाग–श्वेतहस्ती नागकुमार की कथा २. कुम्म–कूर्म कथा ३. अंडय–अंडज कथा ५ प्रकार की (१ कुक्कुट कथा, २. तापसपल्लिकास्थित शुककथा, ३ वेदकशुक कथा ४ अगंधन सर्प कथा ५ हंसयूथबन्धमोचन कथा) ४ रोहिणी कथा ५. शिष्य कथा ६. तुंब–क्रोध से दिये गये कटु तुम्बी के भोजन करने वाले मुनि की कथा, ७ संघादे–समुद्रदत्तादि ३२ श्रेष्ठी पुत्रो की कथा जो सभी अतिवृष्टि के होने पर समाधि को धारण स्वर्ग को प्राप्त हुए ८. मादंगिमल्लि–मातंगिमल्लि कथा, ९. चंदिम–चन्द्रवेध कथा १०. तावद्देवप कथा– सगर चक्रवर्ती कथा ११. करकण्डु राजा की कथा १२. तलाय–वृक्ष के कोटर मे हुए तपस्वी मुनि की कथा १३. किण्णे–चावलो के मर्दन मे स्थित पुरुष की कथा १४. सुसुकेय–आराधना ग्रन्थ मे कथित शुंशुमार सरोवर संबंधी कथा १५. अवरकंके–अवरकंका नामक पत्तनपुर मे उत्पन्न होने वाले अज्ञन

चोर की कथा १६ णदीफल–अटवी मे स्थित, बुभुक्षा से पीडित धन्वंतरि, विश्वानुलोम, और भृत्य के द्वारा लाये हुए किंपाक फल की कथा १७ उदकनाथकथा ८१ मडूककथा- जातिस्मरण होने वाले मेढक की कथा १९ पुडरीगो–पुडरीक नामक राजपुत्री की कथा।

अथवा

गुणजीवापज्जत्ती, पाणा सण्णाय मग्गणाओ य।
एउणवीसा एदे, णाहज्झाणा मुणेयव्वा ।।१।।

गुणस्थान १४, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और मार्गणा ये १९ प्रकार के नाथाध्ययन ममझना चाहिये।

अथवा

णवकेवलद्धीओ, कम्मक्खयजा हवंति दसचेव।
णाहज्झाणाएदे, एउणवीसा वियाणाहि ।।२।।

घातिया कर्मो के क्षय से होने वाले दस अतिशय तथा नव प्रकार की लब्धि सबधी जिनवाणी का यथाममय अध्ययन करना। इस प्रकार १९ नाथाध्ययना म, असमाधि के २० स्थानो मे। रत्नत्रय मे स्थित आराधक मुनि के चित्त म किसी भी प्रकार की आकुलता का न होना समाधि है, इसमे विपरीत अर्थात् रत्नत्रय की आराधना मे विक्षिप्त चित्त का रखना असमाधि है। अममाधि के २० स्थान है—

१. **डवडवचर**—ईर्यासमिति से रहित चलना।

२. **अप्पमज्जियं**—बिना देखे–शोधे शौचादि के उपकरणो को रखना या उठाना।

३. **रादीणीयपडिहासी**—अपने से एक रात्रि भी दीक्षा मे बडा है, उसक बीच म बोलना या उसका तिरस्कार करना।

४. **अधिसेज्जाणं**—अपने से दीक्षा म बडे है उनके अथवा गुरु के मस्तक पर सोना।

५. **कोही**—गुरु के वचनो पर क्रोध करना।

६. **थेरविवादं तराए**—जहाँ अपने से बडे गुरु आदि बोल रहे हो वहाँ बीच मे बोलना।

७. **उवघादं**—दूसरो का तिरस्कार करके बोलना।

८. **अणणुवीचि**—वीतराग प्रणीत शास्त्र के विरुद्ध बोलना।

९. **अधिकरणी**—स्वबुद्धि से आगम विरुद्ध तत्त्व का कथन करना।

१०. **पिट्ठिमास-पडिणीओ**—पीठ का मास खाना अर्थात् पीठ पीछे किसी की चुगली करना।

११. **असमाहि कलहं**—एक की बात दूसरे को कहकर झगडा पैदा कर देना।

१२. **झंझा**—थोडी-थोड़ी कलह करके शेष करना।

१३. **सद्दकरेपछिदा**—सबकी ध्वनि का तिरस्कार करके स्वयं बडे जोर-जोर से पढना जिससे दूसरे अपना पाठ भूल जाये।

१४. **एषणासमिति**—एषणा समिति रहित आहार करना।

१५. **सूरप्पमाण भोजी**—जिस भोजन से प्रमाद आवे ऐसे गरिष्ठ भोजन का सेवन करना।

१६. **गणांगणिगो**—बहुत अपराध करने वाला अर्थात् एक गण से दूसरे गण मे निकाल देने वाला अपराध करना।

१७. **सरक्खरावदे**—धूलि से भरे हुए पैरो से जल मे प्रवेश करना और गीले पैरो से धूलि मे प्रवेश करना।

१८. **अप्पमाण भोजी**—अप्रमाण भोजन करना अर्थात् भूख से ज्यादा खाना।

१९. **अकाल सज्झाओ**—अकाल मे स्वाध्याय करना।

२०. **अदिट्ठ**—बिना देखे इधर-उधर देखकर गमन करना।

२१ प्रकार के सबल में—पंचरस, पंचवर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श तथा जिन्होने परिवार के लोगो को छोड़ दिया है उन पर स्नेह करना—ये २१ सबल है—

पंचरस पंचवण्णा दो गंधा अट्ठफासगण भेया।
विरदि-अण राग सहिदा इगिवीसा सबल किरियाओ॥

२३ प्रकार के सूत्रकृंताग दूसरे अंग के अधिकारों में—

समए वेदालिंझे एत्तो उवसग्ग इत्थि परिणामे ।
णिरयंतर वीर थुदी, कुसीलपरिभासिए विरिये ।।१।।
धम्मो य अग्ग मग्गे, समोवसरणं तिकागंथहिदे ।
आदा तदित्थगाथा, पुंडरिको किरियठाणे य ।।२।।
आहारय परिणामे पच्चक्खाणा-णगार गुणकित्ति ।
सुद अत्था णालंदे सुदयडज्झाणाणि तेवीसं ।।३।।

१. **समए**-समयाधिकार—जिसमे स्वाध्याय के योग्य तीन काल का प्रतिपादन किया हो।

२. **वेदालिंझे**-वेदलिंगाधिकार—जिसमे तीन लिंगो (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) का वर्णन हो।

३. **उवसग्ग**-उपसर्गाधिकार—जिसमें चार प्रकार के उपसर्गों का निरूपण है।

४. **इत्थिपरिणामे**—स्त्रीपरिणाम अधिकार—स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करता है।

५. **णिरयंतर**—नरकान्तर अधिकार—नरकादि चतुर्गतियों का वर्णन करता है।

६. **वीरथुदी**—वीर स्तुति अधिकार—२४ तीर्थकरों के गुणों का वर्णन करता है।

७. **कुसील परिभासिए**—कुशील परिभाषा अधिकार—कुशील आदि ५ प्रकार के पार्श्वस्थ साधुओं का वर्णन करता है।

८. **विरिए**—वीर्याधिकार—जीवों की तरतमता से वीर्य का वर्णन करता है।

९. **धम्मो य**—धर्माधिकार—धर्म और अधर्म के स्वरूप का वर्णन करता है।

१०. **अग्ग**—अग्राधिकार—श्रुत के अग्रपदों का वर्णन करता है।

११. मग्गे—मार्गाधिकार—मोक्ष और स्वर्ग के स्वरूप तथा कारण का वर्णन करता है।

१२. समोवसरणं—समवसरणाधिकार—२४ तीर्थकरो के समवशरण का वर्णन करता है।

१३. तिकालगंथहिदे—त्रिकालग्रथ का अधिकार—त्रिकालगोचर अशेष परिग्रह के अशुभ का वर्णन करता है।

१४. आदा—आत्माधिकार—जीव के स्वरूप का वर्णन करता है।

१५. तदित्थगाथा—तदित्थगाथाधिकार—तदित्थगाथाधिकारवाद के मार्ग का प्ररूपण करता है।

१६. पुंडरिका—पुंडरीक अधिकार—स्त्रियो के स्वर्गादि स्थानो मे स्वरूप का वर्णन करता है।

१७. किरियठाणेय—क्रियास्थानाधिकार—तेरह प्रकार की क्रिया स्थानो का वर्णन करता है।

१८. आहारय परिणामे—आहारक परिणाम अधिकार—सर्वधान्यो के रस और वीर्य के विपाक को तथा शरीर मे व्याप्त सात धातुओ के स्वरूप का वर्णन करता है

१९. पच्चक्खाग—प्रत्याख्यानअधिकार—सर्वद्रव्य के विषय से संबंध रखने वाली वृत्तियो का वर्णन करता है।

२०. अणगार गुणकित्ति—अनगार गुण कीर्तन अधिकार—मुनियो के गुणो का वर्णन करता है।

२१. सुद—श्रुताधिकार—श्रुत के माहात्म्य का वर्णन करता है।

२२. अत्थ अर्थाधिकार—श्रुत के फल का वर्णन करता है।

२३. णालंदे—नालंदाधिकार—ज्योतिषीदेवो के पटल का वर्णन करता है।

२४ प्रकार के सूत्र अध्ययन— सूत्रकृत अध्ययन से २३ संख्या वाले है। द्वितीय अंग मे श्रुतवर्णन के अधिकार के अन्वर्थ संज्ञा वाले है। इनके अकाल अध्ययनादि के विषय मे, मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

२५ तीर्थंकरों में— २४ तीर्थकर देवो की यथाकाल वंदनादि करना चाहिये, यदि उसका पालन नही किया हो तो इन दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ।

२६ प्रकार की भावनायें—२४ प्रकार की भावनाओ मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

२७ प्रकार क्रियाओं में—२५ क्रियाओ मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

२६ प्रकार की पृथ्वियों में—

रुचिरा सोलस-पडला, सत्तसु पुढवीसु होंति पुढवीओ।
अवसप्पिणीए सुद्धा, खराय उवसप्पिणीयदु॥

१ सौधर्म स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यंत रुचिरा नाम की एक पृथ्वी है। भरत और ऐरावत की भूमि अवसर्पिणी काल में शुद्धा नाम की पृथ्वी कही जाती है और वही उत्सर्पिणी काल मे खरा नाम से कही जाती है। रत्नप्रभा भूमि के खर भाग मे पिण्ड रूप से एक-एक हजार योजन के परिमाण वाली निम्नलिखित भूमियाँ है—१ चित्रा पृथ्वी २ वज्र पथ्वी ३ वैडूर्यपृथ्वी ४ लौहितांक पृथ्वी ५ मसार गध पृथ्वी ६ गामेध पृथ्वी ७ प्रवाल पृथ्वी ८. ज्योति पृथ्वी ९. रसांजन पृथ्वी १० अजनमूल पृथ्वी ११. अंक पृथ्वी १२ स्फटिक पृथ्वी १३ चंदन पृथ्वी १४ पृथ्वी १५ बकुल पृथ्वी १६ शिलामय पृथ्वी, पंकभाग मे ८४ हजार योजन प्रमाण, वाल वचक पृथ्वी तथा इसी भूमि के अब्बहुल भाग मे ८० हजार परिमाण वाली "रत्नप्रभा" नामकी पृथ्वी है और आकाश के नीचे ६ नरको की भूमियाँ है कुल २६ पृथ्वियाँ है।

२७ प्रकार के अनगार गुण—१२ भिक्षु प्रतिमा, ८ प्रवचन मातृकाएँ, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग और द्वेष के अभाव रूप प्रवृत्ति मे (ये २७ मुनियो के गुण है)।

२८ प्रकार के मूलगुणों में

२९ प्रकार के पाप सूत्रों में—१ चित्रकर्मादिसूत्र–चित्रकार आदि के शास्त्र, २. गणित सूत्र, ३ चाटुकार सूत्र, ४. वैद्यक सूत्र, ५. नृत्य सूत्र ६ गान्धर्व सूत्र ७ पटह सूत्र ८. अगद सूत्र ९. मद्य सूत्र १०. द्यूत सूत्र

११. राजनीति सूत्र, १२. चतुरंग सूत्र, १३-२१. हाथी, घोड़ा, पुरुष, स्त्री, छत्र, गाय, तलवार, दण्ड, अंजन, इनके लक्षण बताने वाले सूत्र।

२२ **व्यञ्जन सूत्र**— किसी के शरीर पर तिल, मसा, लशन आदि देखकर शुभाशुभ कहना व्यजन सूत्र है।

२३. **स्वर सूत्र**—किसी पशु-पक्षी की आवाज सुनकर शुभाशुभ कहना स्वर निमित्त है।

२४. **अंग सूत्र**— किसी स्त्री अथवा पुरुष के नाक, कान ऑख, ॲगुली आदि को देखकर शुभाशुभ कहना अंग निमित्त है।

२५. **लक्षण सूत्र**—शरीर मे होने वाले ध्वजा आदि को देखकर शुभाशुभ कहना लक्षण निमित्त है।

२६. **छिन्न सूत्र**—वस्त्र को कटा हुआ, चूहे आदि द्वारा खाया हुआ, जला हुआ, स्याही आदि से भरा हुआ देखकर शुभाशुभ कहना छिन्न निमित्त है।

२७ **भौम सूत्र**—पृथ्वी को देखकर—"यहॉ धन है, यहॉ खारा पानी है, यहॉ मीठा पानी है" आदि कहना भौम निमित्त है।

२८. **स्वप्न सूत्र**—स्वप्न का शुभाशुभ फल कहना स्वप्न निमित्त है।

२९. **अन्तरिक्ष सूत्र**—सूर्य चन्द्र, नक्षत्र आदि के उदय, अस्त या आकृति आदि को देखकर शुभाशुभ कहना अन्तरिक्ष निमित्त है। ये २९ पाप सूत्र हैं। अथवा

अट्ठारस य पुराणो, सठंग विण्णास लोवणाणं तु।
बुद्धाई पंच समया परूवणा जासुदे लोए।।

१८ पुराण, लोगो के छह अगो के विन्यास का वर्णन तथा बुद्धि के समय की प्ररूपणा जिनमे हो ऐसे शास्त्र, इनके भेद पॉच है।

३०. **तीस प्रकार के मोहनीय स्थान**—१४ प्रकार के अन्तरंग परिग्रह हिरण्य सुवर्णादि और बहिरंग १० प्रकार का परिग्रह रूप मिथ्यात्वादिभाव तथा पॉच इन्द्रिय और छठे मन से मोह जनित संबंध रखने के कारण १०+१४+५+१=३० ।

३१. ३१ प्रकार के कर्मों के विपाक में—ज्ञानावरणी के ५ भेद दर्शनावरणी के ९, वेदनीय के २, मोहनीय २, आयु के ४, नामकर्म के २ भेद (शुभ–अशुभ) गोत्र के २, अन्तराय के ५ सब मिलाकर ज्ञानावरणादि आठों कर्मों संबंधी ३१ भेद।

३२. बत्तीस प्रकार के जिनोपदेश—

आवास मंगपुव्वा, छब्बारस चोदसा य ते कमसो।
बत्तीस इमे णियमा, जिणोवएसा मुणेयव्वा॥

छह आवश्यक, बारह अंग, चौदह पूर्व इस प्रकार सब मिलाकर ६+१२+१४=३२ प्रकार का जिनोपदेश है।

३३. ३३ प्रकार की आसादना—

पंचेव अत्थिकाया, छज्जीवणिकाय महव्वया पंच।
पवयण मादु पदत्था, तेत्तीसाच्चासणाभणिया॥२॥

पाँच प्रकार के अस्तिकाय, छह प्रकार के जीवों के निकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचन माता और जीवादि नौ पदार्थ संबंधी अनादर की भावना= ५+६+५+८+९ सब मिलाकर ३३ आसादना होती हैं।

हे प्रभो! इस प्रकार मेरे द्वारा संक्षेप में जीवों की अत्यासादना, अजीवों की अत्यासादना, ज्ञान की अत्यासादना, दर्शन की अत्यासादना, चारित्र की अत्यासादना, तप की अत्यासादना, वीर्य की अत्यासादना में उन सबके प्रति पहले दुश्चरित का आचरण मैंने किया हो, मैं दूसरों की साक्षीपूर्वक उसकी गर्हा/निन्दा करता हूँ। भूत-भविष्य, वर्तमान में होने वाले पापों का प्रतिक्रमण करता हूँ। आगे होने वाले पापों का प्रत्याख्यान करता हूँ। अविवेकी होने से मैंने आज तक जिन पापों/दोषों की गर्हा न की हो उनकी गर्हा करता हूँ। जिन पापों की निन्दा न की उनकी निन्दा करता हूँ। जिन दोषों की गुरु समीप आलोचना नहीं की उनकी गुरुसाक्षी मे आलोचना करता हूँ। मैं अब दोषों का परित्याग कर आराधना को स्वीकार करता हूँ, व्रत की विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन्! रात्रिक-दैवसिक क्रियाओं में मेरे द्वारा कोई भी अतिचार, अनाचार रूप दोष हुए हों, तत्संबंधी मेरे समस्त पाप आज मिथ्या हों,

निष्फल हो। मै अपने पापो का प्रक्षालन, निराकरण करने के लिये ही प्रतिक्रमण करता हूँ।

इस प्रकार उपर्युक्त एक से तैतीस संख्या पर्यन्त अपने व्रतो मे होने वाली समस्त अत्यासादनाओ संबंधी दोषो की निंदा, गर्हा, आलोचना करता हूँ। मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

भावार्थ—इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार से एक से तैतीस संख्या पर्यन्त अपने व्रतो मे होने वाले अत्यासना आदि रूप दोष की मै निंदा, गर्हा, आलोचना करता हूँ मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्व-दुक्खपरिहाणि-मग्गं, सुचरिय-परिणिव्वाण-मग्गं, अवित्तहं, अविसंति-पवयणं, उत्तमं तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परि-णिव्वाण-यंति, सव्व-दुक्खाण मंतं-करेंति, पडि-वियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवहि-णियडि-माण-माय-मोस-मूरण मिच्छणाण-मिच्छा-दंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचमि, जं जिणवरेहि पण्णत्तं, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (इमं णिग्गंथं) इस निर्ग्रथ लिग की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। (इमं णिग्गंथं) यह बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से निर्ग्रथ लिंग (पवयणं) प्रवचन है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण आगम मे कहा है। (अणुत्तरं) यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रथ लिंग से भिन्न दूसरा और कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नही है (केवलियं) केवली संबंधी है अर्थात् केवली भगवान् द्वारा कथित है (पडिपुण्ण) परिपूर्ण है अर्थात् कर्मो का क्षय करने मे कारणभूत होने से परिपूर्ण है (णेगाइयं) नैकायिक है अर्थात् परिपूर्ण रत्नत्रय के निकाय से सम्बन्ध

रखने वाला है (सामाइयं) सामायिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य योग का अभाव होने से निर्ग्रंथ लिंग ही सामायिक है (संसुद्धं) संशुद्ध है अर्थात् अतिचार रहित आलोचनादि प्रायश्चित्त से विशुद्ध होने के कारण शुद्ध है (सल्लघट्टाणं) माया-मिथ्या-निदान आदि शल्य से दुखी जीवों की (सल्लघत्ताणं) माया-मिथ्या-निदान आदि शल्यों का नाश करने वाला है (सिद्धिमग्गं) सिद्धि का मार्ग है अर्थात् स्वात्मोपलब्धि का मार्ग है (सेढिमग्गं) उपशम और क्षपक श्रेणी का मार्ग है (खंतिमग्गं) शान्ति और क्षमा का मार्ग है (मुत्तिमग्गं) मुक्ति का मार्ग है (पमुत्ति मग्गं) उत्कृष्ट रूप से तिल-तुष-मात्र परिग्रह का त्याग, परम निस्पृह भाव स्वरूप है (मोक्खमग्गं) मोक्षमार्ग है, (पमोक्खमग्गं) अरहंत, सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है (णिज्जाणमग्गं) निर्याणमार्ग अर्थात् चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है (णिव्वाणमग्गं) निर्वाण का मार्ग है (सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं) सर्व दुख–शारीरिक, मानसिक आदि के नाश का मार्ग है (सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं) सामायिक आदि शुद्ध चारित्र की पूर्णता द्वारा एक-दो भव में निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग है (अवित्तहं) मोक्षार्थी जीवो को मोक्ष प्राप्ति निर्ग्रंथलिंग से ही होती है इसमें कोई विवाद भी नही है (अविसंति) मोक्षार्थी इस निर्ग्रंथ लिंग का आश्रय लेते हैं (पवयणं) यह निर्ग्रंथ लिंग सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है (तं उत्तमं) उस उत्तम निर्ग्रथ लिंग का (सद्दहामि) मैं श्रद्धान करता हूँ (तं पत्तियामि) उस निर्ग्रथ लिंग को मै प्राप्त होता हूँ (तं) उस निर्ग्रंथलिंग की (रोचेमि) रुचि करता हूँ (तं) उस निर्ग्रंथ लिंग का (फासेमि) स्पर्श करता हूँ। (इदोत्तरं) इस निर्ग्रंथ लिंग से बढ़कर (अण्णं) अन्य कोई मोक्ष का हेतु (णत्थि) वर्तमान मे नहीं है (ण भूदं) भूतकाल में नहीं था (ण भविस्सदि) न भविष्य काल में होगा (णाणेण) ज्ञान से (वा) अथवा (दंसणेण) दर्शन से (वा) अथवा (चरित्तेण) चारित्र से (वा) या (सुत्तेण) सर्वज्ञ प्रणीत आगम से, क्योंकि श्रुत/आगम निर्ग्रंथ लिंग का ज्ञापक या कारण होने से (वा) अथवा (इदो) इस निर्ग्रथ लिंग से (जीवा) जीव (सिज्झंति) आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं (बुज्झंति) वीतरागता की वृद्धि के कारण मुनि अवस्था प्राप्त कर जीवादि तत्त्वों के विशेष ज्ञान को प्राप्त करते हैं (मुंचंति) संपूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाते हैं

(परिणिव्वाणयंति) पूर्ण निर्वाण को प्राप्त सुखी या कृतकृत्य हो जाते हैं (सव्वदुक्खाणमंतं करेंति) शारीरिक, मानसिक व आगन्तुक सभी प्रकार के दुखों का अन्त करते हैं (परिवियाणंति) इस निर्ग्रंथ लिंग के द्वारा ही सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हैं (समणोमि) मैं मुनि/श्रमण होता हूँ (संजदोमि) मै संयत होता हूँ अर्थात् मै प्राणी संयम व इन्द्रिय संयम में तत्पर होता हूँ (उवरदोमि) उपरत होता हूँ अर्थात् विषय भोगो से विरक्त होता हूँ (उवसंतोमि) उपशांतभाव अर्थात् राग-द्वेष आदि भावों से उपशान्त होता हूँ (उवहि) उपधि/परिग्रह (णियडि) निकृति/वंचना (माण) मान (माय) माया/कुटिलता (मोस) असत्य भाषण (मूरण) मूर्च्छा (मिच्छणाणं) मिथ्याज्ञान (मिच्छादंसण) मिथ्यादर्शन (च) और (मिच्छचरित्तं) मिथ्याचारित्र इनसे (पडिविरदोमि) विरक्त होता हूँ (सम्मणाण) सम्यक्ज्ञान (सम्मदंसण) सम्यग्दर्शन (च) और (सम्मचरित्तं) सम्यक्चारित्र में (रोचेमि) श्रद्धान करता हूँ (जिणवरेहिं पण्णत्तं जं) जिनेन्द्र देव के कहे गये जो तत्त्व है उनका ही श्रद्धान करता हूँ (इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (राइओ-देवसिओ) रात्रिक-दैवसिक क्रियाओ में (जो कोई) जो भी कोई (अइयारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार हुए हों (तस्स में) तत्संबंधी मेरे (दुक्कडं मिच्छा) दुष्कृत/समस्त पाप मिथ्या हो, निष्फल हों।

पडिक्कमामि भंते ! सव्वस्स, सव्वकालियाए, इरियासमिदीए, भासा-समिदीए, एसणा-समिदीए, आदाण-णिक्खेवण-समिदीए, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइ-ट्ठावणि-समिदीए, मण-गुत्तीए, वचि-गुत्तीए, काय-गुत्तीए, पाणा दिवादादो-वेरमणाए, मुसावादादो-वेरमणाए, अदिण्ण-दाणादो-वेरमणाए, मेहुणादो-वेरमणाए, परिग्गहादो-वेरमणाए, राइभोयणादो-वेरमणाए, सव्व-विराहणाए, सव्व-धम्म-अइक्कमणदाए, सव्व-मिच्छा-चरियाए, इत्थ मे जो कोई राइयो (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! (सव्वस्स) सम्पूर्ण (अइयारो) अतिचारों का (सव्वकालियाए) सार्वकालिक अर्थात् सम्पूर्ण काल में होने वाली (इरियासमिदीए) ईर्या समिति में (भासा-समिदीए) भाषा समिति में (एसणासमिदीए) एषणा समिति में (आदाणणिक्खेवणसमिदीए) आदान-निक्षेपण समिति में (उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावण समिदीए) मल-मूत्र, खँखार, नासिका मल, शरीर मल आदि के निक्षेपण

लक्षण प्रतिष्ठापन समिति में (मण गुत्तीए–वचि गुत्तीए–काय गुत्तीए) मनो गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति में (पाणादिवादादो वेरमणाए) प्राणातिपात से विरक्ति रूप अहिंसा महाव्रत में (मुसावादादो वेरमणाए) असत्य भाषण से विरक्ति रूप सत्य महाव्रत में (अदिण्णादाणादो वेरमणाए) अदत्तादान से विरक्त रूप अचौर्य महाव्रत में (मेहुणादो वेरमणाए) मैथुन से विरक्ति रूप ब्रह्मचर्य महाव्रत में (परिग्गहादो वेरमणाए) परिग्रह से विरक्त रूप अपरिग्रह महाव्रत में (राई भोयणादो वेरमणाए) रात्रिभोजन से विरक्त रूप षष्ठम रात्रिभोजन अणुव्रत में (सव्वविराहणाए) सब एकेन्द्रियादि जीवों की विराधना में (सव्वधम्म अइक्कमणदाए) सर्वधर्मों का अतिक्रमण किया हो अर्थात् जो आवश्यक कार्य जिस काल में करना बतलाये हैं उनका उल्लंघन करने में (सव्वमिच्छाचरियाए) मिथ्या आचार का सेवन किया हो (इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो भी कोई (राइयो–देवसिओ) रात्रिक–देवसिक क्रियाओं में (अइयारो–अणायारो) अतिचार अनाचार हुए हों (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों, निष्फल हों। इसलिए (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन् ! तेरह प्रकार चारित्र की आराधना में लगे अतिचार अनाचार रूप दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं जो मे राइओ (देवसिओ) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्समणीओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिएण वा, णिस्सासिएण वा, उम्मिसिएण वा, णिम्मिसिएण वा, खासिएण वा, छिक्किएण वा, जंभाइएण वा, सुहुमेहिं-अंग-चलाचलेहिं दिट्ठि-चलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं [1]आयरेहिं, असमाहिं-पत्तेहिं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

---

१. धर्मध्यान दीपको में "एदेहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयरेहिं" पाठ छपा हुआ है, किन्तु "प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी" में एदेहिं सव्वेहिं (एतैः प्रागुक्तैः सर्वैः) आयारेहिं (आचारैर्व्यापारैः कश्चिद्दोषो जातः) पाठ है जो प्रसंगानुसार होने से ठीक मालूम होता है।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (पडिक्कमणादिचारमालोचेउं) मैं प्रतिक्रमण सम्बन्धी अतिचार की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो कोई (राइयो-देवसिओ) रात्रिक-दैवसिक क्रियाओ मे (अइचारो-अणायारो) अतिचार-अनाचार (आभोगो-अणाभोगो) आभोग-अनाभोग (काइयो-वाइओ-माणसिओ) कायिक-वाचनिक-मानसिक (दुच्चिंतीओ) दुश्चिंतवन किया हो (दुब्भासिओ) दुर्वचनो का उच्चारण किया हो (दुप्परिणामीओ) मानसिक दुष्परिणाम किये हो (दुस्समणीओ) खोटे स्वप्न देखे हों या खोटा आचारण किया हो (णाणे) ज्ञान मे (दंसणे) दर्शन मे (चरित्ते) चारित्र में (सुत्ते) आगम मे (सामाइए) समताभावरूप सामायिक मे (पंचण्हं महव्वयाणं) पांच महाव्रत (पंचण्हं समिदीणं) पांच समिति (तिण्हं गुत्तीणं) तीन गुप्ति (छण्हं जीवणिकायाणं) छह प्रकार के जीवनिकाय (छण्हं आवासयाणं) छह आवश्यक—सबकी (विराहणाए) विराधना की हो (अट्ठविहस्स कम्मस्स) आठ प्रकार के कर्मो का (णिग्घादणाए) निर्घातन अर्थात् नाश करने वाली क्रियाओं के प्रयत्न करने मे जो दोष लगे हो (अण्णहा) अन्य भी दोष लगे हो यथा-(उस्सासिदेण) उच्छ्वास से (वा) अथवा (णिस्सासिदेण) निश्वास से (वा) अथवा (उम्मिसिएण) उन्मेष अर्थात् आँखों के खोलने से (वा) अथवा (णिम्मिसेण) निमेष अर्थात् आँखों को बन्द करने से (वा) अथवा (खासिएण) खाँसी लेने से (वा) अथवा (छिंकिएण) छीक लेने मे (वा) अथवा (जंभाइएण) जंभाइ लेने में (वा) अथवा (सुहुमेहिं) सूक्ष्म रूप से (अङ्गचलाचलेहिं) अंगो के चलाचल करने में (दिट्ठिचलालेहिं) आँखों के चलाचल करने मे (एदेहिं सव्वेहिं) इन सब क्रियाओं मे (असमाहिपत्तेहिं) असमाधि को प्राप्त हुआ हूँ (आयारेहिं) आचार व्यवहार मे दोष लगा हो, उन सबको दूर करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ। (जाव) जब तक (अरहंताणं) अरहंत भगवान् की (भयवंताणं) सातिशय ज्ञानधारी पूज्य केवली भगवन्तो की (पज्जुवासं) पर्युपासना करता हूँ (तावकालं) तब-तक अर्थात् उतने काल पर्यन्त हे भगवन् ! (पावकम्मं) पापकर्मो को (दुच्चरियं) दुश्चरित्र को/दुर्गति मे ले जाने वाली कुचेष्टाओ को (वोस्सरामि) छोड़ता हूँ।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोहं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री निष्ठितकरण-वीर भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थ) अब सब अतिचारों की विशुद्धि के लिये (रात्रिक-दैवसिक) रात्रिक-दैवसिक (प्रतिक्रमण क्रियायाम्) प्रतिक्रमण क्रिया मे (कृतदोष-निराकरणार्थं) किये गये दोषों का निराकरण करने के लिये (पूर्वाचार्यानुक्रमेण) पूर्व आचार्यों के अनुसार (सकलकर्मक्षयार्थ) सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने के लिये (भाव-पूजा वन्दना-स्तव-समेतं) भाव पूजा, वन्दना और स्तवन सहित (निष्ठितकरण) निष्ठितकरण (वीरभक्ति कायोत्सर्ग) वीर भक्ति के कायोत्सर्ग को (अहम्) मै (करोमि) करता हूँ।

(इति प्रतिज्ञाप्य) ऐसी प्रतिज्ञा करके

दिवसे १०८ रात्रौ च ..... चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्) ।

अर्थ—इस प्रकार प्रतिज्ञा करके दिन में १०८ तथा रात्रि में ५४ उच्छ्वासो मे "णमो अरहंताणं" इत्यादि पढ़कर कायोत्सर्ग करना चाहिये एवं तत्पश्चात् थोस्सामि .... करना चाहिये।

यः सर्वाणि चराचराणि विधि-वद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत्-प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।।१।।

अन्वयार्थ—(यः) जो (सर्वाणि) सम्पूर्ण (चर-अचराणि) चेतन और अचेतन (विधिवत्) स्वरूपानुसार उनकी (द्रव्याणि) द्रव्यों को (तेषां) और उनके (गुणान्) समस्त गुणों को (भूतभाविभवतः) भूत-भावी और

वर्तमान (सर्वान् पर्यायान्) सम्पूर्ण पर्यायों को (सदा) हमेशा (सर्वदा) सर्वकाल में (प्रतिक्षणं) प्रति समय में (युगपत्) एकसाथ (जानीते) जानते हैं (अतः) इसलिये (सर्वज्ञः) वे सर्वज्ञ (इति) इस प्रकार (उच्यते) कहे जाते हैं (तस्मै) उन (सर्वज्ञाय) सर्वज्ञ (जिनेश्वराय) जिनेश्वर (महते वीराय) पूज्य महावीर भगवान के लिये (नमः) नमस्कार हो !

भावार्थ—त्रिकालवर्ती चेतन-अचेतन द्रव्य व उनकी सब पर्यायों को जो युगपत् जानते हैं उन महापूज्य वीर जिनके लिये नमस्कार है।

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो वीराय भक्त्या नमः ।
वीरात् तीर्थ-मिदं प्रवृत्त-मतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-द्युति-कांति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर ! भद्रं त्वयि ।।२।।

अन्वयार्थ—(वीरः) वीर भगवान् (सर्व सुर असुरेन्द्र महितः) सभी सुर/देव और असुर तथा इन्द्रों से पूजित हैं (वीरं) वीर प्रभु को (बुधाः) ज्ञानी जन (संश्रिताः) आश्रय करते हैं (स्वकर्मनिचयः) अपने कर्म समूह को (वीरेण) जिन वीर भगवान् के द्वारा (अभिहतः) नष्ट कर दिया गया है (वीराय) उन वीर प्रभु के लिये (भक्त्या) भक्ति से (नमः) नमस्कार हो। (वीरात्) वीर प्रभु से ही (इदम्) यह (अतुलं) अनुपम, अतुल (तीर्थं) तीर्थ (प्रवृत्तं) प्रवृत्त हुआ है (वीरस्य) वीर भगवान् का (तपो) तप (घोरं/वीरं) उत्कृष्ट है (वीरे) वीर भगवान् में (श्री) अन्तरंग अनंत चतुष्टय और बाह्य समवशरणादि लक्ष्मी (द्युति कान्ति कीर्तिधृतयः) तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान हैं (हे वीर!) हे वीर भगवान् (त्वयि) आप में (भद्रं) कल्याण निहित है अर्थात् हे वीर भगवान्! आप ही कल्याणकारी हैं।

इस श्लोक में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बंध, अधिकरण और संबोधन आठों विभक्तियों का प्रयोग करते हुए वीर भगवान् की सुन्दर अलंकार पूर्ण स्तुति की गई है।

ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्यम्, ध्यान-स्थिताः संयम-योग-युक्ताः ।
ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके, संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति ।।३।।

अन्वयार्थ—(ये) जो भव्य पुरुष (ध्यान स्थिता:) ध्यान में स्थित होकर (संयमयोगयुक्ता:) संयम सहित योग से युक्त होते हुए (नित्य) प्रतिदिन/हमेशा (वीर पादौ) वीर भगवान् के दोनों चरण-कमलों को (प्रणमन्ति) नमस्कार करते हैं (ते) वे भव्य पुरुष (लोके) संसार में (हि) निश्चित रूप से (वीतशोका) शोक मुक्त/शोक रहित (भवन्ति) होते है (विषमं) विषम (संसार दुर्गम्) संसाररूपी अटवी को (तरंति) तिर जाते है अर्थात् पार कर मुक्त हो जाते हैं।

भावार्थ—इस श्लोक मे वीर भगवान् को नमस्कार करने का फल और पूजक का लक्षण चित्रित किया है। "संयम सहित वीरप्रभु की भक्ति करने वाला मुक्ति को प्राप्त होता है।"

व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कंध-बंधो,
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धितः शील-शाखः ।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम-सुगंधिः सत्-तपश्चित्र-पत्रः ।।४।।
शिव-सुख-फल-दायी यो दया-छाय-योघः,
शुभ-जन-पथिकानां खेद-नोदे समर्थः ।
दुरित-रविज-तापं प्रापयन्नन्तभावम्,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तु चारित्र-वृक्षः ।।५।।

अन्वयार्थ—(व्रत समुदयमूल:) व्रतो का समूह जिसकी जड़ है (संयमस्कन्धबन्धो) संयम जिसका स्कन्ध बन्ध है (यम नियमपयोभि:) यम और नियमरूपी जल के द्वारा जो (वर्द्धित:) वृद्धि को प्राप्त है (शीलशाख:) १८ हजार शील जिसकी शाखाएँ हैं (समितिकलिक भार:) पाँच समिति रूप कलिकाएँ भार हैं (गुप्ति गुप्तप्रवाल:) तीन गुप्तियाँ जिसमे गुप्त कोपल है (गुणकुसुमसुगंधि:) ८४ लाख उत्तरगुण व २८ मूलगुण जिसके पुष्पों की सुगन्धि है (सत्तप:) समीचीन तप (चित्रपत्र:) चित्र-विचित्र पत्ते हैं। (य:) जो (शिवसुखफलदायी) मोक्षरूपी फल को देने वाला है (दयाछायया ओघ:) दयारूपी छाया समूह से युक्त है (शुभजनपथिकानां) शुभोपयोग में दत्तचित्त पथिकों या भव्य जनों के (खेदनोदे) खेद को दूर करने में (समर्थ:) समर्थ है (दुरित-रविज

तापं) पापरूप सूर्य से उत्पन्न होने वाले ताप को (अभावं) अस्त या नाश को (प्रापयन्) प्राप्त कराता हुआ (सः) वह (चारित्रवृक्ष) चारित्र रूपी वृक्ष (नः) हमारे (भव) संसार रूप (विभव हान्यै) नश्वर विभूति या पुण्याधीन वैभव के नाश के लिये (अस्तु) हो ॥४-५॥

भावार्थ—इस श्लोक मे चारित्ररूपी वृक्ष के परिवार का सुन्दर चित्रण है—व्रत को जिस वृक्ष की जड़ कहा गया है संयम को स्कंध बन्ध कहा है। यम नियमरूपी पानी से सींचा जाता है शीलरूपी शाखा समिति रूपी कलिकाओं और गुप्ति रूप कोपल से युक्त है। गुण रूपी पुष्पों की जिसमें सुगंधी है, तप पत्ते हैं, मोक्ष फल है, शुभोपयोगी पथिक/मोक्षमार्गी को निर्विघ्न भक्ति में प्रेरित की थकान को दूर करता है, पापरूपी सूर्य का अस्त करने में एकमात्र हेतु ऐसा चारित्रवृक्ष संसार के अन्त मे हेतु हो। जिस प्रकार वृक्ष में जड़, स्कंध, शाखा, पत्ते, फूल-फल आदि होते है, जीवो को उसका लाभ मिलता है, उसी प्रकार चारित्र को यहाँ वृक्ष की उपमा दी है। और चारित्र वृक्ष के परिवार को समझाया है।

चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ॥६॥

अन्वयार्थ—(सर्वजिनैः) सब तीर्थकरों के द्वारा (चारित्रं) जिस चारित्र का स्वयं (चरितं) आचरण किया गया। (च) तथा (सर्वशिष्येभ्यः) समस्त शिष्यो के लिये (प्रोक्तं) जिस चारित्र का उपदेश दिया गया उस (पंचभेदं चारित्रं) सामायिक, छेदोपस्थापना आदि पाँच भेद युक्त चारित्र को (पंचम चारित्र लाभाय) पाँचवें यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिये (प्रणमामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

धर्मः सर्व-सुखाकरो हित-करो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्-नास्त्य-परः सुहृद्-भव-भृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्त-महं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥७॥

अन्वयार्थ—(सर्वसुख आकरः) सब सुखों की खानि (हितकरः) हित को करने वाला (धर्मः) धर्म है। (बुधाः) बुद्धिमान लोग (धर्मं) धर्म को (चिन्वते) संचय करते है (धर्मेण) धर्म के द्वारा (एव) ही

(शिवसुखं) मोक्ष सुख (सम् आप्यते) अच्छी तरह से प्राप्त होता है (तस्मै) इसलिये (धर्माय) धर्म के लिये (नमः) नमस्कार हो । (भवभृतां) संसारी प्राणियों का (धर्मात्) धर्म से (अपरः) भिन्न, अन्य कोई दूसरा (सुहृद्) मित्र (न अस्ति) नहीं है । (धर्मस्य) धर्म की (मूलं) जड़ (दया) दया है । (अहं) मै (प्रतिदिनं) प्रतिदिन/सदैव (चित्तं) मन को (धर्मे) धर्म में (दधे) लगाता हूँ । (हे धर्म !) हे धर्म (मां) मेरी (पालय) रक्षा करो ।

इस श्लोक में धर्म के साथ सातों विभक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है ।

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
[१]देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ।।८।।

अन्वयार्थ—(अहिंसा) अहिंसा (संयमो) संयम (तवो) और तप रूप (धम्मो) धर्म (मंगलम्) मंगल (उक्किट्ठं) कहा गया है (जस्स) जिसका (मणो) मन (सया) सदा (धम्मे) धर्म में लगा रहता है (तस्स) उसको (देवा वि) देव भी (णमंसंति) नमस्कार करते हैं ।

विश्व के समस्त धर्मों में अहिंसा, संयम और तप ये तीन सिद्धान्त सम्प्रदाय निरपेक्ष है अर्थात् विश्व के समस्त धर्मों ने अहिंसा, संयम और तप की महत्ता को स्वीकार किया है ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! वीर भत्ति काओसग्गोकओ तस्सालोचेउं सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचारित्त-तव-वीरियाचारेसु, जम-णियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु सव्व-मइचारं सावज्ज-जोगं पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोग-अज्झव-साय-ठाणाणि, अप्पसत्थ-जोग-सण्णा-णिंदिय-कसाय-गारव-किरियासु, मण-वयण-काय-करण-दुप्पणिहा-णाणी, परि-चिंतियाणि, किण्हणील-काउ-लेस्साओ, विकहा-पालिकुंचिएण, उम्मग-हस्स-रदि-अरदि सोय-भय-दुगंछ-वेयण-विज्झंभ-जम्भाइ-आणि, अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणि-परिणामदाणि, अणिहुद-कर-चरण-मण-वयण-काय-करणेण, अक्खित्त-बहुल-पराय-णेण, अपडि-पुण्णेण वा सरक्खरावय-

१. "देवा वि तस्स पणमंति" पाठ में एक अक्षर अधिक है ।

परिसंघाय-पडिवत्तिएण, अच्छा-कारिदं मिच्छा-मेलिदं, आ-मेलिदं, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्णं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवास-एसु-परिहीणदाए, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (वीरभत्ति काओसग्गोकओ लस्सालोचेउं) वीर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु) ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार (जम-णियम-संजम-शील-मूलुत्तरगुणेसु) यम-नियम-संयम-शील-मूलगुण और उत्तर-गुणों में होने वाले (सव्वं) समस्त (अइयारं) अतिचारों व (सावज्जोगं) सावद्ययोग से (पडिविरदोमि) विरत होता हूँ, त्याग करता हूँ। (असंखेज्जलोगअज्झवसायठाणाणि) असंख्यात लोक प्रमाण अध्यवसाय स्थान (अप्पसत्थजोगसण्णा णिंदियकसायगारवक्रिरियासु) अप्रशस्तयोग, संज्ञा, इन्द्रिय, कषाय और गारव क्रियाओं में (मणवयण कायकरणदुप्पणिहाणाणिपरिचिंतियाणि) मन-वचन-काय का दुष्प्रणिधान हुआ हो, या अशुभ चिंतन किया हो (किण्हणीलकाउलेस्साओ) कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं में (विकहापालिकुंचिएण) विकथा में अनुरक्त हुआ हो (उम्मग्ग हस्सरदि अरदिसोयभयदुगंछ वेयणविज्जंभजंभाइआणि) उन्मार्ग, हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मुँहफाड़कर जँभाई लेना (अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामदाणि) आर्त्त-रौद्र रूप संक्लेश परिणाम में परिणमित किया हो (अणिहुदकरचरणमणवयणकायकरणेन) अनिभृत/चंचल हाथ-पैर-मन-वचन-काय की प्रवृत्ति करने से (अक्खित्तबहुल-परायणेण) इन्द्रिय विषयों में अति प्रवृत्ति करने या लम्पटता होने से (अपडिपुण्णेण) अपरिपूर्णता से (वा) अथवा (सरक्खरावयपरिसंघाय-पडिवत्तिएण) स्वर, अक्षर व्यञ्जन, पद और परिसंघात में अन्यथा प्रवृत्ति करने से (वा) अथवा (अच्छाकारिदं) शीघ्र उच्चारण किया हो (वा) अथवा (मिच्छा-मेलिदं) मिथ्या मिलाया हो अर्थात् पदच्छेदादि संबंध रहित दूसरे अक्षर मिलाकर पढ़ा हो (आमेलिदं वा) अथवा अक्षरों या छन्दों को इधर-उधर मिलाकर पढ़ा हो, जैसा "दशरामसरा" को दशरा-मसरा पढ़ना

(मेलिदं वा) अथवा उच्चध्वनि से पढ़ने योग्य अक्षरों को मन्द-ध्वनि-से पढ़ा हो (अण्णहादिण्णं) अन्य प्रकार से उच्चारण किया हो (अण्णहापडिच्छदं) अन्यथा सुना हो (आवासएसु) आवश्यक क्रियाओं में (परिहीणदाए) हानि या त्रुटि (कदो) की हो (वा) अथवा (कारिदो) कराई हो (वा) अथवा (कीरंतो) हीनता करने वाले की (समणुमणिदो) अनुमोदना की हो (तस्स) तत्संबंधी (में) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों, मेरे पाप निष्फल होवें।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूल-गुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव समेतं, चतुर्विंशति तीर्थंकर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ—अब व्रतो में लगे सभी अतिचारों की विशुद्धि के लिये रात्रिक-दैवसिक प्रतिक्रमण क्रियाओं में किये गये दोषों का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यों के क्रम से सकल/सम्पूर्ण कर्मो के क्षय के लिये भावपूजा-भाव वन्दना स्तवन सहित चौबीस तीर्थंकर भक्ति के कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

इति प्रतिज्ञाप्य

अर्थ—ऐसी प्रतिज्ञा करके "णमो अरहंताणं" इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा तत्पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशति स्तव का पाठ करना चाहिये।

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति

[1]चउवीस तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे।
सव्वे सगण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।१।।

१. क्रियाकलाप पृ० ६७ के अनुसार।

अन्वयार्थ—(उसहाइवीरपच्छिमे) वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थकर महावीर पर्यन्त (चउवीसं) चौबीस (तित्थयरे) तीर्थंकरों को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ। (सव्वेसिं) समस्त (मुणिगणहरसिद्धे) मुनि, गणधर और सिद्धो को (सिरसा) शिर से अर्थात् शिर झुका कर (णमंसामि) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—इस श्लोक मे चौबीस तीर्थकर भगवान् के साथ पंचपरमेष्ठी भगवन्तो को नमस्कार किया गया है।

ये लोकेऽष्ट-सहस्र लक्षण-धरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता।
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-मथनाश्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकः॥
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-र्गीत-प्रणूतार्चितास्।
तान देवान् वृषभादि-वीर-चरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्॥

अन्वयार्थ—(ये) जो (लोके) लोक में (अष्टसहस्रलक्षणधरा) एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं (ज्ञेयार्णवान्तर्गता) जो जीवादिक पदार्थो रूपी महासागर के पारंगत है (ये) जो (सम्यक् हेतु) समीचीन कारण है (भवजालमथना:) संसाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र के नाश करने के लिए (चन्द्र अर्क तेज: अधिका:) चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है, (साधु) गणधर-मुनिगण (इन्द्र) इन्द्र (सुर) देव (अप्सरागणशतै:) तथा सैकड़ों अप्सराओं के समूह से (गीत प्रणूता: ये) जिनकी स्तुति की गई है, नमस्कार किया गया है (अर्चिता:) पूजा की गई है (तान्) उन (वृषभादिवीर चरमान्) वृषभनाथजी को आदि ले अन्तिम महावीर पर्यन्त (देवान्) २४ तीर्थंकर देवों को (अहं) मै (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (नमस्यामि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—इस श्लोक मे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र को भवजाल कहा है तथा उस जाल के नाशक कारण एकमात्र जिनेन्द्रदेव की भक्ति को बताया है। वे देवाधिदेव चौबीस तीर्थकर भगवान् गणधर, इन्द्र, देव आदि के समूह से स्तुत्य, पूजित तथा वन्द्य हैं तथा चन्द्र और सूर्य से भी अधिक कान्तियुक्त है।

नाभेयं देवपूज्यं, जिनवर-मजितं सर्व-लोक-प्रदीपम्।
सर्वज्ञं संभवाख्यं, मुनि-गण-वृषभं नन्दनं देवदेवम्॥

कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वर-कमल-निभं पद्म-पुष्पाभि-गंधम् ।
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं, सकल-शशि-निभं चंद्रनामान-मीडे ।।

अन्वयार्थ—(जिनवरं) जिनों मे श्रेष्ठ (देवपूज्यं) देवों के द्वारा पूज्य (नाभेयं) नाभि राजा के पुत्र/नाभिनन्दन श्री आदिनाथ जिनेन्द्र की। (सर्वलोकप्रदीपं) तीन लोक को प्रकाशित करने के लिये उत्कृष्ट दीप सम श्री (अजितं) अजितनाथ जिनेन्द्र की। (सर्वज्ञं) त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायो को युगपत् जानने वाले श्री (संभव) संभवनाथ जिनेन्द्र। (मुनिगणवृषभं देवदेवं) मुनियों के समूह में श्रेष्ठ, देवाधिदेव (नन्दनं) श्री अभिनन्दन जिनेन्द्र की। (कर्मारिघ्नं) कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने वाले (सुबुद्धिं) श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्र की। (पद्मपुष्प अभिगन्धं) कमल के पुष्प समान जिनके पावन शरीर की सुगंधि है ऐसे (वरकमलनिभं) श्रेष्ठ कमल पुष्प के समान आभायुक्त श्री पद्मप्रभ् जिनेन्द्र की। (क्षांतं) क्षमा/शान्ति/सहिष्णुता गुण युक्त (दान्तं) जितेन्द्रिय (सुपार्श्व) सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र की। (सकलशशिनिभं) पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा की आभा समान (चन्द्रनामानं) चन्द्रप्रभ नाम भगवान् की (ईडे) मै स्तुति करता हूँ।

विख्यातं पुष्पदन्तं, भव-भय-मथनं शीतलं लोक-नाथम् ।
श्रेयांसं शील-कोशं, प्रवर-नर-गुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।।
मुक्तं दान्तेंद्रियाश्वं, विमल-मृषि-पतिं सैंहसेन्यं मुनींद्रम् ।
धर्मं सद्धर्म-केतुं, शम-दम-निलयं स्तौमि शांतिं शरण्यम् ।।

अन्वयार्थ—(विख्यातं) विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त (पुष्पदन्तं) श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्र की/ (भवभयमथनं) संसार के भय का मथन/नाश करने वाले (शीतलं) श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र की/ (सुपूज्यं) सम्यक् प्रकार से सौ इन्द्रों से पूज्य (प्रवरनरगुरुं) श्रेष्ठ या उत्तम मनुष्य-चक्रवर्ती गणधर आदिको के गुरु (मुक्तं) चार घातिया कर्मों से रहित (दान्त इन्द्रिय अश्वं) इन्द्रियरूपी घोड़ो का दमन करने वाले (विमलं) विमलनाथ जिनेन्द्र की। (ऋषिपतिं) ऋद्धिधारी मुनियों के अर्थात् गणधर आदि सप्तर्द्धिधारी मुनियों के स्वामी (मुनीन्द्रं) मुनियों में श्रेष्ठ (सैंह सैन्यं) सिंहसेन राजा के पुत्र श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र की (सत् धर्म केतुं)

समीचीन/श्रेष्ठ रत्नत्रय धर्म की ध्वजा स्वरूप (धर्म) धर्मनाथ जिनेन्द्र की (शमदमनिलयं) शान्ति/साम्यभाव तथा दमन रूप संयम भाव के खजाने (शरण्यं) संसार के दुखो से पीड़ित समस्त जीवो के शरणभूत (शान्तिं) श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र की (स्तौमि) मै स्तुति करता हूँ।

कुन्थुं सिद्धालयस्थं, श्रमण-पतिमरं त्यक्त-भोगेषु चक्रम् ।
मल्लिं विख्यात-गोत्रं, खचर-गण-नुतं सुव्रतं सौख्य-राशिम् ।।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरि-कुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तम् ।
पार्श्वं नागेंद्र-वंद्यं, शरण-मह-मितो वर्धमानं च भक्त्या ।।५।।

अन्वयार्थ—(सिद्धालयस्थं) सिद्धालय मे स्थित (कुन्थुं) कुन्थुनाथ भगवान् की (श्रमणपतिं) मुनियो के अधिपति (त्यक्तभोगेषु चक्रं) त्याग दिया है भोगरूपी बाणो के समूह और हाथ मे आये हुए चक्ररत्न को जिन्होने ऐसे (अर) अरनाथ जिनेन्द्र (कामदेव-चक्री पद के धारी) की। (विख्यातगोत्रं) प्रसिद्ध है इक्ष्वांकु वंश है जिनका ऐसे (मल्लि) मल्लिनाथ भगवान् की / (खचरगणनुतं) विद्याधरो के समूह से नमस्कृत (सौख्यराशिम्) सुख की राशि (सुव्रतं) मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र का। (देवेन्द्रार्च्य) देवेन्द्रो के द्वारा पूजित (नमीशं) नमिनाथ जिनेन्द्र की (भव अन्तं) भव के अन्त को प्राप्त (हरिकुलतिलकं) हरिवंश के तिलक (नेमिचन्द्रं) नेमिनाथ भगवान् की। (नागेन्द्र वन्द्यं) धरणेन्द्र के द्वारा वन्दित, अर्चित (पार्श्व) श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र (च) और (वर्धमानं) वर्धमान जिनेन्द्र की (अहं) मै (भक्त्या) भक्ति से/श्रद्धा से (शरणं) शरणं को (इत) प्राप्त होता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं पंच-महा-कल्लाण-सपण्णाण, अट्ठमहा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणि-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोव-गूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं-उस-हाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं, णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो) चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग (कओ) मैंने किया। (तस्स) तत्संबंधी (आलोचेउं) आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ। (पंचमहाकल्लाण संपण्णाणं) गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान और मोक्ष इन पाँच महाकल्याणक से सम्पन्न (अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं) आठ महाप्रतिहार्यों से युक्त (चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं) ३४ अतिशय विशेषो से युक्त (बत्तीसदेविंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं) बत्तीस देवेन्द्रों के मणिमय मुकुटों से सुशोभित मस्तकों से पूजित (बलदेववासुदेव चक्कहर) बलदेव, वासुदेव चक्रधर/चक्रवर्ती (रिसिमुणिजइअणगार:) ऋषि, मुनि, यति और अनगारों से (अवगूढ) (थुइसयसहस्सणिलयाणं) लाखों स्तुतियों के पात्र/खजाने (उसहाइवीरपच्छिममंगल-महापुरिसाणं) वृषभदेव को आदि लेकर महावीर पर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की (णिच्चकालं) नित्यकाल/हमेशा (अंचेमि) मैं अर्चना करता हूँ, (पूजेमि) पूजा करता हूँ (वंदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ। (दुक्खक्खओ) मेरे दुखों का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) मुझे बोधि का लाभ हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ हो (सुगइगमणं) मेरा सुगति में गमन हो (समाहिमरणं) मेरा समाधिपूर्वक मरण हो (जिन गुणसंपत्ति) जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति (मज्झं) मुझे (होउ) प्राप्त होवे।

भावार्थ— आठ प्रतिहार्य—

भाषा प्रभा वलयविष्टर-पुष्पवृष्टि:
पिण्डिद्रुमस्त्रिदशदुंदुभि-चामराणि।
छत्रत्रयेण सहितानि लसन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रिभुवन प्रभवे जिनाय ।।६।। समवशरण अष्टक।

१. दिव्यध्वनि २. भामंडल ३. सिंहासन ४. पुष्पवृष्टि ५. अशोक-वृक्ष ६. दुंदुभिनाद ७. चंवर और ८. तीन छत्र।

६४ चँवर—बत्तीस नागकुमार युगल भगवान् पर ६४ चँवर ढुराते हैं।

९ बलदेव—विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, अपराजित, नन्दिषेण, नन्दिमित्र, रामचन्द्र और बलदेव।

९ नारायण—त्रिपृष्ट, द्विपृष्टि, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण।

१२ चक्रवर्ती—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त।

३४ अतिशय—

दस होते हैं जन्म के, दस ही केवलज्ञान।
चौदह होते देवकृत, ये चौतीस बखान।

१० अतिशय जन्म के—

नित्यं निःस्वेदत्वं, निर्मलता क्षीर-गौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृति-संहनने, सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम्।।३८।।
अप्रमितवीर्यता च, प्रिय-हित वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।
प्रथिता दश विख्याता, स्वतिशय-धर्मास्स्वयं भुवोदेहस्य।।३९।। नं.भ.।।

१. पसीना रहित शरीर २. निहार रहित शरीर ३. दुग्धवत् सफेद खून ४. समचतुरस्रसंस्थान ५. वज्रवृषभनाराचसंहनन ६. सुन्दर रूप ७. सुगन्धित शरीर ८. शरीर मे १००८ लक्षण ९. अतुलबल और १० हितमित प्रिय वाणी।

१० केवलज्ञान के अतिशय—

गव्यूति-शत चतुष्टय, सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभावश्चतुरास्यत्वं च सर्व विद्येश्वरता।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख केशत्वम्।
स्वतिशय-गुणा भगवतो घाति क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव।।४१।। नं.भ.।।

१. चारो दिशाओ मे १००-१०० योजन सुभिक्ष २. आकाश मे गमन ३. हिंसा का अभाव ४. कवलाहार का अभाव ५. उपसर्ग का अभाव ६. एक मुख चतुर्मुख दिखना ७. सब विद्या का स्वामित्व ८. छाया नही पड़ना ९. पलको का नही झपकना और १० नख और केश का नही बढ़ना।

१४ देवकृत अतिशय—

देवरचित हैं चार दश अर्द्धमागधी भाष,
आपस माँहि मित्रता निर्मल दिश आकाश।

होत फूल फल ऋतु सबै पृथ्वी कांच समान,
चरण कमल तल कमल है नभतै जय-जयवान ।
मन्द सुगन्ध बयार पुनि गन्धोदक की वृष्टि,
भूमि विषै कण्टक नही हर्षमयी सब सृष्टि ।
धर्मचक्र आगे चले मुनि वसु मंगल सार,
अतिशय श्री अरिहंत के ये चौतीस प्रकार ।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव समेतं श्री सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठित-करण-वीर-भक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिः कृत्वा तद्धीनाधिक-दोष-विशुद्ध्यर्थं, आत्म-पवित्री-करणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ) अब (अहम्) मै (सर्व) सब (अतिचार विशुद्ध्यर्थ) अतीचारो की विशुद्धि के लिये (रात्रिक-दैवसिक) रात्रिक-दैवसिक (प्रतिक्रमण क्रियाया) प्रतिक्रमण क्रियाओ मे (कृतदोषनिराकरणार्थ) लगे अपने दोषो को दूर करने के लिये (पूर्व-आचार्य-अनुक्रमेण) पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से (सकल) समस्त (कर्मक्षयार्थ) कर्मो को क्षय करने के लिये (भावपूजावन्दनास्तवसमेतं) भावपूजा, भाववदना व स्तव सहित (श्री सिद्धभक्ति) श्री सिद्धभक्ति को (श्री प्रतिक्रमणभक्ति) श्री प्रतिक्रमण भक्ति (निष्ठितकरण वीर भक्ति) निष्ठितकरण वीरभक्ति को और (चतुर्विशति तीर्थङ्कर भक्ति·) चतुर्विशति तीर्थंकर भक्ति को (कृत्वा) करके (तत्) उनमे होने वाले/तत्सबधी (हीनाधिक) कमी-अधिक रूप (दोषनिराकरणार्थं) दोषो को दूर करने के लिये तथा (आत्मपवित्रीकरणार्थ) आत्मा को पवित्र करने के लिये (समाधिभक्ति) समाधिभक्ति सम्बन्धी (कायोत्सर्ग) कायोत्सर्ग को (करोमि) मै करता हूँ ।

(इति विज्ञाप्य-णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् । थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत्)

इस प्रकार विज्ञापन करके-णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डक को पढ़कर कायोत्सर्ग को करे। थोस्सामी इत्यादि स्तव पढे।

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अर्थ—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्-वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावनाचात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ।।१।।

अन्वयार्थ—(मम) मुझे (यावत्) जब तक (अपवर्ग.) मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक (भवभवे) भव/भव अर्थात् जन्म-जन्म मे (शास्त्र) शास्त्रो का (अभ्यास:) पठन-मनन-चिंतन (जिनपतिनुति:) जिनेन्द्र देव के चरणो को नमस्कार (सर्वदा) हमेशा (आर्यैः) आर्य पुरुष/चारित्रवान्, सज्जन पुरुषो की (संगतिः) संगति (सद्वृत्तानां गुणगणकथा) सच्चारित्र परायण पुरुषो के गुणो की कथा (दोष वादे च) पर के दोष कथन और दूसरो से विवाद मे (मौनं) मौन (सर्वस्यापि) सब जीवो के साथ (प्रिय हितवच:) प्रिय व हितकर वचन (आत्मतत्त्वे) आत्मतत्त्व मे स्वात्मास्वरूप मे (भावना) भावना (एते) इन सब वस्तुओ की (सम्पद्यन्तां) प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे प्रभो ! जब तक मुझे उत्तम मुक्ति पद की प्राप्ति नही हो तब तक इन इष्ट वस्तुओ की प्राप्ति प्रत्येक जन्म मे होती रहे—जिनागम का अभ्यास, पंचपरमेष्ठी नमन, आर्यजन संगति सज्जनो की गुणकथा, दूसरो के दोष व विवाद मे मौन, हित-मित प्रियवचन और आत्मतत्त्व की भावना।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्-यावन्-निर्वाण-सम्प्राप्तिः ।।२।।

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र देव ! (मम) मुझे (यावत्) जब तक (निर्वाणसम्प्राप्ति) मोक्ष सुख की प्राप्ति (न) नही होवे (तावत्) तब तक (तव) आपके (पादौ) दोनो चरण-कमल (मम) मेरे (हृदये) हृदय मे (तिष्ठतु) विराजमान रहे (मम) मेरा (हृदयं) हृदय (तव) आपके (पदद्वये) दोनो चरण-कमलो मे (लीन) लीन रहे।

भावार्थ—हे जिनदेव ! जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक आपके दोनो चरण-कमल मेरे हृदय मे रहे और मेरा हृदय आपके चरणो मे लीन रहे जिससे हमारे मन मे अशुभ विचारो का चिन्तन नही होगा एवं पाप-कर्मो का क्षय होगा।

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं च जं मए भणियम् ।
तं खमउ णाण-देव ! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(णाणदेव !) हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव ! (मए) मेरे द्वारा (जं) जो भी (अक्खरपयत्थहीणम्) अक्षर-पद-अर्थ रहित (च) और (मत्ताहीणं) मात्रा रहित (भणियं) कहा गया (तं) उसको (खमउ) क्षमा कीजिये (य) और (मज्झवि) मेरे भी (दुक्खक्खयं) दु खो का क्षय (कुणउ) कीजिये।

आलोचना

इच्छामि भंते ! समाहि-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्प-झाणलक्खण-समाहि-भत्तीए णिच्च कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि-मरणम्, जिन-गुण-संपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (समाहिभत्ति) मैने समाधिभक्ति का (काउस्सग्गो) कायोत्सर्ग (कओ) किया (तस्स) तत्संबंधी (आलोचेउं) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। मै (रयणत्तयरूव-परमप्पज्झाणलक्खण) रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका ऐसे (समाहिभत्तिम्) समाधिभक्ति की (णिच्चकालं) सदा, हमेशा/नित्यकाल (अंचेमि) अर्चना करता हूँ (पूजेमि) पूजा करता हूँ, (वंदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ, मेरे (दुक्खक्खओ)

दु:खो का क्षय/नाश हो, (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ हो, (सुगइगमणं) सुगति मे गमन हो (समाहिमरणं) सम्यक् प्रकार आधि-व्याधि-उपाधि-रहित समाधिपूर्वक मरण हो (मज्झं) मुझे (जिनगुणसंपत्ति) जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

।। इति रात्रिक दैवसिक प्रतिक्रमण समाप्त ।।

पाक्षिकादिप्रतिक्रमण–विधि

गद्य

[शिष्यसधर्माणः पाकिादिप्रतिक्रमलेष्वीभिः सिद्धश्रुताचार्य भक्तिभिराचार्थंवन्देरन्]

अर्थ— [शिष्य मुनि और साधर्मी मुनि मिलकर पाक्षिक-चातुर्मासिक-वार्षिक आदि प्रतिक्रमणो के प्रारंभ मे लघु सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्तियो द्वारा आचार्यश्री की वन्दना करे।]

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन-सिद्ध-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

[यहाँ वन्दना करते समय प्रातःकाल के समय "नमोस्तु पौर्वाण्हिक तथा सन्ध्याकाल के समय "आपराह्णिक" शब्द का प्रयोग करना चाहिये।]

अर्थ—हे आचार्य देव भगवन्! नमोस्तु/नमस्कार हो, मै आचार्य वन्दना मे प्रारम्भिक प्रतिष्ठापन सिद्धभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करे तथा निम्नलिखित सिद्ध भक्ति पढ़े।

गाथा

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरु-लघु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।

अन्वयार्थ—(सिद्धाणं) सिद्ध परमेष्ठी के (सम्मत) क्षायिक सम्यक्त्व (णाणं) अनन्तज्ञान (दंसण) अनन्त दर्शन (वीरिय) अनन्त वीर्य (सुहुमं) सूक्ष्मत्व (तहेव) तथा (अवगहणं) अवगाहन (अगुरुलघुं) अगुरुलघु (अव्वावाहं) अव्याबाधत्व (अट्ठगुणा) आठगुण (होंति) होते है।

गद्य

तवसिद्धे, णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

अन्वयार्थ—(तव सिद्धे) तप से सिद्ध (णय सिद्धे) नय से सिद्ध (संजमसिद्धे) संयम से सिद्ध (य) और (चरित्तसिद्धे) चारित्र से सिद्ध (णाणम्हिसिद्धे) ज्ञान से सिद्ध (य) तथा (दंसणम्हिसिद्धे) दर्शन से सिद्ध, सब सिद्ध भगवन्तों को (सिरसा) मस्तक से अर्थात् मस्तक झुकाकर (णमस्सामि) मै नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव सिद्धाणं, णय सिद्धाणं, संयम सिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाओ सुगइगमणं समाहि-मरणं जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

[अञ्चलिका का अर्थ पूर्व मे दिया जा चुका है]

गद्य

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन-श्रुत-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (९ जाप्य)

अर्थ—हे आचार्य परमेष्ठी भगवन् ! नमस्कार हो, मै आचार्य वन्दना मे प्रतिठापन श्रुतभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करके ९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य कर निम्नलिखित श्रुतभक्ति का पाठ करें—

कोटी-शतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीति-त्र्यधिकानि चैव।
पंचाश-दष्टौ च सहस्र-संख्य-मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।
अरहंत-भासियत्थं गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुद-णाण-महोवहिं सिरसा।।२।।

अन्वयार्थ—(कोटी शतं) सौ करोड़ (द्वादशचैवकोट्यो) और बारह करोड़ (अशीतिलक्षाणि) अस्सी लाख (च) और (त्रि अधिकानि) तीन लाख अधिक (एव) तथा (पंचाशत् अष्टौ) अट्ठावन (सहस्रसंख्य)

हजार संख्या (च) और (पंचपदं) पाँच मद प्रमाण (एतत्) इस (श्रुतं) श्रुत को (नमामि) मै नमस्कार करता हूँ।

११२ करोड़ ८३ लाख ५८ हजार और ५ पद प्रमाण इस श्रुतज्ञान को मै नमस्कार करता हूँ॥१॥

(अरहंत भासियत्थं) अरहंत देव द्वारा कहा गया (गणहरदेवेहिं गंथिय सम्म) समीचीन रूप से गणधर देवों के द्वारा गूंथित (सुदणाणमहोवहिं) श्रुतज्ञान रूप महासमुद्र को (भत्तिजुत्तो) भक्ति से युक्त हुआ (सिरसा) सिर झुकाकर (पणमामि) मै प्रणाम करता हूँ।

अरहंत देव के द्वारा कथित, गणधर देव द्वारा ग्रंथ रूप से ग्रंथित श्रुतज्ञान रूप महासमुद्र को मै भक्ति पूर्वक सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

इच्छामि भंते ! सुदभत्ति काउस्सगो कओ, तस्सालोचेउं अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं-जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ) श्रुतभक्ति का कायोत्सर्ग किया (तस्स) उसकी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। श्रुतज्ञान के जो (अंग उवंग पइण्णए) अंग-उपाग-प्रकीर्णक (पाहुडय परियम्म सुत्तपढमाणि ओग पुव्वगय चूलिया चेव) प्राभृतक, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका (सुतत्थयथुइ, धम्मकहाइयं) सूत्रार्थ, स्तुति धर्मकथा आदि है, मै उनकी (णिच्चकाल) नित्यकाल हमेशा (अच्चेमि) अर्चना करता हूँ, (पूज्जेमि) पूजा करता हूँ (वंदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (मज्झ) मेरे (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) सब कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो, (सुगइगमणं) सुगति की प्राप्ति हो, (समाहिमरणं) समाधिमरण की प्राप्ति हो और (जिनगुणसंपत्ति) जिनेन्द्र देव के अनन्त गुणो की संपति (होउ) प्राप्त हो।

गद्य

नमोऽस्तु आचार्य वन्दनायां प्रतिष्ठापनाचार्य भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।(९ जाप्य)

हे आचार्य परमेष्ठी भगवन् ! नमस्कार हो, मैं आचार्य वन्दना में प्रतिष्ठापन आचार्य भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को करता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करके ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप्यकर निम्नलिखित आचार्यभक्ति का पाठ करें।

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः ।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ।।१।।

अन्वयार्थ— जो (श्रुतजलधि) श्रुत रूप समुद्र के (पारगेभ्यः) पारगामी/पारंगत (स्वपरमत-विभावना) स्वमत और परमत के विचार करने में (पटुमतिभ्यः) निपुण बुद्धि वाले है (सुचरिततपोनिधिभ्यो) सम्यक् चारित्र और तप के खजाने हैं (गुणगुरुभ्यः) गुणों में महान् है (गुरुभ्यो) ऐसे गुरुजनों के लिये (नमः) नमस्कार हो।

छत्तीस-गुण-समग्गे पंच-विहाचार-करण संदरिसे ।
सिस्साणुग्गह-कुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ।।२।।

अन्वयार्थ—(छत्तीसगुणसमग्गे) जो छत्तीस गुणों से पूर्ण हैं (पंचविहाचारकरणसंदरिसे) पाँच प्रकार के आचार को पालन करने वाले है (सिस्साणुग्गहकुसले) शिष्यों के अनुग्रह करने में कुशल (धम्म) जिनधर्म के (आइरिये) आचार्य/धर्माचार्य की (सदा) सदा (वन्दे) मै वन्दना करता हूँ

गुरु-भत्ति संजमेण य तरंति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ।।३।।

अन्वयार्थ—(गुरुभत्ति) गुरुभक्ति (संजमेण य) और संयम से (घोरं) घोर (संसरसायरं) संसार सागर से (तरन्ति) तिर जाते है (अट्ठकम्मं) अष्टकर्मों को (छिण्णंति) छेद देते है (य) और (जम्मं मरणं ण पावेंति) जन्म-मरण को प्राप्त नही होते हैं।

ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा कुला: ।
षट्-कर्माभि-रतास्तपो-धन-धना: साधु क्रिया: साधव: ।।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका ।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटा: प्रीणंतु मां साधव: ।।४।।

अन्वयार्थ—(ये) जो (नित्यं) प्रतिदिन (व्रत मन्त्र-होम-निरता) व्रत, मन्त्र, रूप, होम मे निरत है, (ध्यान) ध्यानरूपी (अग्निहोत्राकुल) अग्नि मे शीघ्र हवन करने वाले है (षट्कर्माभिरता:) षट् आवश्यक क्रियाओ मे लीन है (तपोधनधना:) तपरूपी धन ही जिनका धन है (साधु क्रियासाधव:) साधु की क्रियाओ को साधने वाले है (शीलप्रावरणा) अठारह हजार शील ही जिनके ओढ़ने का वस्त्र है (गुणप्रहरणा:) चौरासी लाख गुण ही जिनके पास शस्त्र है (चन्द्र अर्क तेज: अधिका:) चन्द्र और सूर्य के तेज से भी जिनका तेज अधिक है (मोक्षद्वार कपाट) मुक्ति महल के द्वार को (पाटनभटा:) उद्घाटन/खोलने मे जो भट है/योद्धा है (साधव:) ऐसे साधुजन (मां) मुझ पर (प्रीणन्तु) प्रसन्न हो।

गुरव: पान्तु नो नित्यं ज्ञानं-दर्शन-नायका: ।
चारित्रार्णव-गंभीरा मोक्ष-मार्गोपदेशका: ।।५।।

अन्वयार्थ—(ज्ञानदर्शननायका:) ज्ञान व दर्शन के स्वामी (चारित्र आर्णव गंभीरा:) चारित्ररूपी सागर के धनी, गंभीर (मोक्षमार्ग) मोक्षमार्ग के (उपदेशका:) उपदेशक (गुरव·) गुरुजन/गुरुदेव (नित्यं) नित्य ही (नो) हमारी (पांतु) रक्षा करे।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त जुत्ताणं पंच विहाचाराणं आइरियाणं आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं; ति-रयण-गुण-पालण रयाणं सव्वसाहूणं; णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! मैने (आयरियभत्ति काउस्सग्गो

कओ) आचार्य भक्ति सम्बंधी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचउं इच्छामि) तत्संबंधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ (सम्मणाण) सम्यक् ज्ञान (सम्मदंसण) सम्यक् दर्शन (सम्मचरित्त जुत्ताणं) सम्यक् चारित्र से युक्त (पचविहाचाराण) पाँच प्रकार के आचार दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार के पालक (आयरियाण) आचार्य परमेष्ठी (आयारादिसुदणाणोवदेसयाण) आचारांग आदि द्वादशांग श्रुत ज्ञान के उपदेशक (उवज्झायाणं) उपाध्याय परमेष्ठी (तिरयणगुणपालणरयाणं) तीन रत्न—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूप गुणो के पालन करने मे रत (सव्वसाहूणं) सर्व साधु परमेष्ठी की मै (णिच्चकाल) प्रतिदिन हमेशा (अच्चेमि) अर्चा करता हूँ, (पुज्जेमि) पूजा करता हूँ (वंदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रयरूप बोधि का लाभ हो (सुगइ-गमणं) उत्तम, अच्छी गति मे गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (मज्झं) मुझे (जिनगुणसंपत्ति) जिनेन्द्रगुण रुप संपत्ति की (होउ) प्राप्ति हो।

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूत-कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्-विद्या दर्पणायते ।।१।।

अन्वयार्थ—जिन्होने (आत्मने) आत्मा से (कलिलनिर्धूत) पाप मल को जड़ से धो डाला है। नष्ट कर दिया है, (यद्) जिनका (विद्या) ज्ञान (स अलोकानां) अलोक सहित (त्रिलोकानां) तीनो लोको को (दर्पणायते) दर्पण के समान आचरण करता है ऐसे (श्री वर्धमानाय) अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी वर्धमानजिनेन्द्र के लिये (नमः) नमस्कार हो।

समता सर्व-भूतेषु संयमः शुभ-भावना।
आर्त्त-रौद्र-परित्याग-स्तद्धि सामायिक मतं ।।२।।

अन्वयार्थ—(सर्वभूतेषु) सब जीवो मे (समता) समता भाव धारण करना (संयमे शुभभावना) संयम मे शुभभावना होना (आर्त्तरौद्रपरित्याग) आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान का पूर्ण त्याग करना (तद्) वह (हि) निश्चय से (सामायियं) सामायिकं (मतम) माना गया है।

अथ सर्वातिचार विशुद्धयर्थं (पाक्षिक) (चातुर्मासिक) (वार्षिक)

प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रिया मे किये गये दोषो का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मो के क्षय के लिये भाव पूजा वन्दना स्तव सहित सिद्ध भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

णमो अरहंताणं ... इत्यादि सामायिक दंडक को पढ़कर कायोत्सर्ग करे पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि स्तुति पढ़कर सिद्धभक्ति का पाठ करे।.

सिद्धभक्ति

सिद्धा-नुद्धूत-कर्म-प्रकृति-समुदयान् साधितात्म-स्वभावान्।
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्ध्यै, तदनुपम-गुण-प्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्।
योग्योपादान-युक्त्या दृषद् इह यथा हेम-भावोपलब्धिः ।।१।।
नाभावः सिद्धि-रिष्टा न निज-गुण-हतिस्तत्-तपोभि-र्न युक्तेः।
अस्त्यात्मानादि-बद्धः स्व-कृतज-फल-भुक्-तत्-क्षयान् मोक्षभागी।।
ज्ञातादृष्टा स्वदेह-प्रमिति-रुपसमाहार-विस्तार-धर्मा।
ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा स्व-गुण-युत-इतो नान्यथा साध्य-सिद्धिः ।।२।।
स त्वन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-
संपद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरित-तया व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः।
कैवल्यज्ञान-दृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य सम्यक्त्व-लब्धि-
ज्योंति-र्वातायनादि-स्थिर-परम-गुणै-रद्भुतै-र्भासमानः ।।३।।
जानन् पश्यन् समस्तं सम-मनुपरतं संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं निचित-मनुपमं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनासौ क्षण-मुपजनयन्-सत्-स्वयंभूः प्रवृत्तः ।।४।।
छिन्दन् शेषानशेषान्-निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरु-लघुक-गुणैः क्षायिकैः शोभमानः।

अन्यै-ज्ञान्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्वं-व्रज्या-स्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रे ।।५।।
अन्याकाराप्ति-हेतु-र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः,
प्रागात्मोपात्त-देह-प्रति-कृति-रुचिराकार एव ह्यमूर्तः ।
क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह,
व्यापत्त्याद्युग्र-दुःख-प्रभव-भव-हतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ।।६।।
आत्मोपादान-सिद्धं स्वय-मतिशय-वद्-वीत बाधं विशालम्,
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं विषय-विरहितं निःप्रतिद्वन्द्व-भावम् ।
अन्य-द्रव्यानपेक्षं निरुपम-ममितं शाश्वतं सर्वकालम्,
उत्कृष्टानन्त-सारं परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ।।७।।
नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद् विविध-रस-युतै-अन्न-पानै-रशुच्या,
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-र्नहि मृदु-शयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावत् ।
आतंकार्ते-रभावे तदुपशमन- सद्भेषजानर्थ तावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगत- तिमिरे दृश्यमाने समस्ते ।।८।।
तादृक्-सम्पत्समेता विविध-नय-तपः संयम-ज्ञान-दृष्टि-
चर्या-सिद्धाः समन्तात् प्रवितत-यशसो विश्व-देवाधि देवाः ।
भूता भव्या भवन्तः सकल-जगति ये स्तूयमाना विशिष्टै,
स्तान् सर्वान नौम्यनन्तान् निजिग-मिषु-ररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।९।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं सम्मणाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं अतीता-णागद-वट्टमाण-कालत्तय सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं ।

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं आलोचना चारित्र भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये आलोचना रूप चारित्र भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

णमो अरहताण आदि सम्पूर्ण दण्डक पाठ को पढकर ९ बार णमोकार मत्र का जाप्य करे थोस्सामि आदि स्तव पढकर चारित्रभक्ति का पाठ करे-

श्री चारित्रभक्ति

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्-केयूर-हारांगदान्,
भास्वन्-मौलि-मणि-प्रभा-प्रविसरोत्-तुंगोत्तमांगान्-नतान्।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनय-श्चक्रुः प्रकामं सदा,
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम्।।१।।

ज्ञानाचार का स्वरूप

अर्थ-व्यञ्जन-तद्-द्वया-विकलता-कालोपधा-प्रश्रयाः,
स्वाचार्याद्यनह्नवो बहु-मति-श्चेत्यष्टधा व्याहृतम्।
श्री-मज्ज्ञाति कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम्।।२।।

दर्शनाचार का स्वरूप

शंका-दृष्टि-विमोह-काङ्क्षण-विधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धताम्,
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम्।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनम्,
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात्।।३।।

तप-आचार (बाह्यतप) का स्वरूप

एकान्ते शयनोपवेशन कृतिः संतापनं तानवम्,
संख्या-वृत्ति-निबन्धना मनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्,
षोढा बाह्य-महं स्तुवे शिव-गति प्राप्त्यभ्युपायं तपः।।४।।

अन्तरंग तपों का वर्णन

स्वाध्यायः शुभ-कर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम्,
ध्यानं व्यापृति-रामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।

कायोत्सर्जन-सत्-क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्-विधम्,
वन्देऽभ्यन्तर-मन्तरंग बल-वद्-विद्वेषि विध्वंसनम् ।।५।।

वीर्याचार का वर्णन

सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्-मते,
वीर्यस्यावि निगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।
या वृत्ति-स्तरणीव-नौ-रविवरा लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचार-महं तमूर्जित-गुणं वन्दे सता-मर्चितम् ।।६।।

चारित्राचार का वर्णन

तिस्रः सत्तम-गुप्तय-स्तनु-मनो-भाषा निमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्च-व्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयो-दश-तयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपते-र्वीरं नमामो वयम् ।।७।।

पञ्चाचार पालनेवाले मुनिराजों की वन्दना

आचारं सह-पञ्च-भेद-मुदितं तीर्थं परं मंगलम्,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो वन्दे समग्रान् यतीन् ।
आत्माधीन-सुखोदया-मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनीम्,
इच्छन् केवल-दर्शनावगमन प्राज्य प्रकाशोज्ज्वलाम् ।।८।।

चारित्र पालन में दोषों की आलोचना

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमितोऽवर्तिष्यहं चान्यथा,
तस्मिन्-नर्जित-मस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति ।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतम्,
तन् मिथ्या गुरु-दुष्कृतं भवतु मे स्वं निन्दितो निंदितम् ।।९।।

चारित्र धारण करने का उपदेश

संसार-व्यसना हति-प्रचलिता नित्योदय-प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः शान्तैनसः प्राणिनः ।
मोक्षस्यैव कृतं विशाल-मतुलं सोपान-मुच्चै-स्तराम्,
आरोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं जैनेन्द्र-मोजस्विनः ।।१०।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चारित्त-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-जोयस्स, सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्व-पहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्म-णिज्जर-फलस्स, खमा-हारस्स, पंच-महव्वय-संपण्णस्स, तिगुत्ति-गुत्तस्स, पंच-समिदि-जुत्तस्स, णाण-ज्झाण-साहणस्स, समया इव पवेसयस्स, सम्मचारित्तस्स, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं।

वृहद् आलोचना

विशेष— [श्री गौतमस्वामी मुनियो के दुष्षमकाल मे दुष्ट परिणामो से प्रतिदिन होने वाले व्रतो मे दोषो की आलोचना या अतिचारो की विशुद्धि के लिये दिनो की गणनापूर्वक आलोचना लक्षण उपाय को बताते हुए लिखते है।]

[इच्छामि भंते! अट्ठमियम्मि आलोचेउं, अट्ठण्हं दिवसाणं, अट्ठण्हं राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो वीरियायारो, चारित्तायारो चेदि ।।१।।]

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! (णाणायारो) ज्ञानाचार (दंसणायारो) दर्शनाचार (वीरियायारो) वीर्याचार (तवायारो) तपाचार (च) और (चरित्तायारो) चारित्राचार (इदि) इस प्रकार (आयारो पंचविहो) पाँच प्रकार का आचार है (अट्ठण्हं दिवसाणं) आठ दिन और (अट्ठण्हं राईणं) आठ रात्रि के (अब्भंतरओ) भीतर (अट्ठमियम्मि) आठ दिनों मे ज्ञानाचार आदि मे जो अतिचार लगा है, तत्संबंधी (आलोचेउं) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ।

[इच्छामि भंते! पक्खियम्मि आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्हं राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।।२।।]

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् (पक्खियम्मि) पाक्षिक अर्थात् १५

दिन मे (पण्णरसण्ह दिवसाणं) १५ दिनो (पण्णरसण्हं राईणं) १५ रात्रि के (अब्भंतराओ) भीतर (णाणायारो) ज्ञानाचार (दंसणायारो) दर्शनाचार (चरित्तायारो) चरित्राचार (तवायारो) तपाचार (वीरियायारो) वीर्याचार (इदि) इस प्रकार (पंचविहो आयारो) पाँच प्रकार के आचार मे जो (च) और अतिचार लगा हो तत्संबंधी (आलोचेउं) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ।

[इच्छामि भंते ! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाणं, वीसुत्तर-सयदिवसाणं, वीसुत्तर-सय-राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।।३।।]

अर्थ—(भंते) हे भगवन् ! (चउमासयम्मि) चातुर्मास मे (चउण्हं मासाणं) चार माह मे (अट्ठण्हं पक्खाणं) आठ पक्षो मे (विसुत्तरसय-दिवसाणं) १२० दिनो के (वीसुत्तरसयराइणं) एक सौ बीस रात्रियो के (अब्भंतराओ) भीतर (णाणायारो) ज्ञानाचार (दंसणायारो) दर्शनाचार (तवायारो) तपाचार (चरित्तायारो) चारित्राचार (च) और (वीरियायारो) वीर्याचार (इदि) इस प्रकार (पंचविहोआयारो) पॉच प्रकार के आचार मे अतिचार लगा हो तत्संबंधी (आलोचेउं) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ।

[इच्छामि भंते ! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं-छावट्ठिसय-दिवसाणं, तिण्हं-छावट्ठि-सय-राइणं अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ।।४।।]

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (संवच्छरियम्मि) एक वर्ष मे (वारसण्हं मासाणं) बारह मास मे (चउवीसण्हं पक्खाणं) चौवीस पक्ष मे (तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं) तीन सौ छ्यासठ दिन मे (तिण्हं छावट्ठिसयराइणं) तीन सौ छयासठ रात्रि के (अब्भंतराओ) भीतर (णाणायारो) ज्ञानाचार (दंसणायारो) दर्शनाचार (चारित्तायारो) चारित्राचार (तवायारो) तपाचार (च) और (वीरियायारो) वीर्याचार (पंचविहो

आयारो) पॉच प्रकार के आचार मे जो अतिचार आदि दोष लगा हो, तस्सबंधी (आलोचेउं) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ।

तत्थ णाणायारो अट्ठविहो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि। णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खर-हीणं वा, सर-हीणं वा, विंजण-हीणं वा, पद हीणं वा, अत्थ-हीणं वा, गंथ-हीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोग-द्दारेसु वा, अकाले-सज्झाओ, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिदं वा, मिच्छा-मेलिदं वा, आ-मेलिदं, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्हं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन पॉच प्रकार के आचारो मे पहला (णाणायारो) ज्ञानाचार (अट्ठविहो) आठ प्रकार का है—(काले) कालाचार (विणये) विनयाचार (उवहाणे) उपधानाचार (बहुमाणे) बहुमानाचार (तहेव) तथा (अण्णिण्हवणे) अनिह्नवाचार (विंजण) व्यञ्जनाचार (अत्थ) अर्थाचार (च) और (तदुभये) उभयाचार (इदि) इस प्रकार है। (तत्थ) उस (अट्ठविहो णाणायारो) आठ प्रकार के ज्ञानाचार का (थएसु) तीर्थकर, पञ्चपरमेष्ठी या नव देवताओ के गुणो का वर्णन करने वाले स्तवनो मे (वा) अथवा (थुईसु) तीर्थकर पंचपरमेष्ठी आदि गुणो का वर्णन करने वाली स्तुतियो मे (वा) अथवा (अत्थक्खाणेसु) चारित्र और पुराणो रूप अर्थाख्यानो मे वा प्रथमानुयोग,करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगो मे (वा) अथवा (अणियोगेसु) अनुयोगो मे (वा) अथवा (अणियोगद्दारेसु) कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारो मे (अक्खरहीणं) अक्षरहीन (वा) अथवा (सरहीणं) स्वरहीन (वा) अथवा (पदहीणं) सुबन्ततिङन्त से रहित (विंजणहीणं) व्यंजन हीन [ककारादि व्यञ्जनहीन] (अत्थहीणं) अर्थहीन वाक्य, अधिकाररहित अथवा (गंन्थहीण) ग्रंथहीन (वा) अथवा (अकाले) अकाल मे उल्कापात संध्या काल आदि मे (सज्झाओ) स्वाध्याय (कदो) किया हो (वा) अथवा (कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो

समणुमण्णिदो) करते हुए की अनुमोदना की हो (वा) अथवा (काले) काल में आगम का स्वाध्याय किया हो, (परिहाविदो) आगम मे कथित गोसर्गिकादि काल में स्वाध्याय नहीं किया हो (अच्छाकारिदं) श्रुत का जल्दी-जल्दी उच्चारण किया हो (मिच्छामेलिदं) किसी अक्षर या शब्द को किसी अक्षर या शब्द के साथ मिलाया हो (वा) अथवा (आमलिदं) शास्त्र के अन्य अवयव को किसी अन्य अवयव के साथ जोड़ा हो (मेलिदं) उच्चध्वनि युक्त पाठ को नीच ध्वनि युक्त पाठ के साथ, नीच ध्वनियुक्त पाठ को उच्च ध्वनि युक्त पाठ के साथ जोड़कर पढ़ा हो (अण्णहादिण्णं) अन्यथा कहा हो (अण्णहापडिच्छदं) अन्यथा ग्रहण किया (आवासएसु परिहीणदाए) छह आवश्यक क्रियाओ में परिहीनता/कमी करके ज्ञानाचार का परिहापन किया हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों।

दंसणायारो अट्ठविहो

णिस्संकिय णिकंक्खिय णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठीय ।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल-पहावणा चेदि ।।१।।

दंसणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्ण-दिट्ठी-पसंसणाए, परपाखंड-पसंसणाए, अणायदण-सेवणाए, अवच्छल्लदाए, अपहावणाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२।।

अर्थ—दर्शनाचार के निम्न आठ भेद हैं—(णिस्संकिय) नि:शंकित (णिकंक्खिय) नि:कांक्षित (णिव्विदिगिंछो) निर्विचिकित्सा (अमूढदिट्ठीय) अमूढदृष्टि (उवगूहण) उपगूहन (ठिदिकरणं) स्थितिकरण (बच्छल्ल) वात्सल्य (च) और (पहावणा) प्रभावना (इदि) इस प्रकार।

अन्वयार्थ—(दंसणायारो अट्ठविहो) आठ प्रकार के दर्शनाचार के विपरीत आठ दोष हैं—(संकाए) शंका से (कंखाए) कांक्षा से (विदिगिछाए) विचिकित्सा से (अण्णदिट्ठि पसंसणदाए) अन्यदृष्टि प्रशंसा से (परपाखंडपसंसणदाए) पर पाखंडियों की प्रशंसा से (अणायदणसेवणदाए) छह अनायतनों की सेवा से (अवच्छल्लदाए) साधर्मीजनों में प्रीति न करने रूप अवात्सल्य से (अप्पहावणदाए) पूजा,

दान, व्रत, उपवास आदि के द्वारा जिनशासन का माहात्म्य प्रकट न करके अप्रभावना से दर्शनाचार के परिहापन संबंधी जो दोष लगा हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरा (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो अर्थात् दर्शनाचार को दूषित करने वाले मेरे सभी पाप मिथ्या हो।

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो-छव्विहो, बाहिरो-छव्विहो चेदि। तत्थ बाहिरो अणसणं, आमोदरियं, वित्ति-परिसंखा, रस-परिच्चाओ, सरीर-परिच्चाओ, विवित्त-सयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं, विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं-तवोकम्मं, ण कदं, णिसण्णोण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

अन्वयार्थ—(बारसविहो तवायारो) बारह प्रकार का तपाचार है (अब्भंतरो छव्विहो) छह प्रकार का आभ्यंतर तप (च) और (छव्विहो) छह प्रकार का (बाहिरो) बाह्य तप (तत्थ) उसमे (बाहिरो अणसणं) बाह्य-अनशन (अमोदरियं) अवमौदर्य, (वित्तिपरिसंख्या) वृत्तिपरिसंख्यान (रस-परिच्चाओ) रस परित्याग (सरीरपरिच्चाओ) कायक्लेश (च) और (विवित्तसयणासण) विविक्त शयनासन (इदि) इस प्रकार (तत्थ अब्भंतरो) तथा आभ्यंतर तप (पायच्छित्तं) प्रायश्चित्त (विणओ) विनय (वेज्जावच्चं) वैय्यावृत्त (सज्झाओ) स्वाध्याय (झाणं) ध्यान (च) और (विउस्सग्गो) व्युत्सर्ग (इदि) इस प्रकार। (अब्भंतरं-बाहिरं) बाह्य और अभ्यंतर (बारसविहं) बारह प्रकार का (तवोकम्मं) तप·कर्म (णिसण्णेण पडिक्कंत) परीषह आदि के द्वारा पीड़ित होने से छोड़ दिया हो (ण कदं) नही किया हो (तस्स) उस बारह प्रकार के तप के परिहापन संबंधी (दुक्कडं मे) मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वर-वीरिय-परिक्कमेण, जहुत्त-माणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण णिगूहियं, तवो-कम्मं, ण कदं, णिसण्णोण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

अन्वयार्थ—(वीरियायारो) वीर्याचार (पंचविहो) पाँच प्रकार का

है (वर वीरिय परिक्कमेण) वरवीर्य परिक्रम (जहुत्तमाणेण) यथोक्तमान (बलेण) बल (वीरियेण) वीर्य और (परिक्कमेण) परिक्रम/पराक्रम। (तवोकम्मं) इस पाँच प्रकार तप कर्म का अनुष्ठान करते हुए (निगूहियं) तप करने के योग्य वीर्य को छिपाया हो (ण कदं) नही किया हो (णिसण्णेण पडिक्कंतं) परीषह आदि से पीड़ित हो उस तप कर्म को छोड़ दिया हो (परिहाविदो) पूर्ण अनुष्ठान नही किया हो (तस्स) उस वीर्याचार के परिहापन संबंधी (मे दुक्कडं) मेरे दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हो।

पाँच प्रकार के वीर्याचार का परिहापन रूप यह आलोचना है। तपश्चरण करने मे सामर्थ्य प्रकट करना वीर्याचार है, सामर्थ्य को छिपा लेना परिहापन है।

पाँच प्रकार का वीर्याचार—१. वरवीर्यपराक्रम–वीर्य के पराक्रम उत्साह को वीर्यपराक्रम है, उत्कृष्ट वीर्य का पराक्रम वरवीर्यपराक्रम है, इस श्रेष्ठ वीर्यपराक्रम से अनशनादि तप करना चाहिये।

२. **यथोक्तमान**–आगम कथित परिमाण से तप करना यथोक्तमान वीर्य है। जैसे आगम मे सिक्थग्रास या चन्द्रायणव्रत की विधि जिस परिमाण से कही है उसी परिमाण से करना अथवा कायोत्सर्ग करने की विधि जिस क्रिया मे जहाँ जिस प्रकार कही गई है वहाँ उसी प्रकार ९ या ३६ बार आदि णमोकार मंत्र का विधिवत् जाप करके तप करना चाहिये।

३. **बलेन**–काल, आहार, क्षेत्र, आदि देखकर शारीरिक बल के सामर्थ्य अनुसार तप करना बलवीर्य है।

४. **वीर्य**–स्वाभाविक सहज सामर्थ्य अनुसार तप करना। अर्थात् आत्मशक्ति अनुसार तप करना।

५. **पराक्रम**–आगम मे कहे गये क्रमानुसार उत्कृष्ट तप करना पराक्रम है अथवा परा=उत्कृष्ट, क्रम=क्रम कहा गया है जैसे–मूलगुणो का अनुष्ठान करने वालो को उत्कृष्ट गुणो का अनुष्ठान करना चाहिये विपरीत नही इसका नाम पराक्रमवीर्य है।

चारित्राचार तथा प्रथम अहिंसा महाव्रत के दोषों की आलोचना

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो पंच-महव्वदाणि, पंच-समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेऊ-काईया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया जीवा असंखेज्जा संखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(पंचमहव्वयाणि) पाँच महाव्रत (पंच समिदीओ) पाँच समिति (च) और (तिगुत्तीओ) तीन गुप्ति (इदि) इस प्रकार (तेरसविहो) तेरह प्रकार का (चारितायारो) चारित्राचार है (तस्स) उस चारित्राचार का किसी भी कारण (परिहाविदो) खडन हुआ हो या उसमे दोष लगा हो तो (मे) मेरा (दुक्कडं) पाप (मिच्छा) मिथ्या हो। मेरे दुष्कृत मिथ्या हो।

[शेष अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखे]

बे-इंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि, किमि, संख, खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठय-गण्डवाल, संबुक्क, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

ते-इंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थुद्देहियविंच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

चउरिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंस-मसस-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पंचिंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु एदसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

[इन सबका अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखे]

द्वितीय सत्य महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, राएण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भयेण वा, पदोसेण वा, पमादेण, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण-वि-कारणेण जादेण वा, सव्वो मुसावादो भासिओ, भासाविओ, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२।।

अन्वयार्थ—(आहावरे) जब अन्य (दुव्वे) दूसरे (महव्वदे) महाव्रत में (मुसावादादो वेरमणं) मृषावाद/असत्य भाषण का त्याग करता हूँ (से) वह असत्यभाषण (कोहेण वा) क्रोध से अथवा (माणेण वा) मान से अथवा (मयाए वा) माया से अथवा (लोहेण वा) लोभ से अथवा (राएण वा) राग से अथवा (दोसेण वा) द्वेष से अथवा (मोहेण वा) मोह से अथवा (हस्सेण वा) हास्य से अथवा (भएण वा) भय से या (पदोसेण वा) प्रदोष से या (पमादेण वा) प्रमाद से या (पेम्मेण वा) प्रेम/स्नेह से या (पिवासेण वा) पिपासा से या (लज्जेण वा) लज्जा से या (गारवेण वा) गारव से (अणादरेण वा) अनादर से या (महत्वाकांक्षा) से या (केण वि कारणेण) किसी भी कारण से (जादेण वा) उत्पन्न होने पर अथवा (मुसावादादो) असत्य भाषण (भासिओ) बोला हो (भासाविओ) बुलवाया हो (भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो) असत्य भाषण बोलने वालों की अनुमोदना भी की हो (तस्स) तो तत्संबन्धी (मे सव्वो) मेरे सभी (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों ।।२।।

तीसरे अचौर्यमहाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे तव्वे महव्वदे अदिण्णा-दाणादो वेरमणं से गामे वा, णयरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मडंबे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा,

घोसे वा, आसमे वा, सहाए वा, संवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिण्हं वा, कट्ठं वा, वियडिं वा, मणिं वा, एवमाइयं अदिण्णं गिण्हियं, गेण्हावियं, गेण्हिज्जंते वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

अन्वयार्थ—(आहावरे) अब अन्य (दितिये) तीसरे (अदिण्ण-दाणादो) अदत्तादान से (वेरमणं) विरक्त होता हूँ अर्थात् तीसरे महाव्रत में उस (महव्वदे) महाव्रत में वस्तु के स्वामी या किसी के द्वारा नहीं दी गई वस्तु का ग्रहण करने से विरक्त होना चाहिये । (से) वह अदत्तादान (गामे वा) ग्राम में या (णसरे वा) नगर में या (खेडे वा) खेट में या (कव्वडे वा) कर्वट मे या (मडंवे वा) मटंब मे या (मंडले वा) मंडल में या (पट्टणे वा) पत्तन में या (दोणमुहे वा) द्रोणमुखे या (घोसे वा) घोस में या (आसमे) आश्रम में या (सहाए वा) सभा में या (संवाहे वा) संवाह में या (सण्णिवेसे वा) सन्निवेश में (तिण्हं वा) तृण ग्रहण में या (कट्ठ वा) काठ के ग्रहण में हुआ हो या (वियडिं वा) विकृति में हुआ हो (मणि वा) मणि आदि के ग्रहण में हुआ हो (एवमाइयं) इस प्रकार (अदत्त गिण्हियं) बिना दी गई वस्तु को ग्रहण किया हो (गेण्हावियं) ग्रहण कराया हो (गेण्हिज्जंते समणुमण्णिदो) ग्रहण करते हुए की अनुमोदना की हो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों ।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं से देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तेरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, मणुण्णा मणुण्णेसु रूवेसु, मणुण्णा मणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु, मणुण्णा मणुण्णेसु रसेसु, मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु, चक्खिंदिय-परिणामे, सोदिंदिय-परिणामे, घाणिंदिय-परिणामे, जिब्भिंदिय परिणामे, फासिंदिय परिणामे, णो-इंदिय-परिणामे, अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण, णवविहं बंभचरियं, ण रक्खियं, ण रक्खावियं, ण रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

अन्वयार्थ—(अहावरे) अब अन्य (चउत्थे) चौथे (महव्वदे) महाव्रत मे (मेहुणादो) मैथुन से (वेरमणं) विरक्त होना चाहिये (से)

उस ब्रह्मचर्य महाव्रत में (देविएसु वा) देवियों या (तेरिच्छिएसु वा) तिर्यंचनियों के या (अचेयणिएसु वा) अचेतनस्त्रियों के या (मणुण्णा मणुण्णेसु) मनोज्ञ अमनोज्ञ (रूवेसु) रूपों में (मणुणामणुणेसु सद्देसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में, (मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ गंधों में (मणुण्णा मणुण्णेसु रसेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में (मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्श में (चक्खिदिय-परिणामे) चक्षु इन्द्रिय के परिणाम में (सोदिंदियपरिणामे) श्रोत्रेन्द्रिय परिणाम मे (घाणिंदियपरिणामे) घ्राण इन्द्रिय के परिणाम में (जिब्भिंदियपरिणामे) जिह्व इन्द्रिय के परिणाम में (फासिंदिय परिणामे) स्पर्शन इन्द्रिय के परिणाम मे (णो इंदिय परिणामे) नो इंद्रिय (मन) के परिणाम में (अगुत्तेण) मन-वचन काय का संवरण न कर और (अगुत्तिंदिएण) इन्द्रियों को वश में न रखकर मैंने जो (णवविहं बंभचरियं) नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की (ण रक्खियं) रक्षा नही की हो (ण रक्खावियं) न रक्षा कराई हो और (ण रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो) न रक्षा करने वालों की सम्यक् प्रकार अनुमोदना की हो (तस्स) उस नव प्रकार के ब्रह्मचर्य के रक्षण संबंधी (मे) मेरा (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

अपरिग्रह महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं सो वि परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं, दंसणावरणीयं, वेयणीयं, मोहणीयं, आउग्गं, णामं गोदं, अंतरायं चेदि अट्ठविहो। तत्थ बाहिरो परिग्गहो-उवयरण-भंड-फलह-पीढ-कमण्डलु-संथार-सेज्ज-उवसेज्ज, भत्तपाणादि-भेदेण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं बद्धावियं, बज्झन्तं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

अन्वयार्थ—(अहावरे) अब अन्य (पंचमे महव्वदे) पाँचवें परिग्रह त्याग महाव्रत में (परिग्गहादो) परिग्रह से (वेरमणं) विरक्त, विरमण करना चाहिये। (सो) वह (परिग्गहो) परिग्रह (वि) भी (दुविहो) दो प्रकार का है (अब्भंतरो) आभ्यंतर (च) और (बाहिरो) बाह्य (इदि) इस प्रकार। (तत्थ) उस दो प्रकार के परिग्रह के मध्य (अब्भंतरो परिग्गहो)

आभ्यंतर परिग्रह (णाणावरणीयं) ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणी (दंसणावरणीयं) दर्शन का आवरण करने वाला दर्शनावरणीय है (वेयणीयं) सुख-दुख का वेदन कराने वाला वेदनीय है, (मोहणीयं) मोहित करने वाला कर्म मोहनीय है, (आउग्गं) नरक-तिर्यच आदि भवो को प्राप्त कराने वाला आयु कर्म (णामं) जो आत्मा को नमाता है वह नाम कर्म है (गोदं) उच्च-नीच कुल मे उत्पन्न करने वाला गोत्र कर्म है (च) और (अंतरायं) दाता और पात्र के बीच मे आ जाता है वह अन्तराय कर्म है (इदि) इस प्रकार (अट्ठविहो) आठ प्रकार (तत्थ) उन दोनों परिग्रहो के मध्य मे (बाहिरो परिग्गहो) बाह्य परिग्रह (उवयरण) उपकरण-उपकरण दो प्रकार के है-ज्ञानोपकरण और संयमोपकरण। ज्ञानोपकरण पुस्तकादि और संयमोपकरण पिच्छिका आदि। (भंड) भाजन-औषध, तैल आदि द्रव्य के भाजन, (फलह) फलक-सोने के लिये पाय रहित फड काष्ठ, आदि, (पीढ) बैठने का पाटा, चौकी आदि, (कमण्डलु) कमण्डलु (संथार) काष्ठ तृण आदि का संस्तर (सेज्ज उवसेज्ज) शय्या वसतिका, उपशय्या देवकुलिका आदि (भत्तपाणादि) चावल आदि भोजन तथा दूध, छाछ आदि पेय पदार्थ आदि (भेदेण) भेद से (अणेयविहो) परिग्रह अनेक प्रकार का है (एदेण परिग्गहेण) इस प्रकार पूर्व मे कथित प्रकार से परिग्रह (अट्ठविह कम्मरयं) आठ प्रकार का कर्म है वह कर्म ही शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति मे मलिनता का हेतु होने से वह रज है, उस कर्म रज को प्रकृति, प्रदेश आदि रूप (बद्धं) मैने स्वयं बॉधा हो (बद्धावियं) अन्य से बॅधवाया हो (बज्झन्तं वि समणुमण्णिदो) और बॉधते हुए अन्य की अनुमोदना की हो (तस्स) उस बाह्य अभ्यंतर परिग्रह से उपार्जित (मे) मेरा (दुक्कडं) दुष्कृत पाप (मिच्छा) मिथ्या हो।

छठा अणुव्रत रात्रि भोजन सम्बन्धी दोषों की आलोचना

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमणं से असणं, पाणं, खाइयं, साइयं चेदि। चउव्विहो आहारो से तित्तो वा, कडुओ वा, कसाइलो वा, अमिलो वा, महुरो वा, लवणो वा, अलवणो वा, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्समिणिओ, रत्तीए भुत्तो, भुंजावियो, भुंजिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।६।।

अन्वयार्थ—(अहावरे) अब (छट्ठे) षष्ठम (अणुव्वदे) अणुव्रत में (राइभोयणादो वेरमणं) रात्रि भोजन से विरक्ति है। इस रात्रिभोजनत्याग अणुव्रत में प्राणातिपात हिंसा आदि के समान पूर्णरूप से विरति का अभाव है। यहाँ रात्रि में ही भोजन से निवृत्ति है, दिन में नहीं, यथाकाल भोजन में प्रवृत्ति संभव होने इसे रात्रि भोजन त्याग अणुव्रत कहते हैं (से) जिस आहार की अपेक्षा रात्रि में भोजन का त्याग का होता वह (चउविहो) चार प्रकार का (आहारो) आहार है। (असणं) भात, दाल आदि अन्न अशन है (पाणं) दूध, छाछ आदि पान है (खाइयं) खाद्य-लड्डू आदि (च) और (साइयं) स्वाद्य-रुचि उत्पादक सुपारी, इलायची (इदि) इस प्रकार। (से) वह चार प्रकार का आहार (तित्तो वा) चरपरा आहार या (कडुओ वा) कड़वा आहार या (कसाइलो वा) कषैला आहार या (अमिला वा) खट्टा आहार या (महुरो वा) मधुर आहार या (लवणो वा) लवण या क्षार आहार या (अलवणो वा) अलवण रूप होता है अथवा (दुच्चिंतिओ) वह चार प्रकार का आहार खाने-पीने-योग्य नहीं होने पर भी खाने-पीने योग्य है ऐसा अशुभ चिंतन किया हो (दुब्भासिओ) अयोग्य आहार को भी यह खाने योग्य है, इसे खावें ऐसा कहा गया हो (दुप्परिणामिओ) अयोग्य आहार को मन के द्वारा ग्रहण करने की स्वीकारता दी हो (दुस्समिणिओ) स्वप्न में खाया हो (रत्तीएभुत्तो) रात्रि में खाया हो (भुजावियो) दूसरों को खिलाया हो (वा) अथवा (भुंज्जिज्जंतो) अन्य रात्रि में खाने वालों की (समणुमण्णिदो) सम्यक् प्रकार से अनुमोदना की हो (तस्स) इस प्रकार उस रात्रिभोजन त्याग सम्बंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों।

पाँच समिति के अन्तर्गत ईर्या समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पंचसमिदीओ, इरियासमिदी, भासासमिदी, एसणासमिदी, आदाण-णिक्खेवण समिदी, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावण-समिदी चेदि।

तत्थ इरियासमिदी पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिम चउदिसि, विदिसासु, विहर-माणेण, जुगंतर-दिट्ठिणा, भव्वेण दट्ठव्वा। डव-डव-चरियाए, पमाद-

दोसेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।७।।

अन्वयार्थ—(पंचसमिदीओ) समितियाँ पॉच है (इरियासमिदी) ईर्यासमिति (भासासमिदी) भाषा समिति (एसणासमिदी) एषणा समिति (आदाणणिक्खेवणसमिदी) आदाननिक्षेपण समिति (च) और (उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणयवियडि पइट्ठावणसमिदी) उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेल-सिहाण-विकृति-प्रतिष्ठापना समिति (तत्थ) उन पॉच समितियो मे (इरियासमिदी) ईर्यासमिति–प्राणी पीड़ा के परिहार के लिये विवेकपूर्वक प्रवृत्ति । [अथवा ईरणमीर्या गमनं] । इस ईर्या समिति मे (पुव्वुत्तर) पूर्व और उत्तर (दक्खिण पश्चिम चउदिसि) दक्षिण-पश्चिम चार दिशाओ में (विदिसासु) चार विदिशाओ-वायव्य, ईशान, नैऋत और आग्नेय इनमे (विहरमाणेण) विहार करते हुए मुझे (जुगंतर दिट्ठिणा दट्ठव्वा) को चार हाथ प्रमाण सामने भूमि को देखकर चलना चाहिये किन्तु (पमाददोसेण) इस ईर्या समिति मे सावधान न रहकर प्रमादवश (डव-डव-चरियाए) अति जल्दी ऊपर मुख करके इधर-उधर गमन करते हुए (पाण) विकलेन्द्रिय जीव (भूद) वनस्पतिकायिक जीव (जीव) पञ्चेन्द्रिय जीव (सत्ताणं) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीवो का (उवघादो) एकदेश या पूर्ण घात (कदो वा) मैने स्वयं किया हो या (कारिदो वा) कराया हो अथवा (कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो) अथवा करते हुए की अनुमोदना की हो (तस्स) ईयासमिति संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) पाप (मिच्छा) मिथ्या हो ।

भाषा समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ भासासमिदी कक्कसा, कडुवा, परुसा, णिट्ठुरा, परकोहिणी, मज्झंकिसा, अइ-माणिणी, अणयंकरा, छेयंकरा, भूयाण-वहंकरा चेदि । दसविहा भासा, भासिया, भासाविया, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।८।।

अन्वयार्थ—(तत्थ भासासमिदी) उनमे भाषा समिति दस प्रकार की है । उन्ही दस भेदो को कर्कश आदि रूप मे आगे कहा जाता है—

(कक्कस्सा) कर्कश–सन्ताप उत्पन्न करने वाली भाषा कर्कशा/कक्कसा कहलाती है जैसे–तू मूर्ख है, कुछ नही जानता है इस प्रकार बोलना। (कडुया) कटुक–दूसरो के मन मे उद्वेग करने वाली भाषा है, जैसे–तू जातिहीन है, तू अधर्मी, धर्महीन, पापी है इत्यादि वचन कहना। (परुसा) परुषा अर्थात कठोर वाणी, मर्मभेदी वचन, जैसे–तू अनेक दोषो से दूषित है इत्यादि। (णिट्ठुरा) निष्ठुर भाषा। जैसे–तुझे मारूँगा, तेरा शिर काट लूँगा इत्यादि वचन। (परकोहिणी) परकोपिनी–दूसरो को रोष उत्पन्न करने वाली परकोपिनी भाषा है, जैसे–तेरा तप किसी काम का नही है, तू हँसी का पात्र है, निर्लज्ज है, इत्यादि वचन। (मज्झंकिसा) मध्यंकृशा भाषा–इतनी निष्ठुर, कठोर भाषा जो हड्डियों का मध्यभाग भी छेद दे (अईमाणिणी) अतिमानिनी भाषा–स्वप्रशंसा और परनिंदा कर अपने महत्त्व को प्रसिद्ध करने वाली भाषा (अणयंकरा) अनयंकरी भाषा–समान स्वभाव वालो मे विच्छेद कराने वाली या परस्पर मित्रो मे द्वेष, विरोध उत्पन्न करने वाली भाषा (छेयंकरा) छेदंकरी भाषा–वीर्य, शील आदि गुणो को जड़ से नाश करने वाली अथवा असद्भूतदोष अर्थात् जो दोष नही है उन्हे प्रकट करने वाली भाषा (च) और (भूयाणवहंकरा) जीवो की वधकारी भाषा–जीवो के प्राणो का वियोग करने वाली भाषा (इदि) इस प्रकार (दसविहाभासा) दस प्रकार की भाषाएँ (भासिया) स्वयं बोली हो (भासाविया) दूसरो से बुलाई हो (भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो) बोलते हुए दूसरों की मैंने अनुमोदना भी की हो (तस्स) उस भाषा समिति सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो। हे भगवन्, भाषा समिति संबंधी मेरे पाप मिथ्या हो।

एषणा समिति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ एसणासमिदी अहाकम्मेण वा, पच्छाकम्मेण वा, पुरा-कम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, कीडयडेण वा, साइया, रसाइया, संइगाला, सधूमिया, अइगिद्धीए, अग्गीव, छण्हं जीव-णिकायाणं विराहणं, काऊण, अपरिसुद्धं, भिक्खं, अण्णं, पाणं, आहारियं, आहारावियं, आहारिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।९।।

अन्वयार्थ—(तत्थ एसणासमिदी) उद्गमादि दोषो से रहित योग्य

निर्दोष आहार को ग्रहण करना यह एषणा समिति है। इसके विपरीत जो अशुद्ध आहार है वह मुनियो को ग्रहण नही करना चाहिये। आहार मे अशुद्धता संबंधी दोष कैसे होते है उसी को आगे कहते है—(आहकम्मेण वा) अध कर्म से अर्थात् पृथ्वी आदि छ· जीवनिकाय की विराधना करके बनाये गये आहार से या (पच्छाकम्मेण वा) पश्चात् कर्म अर्थात् मुनि के आहार करके जाने के बाद पुन· भोजन बनाने से या (पुराकम्मेण वा) पुराकर्म अर्थात् मुनि ने आहार नही किया उसके पहले पाकादि क्रिया प्रारंभ करने से अथवा (उद्दिट्ठयडेण वा) उद्दिष्टकृत अर्थात् मुनि को उद्देश्य करके उनका संकल्प करके जो भोजन बनाया अथवा देवता, पाखण्डी आदि का उद्देश्य करके जो भोजन बना है उसके ग्रहण से अथवा (णिद्दिट्ठयडेण वा) निर्दिष्टकृत अर्थात् आपके लिये यह भोजन बनाया है ऐसा कहने पर ग्रहण करने से (कीडयडेण वा) क्रीत दोष से बनाये भोजन को ग्रहण करने से। क्रीत दोष दो प्रकार का है—

१. द्रव्यक्रीत कृत ।
२. भावक्रीत कृत ।

१. द्रव्यक्रीत कृत दो प्रकार का है– (१) चेतन द्रव्यक्रीत कृत (२) अचेतनद्रव्यक्रीत कृत।

(१.) चेतन द्रव्यक्रीत वृत—मुनियो को चर्यामार्ग से आते देखकर चेतन गाय, भैस, बैल आदि द्रव्यो को बेचकर आहार दान की सामग्री लाना और मुनियो को देना चेतन-द्रव्यक्रीतकृत दोष है।

(२) अचेतनद्रव्यक्रीत कृत—मुनियो को चर्यामार्ग से आते देखकर अचेतन सुवर्ण, चाँदी आदि बेचकर भोजन सामग्री लाना और मुनियो को देना अचेतनद्रव्यकीत कृत दोष है।

२. भावक्रीत कृत दोष—मंत्र, तंत्र आदि प्रज्ञप्ति आदि विद्या चेटिका आदि मंत्र देकर भोजन-सामग्री लाना और उससे आहार दान देना।

(साइया) स्वादिष्ट (रसाइया) रसयुक्त/रसीले (सइङ्गाला) अति आसक्ति से ग्रहण किये गये (सधूमिया) दातार आदि की निन्दा करते हुए (अइगिद्धीए) अति गृद्धता अर्थात् लालसापूर्वक (अग्गिव) अग्नि

की तरह (छण्हं) छह प्रकार के (जीवणिकायाणं विराहणं काऊण) जीवनिकाय के समूह की विराधना करके (अपरिसुद्धं) सदोष, अयोग्य (भिक्खं) भिक्षा मे (अण्णं पाणं) अन्न पान रूप आहार भोजनादि को (आहारियं) स्वयं ग्रहण किया हो (आहारावियं) दूसरे को कहकर आहार ग्रहण कराया हो (आहारिज्जंतं वि) और आहार करते हुए की भी (समणुमण्णिदो) अनुमोदना की हो (तस्स) उस एषणा समिति सम्बन्धी (दुक्कडं) दुष्कृत (मे) मेरे (मिच्छा) मिथ्या हो।

आदान निक्षेपण समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ आदाण-णिक्खेवण-समिदी चक्कलं वा, फलहं वा, पोत्थयं वा, पीढं वा, कमण्डलुं वा, वियडिं वा, मणिं वा, एवमाइयं, उवयरणं, अप्पडिलेहिऊण-गेण्हंतेण वा, ठवंतेण वा, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१०।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन पॉच समितियो मे (आदाण णिक्खेवणसमिदी) चतुर्थ आदाननिक्षेपण समिति मे (चक्कलं वा) चक्कल या (फलहं वा) निर्दोष, जीवहिंसा रहित बैठने के लिए फलक/पाट अथवा (पोत्थयं वा) ज्ञान का उपकरण शास्त्र या (पीढं वा) आसन या (कमंडलुं वा) शौच उपकरण कमण्डलु या (वियडि वा) विकृति-मलादि रूप विकार या (मणि वा) मणि अर्थात् मणि आदि की जपमाला या (एवमाइयं) इत्यादि वस्तु रूप (उवयरणं) उपकरणो को (अप्पडिलेहिऊणगेण्हंतेण वा) पिच्छी आदि के द्वारा प्रतिलेखन न करके उठाते हुए या (ठवंतेण) धरते हुए मैंने (पाण-भूद-जीव-सत्ताणं) प्राण, भूत, जीव और सत्व का (उवघादो) उपघात (कदो वा) मैंने स्वयं किया हो, या (कारिदो वा) दूसरों से कराया हो या (कीरंतो वा समणुमण्णिदो) अथवा करते हुए की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस आदाननिक्षेपण समिति संम्बंधी मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हों।

प्रतिष्ठापन समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी

रत्तीए वा, वियाले वा, अचक्खुविसए, अवत्थंडिले, अब्भोवयासे, सणिद्धे, सवीए, सहरिए, एवमाइयासु, अप्पासु गट्ठाणेसु, पइट्ठावंतेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो, कदो वा कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।११।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन समितियो मे (उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी) प्राणी पीड़ा परिहार रूप प्रतिष्ठापना समिति मे उच्चार, प्रस्रवण, क्ष्वेल, सिंहाणक, विकृति इन वस्तुओ के त्यागने मे प्रमादवश (रत्तीए वा) रात्रि मे या (वियाले वा) संध्या-काल मे या (अचक्खुविसये अवत्थंडिले) चक्षु से देखने मे न आवे ऐसे असंस्कारित या संस्कारित अप्रासुक उच्च भूमि प्रदेश मे या नीच अप्रासुक भूमि प्रदेश मे (अब्भोवयासे) अभ्रावकाश–पानी वृक्ष आदि से अप्रच्छादित अप्रासुक खुले आकाश प्रदेश यह उपलक्षण मात्र है, इससे वृक्षादि से अप्रच्छादित और अप्रासुक खुले स्थान का ही ग्रहण होता है, उसमे (सणिद्धे) स्निग्ध-आर्द्र, कोमल भूमि प्रदेश मे (सवीये सहरिए) बीज सहित हरितकाय युक्त भूमि प्रदेश मे (अप्पासुगट्ठाणेसु) अप्रासुक भूमि प्रदेशो मे (पइट्ठावंतेण) मल-मूत्र आदि का क्षेपण करते हुए मैने (पाण-भूद-जीव-सत्ताणं) विकलेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, पञ्चेन्द्रिय और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कायिक जीवो का (उवघादो) उपघात (कदो वा) किया हो या (कारिदो वा) कराया हो या (कीरंतो वा समणुमण्णिदो) अथवा करते हुए की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस प्रतिष्ठापना समिति सम्बन्धी (मे दुक्कडं) मेरे पाप (मिच्छा) मिथ्या हो ।

मन गुप्ति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तिण्णि-गुत्तीओ, मण-गुत्तीओ, वचि-गुत्तीओ, काय-गुत्तीओ चेदि । तत्थ मण-गुत्ती, अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, इह-लोय-सण्णाए, पर-लोए-सण्णाए, आहारसण्णाए, भय-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गह-सण्णाए, एवमाइयासु जा मण-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१२।।

अन्वयार्थ—(तिण्णि-गुत्तीओ) गुप्तियाँ तीन हैं—(मणगुत्तीओ, वचिगुत्तिओ, कायगुत्तीओ च इदि) मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति

इस प्रकार । मन, वचन, काय इन योगो को सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है (तत्थ मणगुत्ती) उन तीन गुप्तियो को प्रथम मनगुप्ति [आर्त्तध्यान आदि रूप अशुभ परिणामो से मन को रोकना मनगुप्ति है] का (अट्टेझाणे) आर्त्तध्यान मे (रुद्देझाणे) रौद्र ध्यान मे (इहलोयसण्णाए) इस लोक संबंधी आहार आदि संज्ञा मे (परलोयसण्णाए) परलोक संबंधी सुखादि की अभिलाषा मे (आहार सण्णाए) आहार की वाञ्छा मे (भयसण्णाए) भय संज्ञा मे (मेहुण सण्णाए) मैथुन संज्ञा मे (परिग्गहसण्णाए) परिग्रह संज्ञा मे (एव) इस प्रकार इहलोक संज्ञा, परलोक संज्ञा आदि के विषयो मे (जा) जो (मणगुत्ती) मनगुप्ति का मैंने (ण रक्खिया) रक्षण नही किया हो (ण रक्खाविया) रक्षण नही कराया हो (अपि) और (ण रक्खिजंतं वि समणुमण्णिदो) रक्षण नही करने वालो की अनुमोदना भी की हो तो (तस्स) मनगुप्ति सम्बन्धी मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

वचन गुप्ति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ वचि-गुत्ती इत्थि-कहाए, अत्थ-कहाए, भत्त-कहाए, राय-कहाए, चोर-कहाए, वेर-कहाए, परपासंड-कहाए, एवमाइयासु जा वचि-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१३।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन तीन गुप्तियो मे (वचिगुत्ती) विकथा के विषय मे वचनो का गोपन/रक्षण करना वचनगुप्ति है तथा उत्सूत्र अर्थात् आगमविरुद्ध भाषा का रोकना तथा गृहस्थो जैसी व्यर्थ भाषा का रोकना या मौन रहना वचन गुप्ति है। किन-किन विकथाओ मे वचन का रक्षण करना चाहिये उसी को आगे कहते है (इत्थिकहाए) स्त्री कथा मे—उन स्त्रियो के नयन, नाभि, नितम्ब आदि के वर्णन रूप कथा मे (अत्थकहाए) धन के उपार्जन, रक्षण आदि के कथन रूप अर्थकथा मे (भत्तकहाए) भोजन का वर्णन करने रूप भक्त कथा में (रायकहाए) राजा की कथा रूप राजकथा मे (चोरकहाए वेरकहाए) चौरो का वर्णन करने वाली चौर कथा मे और विद्वेष या वैर बढ़ाने वाली वैर कथा मे (परपासंडकहाए) दूसरे कुलिंगी, मिथ्यादृष्टियो की चर्चा या कथन करने रूप परपाखंड कथा

मे (एवमादियासु) इस प्रकार की कथाओं में (जा वचिगुत्ती) जो वचनो का गोपन (ण रक्खिया) वचनों का रक्षण स्वयं मैंने नहीं किया हो (ण रक्खाविया) दूसरों से रक्षण नही कराया हो (ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो) वचन गुप्ति का रक्षण नही करने वालों की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस वचन गुप्ति सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

काय गुप्ति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ काय-गुत्ती चित्त-कम्मेसु वा, पोत्त-कम्मेसु वा, कट्ठ-कम्मेसु वा, लेप्प-कम्मेसु वा, लय-कम्मेसु वा, एवमाइयासु जा काय-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१४।।

अन्वयार्थ—(तत्थ कायगुत्ती) चित्र आदि स्त्रियों के रूप आदि में अपने हाथ-पैरो का रक्षण करना तथा अपने हाथ-पैर आदि की यथेष्ट प्रवृत्ति रोकना कायगुप्ति है। चेतन स्त्री के रूप आदि मे तो ब्रह्मचर्यव्रत होने से काय गुप्ति सिद्ध ही है, अचेतन के विषय मे किस-किस में काय का गोपन करना चाहिये उसे आगे कहते है—(चित्तकम्मेसु) चित्र-रचना कार्यो मे अर्थात् स्त्री की फोटो आदि में (वा) अथवा (पोत्तकम्मेसु) पुस्तकर्म अर्थात् ग्रंथ-लेखन-कार्यो में (वा) अथवा (कट्ठकम्मेसु) काष्ठ की बनी पुत्तलिका आदि कार्यो में (लेप्पकम्मेसु) लेपकर्म संबंधी कार्यों में (लय-कम्मेसु वा) या लयन कर्म में (एवमाइयासु) इस प्रकार स्त्री के प्रतिबिंब आदि में मैंने जो (कायगुत्ती ण रक्खिया) कायगुप्ति का रक्षण स्वयं नहीं किया हो (ण रक्खाविया) कायगुप्ति का रक्षण नहीं कराया हो (ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो) और संरक्षण नहीं करने वालों की भी अनुमोदना की हो (तस्स) उस कायगुप्ति संबंधी (मे दुक्कडं) मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हों।

आलोचनाओं का उपसंहार तथा कलाकांक्षा संबंधी विवेचन

दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्प-सत्थ-संकिलेस-परिणामेसु, मिच्छणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीव-णिकाएसु,

छसु आवासएसु, सत्तसु भयेसु, अट्ठसु सुद्धीसु, णवसु बंभचेर-गुत्तीसु, दससु समण-धम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मण्डेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु उत्तरगुणेसु (अट्ठमियम्मि), (पक्खियम्मि), (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि), अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि । मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं, पंडियमरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होदु मज्झं ।

अन्वयार्थ—(दोसु अट्टरुद्द संकिलेसपरिणामेसु) दो भेद रूप आर्त्त रौद्र संक्लेश परिणाम (तीसुअप्पसत्थ-संकिलेसपरिणामेसु) माया, मिथ्या, निदान रूप तीन अप्रशस्त संक्लेश परिणामो मे (मिच्छाणाण-मिच्छा दंसण-मिच्छा चरित्तेसु) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रो मे (चउसु उवसग्गेसु) चार प्रकार के उपसर्गो मे (चउसु सण्णासु) चार प्रकार की संज्ञाओ मे (चउसु पच्चएसु) चार प्रकार के आस्रवो मे (पंचसु चरित्तेसु) पॉच प्रकार के चारित्रो मे (छसु जीवणिकाएसु) छह प्रकार के जीवो के समूह मे (छह आवासएसु) छह प्रकार आवश्यको मे (सत्तसु भयेसु) सात प्रकार के भयो मे (अट्ठसु सुद्धीसु) आठ प्रकार की शुद्धियो मे (णवसु बंभचेरगुत्तीसु) नव-प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्तियो मे (दससु समण-धम्मेसु) दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे (दससु धम्मज्झाणेसु) दस प्रकार के धर्म्यध्यानो मे (दससु मुण्डेसु) दस प्रकार के मुँडो मे (बारसेसु-संजमेसु) बारह प्रकार संयमो मे (बावीसाए परीसहेसु) बावीस प्रकार परीषहो मे (पणवीसाए भावणासु) पच्चीस प्रकार भावनाओ मे (पणवीसाए किरियासु) पच्चीस प्रकार की क्रियाओ मे (अट्ठारस-सील-सहस्सेसु) अठारह हजार शीलो मे (चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु) चौरासी लाख गुणो मे (मूलगुणेसु) मूल गुणो मे (उत्तरगुणेसु) उत्तर गुणो मे [अट्ठमियम्मि] आठ दिनो मे [पक्खियम्मि] एक पक्ष मे, [चउमासियम्मि] चातुर्मास मे [संवच्छरियम्मि] एक वर्ष मे, [अदिक्कमो] अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार, (आभोगो)

आभोग (अणाभोगो) अनाभोग (जो) जो हुआ (तं) उसका (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ। (मए पडिक्कंतं तस्स) व्रत संबंधी दोषो का प्रतिक्रमण मेरे द्वारा किया गया (मे सम्मत्तमरणं) मेरा सम्यक्मरण हो, (पंडिय मरणं) पंडित मरण हो (वीरिय मरणं) वीर मरण हो (दुक्खक्खओ) दु:खो का क्षय हो, (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) बोधिलाभ हो (सुगइ-गमणं) सुगति में गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (जिनगुण सम्पत्ति होदु मज्झं) जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दो भेद रूप आर्त्त-रौद्रध्यानमय संक्लेश परिणामों में माया, मिथ्या, निदान रूप तीन अशुभ परिणामो मे, मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रों में। मनुष्यकृत, देवकृत, तिर्यचकृत और अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्गो में, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चार संज्ञाओं मे। चार प्रकार आस्रव-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगो मे। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-साम्पराय और यथाख्यात पाँच प्रकार के चारित्रों में। पॉच स्थावर और एक त्रस ऐसे छह जीव निकायों में। समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकों मे। सात भयो मे—इहलोक, परलोक, वेदना, मरण अरक्षा, अगुप्ति और आकस्मिक भयो मे।

मनोवाक्कायभैक्ष्येर्या, सूत्सर्गे शयनासने।
विनये च यतेः शुद्धिः, शुद्ध्यष्टकमुदाहृतम्॥

मन, वचन, काय, भिक्षा, ईर्या, उत्सर्ग, शयनासन और विनय इन आठ प्रकार की शुद्धियो मे। तिर्यच, मनुष्य, देवस्त्रियों में प्रत्येक का मन-वचन-काय से सेवन नही करने रूप नव प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियो में। दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे। अपायविचय, उपायविचय, विपाकविचय, आज्ञाविचय, संस्थानविचय, संसारविचय, विरागविचय, लोकविचय, भवविचय, जीवविचय दस प्रकार के धर्म्यध्यानो मे। पाँच इन्द्रिय, वचन, हाथ, पाँव, शरीर, और मन को निरोध करने रूप दस मुंडों में—

पंचवि इंदिय मुंडा, वचि मुंडा हत्थ-पाय-तणुमुंडा।
मणमुण्डेण य सहिया, दसमुंडा विण्णदा समये॥

छह प्रकार का इन्द्रिय संयम और छह प्रकार का प्राणी संयम इस

प्रकार १२ प्रकार के सयमो मे। बावीस प्रकार के परीषहो मे। अहिंसा आदि व्रतो को स्थिर रखने की २५ भावनाओ मे। २५ प्रकार की क्रियाओ मे। १८ हजार शीलो मे, ८४ लाख उत्तरगुणो मे और अठाईस प्रकार के मूलगुणो यति आचारो मे, आठ दिन, पन्द्रह दिन, चातुर्मास, एक वर्ष के अनुष्ठानो मे मैने जो भी अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, कापोतलेश्या के वश से पूजा, ख्याति की अभिलाषा से अतिप्रकट अनुष्ठान करने रूप आभोग, लज्जा आदि के वश से लोक मे अप्रकट रूप अनुष्ठान करने रूप अनाभोग आदि जो किया है उस सब क्रिया का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

मेरे द्वारा अतिक्रम, व्यतिक्रम, आभोग, अनाभोग आदि दूषित क्रिया का प्रतिक्रमण कर निर्दोष व्रतानुष्ठान करने से मेरा सम्यक्त्व सहित मिथ्यात्व रहित मरण हो, समाधिमरण हो, भक्त प्रत्याख्यान, इगिनी और प्रायोपगमन रूप पडित मरण, भय रहित वीर मरण हो, दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र गुणो की मम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

लघु-सिद्ध भक्ति

नमोऽस्तु सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं सिद्ध-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ—हे भगवन्! नमोस्तु/नमस्कार हो, मै सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये सिद्ध-भक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ

[कायोत्सर्ग]

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरु-लघु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।
तवसिद्धे, णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।२।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं,

चरित्तसिद्धाणं अतीता-णागदवट्टमाण-कालत्तय सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होदु मज्झं ।

[इन गाथाओ का तथा गद्य का अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

लघु योगिभक्ति

नमोऽस्तु सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं-मालोचना-योगि-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—हे भगवन् ! नमस्कार हो, मै अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये योगि भक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ

णमो अरहंताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

[कायोत्सर्ग]

प्रावृट्-काले सविद्युत्-प्र-पतित सलिले वृक्ष-मूलाधिवासाः,
हेमन्ते रात्रि-मध्ये प्रति-विगत-भयाःकाष्ठ-वत्-त्यक्त देहाः ।
ग्रीष्मे सूर्यांशु-तप्ता-गिरि-शिखर-गताः स्थान-कूटांतर-स्थास्-,
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनि-गण-वृषभा मोक्ष-निःश्रेणि-भूताः ।।१।।

गिम्हे गिरि-सिहरत्था वरिसा-याले रुक्ख-मूल-रयणीसु ।
सिसिरे वाहिर-सयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ।।२।।

गिरि-कन्दर-दुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणि-पात्र-पुटाहारा-स्ते यांति परमां गतिम् ।।३।।

[अञ्चलिका]

इच्छामि भंते ! योगिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णा-रस-कम्म-भूमिसु, आदावण-रुक्ख-मूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउ-छ-पक्ख-खवणादिजोग-जुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं, जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झं ।

[इन गाथा, श्लोक व गद्य का अर्थ योगी भक्ति मे देखिये]

आलोचना

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंच-महव्वदाणि, पंच-समिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेऊ-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१।।

बे-इंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि, किमि, संख, खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठय-गण्डवाल, संव्बुक, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो, कदो वा, कारिदो, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२।।

ते-इंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थुद्देहियविंच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो, वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

चउरिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंस-मसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

पंचिंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

वद समि-दिंदिय-रोधालोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।

एदे खलु मूलगणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद कदादो अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।।३।।

इस प्रकार आचार्य श्री उपर्युक्त पाठ को तीन बार बोलकर अरहंत-देव के समक्ष अपने दोषो की आलोचना करे। पश्चात् जैसे दोष लगे हो उनके अनुसार स्वयं प्रायश्चित्त लेकर निम्नलिखित पाठ तीन बार बोलें।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-षडावश्यक-क्रिया-लोचादयोऽष्टविंशति-मूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-स्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि दश-लाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शील-सहस्राणि, चतुरशीति-लक्ष-गुणा, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति। सकलं-सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधु-साक्षिकं सम्यक्त्व-पूर्वकं दृढ-व्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।१।।

[सर्व आलोचना प्रकारण का अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखिये]

उपर्युक्त पंचमहाव्रत-पंचसमिति आदि पाठ तीन बार बोलकर प्रायश्चित्त के योग्य शिष्यों को प्रायश्चित्त देवें। पश्चात् देव के लिये निम्नलिखित गुरुभक्ति बोले।

[निष्ठापनाचार्य भक्ति]

प्रतिज्ञा—**अथ नमोस्तु श्री निष्ठापना आचार्य भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्** —

अर्थ—नमस्कार हो, निष्ठापन श्री आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ।

कायोत्सर्ग करना

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः ।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ।।१।।
छत्तीस-गुण-समग्गे पंच-विहाचार-करण-संदरिसे ।
सिस्साणुग्गह-कुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ।।२।।

गुरु-भत्ति-संजमेण य तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ।।३।।
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुला,
षट्-कर्माभि-रतास्तपो-धन-धनाः साधु क्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणंतु मां साधवः ।।४।।
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गंभीरा मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ।।५।।

[आचार्य श्री शिष्यो मुनि और साधर्मी मुनि मिलकर आचार्य श्री के समक्ष निम्न पाठ पढे।]

इच्छामि भंते! (पक्खियम्मि), (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि) आलोचेउं, पंच महव्वदाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, बिदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदिण्णा-दाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं, तिस्सु गुत्तीसु, णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पण-वीसाए भावणासु, पण-वीसाए किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं चरित्ताणं, चउदसण्हं पुव्वाणं, एयारसण्हं पडिमाणं दसविह मुण्डाणं, दसविह-समण-धम्माणं, दसविह-धम्मज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेर-गुत्तीणं, णवण्हं णो-कसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इन्दियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परिदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासादणाए, तिण्हं

दंडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं अप्पसत्थसंकिलेस-परिणामाणं, दोण्हं अट्टरुद्द, संकिलेस-परिणामाणं, मिच्छणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्ताणं, मिच्छत्त-पाउग्गं, असंजम-पाउग्गं, कसाय-पाउग्गं, जोगपाउग्गं, अप्पाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्ग-गरहणदाए इत्थ मे जो कोई (पक्खियम्मि) (चउमासियम्मि) (संवच्छरियम्मि) अदिक्मो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते ! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्त-मरणं, पंडिय-मरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति, होदु मज्झं ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-षडावश्यक-क्रियालोचादयोऽष्टाविंशति मूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जव-शौच-सत्य संयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शील-सहस्राणि, चतुरशीति-लक्ष-गुणाः, त्रयोदश-विधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति, सकलं सम्पूर्णं, अर्हत्सिद्धा-चार्योपाध्याय-सर्व-साधु-साक्षिकं, सम्यक्त्व-पूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।१।।

पञ्चमहाव्रत - पंचसमिति - पञ्चेन्द्रियरोध.........
सम्यक्त्व-पूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।२।।
पञ्चमहाव्रत - पंचसमिति - पञ्चेन्द्रियरोध.........
सम्यक्त्व-पूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।३।।

नोट—आचार्य भक्ति से यहाँ पर्यन्त अर्थ पूर्व में दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया में आ चुका है ।]

प्रतिक्रमण भक्तिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं (पाक्षिक) (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री प्रतिक्रमणभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सर्व अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक प्रतिक्रमण क्रिया मे कृत दोषो का निराकरण करने के लिए पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से, सकल कर्मो के क्षय के लिये, भाव पूजा, वन्दना व स्तव सहित श्री प्रतिक्रमण भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

[इस प्रकार विज्ञापन का उच्चारण कर आचार्य श्री सहित सभी शिष्य व साधर्मी मुनिगण निम्नलिखित णमो अरहताणं इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करे]

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।। १ ।।

चत्तारि-मंगलं-अरहंता-मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारगयाणं, धम्माइरियाणं, धम्म-देसगाणं, धम्म-णायगाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं, सदा करेमि किरियम्मं ।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्व-सावज्ज-जोगं, पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा, वचसा, काएण, ण करेमि, ण कारेमि, अण्णं कीरंतं

पि ण समणुमणामि, तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं, पावकम्मं, दुच्चरियं वोस्सरामि ।

(२७ उच्छ्वासों में कायोत्सर्ग करना)

[यथोक्त परिकर्म के बाद केवल आचार्य श्री निम्नलिखित थोस्सामि दण्डक पढ़े]

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे ।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रय-मले महप्पण्णे ।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे ।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ।।२।।
उसह-मजियं च वन्दे संभव-मभिणंदणं च सुमइं च ।
पउ-मप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च ।
विमल-मणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामिरिट्ठ-णेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।
एवं मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला-पहीण-जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ।।७।।
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पया-संता ।
सायर-मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।८।।

[अब यहाँ मात्र आचार्य श्री गणधर वलय का पाठ पढ़े]

[गणधर-वलय]

जिनान् जिताराति-गणान् गरिष्ठान्,
देशावधीन् सर्व-परावधींश्च ।
सत्-कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै ।।१।।

अन्वयार्थ—(जित आराति) जीत लिया है घातिकर्म रूप शत्रुओ को जिनने ऐसे (जिनान्) जिनेन्द्र भगवान् को (गणान्) गुणो मे (गरिष्ठान्) श्रेष्ठ (देशावधीन्) देशावधि (सर्वपरावधीन् च) सर्वावधि और परमावधि धारक (सत् कोष्ठ बीज आदि पदानुसारीन्) कोष्ठ ऋद्धि, बीज ऋद्धि पदानुसारि आदि ऋद्धि के धारक (गणेशान् अपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

संभिन्न-श्रोतान्वित-सन्-मुनीन्द्रान्,
प्रत्येक-सम्बोधित-बुद्ध-धर्मान् ।
स्वयं-प्रबुद्धांश्च विमुक्ति-मार्गान्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यैः ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(संभिन्न श्रोतान्वित) संभिन्न श्रोतृत्व से सहित (प्रत्येक सम्बोधित-बुद्ध) प्रत्येक बुद्ध, बोधितबुद्ध (च) और (स्वयं प्रबुद्धान्) स्वय बुद्ध जो कि (विमुक्ति मार्गान् धर्मान्) मोक्षमार्ग रूप धर्म के (सन्मुनीन्द्रान्) सच्चे मुनियो के स्वामी है ऐसे (गणेशान् अपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

द्विधा मनःपर्यय-चित्-प्रयुक्तान्,
द्विपञ्च-सप्तद्वय-पूर्व-सक्तान् ।
अष्टांग-नैमित्तिक शास्त्र-दक्षान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(द्विधा मनःपर्ययचित्प्रयुक्तान्) दो प्रकार के मनः-पर्ययज्ञान के धारक (द्विपञ्च) दस पूर्व (सप्तद्वयपूर्वसक्तान्) चौदह पूर्व के धारक (*अष्टाङ्गनैमितिक शास्त्रदक्षान्*) *अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता*, कुशल शास्त्रज्ञ (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

विकुर्वणाख्यर्द्धि-महा-प्रभावान्,
विद्याधरांश्चारण-ऋद्धि-प्राप्तान् ।

प्रज्ञाश्रितान् नित्य-ख-गामिनश्च,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्तये ।।४।।

अन्वयार्थ—(महाप्रभावान्) महा प्रभावशाली (विकुर्वणाख्य ऋद्धि) विक्रिया नामक ऋद्धि के धारक, (विद्याधरान्) विद्याधारक (चारण-ऋद्धि प्राप्तान्) चारण ऋद्धि को प्राप्त (प्रज्ञाश्रितान्) प्रज्ञावान (च) और (नित्य) सदा (खगामिन) आकाश मे गमन करने वाले (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

आशी र्विषान् दृष्टि-विषान् मुनीन्द्रा-,
नुग्राति-दीप्तोत्तम-तप्त तप्तान् ।
महातिघोर-प्रतपःप्रसक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।५।।

अन्वयार्थ—(आशीर्विषान्) आशीविष (दृष्टिविषान्) दृष्टिविष ऋद्धि के धारक (मुनीन्द्रान्) मुनियो को (उग्रअति) अत्ति उग्र/उग्राग्र तप (दीप्त उत्तम) उत्तम दीप्त तप (तप्ततप्तान्) तप्त तप/घोर तप (महा अति घोर प्रतप·) महा अतिघोर प्रकृष्ट तप के धारक (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

वन्द्यान् सुरै-र्घोर-गुणांश्च लोके,
पूज्यान् बुधै-र्घोर-पराक्रमांश्च ।
घोरादि-संसद्-गुण ब्रह्म युक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।६।।

अन्वयार्थ—(सुरै) देवो के द्वारा (वंद्यान्) वंदित (लोके पूज्यान्) लोक मे पूज्य (घोरगुणान्) घोर गुणो के धारक (च) और (बुधै: पूज्यान्) लोक मे ज्ञानियो के द्वारा पूज्य (घोरपराक्रमान्) घोर पराक्रम धारक (घोरादिसंसद् गुणब्रह्मयुक्तान्) समीचीन श्रेष्ठ घोर गुण ब्रह्मचर्य आदि से युक्त (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्-गुणाप्त्यै) उनके गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

आमर्द्धि-खेलर्द्धि-प्रजल्ल-विडर्द्धि-
सर्वर्द्धि-प्राप्तांश्च व्यथादि-हंतृन् ।
मनो-वचः काय-बलोपयुक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।७।।

अन्वयार्थ—(आमर्द्धिखेलर्द्धिप्रजल्लविडर्द्धि) आमर्द्धि, खेलर्द्धि, प्रकृष्ट जल्लऋद्धि, विड्ऋद्धि (सर्वर्द्धिप्राप्तान् च) और सर्वऋद्धि प्राप्त (व्यथा आदि हंतृन्) पीड़ा आदि को हरने वाले (मन· वच: काय बल उपयुक्तान्) मनोबली, वचन बल, काय बल ऋद्धि से युक्त (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

सत्क्षीर-सर्पि-र्मधुरामृतर्द्धीन्,
यतीन् वराक्षीण महानसांश्च ।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्-प्रपूज्यान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।८।।

अन्वयार्थ—(सत्क्षीरसर्पिर्मधुरामृतर्द्धीन्) (सत्क्षीर, सर्पिः मधुर अमृत ऋद्धीन्) समीचीन क्षीरस्रावी, सर्पिस्रावी, मधुरस्रावी और अमृतस्रावी ऋद्धि के धारक (वर अक्षीण महानसान् च) श्रेष्ठ अक्षीण संवास और अक्षीण महानस ऋद्धियो से (प्रवर्धमानान्) सुशोभित (त्रिजगत्प्रपूज्यान्) तीन लोक में पूज्य (यतीन्) यतिराज (गणेशानपि) गणधरो की (तद्गुणाप्त्यै) उनके गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्,
श्रीवर्धमानर्द्धि विबुद्धि-दक्षान् ।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरा-नृषीन्द्रान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।९।।

अन्वयार्थ—(सिद्धालयान्) सिद्धालय मे विराजमान (श्री महतः अतिवीरान्) श्री अति महान्, अति वीर (श्रीवर्द्धमान ऋद्धि, विबुद्धिदक्षान्) श्री वर्द्धमान ऋद्धि और विशिष्ट बुद्धि ऋद्धि में दक्ष, कुशल (मुक्तिवरान्) मुक्तिलक्ष्मी को वरण करने वाले (सर्वान् मुनीन्) सब मुनियो की (ऋषि

इन्द्रान्) ऋषिगणों को (गणेशानपि) तथा गणधर देवों की (तद्-गुणाप्त्यै) मैं उनके गुणों को प्राप्त करने के लिये (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

नृ-सुर-खचर-सेव्या विश्व-श्रेष्ठर्द्धि-भूषा,
विविध-गुण-समुद्रा मार मातंग-सिंहाः ।
भव-जल-निधि-पोता वन्दिता मे दिशन्तु,
मुनि-गण-सकलाः श्री-सिद्धिदाः सदृषीन्द्राः ।।१०।।

अन्वयार्थ—(नृसुरखचरसेव्या) मनुष्य, देव, विद्याधरों से पूज्य (विश्वश्रेष्ठ ऋद्धिः भूषा) समस्त श्रेष्ठ ऋद्धियों से भूषित (विविध गुण समुद्रा) अनेक गुणों के समुद्र (मार-मातङ्गसिंहा) कामदेवरूपी हाथी को वश मे करने के लिये सिंह समान (भवजलनिधिपोता) संसाररूप समुद्र को पार करने के लिये जहाज (सदृशा) समान, (वन्दिता) वन्दना किये गये (मुनिगणसकलाः इन्द्रा) समस्त मुनि समूह/संघ के इन्द्र गणधर देव (मे सिद्धिदाः दिशन्तु) मुझे सिद्धपद प्रदान करने वाले हो।

[1]नित्यं यो गणभृन्मन्त्रं, विशुद्धसन् जपत्यमुम् ,
आस्रवस्तस्य पुण्यानां, निर्जरा पापकर्मणाम् ।
नश्यादुपद्रवकश्चिद्, व्याधिभूत विषादिभिः ,
सदसत् वीक्षणे स्वप्ने, समाधिश्च भवेन्मृतौ ।।

(यः) जो (नित्यं) प्रतिदिन (विशुद्धः सन्) शुद्ध मन होता हुआ/शुद्धिपूर्वक (अमुम्) इस (गणभृन्मन्त्रं) गणधर वलय मन्त्र को (जपति) पढ़ता है (तस्य) उसको (पुण्यानां आस्रव) पुण्यकर्मों का आस्रव होता है तथा (पापकर्मणां निर्जरा) पापकर्मों की निर्जरा होती है (विषादिभिः व्याधिभूत) विष आदि से होने वाले रोग, पिशाच आदि (उपद्रवः) बाधा (नश्यात्) दूर होते हैं (स्वप्ने सत् असत् वीक्षणे) स्वप्न में शुभ-अशुभ दिखाई देता है (च) और (मृतौ) मरण समय में (समाधिः) समाधिमरण (भवेत्) होता है।

प्रतिक्रमण-दण्डक

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

---
१. आ० विद्यानन्द जी को प्राप्त हस्तलिखित प्रति से।

णमो जिणाणं[1], णमो ओहि-जिणाणं[2], णमो परमोहि-जिणाणं[3], णमो सव्वोहि-जिणाणं[4], णमो अणंतोहि-जिणाणं[5], णमो कोट्ठ-बुद्धीणं[6], णमो बीज-बुद्धीणं[7], णमो-पादाणु-सारीणं[8], णमो संभिण्ण-सोदारणं[9], णमो सयं-बुद्धाणं[10], णमो पत्तेय-बुद्धाणं[11], मणो बोहिय-बुद्धाणं[12], णमो उजु-मदीणं[13], णमो विउल-मदीणं[14], णमो दस पुव्वीणं[15], णमो चउदस-पुव्वीणं[16], णमो अट्ठंग-महा-णिमित्त-कुसलाणं[17], णमो विउव्वइड्ढि-पत्ताणं[18], णमो विज्जाहराणं[19], णमो चारणाणं[20], णमो पण्ण-समणाणं[21], णमो आगासगामीणं[22], णमो आसी-विसाणं[23], णमो दिट्ठिविसाणं[24], णमो उग्ग-तावाणं[25], णमो दित्त-तवाणं[26], णमो तत्त-तवाणं[27], णमो महा-तवाणं[28], णमो घोर-तवाणं[29], णमो घोर-गुणाणं[30], णमो घोर-परक्कमाणं[31], णमो घोर-गुण-बंभयारीणं[32], णमो आमोसहि-पत्ताणं[33], णमो खेल्लोसहि-पत्ताणं[34], णमो जल्लोसहि-पत्ताणं[35], णमो विप्पोसहि-पत्ताणं[36], णमो सव्वोसहि-पत्ताणं[37], णमो मण-बलीणं[38], णमो वचि-बलीणं[39], णमो काय-बलीणं[40], णमो खीर-सवीणं[41], णमो सप्पि-सवीणं[42], णमो महुर-सवीणं[43], णमो अमिय-सवीणं[44], णमो अक्खीण महाणसाणं[45], णमो वड्ढमाणाणं[46], णमो सिद्धायदणाणं[47], णमो भयवदो-महदि-महावीर-वड्ढमाण-बुद्ध-रिसीणो[48] चेदि ।

अर्थ—

१. **णमो जिणाणं**—उन जिनेन्द्रो को नमस्कार हो। कौन से जिनो को ? तत्परिणत भाव जिन और स्थापना जिनो को नमस्कार हो।

२. **णमो ओहि जिणाणं**—अवधि जिनो को नमस्कार हो। रत्नत्रय सहित अवधिज्ञानी अवधि जिन है, ऐसे अवधिस्वरूप अथवा रत्नत्रय मंडित देशावधि जिनो को नमस्कार हो।

३. **णमो परमोहि जिणाणं**—उन परमावधि जिनो को नमस्कार हो। जो परम अर्थात् श्रेष्ठ हैं, ऐसा अवधिज्ञान जिनके है वे परमावधि जिन है। यह ज्ञान देशावधि की अपेक्षा महाविषय वाला है, संयत मनुष्यो मे ही उत्पन्न होता है, केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण है, अप्रतिपाती है इसलिये इसे ज्येष्ठपना है।

४. णमो सव्वोहि जिणाणं—उन सर्वावधि जिनों को नमस्कार हो। जो सर्वावधि जिन समस्त संसारी जीव और समस्त पुद्‌गल द्रव्य (अणुमात्र को भी) जानते हैं ऐसे सर्वावधि जिन परमावधि जिन से महान् हैं।

५. णमो अणंतोहि जिणाणं—उन अनन्तावधि जिनों को नमस्कार हो। जिनके अवधिज्ञान की कोई सीमा, मर्यादा नहीं है। इस ऋद्धि के धारक केवलज्ञानी होते हैं।

६. णमो कोट्ठबुद्धीणं—उन कोष्ठबुद्धि जिनों को नमस्कार हो। जैसे–शाली, ब्रीहि, जौ और गेहूँ आदि के आधारभूत कोथली, पल्ली आदि का नाम कोष्ठ है। वैसे श्रुतज्ञान संबंधी समस्त द्रव्य व पर्यायों को धारण करने रूप गुण से कोष्ठ के समान होने से उस बुद्धि को कोष्ठ कहा जाता है। कोष्ठरूप जो बुद्धि है वह कोष्ठबुद्धि है। यह धारणावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता है।

७. णमो बीजबुद्धीणं—उन बीज बुद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो। जिस प्रकार बीज, अंकुर, पत्र, पोर, स्कंध, प्रसव, तुष, कुसुम, क्षीर और तंदुल आदिको का आधार है, उसी प्रकार बारह अंगों के अर्थ का आधारभूत जो पद है वह बीजतुल्य होने से बीज है। संख्यात शब्दों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थों से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न लिंगों के साथ बीज पद को जाननेवाली बीजबुद्धि है। बीजबुद्धि अवग्रहावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती है।

८. णमो पदाणुसरीणं—उन पदानुसारी ऋद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो। जो पद का अनुसरण या अनुकरण करती है वह पदानुसारी बुद्धि है। बीजबुद्धि से पद को जानकर यहाँ यह इन अक्षरों का लिंग होता है और इनका लिंग नहीं होता इस प्रकार विचार कर समस्त श्रुत के अक्षर और पदों को जाननेवाली पदानुसारी बुद्धि है। यह ईहा और अवायावरणी कर्म के तीव्र क्षयोपशम से होती है।

९. णमो संभिण्णसोदाराणं—संभिन्न श्रोतृ जिनों को नमस्कार हो। एक अक्षौहिणी में नौ हजार हाथी, एक के आश्रित सौ रथ, एक-एक रथ के आश्रित सौ घोड़े और एक-एक घोड़े के आश्रित सौ मनुष्य होते हैं।

ऐसी चार अक्षौहिणी अक्षर-अनक्षर स्वरूप अपनी-अपनी भाषाओं से यदि युगपत् बोले तो भी "संभिन्नश्रोतृ" युगपत् सब भाषाओं को ग्रहण करके प्रतिपादन करता है। इनसे संख्यातगुणी भाषाओं से भरी हुई तीर्थंकर मुख से निकली हुई ध्वनि के समूह को युगपत् ग्रहण करने में समर्थसंभिन्न श्रोतृ के विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह बुद्धि बहु-बहुविध और क्षिप्र ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से होती है।

१०. णमो सयं बुद्धाणं—उन स्वयंबुद्ध जिनों को नमस्कार हो। जो वैराग्य का किंचित् कारण देखकर परोपदेश की कोई अपेक्षा न रखकर स्वयं ही जो वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे स्वयंबुद्ध कहलाते हैं।

११. णमो पत्तेय बुद्धाणं—उन प्रत्येक बुद्ध जिनों को नमस्कार हो जो परोपदेश के बिना किसी एक निमित्त से वैराग्य को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे नीलाञ्जना को देखकर आदिनाथ भगवान् को।

१२. णमो बोहिय बुद्धाणं—उन बोधितबुद्ध जिनों को नमस्कार हो जो भोगों में आसक्त महानुभाव अपने शरीर आदि में आशाश्वत रूप को देखकर परोपदेश से वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे बोधितबुद्ध जिन हैं।

१३. णमो उजुमदीणं—उन ऋजुमति मन:पर्यायज्ञानियों को नमस्कार हो। जो सरलता से मनोगत, सरलता से वचनगत व सरलता से कायगत अर्थ को जानने वाले हैं।

१४. णमो विउलमदीणं—उन विपुलमति मन:पर्ययज्ञानियों को नमस्कार हो। जो ऋजु या अनृजु मन-वचन-काय में स्थित दोनों ही प्रकारों से उनको अप्राप्त और अर्धप्राप्त वस्तु को जानने वाले विपुलमति हैं।

१५. णमो दसपुव्वीणं—अभिन्न दसपूर्वीक जिनों को नमस्कार हो। ऐसा क्यों ? भिन्न और अभिन्न के भेद से दसपूर्वीक के दो भेद हैं। उनमें ग्यारह अंगों को पढ़कर पश्चात् परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका इन पाँच अधिकारों में निबद्ध दृष्टिवाद को पढ़ते समय उत्पादपूर्व से लेकर पढ़ने वालों के दसम पूर्व विद्यानुप्रवाद के समाप्त होने पर अंगुष्ठ-प्रसेनादि सात सौ क्षुद्रविद्याओं से अनुगत रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याएँ

"भगवन् क्या आज्ञा है" ऐसा कहकर उपस्थित होती है। इस प्रकार उपस्थित सब विद्याओ के जो लोभ को प्राप्त होता है वह भिन्न दसपूर्वी है, इनके जिनत्व नही रह पाता/क्योकि इनके महाव्रत नष्ट हो जाते है। किन्तु जो कर्मक्षय के अभिलाषी होकर उनमे लोभ नही करते वे अभिन्नदसपूर्वी कहलाते है।

१६. **णमो चउदसपुव्वीणं**—उन चौदहपूर्वधारी जिनो को नमस्कार है। जो सफल श्रुतधारक होने से चौदहपूर्वी कहलाते है।

यद्यपि अंग व चौदह पूर्वो मे जिनवचनो की अपेक्षा समानता है तथापि चौदह पूर्व की समाप्ति करके रात्रि मे कायोत्सर्ग मे स्थित साधु की, प्रभात समय मे भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवो द्वारा महापूजा (शख काहल आदि के शब्दो से) की जाती है। [विद्यानुवाद और लोकबिन्दुसार का महत्व है क्योकि इनमे देवपूजा पायी हाती है]

चौदहपूर्वीधारक की विशेषता है कि ये मिथ्यात्त्व को प्राप्त नही होते और उस भव मे असयम को भी प्राप्त नही होते है।

१७ **णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं**—अट्ठांगमहानिमित्तो मे कुशलता को प्राप्त जिनो को नमस्कार हो।

जो अग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष इन आठ निमित्तो के द्वारा जन समुदाय के शुभाशुभ जानने वाले है।

१८. **णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं**—उन विक्रियाऋद्धिधारकजिनो को नमस्कार हो जो अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामरूपित्व इस प्रकार विक्रिया ऋद्धि को प्राप्त जिन है।

१९. **णमो विज्जाहराणं**—उन विद्याधर जिनो को नमस्कार हो। जाति, कुल और तप विद्या के भेद से विद्याएँ तीन प्रकार की है। स्वकीय मातृपक्ष से प्राप्त विद्याएँ जाति विद्याएँ है और पितृपक्ष से प्राप्त हुए कुल विद्याएँ है तथा षष्ठम और अष्टम उपवास आदि करके सिद्ध गई तपविद्याएँ हैं। यहाँ सिद्ध हुई समस्त विद्याओ के कार्य के परित्याग से उपलक्षित

जिनों को विद्याधर स्वीकार किया गया है। जो सिद्ध हुई विद्याओं से काम लेने की इच्छा नहीं करते, केवल अज्ञान निवृत्ति के लिये उन्हें धारण करते हैं, वे विद्याधर जिन हैं।

२०. **णमो चारणाणं**—उन चारण ऋद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो। जो जल-जंघा-तन्तु-फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणी के भेद से चारण ऋद्धि आठ प्रकार की हैं। जल, जंघा आदि आठ का आलम्बन लेकर गमन में कुशल ये ऋषिगण जीवों को पीड़ा न पहुँचाकर सुखपूर्वक गमन करते हैं।

२१. **णमो पण्णसमणाणं**—उन प्रज्ञाश्रमण जिनों को नमस्कार हो। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, परिणामिकी इस प्रकार प्रज्ञा चार प्रकार की है। विनय से अधीत श्रुतज्ञान आदि प्रमादवश विस्मृत हो जाय तो उसे औत्पत्तिकी प्रज्ञा परभव में उपस्थित करती है और केवलज्ञान को बुलाती है। विनय से श्रुत के बारह अंगों का अवधारण करके देवों में उत्पन्न होकर पश्चात् अविनष्ट संस्कार के साथ मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले इस भव में पढ़ने, सुनने, व पूछने आदि के व्यापार से रहित जीव की प्रज्ञा औत्पत्तिकी कहलाती है।

विनयपूर्वक बारह अंगों को पढ़ने वाले के उत्पन्न हुई प्रज्ञा वैनयिकी है।

गुरु के उपदेश बिना तपश्चरण से उत्पन्न बुद्धि कर्मजा है अथवा औषध सेवा के बल से उत्पन्न बुद्धि भी कर्मजा है और अपनी-अपनी जातिविशेष से उत्पन्न बुद्धि पारिणामिका कही जाती है।

२२. **णमो आगासगामीणं**—उन आकाशगामी जिनों को नमस्कार हो। जो आकाश में इच्छानुसार मानुषोत्तर पर्वत से घिरे हुए इच्छित प्रदेशों में गमन करने वाले हैं।

प्र०—आकाशचारण और आकाशगामी में क्या भेद है ?

उ०—चरण, चारित्र संयम व पापक्रियानिरोध एकार्थवाची हैं। जीव पीड़ा के बिना पैर उठाकर गमन करने वाले आकाश चारण हैं, पल्यंकासन, कायोत्सर्गासन, शयनासन और पैर उठाकर इत्यादि सब प्रकारों से आकाश

में गमन करने में समर्थ ऋषि आकाशगामी कहे जाते हैं। तप बल से आकाश में गमन करने वाले इन जिनों को नमस्कार हो।

२३. **णमो आसीविसाणं**—उन आशीर्विष जिनों को नमस्कार हो। अविद्यमान अर्थ की इच्छा का नाम आशिष है, आशिष है विष जिनका वे आशीर्विष कहे जाते हैं। मर जाओ इस प्रकार जिसके प्रति निकला वचन उसको मारने में निमित्त होता है, भिक्षा के लिये भ्रमण करो, शिर का छेद हो इस प्रकार जिनके वचन व्यक्तिविशेष के लिये उस-उस कार्य में निमित्त होता है वे आशीर्विष नामक साधु हैं। अथवा

आशिष है अविष अर्थात् अमृत जिनका वे आशीर्विष है। विष से पूरित स्थावर अथवा जंगम जीवों के प्रति "निर्विष हों" इस प्रकार निकला वचन जिनके लिये जिलाता है व्याधि, दारिद्रय आदि के विनाश हेतु निकला जिनका वचन उस कार्य को करता है वे आशीर्विष हैं। यहाँ सूत्र का अभिप्राय है कि तप के प्रभाव से जो इस प्रकार की शक्तियुक्त होते हुए भी जो निग्रह व अनुग्रह नहीं करते हैं वे आशीर्विष जिन हैं।

२४. **णमो दिट्ठिविसाणं**—दृष्टिविष जिनों को नमस्कार हो। दृष्टि शब्द से यहाँ चक्षु और मन का ग्रहण किया है। रुष्ट होकर वह यदि "मारता हूँ" इस प्रकार देखते हैं, सोचते हैं व क्रिया करते हैं, जो मारते हैं, तथा क्रोधपूर्वक अवलोकन से वह अन्य भी अशुभ कार्य को करने वाले दृष्टि विष हैं।

इसी प्रकार दृष्टि अमृतो का भी लक्षण जानना चाहिये। इन शुभ-अशुभ लब्धि से युक्त तथा हर्ष व क्रोध रहित छह प्रकार के दृष्टिविष जिनों को नमस्कार हो।

२५. **णमो उग्गतवाणं**—उग्र तप धारक जिनों को नमस्कार हो। उग्रतप ऋद्धि के धारक दो प्रकार के होते हैं—१. उग्रोग्र तप २. अवस्थित उग्र तप। जो एक उपवास कर पारणा कर दो उपवास, पश्चात् पारणा फिर तीन उपवास कर पारणा, इस प्रकार एक अधिक वृद्धि के साथ जीवन पर्यन्त तीन गुप्तियों से रक्षित होकर उपवास करने वाले उग्रोग्रतपधारक हैं।

दीक्षा के लिये एक उपवास करके पारणा करे पश्चात् एक दिन के अन्तराल से ऐसा करते हुए किसी निमित्त से षष्ठोपवास हो गया। फिर एक षष्ठोपवास वाले के अष्टमोपवास हो गया। इस प्रकार दसम-द्वादशम आदि क्रम से नीचे न गिरकर जो जीवनपर्यंत विहार करता है। वह अवस्थित उग्रतप का धारक कहा जाता है। इस तप का उत्तम फल मोक्ष ही है।

२६. णमो दित्ततवाणं—दीप्ततप ऋद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो। दीप्ति का कारण होने से तप को दीप्त कहते हैं। दीप्त है तप जिनका वे दीप्त तप हैं। चतुर्थ व छट्टम आदि उपवासों के करने पर जिनका शरीर-गत तेज तपजनित लब्धि के माहात्म्य से प्रतिदिन शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ता जाता है वे ऋषि दीप्त तप कहलाते हैं उन्हें नमस्कार है।

२७. णमो तत्ततवाणं—तप्ततप ऋद्धिधारकों को नमस्कार हो। जिनके तप के द्वारा मल-मूत्र शुक्रादि तप्त अर्थात् नष्ट कर दिया जाता है, वे उपचार से तप्ततप कहलाते हैं। और जिनके द्वारा ग्रहण किये हुए चार प्रकार के आहार का तपे हुए लोहपिंड द्वारा आकृष्ट पानी के समान नीहार नही होता है वे तप्ततप ऋद्धिधारक जिन हैं।

२८ णमो महातवाणं—महातप ऋद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो। महत्व के हेतुभूत तप को महान् कहते हैं, वह जिनके होता है वे महातप ऋषि हैं। वे महातपधारक अणिमादि आठ, जलचारण आदि आठ गुणों से सहित, प्रकाशमान शरीरयुक्त, दो प्रकार अक्षीण ऋद्धिधारक, सर्वौषधिरूप, समस्त इन्द्रों से अनन्तगुणा बलधारी, आशार्विष-दृष्टिविषऋद्धि धारक, तप ऋद्धि से युक्त व समस्त विद्याधारी होते हैं। मति-श्रुत, अवधि मन:पर्ययज्ञान से त्रिलोक के व्यापार को जानने वाले होते हैं। ऐसे महातप ऋद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो।

२९. णमो घोरतवाणं—घोर तपधारी ऋद्धि जिनों को नमस्कार हो। अनशन आदि बारह तपों में मास का उपवास, अवमौदर्य में एक ग्रास, वृत्तिपरिसंख्यान में चौराहे में भिक्षा की प्रतिज्ञा, रस परित्यागों में उष्ण जलयुक्त ओदन का भोजन, विविक्तशय्यासनों में वृक, व्याघ्र आदि

हिंस्र जीवो से सेवित अटवियों में निवास, कायक्लेशों में जहाँ अति ठंडक या अति गर्मी पड़ती है ऐसे प्रदेशों में, वृक्षमूल में, खुले आकाश आदि मे निवास, आतापन योग आदि का ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जो इस प्रकार बाह्य में उत्कृष्ट तप करते है। जिन्हे देखते ही कायर जीव भय को प्राप्त होते है। ऐसे ही अन्तरंग मे भी कठोर तप को धारण करने वाले घोर तप ऋद्धि के धारक जिनो को नमस्कार हो।

३०. णमो घोर गुणाणं—घोरगुण जिनों को नमस्कार हो। घोर अर्थात् रौद्र है गुण जिनके वे घोरगुण कहे जाते हैं।

शंका—चौरासी लाख गुणो के घोरत्व कैसे संभव है ?

समाधान—घोर कार्यकारी शक्ति को उत्पन्न करने के कारण उनको घोरत्व संभव है। जिन शब्द की अनुवृत्ति होने से यहाँ घोरत्व अपेक्षा अतिप्रसंग दोष नही आता है।

३१. णमो घोर परक्कमाणं—घोर पराक्रम ऋद्धिधारक जिनों को नमस्कार हो। तीन लोक का उपसंहार करने, पृथ्वीतल को निगलने, समस्त समुद्र के जल को सुखाने, जल, अग्नि तथा शिला पर्वतादि को बरसाने की शक्ति का नाम घोरपराक्रम है। यहाँ "जिन" शब्द की अनुवृत्ति होने से क्रूर कर्म करने वाले आसुरो को नमस्कार का अतिप्रसंग प्राप्त नहीं होता। क्योंकि जलादि सुखाने एवं अग्नि, शिलादि वर्षा की शक्ति देवगति के देवो मे भी पाई जाती है।

प्र०—घोर गुण और घोर पराक्रम मे क्या अन्तर है ?

उ०—गुण और पराक्रम दोनो में एकत्व नहीं है, क्योंकि गुण से उत्पन्न हुई शक्ति को पराक्रम कहते हैं। गुण कारण है पराक्रम उसका कार्य है।

३२. णमोऽघोरगुणबंभयारीणं—उन अघोर गुण ब्रह्मचारी जिनों को नमस्कार हो। ब्रह्म का अर्थ १३ प्रकार का चारित्र है। क्योंकि यह चारित्र शांति का पोषण करने मे हेतु है। अघोर अर्थात् शान्त हैं गुण जिसमें वह अघोरगुण है अघोर ब्रह्म का आचरण करने वाले अघोरगुणब्रह्मचारी कहलाते है। जिनको तप के प्रभाव से डमरी, ईति, रोग, दुर्भिक्ष, वैर,

कलह, वध, बन्धन, रोध आदि को शान्त करने की शक्ति प्राप्त हुई है [सूत्र में अघोर का अकार लोप हो गया है]

३३. णमो आमोसहिपत्ताणं—आमर्षौषधिजिनों को नमस्कार हो। जिनको आमर्ष अर्थात् स्पर्श औषधपने को प्राप्त है। अर्थात् तप के प्रभाव से जिनका स्पर्श औषधपने को प्राप्त हो गया है उनको आमर्षौषधि जिन कहते हैं, उन्हें नमस्कार हो।

शंका—इन्हें अघोर गुण ब्रह्मचारी जिनों में अन्तर्भाव कर लेना चाहिये ?

उत्तर—नहीं। क्योंकि इनके मात्र व्याधि नष्ट करने में ही शक्ति देखी जा सकती है।

३४. णमो खेल्लोसहिपत्ताणं—खेल्लोषधि जिनों को नमस्कार हो। श्लेष्म, लार, सिंहाण अर्थात् नासिका-मल और विप्रुष आदि की खेल संज्ञा है। जिनका यह खेल औषधित्व को प्राप्त हो गया है।

३५. णमो जल्लोसहिपत्ताणं—जल्लौषधि प्राप्त जिनों को नमस्कार हो। बाह्य अंग-मल जल्ल कहलाता है। जिनका बाह्य अंग मल तप के प्रभाव से औषधिपने को प्राप्त हो गया है वे जल्लौषधि प्राप्त जिन है।

३६. णमो विप्पोसहिपत्ताणं/णमो विट्ठोसहिपत्ताणं (ध.पु.९)—विप्नुडौषधि प्राप्त योगियों को नमस्कार हो। विप्नुड् नाम ब्रह्मबिन्दु अर्थात् वीर्य का है, जिनका वीर्य ही औषधिपने को प्राप्त हो गया है उन विप्नुडोषधि प्राप्त योगी जिनों को नमस्कार। दूसरा पाठ है "विट्ठोसहिपत्ताणं" उसका अर्थ है जिनका विष्टा ही औषधरूप को प्राप्त हो गया है उन विष्ठौषधि जिनों को नमस्कार हो।

३७. णमो सव्वो सहिपत्ताणं—सर्वौषधि जिनों को नमस्कार हो। रस रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा शुक्र, फुप्फुस, खरीष, कालेय, मूत्र, पित्त, आँतड़ी, उच्चार अर्थात् मल आदिक सब जिनके औषधिपने को प्राप्त हो गये हैं वे सर्वौषधि जिन हैं।

३८. णमो मणबलीणं—मनबल ऋद्धि युक्त जिनों को नमस्कार हो। बारह अंगों में निर्दिष्ट त्रिकालविषयक अनन्त अर्थ व व्यञ्जन पर्यायों से

व्याप्त छह द्रव्यो का निरन्तर चिन्तन करने पर भी खेद को प्राप्त नही होना मन बल है। यह जिनके है वे मनबली है। यह मनबल लब्धि तप के प्रभाव से प्राप्त होती है। अन्यथा बहुत वर्षो मे बुद्धिगोचर होने वाला बारह अंगो का अर्थ एक मुहूर्त मे चित्तखेद को कैसे न करेगा, करेगा ही।

३९. णमो वचिबलीणं—वचनबली ऋषियो/जिनो को नमस्कार हो। तप के माहात्म्य से जिनके इस प्रकार का वचनबल उत्पन्न हो गया है कि बारह अंगो का बहुत बार प्रति वाचन करने पर भी खेद को प्राप्त नही होते है।

४०. णमो कायबलीणं—कायबली जिनो को नमस्कार हो। जो तीनो लोको को हाथ की अँगुली से ऊपर उठाकर अन्यत्र रखने मे समर्थ है वे कायबली जिन है। चारित्र विशेष से यह सामर्थ्य प्राप्त होता है।

४१. णमो खीरसवीणं—क्षीरस्रावी जिनो को नमस्कार हो। क्षीर का अर्थ दूध है। विषसहित वस्तु से भी क्षीर को बहाने वाले क्षीरस्रावी कहलाते है। हाथरूपी पात्र मे गिरे हुए सब आहारो को क्षीरस्वरूप उत्पन्न करने वाली शक्ति भी कारण मे कार्य का उपचार होने से क्षीरस्रावी कही जाती है।

शंका—अन्य रसो मे स्थित द्रव्यो का तत्काल ही क्षीर स्वरूप से परिणमन कैसे संभव है ?

समाधान—असंभव नही, क्योकि जिस प्रकार अमृत समुद्र मे गिरे हुए विष का अमृत रूप परिणमन होने मे कोई विरोध नही है, उसी प्रकार तेरह प्रकार चारित्र समूह से घटित अंजुलिपुट मे गिरे हुए सब आहारो का क्षीर रूप परिणमन होने मे कोई विरोध नही है।

४२. णमो सप्पिसवीणं—सर्पिस्रावी जिनो को नमस्कार हो। सर्पिष् का अर्थ घी है। जिनके तप के प्रभाव से अंजुलि पुट मे गिरे हुए सब आहार घृतरूप परिणमन कर जाते है वे सर्पिस्रावी जिन होते हैं।

४३. णमो महुरसवीणं—मधुस्रावी जिनों को नमस्कार हो। मधु शब्द से गुड़, खाँड व शर्करा आदि का ग्रहण किया गया है। क्योंकि

मधुरस्वाद के प्रति इनमें समानता पायी जाती है, जो हाथ में रखे हुए समस्त आहारों को मधु, गुड़, खाँड, व शक्कर के स्वाद रूप परिणमन कराने में समर्थ हैं वे मधुस्रावी जिन हैं।

४४. **णमो अमियसवीणं**—अमृतस्रावी जिनों को नमस्कार हो। जिनके हस्त पुट को प्राप्त कर आहार अमृतरूप से परिणत होता है वे अमृतस्रावी जिन हैं। यहाँ अवस्थित होते हुए जो देवाहार को ग्रहण करते हैं वे अमृतस्रावी जिन हैं।

४५. **णमो अक्खीण-महाणसाणं**—अक्षीण महानस जिनों को नमस्कार हो। यहाँ चूँकि अक्षीण महानस शब्द देशामर्शक है। अतएव उससे वसति अक्षीण जिनों का भी ग्रहण होता है। महानस का अर्थ है रसोईघर जिनको भात, घृत व भिगोया हुए अन्न स्वयं परोस देने के पश्चात् चक्रवर्ती की सेना को भोजन कराने पर भी समाप्त नहीं होता वे अक्षीण महानस ऋद्धिधारक जिन हैं तथा जिनके चार हाथ प्रमाण भी गुफा में रहने पर चक्रवर्ती का सैन्य भी उस गुफा में रह जाता है, वे अक्षीणावासधारक जिन हैं।

४६. **णमो वड्ढमाणाणं**—वर्द्धमान जिन को नमस्कार हो। यहाँ महावीर भगवान् को पुनः नमस्कार करने का भाव यह है कि जिनके पास धर्मपथ प्राप्त हो उसके निकट विनय का व्यवहार करना चाहिये। तथा उनका शिर, अंग आदि पंचांग व मन-वचन-काय से नित्य ही सत्कार करना चाहिये। यह जैन-परम्परा का नियम है। उस नियम की पुष्टि यहाँ प्रयोजन है।

४७. **णमो सिद्धायदणाणं**—लोक में सब सिद्धायतनों को नमस्कार हो। यहाँ "सब सिद्ध" इस वचन से पूर्व में कहे गये समस्त जिनों को ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि जिनों से पृथग्भूत देशसिद्ध व सर्वसिद्ध पाये नहीं जाते। सब सिद्धों के जो आयतन हैं वे सर्व सिद्धायतन हैं। इससे कृत्रिम व अकृत्रिम जिनगृह, जिनप्रतिमा तथा ईषत्प्राग्भार, ऊर्जयन्त, चम्पापुर व पावापुर/पावानगर आदि क्षेत्रों व निषिधिकाओं का भी ग्रहण करना चाहिये।

४८. **णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाणबुद्धिरिसीणं चेदि** —

ऋषि, बुद्ध, वर्धमान, महावीर, महतिमहावीर जिन को नमस्कार हो। अर्थात् जन्म से ही मतिश्रुत, अवधि ज्ञानत्रयधारक, पूजा के अतिशय को प्राप्त भगवान् महावीर, वर्धमान, बुद्ध और ऋषि को नमस्कार हो।

ऋषि—महावीर भगवान् प्रत्यक्षवेदी थे और ऋद्धिधारक भी थे, अत: वे ऋषि थे।

बुद्ध—हेय-उपादेय के विवेक से सम्पन्न होने से महावीर भगवान् बुद्ध थे। इस प्रकार—

जस्संतियं धम्म-पहं णियंच्छे, तस्संतियं वेणइयं पउं जे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं,सक्कारए तं सिर-पंचमेण ।।१।।

अन्वयार्थ—(जस्संतियं) जिन भगवान् के समीप (धम्मं-पहं) धर्म-पथ को (णियंच्छे) नियम से प्राप्त हुआ हूँ (तस्संतियं) उन भगवान् के समीप में (वेणइयं पउं जे) विनय से प्रयुक्त होता हूँ। (काएण-वाचा-मणसा) काय से, वचन से और मन से (वि) भी (णिच्चं) नित्य (तं) उनको (सिर पंचमेण सक्कारए) पंचांग से नमस्कार करता हूँ। अर्थात् जिन जिनेन्द्रदेव के समीप मैं धर्मपथ को नियम से प्राप्त हुआ हूँ उन जिनदेव के समीप में विनय से प्रयुक्त होता हूँ, और काय से वचन से, मन से भी नित्य ही उनको पंचांग (दो हाथ, दो पैर और एक सिर) नमस्कार भी करता हूँ।

सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण, भयवदो, महदिमहावीरेण, महा-कस्सवेण, सव्वण्हुणा, सव्वलोग-दरिसिणा, सदेवासुर-माणुसस्स लोयस्स, आगदिगदि-चवणोववादं, बंधं, मोक्खं, इड्ढिं, ठिदिं, जुदिं अणुभागं, तक्कं, कलं, मणो, माणसियं, भुत्तं, कयं, पडिसेवियं, अदिकम्मं, अरुह-कम्मं, सव्वलोए, सव्वजीवे, सव्वभावे, सव्वं समं जाणंता पस्संता विहर-माणेण, समणाणं पंचमहव्वदाणि, राइभोयण-वेरमण-छट्ठाणि, अणुव्वदाणि स-भावणाणि, समाउग पदाणि, स-उत्तर-पदाणि, सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि ।

तं जहा–

अन्वयार्थ—(सुदं मे आउस्संतो !) हे आयुष्मान् भव्यों ! सुनो (इह खलु समणेण, भयवदो, महदिमहावीरेण, महाकस्सवेण, सव्वण्हुणा सव्वलोग-दरिसिणा) इस भरतक्षेत्र में काश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महति महावीर तीर्थंकर देव ने (सदेवासुर, माणुसस्स लोयस्स) लोक के देव, असुर, मनुष्यों सहित प्राणी गण की (आगदि) आगति (गदि) गति (चवणोववादं) च्यवन और उपपाद (बंधं-मोक्खं) बंध, मोक्ष (इड्ढिं) ऋद्धि (ठिदिं) स्थिति (जुदिं) द्युति-चमक (अणुभागं) अनुभाग, कर्मों की फलदान शक्ति (तक्कं) तर्कशास्त्र (कलं) बहत्तर कला (मणो-माणसियं) परकीय चित्त, मन की चेष्टा (भूतं) पूर्व में अनुभूत (कयं) पूर्वकृत (पडिसेवियं) पुनः सेवन किये गये (आदिकम्मं) युग की आदि मे प्रवृत्त असि, मसि, कृषि आदि षट्कर्म (अरुहकम्मं) अकृत्रिम द्वीप, समुद्र चैत्यालय आदि कर्म (सव्वलोए) सर्वलोक में (सव्वजीवे) सब जीवो को (सव्वभावे) सब भावों व पर्यायों को (समं जाणंता) एक साथ जानते हुए (पस्संता) देखते हुए (विहरमाणेण) विहार करते हुए (स-भावणाणि) पच्चीस भावनाओं सहित (समाउग पदाणि) मातृका पदों सहित (स-उत्तरपदाणि) उत्तर पदों सहित (समणाणं पंचमहव्वदाणि) श्रमणों के पाँच महाव्रत (राइ-भोयण-वेरमण-छट्ठाणि) रात्रिभोजन षष्ठम अणुव्रत रूप (सम्मं धम्मं) समीचीन धर्मों का (उवदेसिदाणि) उपदेश दिया है। तं (जैसा कहा है वह इस प्रकार है—

भावार्थ—हे आयुष्मान् भव्यात्माओं ! सुनिये इस भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थंकर, काश्यप गोत्र में उत्पन्न, श्रमण, भगवान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महावीर प्रभु ने तीन लोक के जीवों की आगति कहाँ से आगमन कहाँ गमन, च्युत होना, उत्पत्ति, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, द्युति, कर्मों की फलदान शक्ति, तर्कशास्त्र, गणित आदि बहत्तर कला, दूसरों की मानसिक चेष्टा, पूर्व में अनुभूत, पूर्व में किये गये, पुनः-पुनः सेवन किये गये, युग की आदि में होने वाले असि, मसि आदि छः कर्म, अकृत्रिम चैत्यालय, द्वीप, समुद्र आदि सम्बन्धित कर्म, तीन लोक में समस्त जीवों के समस्त भावों पर्यायों को एक साथ जानते हुए, देखते हुए २५ भावनाओं, अष्ट मातृकाओं, उत्तर पदों सहित श्रमणों के पाँच महाव्रत व रात्रिभोजन विरति नामक छठे अणुव्रत रूप समीचीन धर्म का उपदेश दिया है।

जिनेन्द्र देव ने महाव्रतो का स्वरूप जैसा कहा है वह इस प्रकार है—

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, तिदिए, महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं, चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमणं चेदि ।

अन्वयार्थ— (पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं) प्रथम महाव्रत मे प्राणानिपात/प्राणो की हिंसा से विरक्ति (विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं) द्वितीय महाव्रत मे मृषावाद से विरक्ति (तिदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं) तीसरे महाव्रत मे अदत्तादान से विरक्ति (चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं) चतुर्थ महाव्रत मे मैथुन से/अब्रह्म से विरति (पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं) पञ्चम महाव्रत मे परिग्रह से विरति (च) और (छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमणं इदि) छठं अणुव्रत मे रात्रिभुक्ति से विरक्ति इस प्रकार ।

भावार्थ—मुनियो को पहले अहिंसाव्रत मे प्राणियो की हिंसा का त्याग, दूसरे सत्य महाव्रत मे झूठ बोलने का त्याग, अचौर्य महाव्रत मे अदत्त वस्तु के ग्रहण का त्याग, चतुर्थ महाव्रत मे अब्रह्म का त्याग और पंचम परिग्रह त्याग महाव्रत मे सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना चाहिये ।

अब प्रथम अहिंसा महाव्रत में मुनि के लिये सम्पूर्ण हिंसा से विरति को दिखाते हैं

तत्थ पढमे महव्वदे सव्वं भंते ! पाणादिवादं पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण-मणसा, वचसा, काएण, से एइंदिया वा, बे इंदिया वा, ते इंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, पुढवि-काइए वा, आऊ-काइए वा, तेऊ-काइए वा, वाऊ-काइए वा, वणप्फदि-काइए वा, तस-काइए वा, अंडाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, संसेदिमे वा, समुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा, तसे वा, थावरे वा, बादरे वा, सुहुमे वा, पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा, पज्जत्ते वा, अपज्जत्ते वा, अविचउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज,

णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज, अण्णेहिं पाणे, अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमणिज्ज । तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, वोस्सरामि । पुव्विंचणं भंते ! जं मि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं पाणे अदिवादिदे, अण्णेहिं पाणे, अदिवादाविदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं वि ।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलि-पण्णत्तस्स-धम्मस्स-अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चा-हिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमा-बलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्स, विहू-सियस्स, णवसु-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्ति-मग्ग-पयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, अण्णाणेण वा, अदंसणेण वा, अवीरिएण वा, असंयमेण वा, असमणेण वा, अणहि-गमणेण वा, अभिमंसिदाए वा, अबोहिदाए वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण वि कारणेण जादेण वा, आलसदाए, बालिसदाए, कम्म-भारिगदाए, कम्मगुरु-गदाए, कम्म-दुच्चरिदाए, कम्म-पुरुक्कडदाए, ति-गारव-गुरु-गदाए, अबहु-सुददाए, अविदिद-पर-मट्ठदाए, तं सव्वं पुव्वं, दुच्चरियं गरहामि । आगमेसिं च अपच्चक्खियं-पच्चक्खामि, अणालोचियं-आलोचेमि, अणिंदियं-णिंदामि, अगरहियं-गरहामि, अपडिक्कंतं-पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि, आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि, सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि, सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि, सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि, सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि, करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि, किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि, अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि, सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदिण्णादाणं वोस्सरामि, दिण्णं-कप्प-णिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि, बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि, अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राइ-भोयणं वोस्सरामि, दिवा-भोयण-मेग-भत्तं-पच्चुप्पणं-फासुगं-अब्भुट्ठेमि, अट्ट-

रुद्द-ज्झाणं वोस्सरामि, धम्मसुक्क-ज्झाणं अब्भुट्ठेमि, किण्ह-णील-काउ-लेस्सं वोस्सरामि, तेउ-पम्म-सुक्क-लेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि, अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि, संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि, णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि, अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि, लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि, अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदि-सयण वोस्सरामि, खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि, अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदि-भोयणं वोस्सरामि, ठिदि-भोयण-मेग-भत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणि-पत्तं वोस्सरामि, पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि, खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि, मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि, अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि, संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि, दुवादस-विह-तवो-कम्मं अब्भुट्ठेमि। मिच्छत्तं परिवज्जामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि, सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि, णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि, विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि, आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि, जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि, खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि, सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि, सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि, भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं, अणुत्तरं केवलियं-पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं संसुद्धं, सल्लघट्टाणं-सल्लघत्ताणं, सिद्धि-मग्गं, सेढि मग्गं, खंति-मग्गं, मुत्ति-मग्गं, पमुत्ति-मग्गं, मोक्ख-मग्गं, पमोक्ख-मग्गं, णिज्जाण-मग्गं, णिव्वाण-मग्गं, सव्व-दुक्ख-परिहाणि-मग्गं, सु-चरिय-परिणिव्वाण-मग्गं, जत्थ-ठिया-जीवा, सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाणयंति, सव्व-दुक्खाणमंतं करेंति। तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदो उत्तरं, अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि कयाचिवा, कुदोचिवा णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, सीलेण वा, गुणेण वा, तवेण वा, णियमेण वा, वदेण वा, विहारेण वा, आलएण वा, अज्जवेण वा, लाहवेण वा, अण्णेण वा, वीरिएण वा, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवहि-णियडि-माण-माया-मोस-मूरण, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि।

सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि। जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चाउम्मासिय) (संवच्छरिय) इरयावहि-केस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादि-चारस्स, सव्वादिचारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणु-चिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्प-सक्खियं, पर-सक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तमट्ठम्हि। "इदं मे महव्वदं, सुव्वदं, दिढव्वदं होदु, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।।"

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (तत्थ) उन पाँच महाव्रतों में (पढमे महव्वदे) प्रथम अहिंसा महाव्रत में (सव्वं) सब सूक्ष्म और स्थूल (पाणादिवादं) प्राणातिपात का (जावज्जीवं) जीवनपर्यंत (तिविहेण) तीन प्रकार (मणसा, वचसा, काएण) मन से, वचन से, काय से (पच्चक्खामि) त्याग करता हूँ। (से) वह अहिंसाव्रत संबंधी त्याग (एइंदिया वा, बेइंदिया, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा) एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय (पुढविकाइए वा आउकाइए वा, तेऊकाइए वा, वाऊकाइए वा वणप्फदिकाइए वा तस्सकाइए वा) पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक व त्रसकायिक (अंडाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, संसेदिमे वा, समुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा) अंडायिक, पोतायिक, जरायिक, रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम और उपपादिम (तसे वा थावरे वा) त्रस और स्थावर (बादरे वा सुहुमे वा) बादर और सूक्ष्म (पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा) प्राण भूत जीवे और सत्व (पज्जत्ते वा अपज्जत्ते वा) पर्याप्त और अपर्याप्त में (अविचउरासीदिजोणिप-मुह-सद-सहस्सेसु) तथा चौरासी लाख योनि के प्रमुख जीव इनमें (सयं णेव पाणादिवादिज्ज) स्वयं प्राणातिपात अर्थात् प्राणों का घात न करे (णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज) न दूसरों से प्राणों का घात करावे और (अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमणिज्ज) प्राणों का घात करने वाले अन्य जीवों की अनुमोदना भी न करे। (भंते !) हे भगवन् ! (तस्स)

उस प्रथम महाव्रत संबंधी (अइचारं पडिक्कमामि) अतिचार का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। (अप्पाणं णिंदामि गरहामि) अपनी निन्दा, गर्हा करता हूँ। (भंते !) हे भगवन् ! (पुव्विचणं) भूतकाल में उपार्जित अतिचारों का (वोस्सरामि) त्याग करता हूँ। (मए जं पि) मेरे द्वारा जो (रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा) राग-द्वेष या मोह के (वसंगदेण) वशीभूत हो (सयं पाणे) स्वयं प्राणों का (अदिवादिदे) अतिपात किया हो (अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमण्णिदे) दूसरों से प्राणों का घात कराया हो और प्राणों का अतिपात करने वालों की अनुमोदना की हो (तं वि) उसका भी मैं त्याग करता हूँ।

(इमस्स णिग्गंथस्स) यह निर्ग्रंथों का रूप है (पवयणस्स) पावन है (अणुत्तरस्स) अनुत्तर है (केवलियस्स) केवली का है (केवलि पण्णत्तस्स धम्मस्स-अहिंसा लक्खणस्स) यह केवलिप्रणीत अहिंसाधर्म लक्षण का धारक है (सच्चाहिट्ठियस्स) सत्य से अधिष्ठित है (विणय-मूलस्स) विनय का मूल है (खमा बलस्स) क्षमा का बल है (अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स) अठारह हजार शीलो से परिमंडित है (चउरासीदि-गुण-सय सहस्स विहूसियस्स) चौरासी लाख उत्तर गुणों से विभूषित है (णवसु बंभचेर गुत्तस्स) नौ प्रकार ब्रह्मचर्य से गुप्त है (णियदि लक्खणस्स) विषयों की निवृत्ति से लक्षित है (परिचाग-फलस्स) बाह्य-आभ्यन्तर त्याग का फल है (उवसमपहाणस्स) उपशम की प्रधानता सहित है (खंतिमग्गदेसयस्स) क्षमा-मार्ग का उपदेशक है (मुत्तिमग्गपयासयस्स) मुक्ति-मार्ग का प्रकाशक है (सिद्धमग्गपज्जवसाहणस्स) सिद्धि मार्ग साधन का परम प्रकर्ष है। इस परम पावन धर्म का

(से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा) क्रोध से या मान से या माया से या लोभ से या (अण्णाणेण वा अदंसणेण वा) अज्ञान से या अदर्शन से या (अवीरिएण वा) शक्ति के अभाव से या (असंयमेण वा) असंयम से या (असमणेण वा) असाधुत्वपना से या (अणहि-गमणेण वा) अनधिगम से या (अभिमंसिदाए वा[1]) बिना विचार से या (अबोहिदाए वा) अबोध से या (रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा) राग से या द्वेष से या मोह से (हस्सेण वा भएण वा) हास्य से या भय से या

१. अभिमंसिदाए वा भी पाठ है।

(पदोसेण वा, पमादेण वा पेम्मेण वा) प्रकृष्ट द्वेष से या प्रमाद से या प्रेम से या (पिवासेण वा लज्जेण वा) विषयों की गृद्धि से या लज्जा से या (गारवेण वा) गारव से या (अणादरेण वा) अनादर से या (केण वि कारणेण जादेए वा) इनमें से किसी भी कारण के होने पर या (आलसदाए) आलस्य से (बालिसदाए) कर्म प्रदेशों की बहुलता (कम्म भारिग दाए) कर्मों की शक्ति की बहुलता के भार से (कम्म गुरु गदाए) कर्मों के गुरुतर भार से (कम्म-दुच्चरिदाए) कर्मों की दुश्चरित्रता से (कम्म पुरुक्कडदाए) कर्मो की अत्यंत तीव्रता से (तिगारव-गुरु-गदाए) तीन गारव के भार से (अबहु सुददाए) श्रुत की अल्पता से (अविदिद-परमट्ठदाए) परमार्थ-ज्ञान न होने से (तं सव्वं पुव्व, दुच्चरियं वोस्सरामि) इन सब पूर्व में कहे कारणो से मेरे द्वारा जो भी दुश्चरित्र हुआ उस सबका मैं त्याग करता हूँ। (आगमेसिं च अपच्चक्खियं पच्चक्खामि) और आगामी काल के लिये जिन दोषों का अभी तक त्याग नहीं किया उनका मैं त्याग करता हूँ (अणालोचियं-आलोचेमि) जिनकी अभी तक आलोचना नहीं की उनकी आलोचना करता हूँ (अगरहियं-गरहामि) जिनकी अभीतक गर्हा नहीं की उनका गुरुसाक्षीपूर्वक गर्हा करता हूँ (अपडिक्कंत-पडिक्कमामि), जिन दोषों का प्रतिक्रमण नहीं किया, प्रतिक्रमण करता हूँ, (विराहणं वोस्सरामि, आराहणं अब्भुट्ठेमि) विराधना का त्याग करता हूँ, आराधना को स्वीकार करता हूँ (अण्णाणं-वोस्सरामि, सण्णाणं अब्भुट्ठेमि) अज्ञान का त्याग करता हूँ, सम्यग्ज्ञान को स्वीकार करता हूँ (कुदंसण वोस्सरामि सम्मदंसण अब्भुट्ठेमि) कुदर्शन का त्याग करता हूँ, सम्यग्दर्शन को स्वीकार करता हूँ, (कुचरियं वोस्सरामि-सुचरियं अब्भुट्ठेमि) कुचारित्र का त्याग करता हूँ, सुचारित्र को ग्रहण करता हूँ, (कुतवं वोस्सरामि, सुतवं अब्भुट्ठेमि) कुतप को छोड़ता हूँ सुतप को ग्रहण करता हूँ (अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि) अकरणीय/ न करने योग्य का त्याग करता हूँ, करणीय/करने योग्य स्वीकार करता हूँ (अकिरियं-वोस्सरामि, किरियं अब्भुट्ठेमि) कुकृत्य जो करने योग्य नहीं हैं उनको छोड़ता हूँ, करने योग्य सत्कृत्यों को मैं करता हूँ। (पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि) प्राणातिपात का त्याग करता हूँ अभयदान को स्वीकार करता हूँ (मोसं वोस्सरामि-सच्चं अब्भुट्ठेमि) मृषा/झूठ का त्याग करता हूँ, सत्य को

स्वीकार करता हूँ (अदिण्णादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि) अदत्तादान का त्याग करता हूं, दी गई वस्तु को नित्य स्वीकार करता हूँ (अबंभं वोस्सरामि, बंभचरियं अब्भुट्ठेमि) अब्रह्म का त्याग करता हूं, ब्रह्मचर्यव्रत को स्वीकार करता हूँ (परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि) परिग्रह का त्याग करता हूँ, अपरिग्रह व्रत को स्वीकार करता हूँ (राइभोयणं) रात्रिभोजन को (वोस्सरामि) छोड़ता हूँ। (दिवाभोयण मेग भुत्तं फासुगं अब्भुट्ठेमि) दिन मे एक बार प्रासुक भोजन को स्वीकार करता हूँ (अट्ट-रूद्ध-ज्झाणं वोस्सरामि) आर्त्त-रौद्रध्यान का मै त्याग करता हूँ (धम्म-सुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि) धर्म-शुक्लध्यान को धारण करता हूँ (किण्ह-णील-काउ-लेस्सं वोस्सरामि) कृष्ण-नील-कापोत लेश्या का त्याग करता हूँ (तेउ-पम्म-सुक्क लेस्सं अब्भुट्ठेमि) पीत/तेज, पद्म, शुक्ल लेश्या को मैं स्वीकार करता हूं (आरंभं वोस्सरामि) आरंभ का त्याग करता हूं (अणारंभं अब्भुट्ठेमि) अनारंभ को स्वीकार करता हूँ (असंजमं वोस्सरामि) असंयम का त्याग करता हूं (संजमं अब्भुट्ठेमि) संयम को ग्रहण करता हूं (सग्गंथं वोस्सरामि) सग्रंथ/परिग्रह का त्याग करता हूँ (णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि) निर्ग्रथता को ग्रहण करता हूँ (सचेलं वोस्सरामि) वस्त्रावस्था का त्याग करता हूँ (अचेलं अब्भुट्ठेमि) निर्वस्त्रता को ग्रहण करता हूँ (अलोचं वोस्सरामि) अलोच का त्याग करता हूँ (लोचं अब्भुट्ठेमि) लोच को स्वीकार करता हूं (ण्हाणं वोस्सरामि) स्नान का त्याग करता हूं (अण्हाणं अब्भुट्ठेमि) अस्नान को स्वीकार करता हूं (अखिदि-सयणं वोस्सरामि) बिस्तर आदि पर सोने का त्याग करता हूँ (खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि) भूमि-शयन को स्वीकार करता हूं (दंतवणं वोस्सरामि) दाँत धोने का त्याग करता हूँ (अदंतवणं अब्भुट्ठेमि) अदंत धौवन को स्वीकार करता हूँ (अट्ठिदि-भोयणं वोस्सरामि) बैठे-बैठे भोजन करने का त्याग करता हूँ (ठिदि-भोयण मेग भत्तं अब्भुट्ठेमि) खड़े-खड़े एक बार भोजन को स्वीकार करता हूँ, (अपाणि पत्तं वोस्सरामि) अपाणिपात्र/बर्तनों में भोजन का त्याग करता हूँ (पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि) पाणिपात्र/करपात्र को स्वीकार करता हूँ (कोहं वोस्सरामि) क्रोध का त्याग करता हूँ (खंति अब्भुट्ठेमि) क्षमा को स्वीकार करता हूँ (माणं वोस्सरामि) मान का त्याग करता हूँ (मद्दवं अब्भुट्ठेमि) मार्दव को स्वीकार करता हूँ (मायं वोस्सरामि) माया का

त्याग करता हूँ (अज्जवं अब्भुट्ठेमि) आर्जव को स्वीकार करता हूँ (लोहं वोस्सरामि) लोभ का त्याग करता हूँ (संतोसं अब्भुट्ठेमि) संतोष को स्वीकार करता हूँ (अतवं वोस्सरामि) अतप का त्याग करता हूँ (दुवादस-विह-तवो-कम्मं-अब्भुट्ठेमि) बारह प्रकार के तप कर्म को स्वीकार करता हूँ (मिच्छत्त परिवज्जामि) मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ (सम्मत्तं उवसंपज्जामि) सम्यक्त्व की शरण जाता हूँ (असीलं परिवज्जामि) अशील/कुशील का त्याग करता हूँ (सुसील-उवसपज्जामि) सुशील को स्वीकार करता हूँ (ससल्लं परिवज्जामि) शल्य का त्याग करता हूँ (णिसल्लं) नि:शल्य को (उवसंपज्जामि) स्वीकार करता हूँ (अविणयं-परिवज्जामि) अविनय का त्याग करता हूँ (विणयं उवसंपज्जामि) विनय का पालन करता हूँ (अणाचारं परिवज्जामि) अनाचार को छोड़ता हूँ (आचारं उवसंपज्जामि) आचार का पालन करता हूँ (उम्मग्गं परिवज्जामि) उन्मार्ग को छोड़ता हूँ (जिणमग्गं उवसंपज्जामि) जिन-मार्ग की शरण जाता हूँ (अखंतिं परिवज्जामि) अशांति का त्याग करता हूँ (खंति उवसंपज्जामि) शांति को धारण करता हूँ (अगुत्तिं परिवज्जामि) अगुप्ति को छोड़ता हूँ (गुत्तिं उवसंपज्जामि) गुप्ति को धारण करता हूँ (अमुत्तिं परिवज्जामि) अमुक्ति/संसार दशा का परिवर्जन करता हूँ (सुमुत्तिं-उवसंपज्जामि) सुमुक्ति को स्वीकार करता हूँ (असमाहिं परिवज्जामि) असमाधि को छोड़ता हूँ (सुसमाहिं उवसंपज्जामि) सुसमाधि को स्वीकार करता हूँ (ममत्तिं परिवज्जामि) ममत्व का परिवर्तन करता हूँ (णिममममत्ति उवसंपज्जामि) निर्ममत्व को स्वीकार करता हूँ (अभावियं भावेमि) अभावित को भाता हूँ (भावियं ण भावेमि) भावित को नही भाता हूँ।

(इमं णिग्गंथं पव्वयणं) इस निर्ग्रंथ लिंग को आगम मे मोक्षमार्ग रूप कहा गया है (अणुत्तर केवलियं पडिपुण्णं) केवलीप्रणीत यह लिंग अनुत्तर है, (णेगाइयं) रत्नत्रय रूप समूह से उत्पन्न नैकायिक है (सामाइयं संसुद्धं) समय मे होने वाला यह लिंग सामायिक है, निर्दोष होने से संशुद्ध है, विशुद्ध है (सल्लघट्टाणं-सल्लघत्ताणं) माया-मिथ्या-निदान तीन शल्यो का नाशक है (सिद्धि-मग्गं) सिद्धि का मार्ग है (सेढि मग्गं) श्रेणी का मार्ग-उपशम क्षपकश्रेणी का मार्ग है अथवा/गुण श्रेणी निर्जरा का मार्ग है (खंति मग्गं) उत्तम क्षमा का मार्ग है (मुत्तिमग्गं) मुक्ति का मार्ग

है (पमुत्ति मग्गं) प्रकृष्ट मुक्ति-मार्ग है (मोक्खमग्गं) मोक्ष का मार्ग है (पमोक्ख-मग्गं) प्रमोक्ष मार्ग है (णिज्जाण-मग्गं) निर्याण का/निर्वाण का मार्ग है (णिव्वाण मग्गं) मुक्ति का मार्ग है (सव्व दुक्ख परिहाणि मग्गं) सब दुखों के क्षय करने का मार्ग है (सुचरिय-परिणिव्वाण मग्गं) सुचारित्र के धारक मनुष्यों के परिनिर्वाण का मार्ग है (जत्थ-ठिया-जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाण-यंति सव्व दुक्खाणमंतं करेंति) जिस निर्ग्रंथ रूप चारित्र में स्थित होकर जीव सिद्ध होते हैं बुद्ध/केवलज्ञानी होते हैं, मुक्त होते हैं पूर्ण निर्वाण को प्राप्त कर सभी प्रकार के दुखों का अन्त करते हैं। (तं सद्दहामि) उस निर्ग्रंथ लिंग की मैं श्रद्धा करता हूँ (तं पत्तियामि) उसी की मै प्रतीति करता हूँ (तं रोचेमि) उसी की मैं रुचि करता हूँ (तं फासेमि) उसी का स्पर्श करता हूँ (इदो उत्तरं अण्णं णत्थि) इस निर्ग्रंथ लिंग से भिन्न अन्य कोई लिंग नही है (ण भूदं) भूतकाल में भी नहीं था (ण भविस्सदि) न भविष्यकाल में होगा (कयाचि वा कुदोचि वा) कभी भी या किसी के भी नहीं है। (णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा) ज्ञान से या दर्शन से या चारित्र से (सुत्तेण वा) या सूत्र से (सीलेण वा, गुणेण वा, तवेण वा) शील से या गुण से या तप से (णियमेण वा) नियम से या (वदेण वा, [1]विहारेण वा, आलएण वा) व्रत से या विहार से या [2]आलाप से या (अज्जवेण वा) आर्जव से या (लाहवेण[2] वा) लाभ से (अण्णेण वा) अन्य भी कारणों से (वीरिएण वा) वीर्य से (समणोमि) मैं श्रमण होता हूँ (संजदोमि) मैं संयत होता हूँ (उवरदोमि) मैं उपरत होता हूँ (उवसंतोमि) मैं उपशान्त होता हूँ (उवहि-णियडि-माण-माया-मोस-मूरण) उपधि, निकृति/वंचना, मान, माया, असत्य, मूर्च्छा (मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि) मैं मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र का त्याग करता हूँ। (सम्मणाण-सम्म दंसण-सम्म-चरितं च रोचेमि) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र की रुचि करता हूँ/श्रद्धा करता हूँ। (जं जिणवरेहिं पण्णत्तो) जो जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रज्ञप्त है (जो मए) मेरे द्वारा जो (पक्खिय) पक्ष/१५ दिनों में [चउम्मासिय] चातुर्मास में (संवच्छरिय) संवत्सार/एक वर्ष में (इरियावहि-केसलोचाइचारस्स) ईर्यापथ में, केशलोंच के अतिसार का (संथारादिचारस्स) संस्तर आदि के अतिचार का (पंथादिचारस्स) पंथ आदि अतिचार का

१. कृतिकर्म मे "णिहारेण" वा भी पाठ है। २. कृतिकर्म मे "आलापेण" वा भी पाठ है।

(सव्वादिचारस्स) सभी अतिचार का (उत्तमट्ठस्स) उत्तमार्थ का प्रतिक्रमण करता हूँ (च) और (सम्मचरित्तं रोचेमि) सम्यग्चारित्र की रुचि/श्रद्धा करता हूँ।

(महत्थे) महार्थ (महागुणे) महान् गुणो मे (महाणुभावे) महानुभाव (महाजसे) महायश (महापुरिसाणु-चिण्णे) महापुरुषानुचिह्न ऐसे (पढमे-महव्वदे) प्रथम अहिंसा महाव्रत मे (पाणादिवादादो वेरमणं) प्राणातिपात विरति लक्षण मे (उवट्ठावण मंडले) व्रत-आरोपण होने पर मै श्रमण होता हूँ। (अरहंत-सक्खियं) अरहंत साक्षिक (सिद्ध सक्खियं) सिद्ध साक्षिक (साहु-सक्खियं) साधु साक्षिक (अप्प सक्खियं) आत्मा साक्षिक (पर-सक्खियं) पर साक्षिक (देवता-सक्खियं) देवता साक्षिक (उत्तमट्ठम्हि) उत्तमार्थ के लिये धारण किया गया (इंद मे महव्वदं यह मेरा अहिंसा) महाव्रत (सुव्वदं) सुव्रत हो (दिढव्वदं होदु) दृढव्रत हो (णित्थारयं पारयं तारयं) संसारसमुद्र से निस्तारक, पार करने वाला, तारने वाला हो (आराहियं) आराधित यह व्रत (चावि ते मे भवतु) मेरे और शिष्य गणो के लिये संसार का तारक हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! प्रथम अहिंसा महाव्रत मे मै सूक्ष्म-स्थूल सभी प्रकार जीवो के प्राणातिपात का त्याग करता हूँ। जीवनपर्यन्त मन-वचन-काय से त्रिधा प्रकार से एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक, अण्डज, पोतज, जरायुज, रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम और उपपादिम, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, पर्याप्त, अपर्याप्त चौरासी लाख योनि के प्रमुख जीवो का प्राणो का मै स्वयं घात नही करता हूँ, अन्य जीवो से भी इनका घात नही कराता हूँ और प्राणो का घात करने वाले अन्य किसी की मै अनुमोदना भी नही करता हूँ। अर्थात् मैं मन-वचन-काय, कृत, कारित अनुमोदना से चौरासी लाख योनियो के जीवो के घात का त्याग करता हूँ।

हे भगवन् ! मैं उस अहिंसा महाव्रत मे लगे अतीचारो का प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। हे भगवन् ! अतीत काल मे व्रतो मे उपार्जित अतीचारो का मै त्याग करता हूँ।

भगवन्! मेरे द्वारा जो भी राग-द्वेष-मोह के वश से स्वयं जीवों के प्राणों को घात किया गया हो, अन्यों के द्वारा प्राणों का घात करवाया गया हो अथवा अन्यों के द्वारा प्राणों का घात किया जाने पर उसकी अनुमोदना की गई हो तो मैं उन सबका त्याग करता हूँ।

यह जो निर्ग्रंथ का रूप है पावन है, अथवा प्रवचन में प्रतिपादित है, अनुत्तर है अर्थात् इससे भिन्न कोई उत्कृष्ट रूप नहीं है, केवलि भगवन्तों से प्रणीत है, अहिंसा धर्मरूप लक्षण का धारक है, सत्य से अधिष्ठित है, विनय का मूल है, क्षमा जिसका बल है, अथवा क्षमा से बलिष्ठ है, अठारह हजार शीलों से परिमंडित है, चौरासी लाख उत्तरगुणों से अलंकृत है, नव प्रकार ब्रह्मचर्य से सुरक्षित है, निवृत्ति रूप लक्षण से युक्त है, बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह के त्याग का फल है, क्रोधादि कषायों की उपशमता रूप होने से उपशम की जहाँ प्रधानता है, क्षमा के मार्ग का उपदेशक है, मोक्षमार्ग का प्रकाशक है अर्थात् कर्मों की एकदेश निर्जरा का प्रकाशक है, सिद्धिमार्ग अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा या अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति के हेतु यथाख्यातचारित्र का परम प्रकर्ष है। ऐसे इस परम धर्म का क्रोध से, या मान से, या माया से या लोभ से या अज्ञान से या अदर्शन से या शक्ति से या असंयम से या, असाधुत्वपन से या अनधिगम से या अविचार, अबोध, राग, द्वेष, मोह, हास्य, भय, प्रकृष्ट द्वेष, प्रमाद, प्रेम, विषयों की गृद्धि, लज्जा, गारव, अनादर, आलस्य, कर्मबोझ कर्म प्रदेशों की बहुलता, कर्मों की शक्ति की बहुलता, कर्मों की दुश्चरित्रता, कर्मों की अत्यंत तीव्रता तीन गारव के भार से, श्रुत की अल्पता/पूर्ण शास्त्रज्ञान की अप्रवीणता, परमार्थज्ञान का अभाव इन सब कारणों में से किसी भी कारण से पूर्व में जो दुश्चरित्र हुआ है उसकी गुरुसाक्षी से गर्हा करता हूँ, प्रतिक्रमण से निराकरण करता हूँ क्योंकि आगामी दोषों का निराकरण प्रतिक्रमण से नहीं होता है, कृत दोषों का निराकरण करने में प्रतिक्रमण ही समर्थ है। भावी दोषो का निराकरण प्रत्याख्यान से होता है अत: भावी दोषों के कारण राग-द्वेष आदि की उत्पत्ति के निराकरण के लिये मैं प्रत्याख्यान करता हूँ अत: मै अनालोचित की आलोचना करता हूँ, अनिन्दित की निन्दा करता हूँ, अगर्हित की गर्हा करता हूँ, जिसका मैंने अभी तक प्रतिक्रमण नहीं किया उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।

विराधना अर्थात् रत्नत्रय के विषय में मन-वचन-काय से की गई सावद्यवृत्ति दूषित प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ, आराधना अर्थात् रत्नत्रय के विषय में मन-वचन-काय से निर्दोष वृत्ति का अनुसरण करता हूँ। अज्ञान का त्याग करता हूँ अर्थात् कुमति, कुश्रुत और कुअवधि रूप अज्ञान का त्याग करता हूँ और मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय और केवलज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान का अनुष्ठान करता हूँ। कुदर्शन का त्याग करता हूँ अर्थात् विपरीताभिनिवेश स्वरूप या विपरीत अभिप्रायस्वरूप मिथ्यादर्शन का त्याग करता हूँ तथा तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शन का अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्याचारित्र का त्याग करता हूँ और सामायिक आदि सम्यक् रूप चारित्र का अनुष्ठान करता हूँ। पंचाग्नि आदि कुतप का त्याग करता हूँ और बाह्य-आभ्यंतर के भेद से १२ भेद रूप तप का अनुष्ठान करता हूँ। नहीं करने योग्य हिंसा आदि अव्रतो का जो अकृत्य है, त्याग करता हूँ और करने योग्य अहिंसा आदि व्रतों का अनुष्ठान करता हूँ। अपने न करने योग्य "अक्रिया" का त्याग करता हूँ और करने योग्य क्रिया ध्यान-अध्ययन, समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण आदि का अनुष्ठान करता हूँ। प्राणों के घात का त्याग करता हूँ और अभयदान का अनुष्ठान करता हूँ। मृषावाद (असत्य वचन) का त्याग करता हूँ और सत्य का अनुष्ठान करता हूँ। अदत्तादान (चोरी) का त्याग करता हूँ और अचौर्य का अनुष्ठान करता हूँ। अब्रह्मचर्य का त्याग करता हूँ और ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करता हूँ। परिग्रह का त्याग करता हूँ और अपरिग्रह का अनुष्ठान करता हूँ। रात्रिभोजन का त्याग करता हूँ और दिन में यथासमय प्राप्त प्रासुक एक-भुक्त भोजन का अनुष्ठान करता हूँ। आर्त्त-रौद्रध्यान संसार के हेतु हैं अत: उनका त्याग करता हूँ और धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान मुक्ति के हेतु हैं उनका अनुष्ठान करता हूँ। जीवों को पाप से लिप्त करने वाली कृष्ण-नील-कापोत लेश्याओं का त्याग करता हूँ और जीवों को पुण्य कर्म से लिप्त करने वाली पीत-पद्म-शुक्ल लेश्याओं का अनुष्ठान करता हूँ। असि, मसि, कृषि आदि व्यापार के आरंभ का त्याग करता हूँ और असि-मसि-कृषि व्यापार के अभाव का अनुष्ठान करता हूँ। असंयम का त्याग करता हूँ और संयम का अनुष्ठान करता हूँ। वस्त्रों का त्याग करता हूँ और अचेलत्व को स्वीकार कर निर्ग्रंथपना का अनुष्ठान करता हूँ। अलोच का

त्याग करता हूँ और लोच का अनुष्ठान करता हूँ। स्नान का त्याग करता हूँ और अस्नान का अनुष्ठान करता हूँ। अक्षितिशयन अर्थात् पलंग आदि पर सोने का त्याग करता हूँ, क्षितिशयन का अर्थात् भूमिशयन अनुष्ठान करता हूँ। दन्तधावन का त्याग करता हूँ और अदन्तधावन का अनुष्ठान करता हूँ। अस्थिति भोजन अर्थात् बैठकर अनेक बार भोजन करने का त्याग करता हूँ और खड़े होकर एक बार भोजन अर्थात् स्थिति भोजन का अनुष्ठान करता हूँ। पात्र में भोजन करने का त्याग करता हूँ और करपात्र में भोजन करने का अनुष्ठान करता हूँ। क्रोध का त्याग करता हूँ, क्षमा का अनुष्ठान करता हूँ। मान का त्याग करता हूँ, मार्दव का अनुष्ठान करता हूँ। माया का त्याग करता हूँ और आर्जव का अनुष्ठान करता हूँ। लोभ का त्याग करता हूँ, सन्तोष का अनुष्ठान करता हूँ। कुतप या अतप का त्याग करता हूँ और बारह प्रकार के सुतप का अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ, सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ। कुशील/अशील का त्याग करता हूँ, सुशील का पालन करता हूँ। शल्य का त्याग करता हूँ, नि:शल्य को स्वीकार करता हूँ। अविनय का परित्याग करता हूँ, विनय का पालन करता हूँ। अनाचार का परिवर्जन करता हूँ, सदाचार का परिपालन करता हूँ। उन्मार्ग का परिवर्जन करता हूँ, जिनमार्ग को स्वीकार करता हूँ। अशान्ति का परिवर्जन करता हूँ, शान्ति को स्वीकार करता हूँ। अगुप्ति का त्याग करता हूँ, गुप्ति का समादर करता हूँ। अमुक्ति का त्याग करता हूँ, सुमुक्ति का सुस्वागत करता हूँ। धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान को समाधि कहते इसके अभाव को असमाधि कहते हैं। असमाधि का परिवर्जन करता हूँ, सुसमाधि को स्वीकार करता हूँ। ममत्व का परिवर्जन करता हूँ, निर्ममत्व को धारण करता हूँ।

अनादि से संसार में भ्रमण करते हुए मैंने जिन सम्यग्दर्शन आदि की भावना नहीं की, जिनका कभी भी अभ्यास नहीं किया, उसी सम्यग्दर्शन आदि की भावना मैं करता हूँ और जिस मिथ्यात्व आदि में रमता रहा, जिसका आजतक अभ्यास करता रहा उस मिथ्यात्व आदि की भावना का त्याग करता हूँ।

यह निर्ग्रंथ लिंग आगम में मोक्षमार्ग के रूप में कहा गया है। यह

लिंग अनुत्तर है अर्थात् इस लोक में निर्ग्रंथलिंग से ऊँचा अन्य लिंग नही है जो मोक्ष का मार्ग है, यह निर्ग्रथलिंग केवलीसंबंधी है अथवा केवली प्रणीत है। अयोगकेवली में यह लिंग साक्षात् कर्मक्षय का हेतु होने से परिपूर्ण है। परिपूर्ण रत्नत्रय रूप निकाय में उत्पन्न हुआ है इसलिये नैकायिक है। सर्वसावद्य की व्यावृत्ति रूप, एकत्व विभक्त आत्मस्वरूप होने से समय है और समय जिसकी प्राप्ति का हेतु है या समय में होने वाला यह लिंग सामायिक है। यह लिंग निरतिचार निर्दोष होने से संशुद्ध है। अथवा आलोचना आदि प्रायश्चित्तो से विशुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यों से पीड़ित जीवों के तीनों शल्यों का नाश करने वाला है। सिद्धि अर्थात् स्वात्मोपलब्धि की प्राप्ति का मार्ग है। प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणी रूप निर्जरा का कारण है। अथवा उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी में आरोहण करने का कारण है। उत्तम क्षमा का मार्ग है। मुक्ति मार्ग है क्योंकि बाह्य-अभ्यंतर सर्व परिग्रह के त्याग का कारण है। प्रमुक्तिमार्ग है क्योंकि अर्हन्त अवस्था रूप घातिया कर्मों के क्षय का कारण है। सिद्ध अवस्था रूप सर्व घातिया-अघातिया कर्मों के क्षय का कारण है अतः मोक्षमार्ग है। चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण रूप संसार के अभाव का कारण है अतः प्रमोक्ष मार्ग है। चौरासी लाख योनि में भ्रमण के अभाव का उपाय है अतः निर्वाण मार्ग है। परम शाश्वत सुख-शान्ति का उपाय है। सब दुःखों के क्षय का मार्ग है अतः निर्वाण-मार्ग है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, यथाख्यात आदि विशुद्धि युक्त विशुद्ध चारित्र के धारक पुरुषों के परिनिर्वाण का मार्ग है क्योंकि निर्ग्रथलिंग अपने चारित्रधारकों को उसी भव मे या द्वितीय आदि भवों में मोक्ष प्राप्त करा देता है। यह निर्ग्रंथ दिगम्बर लिंग एक महती धरोहर रत्नत्रय का पिटारा है, इस लिंग में स्थित जीव सिद्धि स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त होता है। जीवादि तत्त्वों का समीचीन बोधकर केवलज्ञान को प्राप्त होता है। सर्व कर्मों से मुक्त हो कृतकृत्य होता है। परिनिर्वृत्ति को प्राप्त होता है और सभी शारीरिक-मानसिक व आगन्तुक दुःखों का अन्त करता है। मैं ऐसे उस शुद्ध स्वात्मोपलब्धिप्रदाता निर्ग्रंथ लिंग की श्रद्धा करता हूँ, उसी निर्ग्रंथ अवस्था में रुचि करता हूँ, उसी अवस्था में श्रद्धा करता हूँ तथा उसी लिंग को प्राप्त करने की भावना करता हूँ, अतः उसी का स्पर्शन करता है। इस निर्ग्रंथलिंग से श्रेष्ठ दूसरा अन्य

लिंग नही है, भूतकाल में वैसा अन्य लिंग नहीं था, न वर्तमान में इससे उत्तम/श्रेष्ठ लिंग कोई है और न भविष्य में कभी भी, कहीं भी किसी भी क्षेत्र में इससे बढ़कर कोई अन्य लिंग होगा। ज्ञान की अपेक्षा, दर्शन की अपेक्षा, चारित्र की अपेक्षा, सूत्र, शील, गुण, तप, नियम, व्रत, विहार, आयतन, आर्जव, लाघव की अपेक्षा और अन्य भी कारणों से व पराक्रम की अपेक्षा इस निर्ग्रन्थ लिंग से श्रेष्ठ अन्य कोई लिंग इस लोक में न अन्य है, न अन्य हुआ है और न भविष्य में होगा। इस निर्ग्रंथ लिंग में स्थित हुआ मैं श्रमण होता हूँ। प्राणीसंयम और इन्द्रियसंयम में तत्पर संयत होता हूँ। पञ्चेन्द्रिय विषयों से उपरत अर्थात् विरक्त होता हूँ। प्राणी-मात्र में राग-द्वेष से रहित हो उपशान्त होता हूँ। उपाधि, निकृति, वञ्चना, मान, माया, कुटिलता, असत्य से रहित होता हुआ मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से प्रतिविरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र में श्रद्धा करता हूँ।

महार्थ, महागुण, महानुभाव, महायश, महापुरुषानुचिह्न ऐसे प्रथम अहिंसा महाव्रत प्राणातिपातविरति लक्षण में व्रत आरोपण होने पर मैं श्रमण होता हूँ। यह प्रथम महाव्रत जीवों की विराधना से रहित है, उत्कृष्ट जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत आगम में प्रतिपादित है। प्राणातिपात से विरमण रूप यह मेरा महाव्रत अरहंतसाक्षिक, सिद्धसाक्षिक, साधुसाक्षिक, आत्मसाक्षिक, परसाक्षिक और देवतासाक्षिक है उत्तमार्थ के लिये है। सर्व महान् आत्माओं के साक्षिक से ग्रहण किया गया मेरा यह महाव्रत सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो अर्थात् निर्दोष व अखंड हो तथा संसार महादुर्गरूप दुखों से निस्तारक हो, संसाररूपसमुद्र में डूबे जीवों को संसार-समुद्र से पार लगाने वाला हो, संसार के दुखरूपी महार्णव से तारने वाला हो, महाव्रत का आराधक मैं अनन्त चतुष्टयरूप और शिष्य समुदाय गुणों को प्राप्तकर साधु होवें।

इस प्रकार प्रथम महाव्रत को व्रतरूप ग्रहण कर लेने पर उस अहिंसा व्रत मे लगे सर्व अतिचारो की विशुद्धि के लिये दैवसिक (रात्रिक), पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, कालनियमानुसार इन कालों में लगने वाले व्रत संबंधी अतीचारों की विशुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। ईर्यापथ के अतिचार का, केशलोच के अतिचार का, संस्तर में फलक,

पाषाण, चटाई आदि संबंधी अतिचार का, मार्ग के अतिचार का सब अतिचारो का मैं व्रत की विशुद्धि के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ। उत्तमार्थ की मुझे प्राप्ति हो और समयग्चारित्र मे श्रद्धा हो।

पहला महाव्रत सब व्रतधारी प्राणियो को सम्यक्त्वपूर्वक हो, दृढ़ता-पूर्वक हो, उत्तमव्रत हो उसमे मै समारूढ़ होता हूँ, वह मुझे व शिष्य वर्ग को निर्दोष हो।

णमो अरहंताणं............. सव्वसाहूणं ।।१।।
णमो अरहंताणं...... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताणं...... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।१।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।३।।

द्वितीय सत्य महाव्रत संबंधी दोषों का प्रतिक्रमण

अहावरे विदिये महव्वदे सव्वं भंते ! मुसावादं पच्चक्खामि, जावज्जीवेण तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण वि कारणेण जादेण वा, णेव सयं मोसं भासेज्ज, णो अण्णेहिं मोसं भासाविज्ज, णो अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं वि समणुमणिज्ज। तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (अहावरे विदिए महव्वदे) द्वितीय सत्य महाव्रत में (मिथ्या सव्वं-मुसावादं) सभी प्रकार के मृषा वचनों का (मणसा-वचसा-काएण) मन से, वचन से, काय से (जावज्जीवेण पच्चक्खामि) जीवनपर्यन्त के लिये मैं त्याग करता हूँ। (से कोहेण वा) उस सत्य महाव्रत में दूषितता उत्पन्न करने वाले क्रोध से या (माणेण

वा) मान से या (मायाए वा) माया से या (लोहेण वा) लोभ से या (रागेण वा) राग से या (दोसेण वा) द्वेष से या (मोहेण वा) मोह से या (हस्सेण वा) हास्य से या (भएण वा) भय से या (पदोसेण वा) प्रद्वेष से या (पमादेण वा) प्रमाद से या (पिम्मेण वा) प्रेम से या (पिवासेण वा) पिपासा से या (लज्जेण वा) लज्जा से या (गारवेण वा) गारव से या (अनादरेण वा) अनादर से या (केण वि कारणेण जादेण वा) अन्य भी किसी कारण के उत्पन्न होने पर (णेव सयं मोसं भासेज्ज) न ही स्वयं मिथ्या बोले (णो अण्णेहिं मोसं भासाविज्ज) न ही अन्य जीवो से असत्य बुलवावे और (णो अण्णेहिं मोसं भासिज्जंत वि समणुमणिज्ज) न ही अन्य असत्य बोलने वालों की अनुमोदना ही करे।

(भंते !) हे भगवन्! (तस्स) इस द्वितीय सत्य महाव्रत में लगे (अइचारं) अतिचारों का (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ (णिंदामि) निंदा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ, (अप्पाणं वोस्सरामि) आत्मा से उनका त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! प्रथम महाव्रत से भिन्न द्वितीय असत्यभाषण त्याग महाव्रत में सभी स्थूल व सूक्ष्म असत्यवचन का जीवनपर्यन्त को मन-वचन-काय से त्याग करता हूँ। सत्य महाव्रत में अतिचार या दोष उत्पन्न करने वाले क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग से, द्वेष से, मोह से, हास्य से, भय से, प्रद्वेष से, प्रमाद से, प्रेम से, पिपासा से, लज्जा से, गारव से, अनादर से अथवा अन्य भी किसी कारण के उत्पन्न होने पर स्वयं असत्य भाषण न करे, न अन्य/दूसरों से असत्य बुलवाये और न असत्य बोलने वाले दूसरों की अनुमोदना ही करें। हे भगवन! इस द्वितीय सत्यमहाव्रत सम्बन्धी अतिचार की विशुद्धि या दोषों को दूर करने के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ। स्वसाक्षी पूर्वक अपने दोषों की निन्दा करता हूँ, गुरु की साक्षीपूर्वक अपनी गर्हा करता हूँ, हे भगवन् पूर्वकाल में उपार्जित अतिचारों का त्याग करता हूँ। मेरे द्वारा जो भी राग के, द्वेष के या मोह के वश में स्वयं असत्य भाषण किया है, दूसरों से असत्य भाषण कराया है और असत्य भाषण करने वालों की भी अनुमोदना की है उस सब का मैं परित्याग करता हूँ।

[नोट–शेष अर्थ प्रथम महाव्रत के अर्थ में पढ़िये ।]

द्वितीय महाव्रत सभी व्रतधारियों का सम्यक्त्वपूर्वक दृढ़व्रत हो, सुव्रत हो मैं और शिष्य वर्ग इस व्रत में निर्दोषरूप से आरूढ़ हों।

द्वितीयं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।
द्वितीय महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।३।।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।
णमो अरहंताणं णमो..... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताणं ...... णमो लोए सव्वसाहूण ।।३।।

तृतीय अचौर्य महाव्रत सम्बन्धी दोषों का प्रतिक्रमण

अहावरे तिदिए महव्वदे सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से देसे वा, गामे वा, णयरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मंडवे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा, घोसे वा, आसणे वा, सहाए वा, संवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिणं वा, कट्ठं वा, वियडिं वा, मणिं वा, खेत्ते वा, खले वा, जले वा, थले वा, पहे वा, उप्पहे वा, रण्णे वा, अरण्णे वा, णट्ठं वा, पमुट्ठं वा, पडिदं वा, अपडिदं वा, सुणिहिदं वा, दुण्णिहिदं वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुयं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, मज्झत्थं वा, बहित्थं वा, अवि दंतंतरसोहण-णिमित्तं, वि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्ज, णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हा-विज्ज णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिजंतं वि समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भंते !) भगवन् ! (अहावरे) अब (तिदिए महव्वदे) तीसरे अचौर्य महाव्रत में (तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) मन से, वचन से, काय से तीनों प्रकार से (जावज्जीवं) जीवनपर्यंत (सव्वं) सभी प्रकार से (अदिण्णादाणं पच्चक्खामि) अदत्तादान का मैं त्याग करता हूँ। (से) उस अचौर्य महाव्रत में (देसे वा) देश में या (गामे वा) ग्राम में या (णयरे वा) नगर में या (खेडे वा) खेट में या (कव्वडे वा) कर्वट में या (मंडवे वा) मटंब में या (मंडले वा) मंडल में या (पट्टणे वा) पत्तन में या (दोणमुहे वा) द्रोणमुख में या (घोसे वा) घोष

मे या (आसणे वा) आसन मे या (सहाए वा) सभा में या (संवाहे वा) संवाह मे या (सण्णिवेसे वा) सन्निवेश मे या (तिणं वा) तृण या (कट्ठं वा) काष्ठ या (वियडिं वा) विकृति या (मणि वा) मणि या (खेत्ते वा खले वा) खेत मे या खलियान मे (जले वा) जल में या (थले वा) स्थल मे या (पहे वा) पथ मे या (उप्पहे वा) उन्मार्ग में या (रण्णे वा) रण मे या (अरण्णे वा) अरण्य मे या (णट्ठं वा) नष्ट या (पमुट्ठं वा) प्रनष्ट या (पडिदं वा अपडिदं वा) पतित या अपतित (सुणिहिदं वा दुण्णिहिदं वा) अच्छी तरह से रखी हुई या नही रखी हुई या (अप्पं वा बहुं वा) थोड़ी या बहुत या (अणुयं वा थूलं वा) छोटी या बड़ी या (सचित्तं वा अचित्तं वा) सचित्त या अचित्त या (मज्झत्थं वा बहित्थं वा) भीतर रखी हो या बाहर रखी हो (अवि दंतंतर-सोहण-णिमित्तं) दाँत के मध्य लगी को शोधन करने के निमित्त भी (वि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्ज) कभी स्वयं बिना दिया ग्रहण न करे (णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविज्ज) न अन्य जीवों से बिना दिया ग्रहण करावे और (णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं वि समणुमणिज्ज) न अदत्त ग्रहण करने वाले की अनुमोदना ही करे। (भंते !) हे भगवन् ! (तस्स) उस तीसरे अचौर्यमहाव्रत मे लगे दोषो (अइचारं) अतिचार का (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ (णिंदामि) उन दोषों की निंदा करता हूँ/स्वयं में पश्चात्ताप करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ/गुरुदेव की साक्षीपूर्वक दोषों की निन्दा करता हूँ (अप्पाणं वोस्सरामि) आत्मा से उन अपराधों को छोड़ता हूँ, त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! द्वितीय महाव्रत से भिन्न तृतीय अचौर्य महाव्रत मे स्थूल और सूक्ष्म अदत्तादान को जीवनपर्यन्त के लिये मन-वचन-काय से त्याग करता हूँ। अदत्तादान से विरति स्वरूप उस अचौर्य महाव्रत की क्षति को करने मे कारणभूत देश में, ग्राम में, नगर में, खेट में, कर्वट, मडंब, पट्टन, द्रोणमुख, घोष, आसन, सभा, संवाह और सन्निवेश इन जनपद समूह के आश्रयभूत प्रदेशों में तथा खेत में, खलियान में, जल मे, स्थल मे, मार्ग में, उन्मार्ग में, रण में, अरण्य इन स्थानों में, नष्ट, प्रनष्ट, पतित, अपतित, सुनिहित अर्थात् अच्छी तरह से रखी हुई, दुर्निहित,

थोड़ी या बहुत सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त, घर के भीतर रखी हुई या घर से बाहर स्थित, दाँतो के भीतर लगी अशुद्धि को दूर करने के लिये या दन्तान्तर शोधन मात्र भी वस्तु तृण, काष्ठ/लकड़ी, विकृति, मणि आदि अल्पमूल्य या बहुमूल्य की वस्तु को न तो स्वयं ग्रहण करे न अन्य किसी से ग्रहण करावे और न अदत्तग्रहण करते हुए अन्य की अनुमोदना करे।

हे भगवन्! मै इस तृतीय महाव्रत के अतिचार को त्यागता हूँ, अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और पूर्व में इस व्रत में मेरे जो अतिचार लगे है उनका त्याग करता हूँ।

हे भगवन्! जो भी मेरे द्वारा राग, मोह के वश मे स्वयं अदत्त/बिना दिया ग्रहण किया गया अर्थात् बिना दी गई वस्तु ग्रहण की गई हो, अन्य से बिना दी गई वस्तु ग्रहण कराई गई हो या बिना दी गई वस्तु को ग्रहण करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो उसका भी मै त्याग करता हूँ।

ग्राम—वृत्ति से वेष्टित ग्राम होता है।

नगर—चार गोपुरों से रमणीय नगर होता है।

खेट—पर्वत व नदी से घिरा हुआ खेट होता है।

कर्वट—पर्वत से वेष्टित कर्वट कहलाता है।

मटंब—जो पाँच सौ ग्रामो में प्रधानभूत होता है उसका नाम मटंब है।

पट्टन—जो उत्तम रत्नो की योनि/खान होता है, उसका नाम पट्टन है।

द्रोणमुख—समुद्र की वेला से वेष्टित द्रोणमुख होता है और

संवाहन—बहुत प्रकार के अरण्यों/जंगलो से युक्त महापर्वत के शिखर पर स्थित संवाहन जानना चाहिये।

[इस महाव्रत का शेष अर्थ प्रथम महाव्रत में से देखिये]

"तृतीय अचौर्य महाव्रत सब व्रतधारियो के सम्यक्त्वपूर्वक हो, मैं और शिष्य वर्ग निर्दोष रूप से इस व्रत में समारूढ हो'

**णमो अरहंताणं........ णमो लोए सव्वसाहूणं ।। ३

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत का या मैथुन त्याग महाव्रत का प्रतिक्रमण

अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते ! अबंभं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से देविएसु वा,माणुसिएसु वा, तिरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, कट्ठकम्मेसु वा,चित्त-कम्मेसु वा, पोत्त-कम्मेसु वा, लेप्प-कम्मेसु वा, लय-कम्मेसु वा, सिल्ला-कम्मेसु वा, गिह-कम्मेसु वा, भित्ति-कम्मेसु वा, भेद-कम्मेसु वा, भण्ड-कम्मेसु वा, धादु-कम्मेसु वा, दंत-कम्मेसु वा, हत्थ-संघट्टणदाए, पाद-संघट्टणदाए, पुग्गल-संघट्टणदाए मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु, मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु, मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु, मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु, सोदिंदय परिणामे, चक्खिंदिय-परिणामे, घाणिंदिय-परिणामे, जिब्भिंदिय-परिणामे, फासिंदिय-परिणामे, णो-इन्दिय-परिणामे, अगुत्तेण, अगुत्तिंदिएण, णेव सयं अबंभं सेवाविज्ज, णो अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं, वि समणुमणिज्ज तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (अहावरे चउत्थे महव्वदे) अब चतुर्थ महाव्रत मे (सव्वं अबभं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) सभी प्रकार के अब्रह्म का मन से, वचन से, काय से जीवन-पर्यन्त के लिये त्याग करता हूँ। (से) उस चतुर्थ महाव्रत मे (देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तिरिच्छिएसु वा अचेयणिएसु वा) देवियो मे या मानुषियो मे या तिर्यचनियो मे या अचेतन स्त्रियो मे (कट्ठ-कम्मेसु वा) काष्ठ कर्मो मे या (चित्त-कम्मेसु वा) चित्र कर्मो मे या (पोत्त-कम्मेसु वा) पोत कर्मो मे या (लेप्प-कम्मेसु वा) लेप कर्मो मे या (लय कम्मेसु वा) लय कर्मो मे या (सिल्ला कम्मेसु वा) शैल कर्मो मे या (गिह कम्मेसु वा) गृह कर्मो मे या (भित्ति कम्मेसु वा) भित्तिकर्मो मे या (भेद-कम्मेसु वा) भेद कर्मो मे या (भण्ड-कम्मेसु वा) भाँड कर्मो मे या (धादु-कम्मेसु वा) धातु कर्मो मे या (दंत-कम्मेसु वा) दंत कर्मो मे या (हत्थ-संघट्टणदाए) हाथो के संघर्षण से (पाद संघट्टणदाए) पैरो के संघर्षण से (पुग्गल संघट्टणदाए) पुद्गल के संघर्षण से (मणुण्णा मणुण्णेसु-सद्देसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दो मे (मणुण्णा-मणुण्णेसु-रूवेसु) मनोज्ञ-

अमनोज्ञ रूपों मे (मणुण्णा-मणुण्णेसु रसेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसो में (मणुण्णा-मणुण्णेसु-फासेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों में (सोदिंदिय परिणामे) श्रोत्रेन्द्रिय परिणाम में (चक्खिदिय परिणामे) चक्षु-इन्द्रिय परिणाम में (घाणिंदिय-परिणामे) घ्राणेन्द्रिय परिणाम में (जिब्भिंदिय परिणामे) जिह्वा इन्द्रिय परिणाम मे (फासिंदिय परिणामे) स्पर्शेन्द्रिय परिणाम मे (णो-इंदिय परिणामे) नो इन्द्रिय परिणाम मे (अगुत्तेण) प्रकट रूप से (अगुत्तिदिएण) प्रकट रूप इन्द्रियो के द्वारा (णेव सयं अबंभं सेविज्ज) न स्वयं अब्रह्म का सेवन करे (णो अण्णेहिं अबंभं सेवाविज्ज) न दूसरो को अब्रह्म का सेवन करावे (णो अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं वि समणुमणिज्ज) न अन्य अब्रह्म सेवन करते हुए की अनुमोदना करे।

(भंते !) हे भगवन् ! (तस्स) इस ब्रह्मचर्य व्रत में लगे (अइचारं पडिक्कमामि) अतिचारों का प्रतिक्रमण करता हूँ (णिंदामि) निन्दा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाणं वोस्सरामि) आत्मा से उनका त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! तृतीय अचौर्य महाव्रत के कथन के बाद चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत में सब चेतन-अचेतन सम्बन्धी अब्रह्म का मैं जीवन-पर्यन्त के लिये मन-वचन-काय से त्याग करता हूँ। उस चतुर्थ महाव्रत मे ब्रह्मचर्य व्रत के विनाश के कारणभूत देवी, मानुषी, तिर्यंचिनी व अचेतन स्त्रियों में काष्ठ कर्म—नाचना, हँसना, गाना तथा तुरई व वीणा आदि वाद्यों के बजाने रूप क्रियाओं में प्रवृत्त हुए देव, मानुषी तिर्यंच और मनुष्यों की काष्ठ से निर्मित प्रतिमाओं को काष्ठ कर्म कहते हैं[1], उस काष्ठ कर्म में, चित्रकर्म–पट, कुड्य (भित्ति) एवं फलहिका (काष्ठ का तख्ता) आदि में नाचने आदि क्रिया में प्रवृत्त देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्यों की प्रतिमाओं को चित्रकर्म कहते हैं, क्योंकि चित्र से जो किये जाते हैं वे चित्रकर्म है[2], उन चित्रकर्मों में। पोत्तका अर्थ वस्त्र है उससे की गई मनुष्यै, तिर्यंच आदि की प्रतिमाओं का नाम पोतकर्म है[3], उन पोतकर्मों में। खड़िया, मिट्टी, शर्करा (बालू) व मृत्तिका आदि के लेप का नाम लेप्य है, उससे निर्मित मनुष्य आदि की प्रतिमाएँ लेप्यकर्म कही जाती है[4], उन लेप्य कर्मों में। लयन का अर्थ पर्वत है, उसमें निर्मित

स्त्री आदि की प्रतिमाओं का नाम लयन कर्म है[५], उन लयन कर्मों में। शैल का अर्थ पत्थर है, उसमें निर्मित सभी प्रकार की स्त्रियों की प्रतिमाओं का नाम सिल्ल कर्म/शैल कर्म है[६], उन शैल कर्मों में। गृहों से अभिप्राय गृहादिकों का है, उनमें की गई सभी प्रकार की स्त्रियों की प्रतिमाओं का नाम गृहकर्म है[७], उन गृहकर्मो में। घोड़ा, हाथी, मनुष्य एवं वराह (सूकर) आदि के स्वरूप से निर्मित घर गृहकर्म कहलाते हैं[८], यह अभिप्राय है। घर की दीवालो में उनसे अभिन्न रची गई स्त्री आदि प्रतिमाओं का नाम भित्तिकर्म है[८], उन भित्तिकर्मो में। भेद कर्मों में अर्थात् वस्त्र आदि को कैंची से कतर कर बनाये गयी सभी प्रकार की स्त्रियों की प्रतिमाओं का नाम भेद कर्म है; उन भेद कर्मों में। भण्डकर्मों याने भांडकर्मों अर्थात् बर्तनों पर सभी प्रकार की स्त्रियों के चित्रो मे। धातु कर्मों अर्थात् सोना-चाँदी आदि धातुओं पर उकेरे स्त्री चित्रों/प्रतिमाओ में। हाथी दाँतों पर खोदी गयी स्त्री आदि की प्रतिमाओं को दन्त कर्म कहते हैं। उन दन्त कर्मो में अर्थात् हाथी दांतों पर उकेरे गये स्त्रियों के चित्र आदि।

इन अचेतन स्त्रियों के रूपादिक से हाथों का संघर्षण, पैरों का संघर्षण, शरीर के अन्य अवयवों का संघर्षण होने पर, कर्णेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दो में, चक्षु इन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में, घ्राणेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ गंधों में, जिह्वा इन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसो में, स्पर्शेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्श मे, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम मे, घ्राण इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम में, जिव्हा इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम में, स्पर्श इन्द्रिय सम्बंधी विकृत परिणाम होने पर या मन सम्बन्धी विकृत परिणाम होने पर प्रकट रूप से प्रकट इन्द्रियों के द्वारा न स्वयं अब्रह्म का सेवन करे, न दूसरो के द्वारा अब्रह्म का सेवन करावे और न अन्य अब्रह्म सेवन करते हुए की अनुमोदना करें।

हे भगवन् ! इस ब्रह्मचर्य महाव्रत के व्रत में लगे अतिचार का निराकरण करने के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और पूर्व में इस व्रत में मेरे द्वारा जो अतिचार लगे हैं उनका त्याग करता हूँ।

---

१. धवला पु. ९, पृ. २४९। २. धवला पु० ९, पृ० २४९। ३,४,५,६,७,८ वही है।

हे भगवन्! मैने राग, द्वेष के वश से अब्रह्म का सेवन किया हो अन्यो से सेवन कराया हो और अन्य अब्रह्म सेवते हुए की अनुमोदना की हो तो मै उसका भी त्याग करता हूँ।

[इस व्रत सम्बन्धी शेष अर्थ प्रथम महाव्रत के वर्णन मे देखिये]

चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतधारियो का सम्यक्त्वपूर्वक दृढ़व्रत हो, सुव्रत हो, मैं और शिष्यवर्ग इस व्रत मे निर्दोष रूप से आरूढ हो।

चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।
चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।३।।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।
णमो अरिहंताणं ..... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताणं........ णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

पञ्चम परिग्रह त्याग महाव्रत का प्रतिक्रमण

अहावरे पंचमे महव्वदे सव्वं भंते ! दुविहं-परिग्गहं पच्चक्खामि। तिविहेण मणसा-वचसा-काएण। सो परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो, बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भंतरं परिग्गहं-

मिच्छत्त-वेय-राया-तहेव हस्सादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं गंथा ।।१।।

तत्थ बाहिरं परिग्गहं से हिरण्णं वा, सुवण्णं वा, धणं वा, खेत्तं वा, खलं वा, वत्थुं वा, पवत्थुं वा, कोसं वा, कुठारं वा, पुरं वा, अंत-उरं वा, बलं वा, वाहणं वा, सयडं वा, जाणं वा, जपाणं वा, जुगं वा, गद्दियं वा, रहं वा, सदणं वा, सिवियं वा, दासी-दास-गो-महिस-गवेडयं, मणि-मोत्तिय-संख-सिप्पिपवालयं, मणिभाजणं वा, सुवण्ण-भाजणं वा, रजत-भाजणं वा, कंस-भाजणं वा, लोह-भाजणं वा, तंब-भाजणं वा, अंडजं वा, वोडजं वा, रोमजं वा, वक्कलजं वा, चम्मजं वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, अमत्थुं वा, बहित्थं वा, अवि वालग्ग-कोडि मित्तं पि णेव सयं असमण-पाउग्गं-परिग्गहं-गिण्हिज्ज, णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं-गेण्हाविज्ज,

णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं, गिण्हज्जंतं वि समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (पंचमे महव्वदे) पंचक महाव्रत में (तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) मन, वचन, काय तीनों प्रकार से (सव्वं) सभी (दुविहं परिग्गहं) दोनों प्रकार के परिग्रह को (पच्चक्खामि) मैं छोड़ता हूँ, त्याग करता हूँ। (सो परिग्गहो) वह परिग्रह (दुविहो) दो प्रकार का है (अब्भंतरो बाहिरो चेदि) अन्तरंग और बाह्य। (तत्थं अब्भंतरं परिग्गहं) उनमें अन्तरंग परिग्रह को कहते हैं—

(मिच्छत्त) मिथ्यात्व (वेय) वेद (राया) राग (हस्सादिया य छद्दोसा) हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (तह) तथा (चत्तारि कसाया) चार कषाय–क्रोध, मान माया लोभ (चउदस अब्भंतर गंथा) ये १४ प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह हैं। (तत्थ) तथा (बाहिरं परिग्गहं) बाह्य परिग्रह (हिरण्णं वा) चाँदी, या (सुवण्णं वा) स्वर्ण या (धणं वा) धन या (खेत्तं वा) क्षेत्र/खेत या (खल) खलिहान या (वत्थुं वा) वस्तु या (पवत्थुं वा) प्रवस्तु या (कोसं वा) कोष या (कुठारं वा) कुठार या (पुरं वा) नगर या (अंत उरं वा) अन्तःपुर या (वलं वा) बल या (वाहणं वा) वाहन या (सयडं वा) शकट/गाड़ी या (जाणं वा) यान याने पालकी या (जपाणं वा) माला या (जुगं वा) जुआ या (गद्दियं वा) गड्डिय या (रहं वा) रथ या (सदणं वा) स्यन्दन या (सिवायं वा) शिविका या (दासी-दास) दासी-दास (गो-महिस-गवेडयं) गाय-भैंस-भेंड़ (मणि-मोत्तिय-संख-सिप्पि-पवालयं) मणि, मोती, शंख, सीप, प्रवाल (मणि भाजणं वा) मणि के बर्तन या (सुवण्ण-भाजणं वा) सोने के बर्तन या (रजत-भाजणं वा) चाँदी के बर्तनों में या (लोह भाजणं वा) लोहे के बर्तन या (तंबभाजणं वा) ताँबे के बर्तन या (अंडजं वा) अंडज अर्थात्/रेशम के कपड़े या (वोंडजं) कपास के कपड़े या (रोमजं वा) ऊनी वस्त्र या (वक्कलजं वा) वल्कल अर्थात् छाल के वस्त्र या (चम्मजं) चर्म से बने वस्त्र या (अप्पं वा) अल्प या (बहुं वा) बहुत या (अणु वा) सूक्ष्म या (थूलं वा) स्थूल या (सचित्तं वा) सचित्त या (अचित्तं वा) अचित्त या (अमत्थु वा) यहाँ स्थित या (बहित्थं वा) बाहर स्थित ये सब बाह्य

परिग्रह हैं (अवि बालग्ग-कोडि मित्तं पि) इनमें बाल के अग्र भाग प्रमाण भी (असमण पाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्ज णेव सयं) श्रमण के अयोग्य परिग्रह को स्वयं ग्रहण न करे (णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गेण्हाविज्ज) न श्रमण के अयोग्य परिग्रह को दूसरों से ग्रहण करावे, (णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गिण्हज्जंत वि समणुमणिज्ज) न ही श्रमण के अयोग्य परिग्रह को ग्रहण करने वालों की अनुमोदना करें (भंते !) हे भगवन् ! (तस्स) उस परिग्रह त्याग महाव्रत में जो (अहिचारं) अतिचार लगा हो (पडिक्कमामि) मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूँ (णिंदामि) मैं निंदा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाणं वोस्सरामि) आत्मा से उन दोषों का त्याग करता हूँ।

भावार्थ—अब चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के बाद पञ्चम परिग्रह त्याग महाव्रत में हे भगवन् ! सब बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्रिविध से, मन से, वचन से, काय से, मैं त्याग करता हूँ। वह परिग्रह दो प्रकार का है—बाह्य और अभ्यन्तर। उसमें अभ्यन्तर परिग्रह—

गाथार्थ—मिथ्यात्व १, वेद ३, उसी प्रकार ही हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, ६. और क्रोध, मान, माया लोभ ४ कषाय, इस प्रकार ये चौदह प्रकार अभ्यंतर परिग्रह है।

तथा बाह्य परिग्रह। उसका चाँदी, सुवर्ण, धन, गो आदि और ब्रीही आदि धान्य, धान्य की उत्पत्ति का स्थान खेत, खलिहान, वस्तु, प्रवस्तु, कोश अर्थात् (भांडागार) कुठार, नगर, अन्तःपुर, बल—हाथी, घोड़ा, रथ और पदाति (पैदल) चार प्रकार सैन्यबल, हाथी, घोड़ा आदि वाहन, शकट याने बैलगाड़ी, यान याने पालकी, जपाणं-माला, जुगं-जुआँ, गड्डिय-रथ, स्यन्दन-शिविका दासी, दास, गाय, भैंस, मणि, मौक्तिक, शंख, सीप, प्रवाल, मणि के बर्तन, सोने के बर्तन, चाँदी के बर्तन, काँसा के बर्तन लोहे के बर्तन या ताम्बे के बर्तन, रेशमी वस्त्र, कपास के वस्त्र, रोमज-ऊनी वस्त्र, छाल के वस्त्र, चर्म के वस्त्र, थोड़ा या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त, यहाँ स्थित या बाहिर स्थित ये सब बाह्य परिग्रह हैं। मेष के बाल के अग्र भाग प्रमाण भी श्रमण के अयोग्य ज्ञानोपकरण शास्त्र आदि और संयमोपकरण पीछी आदि को छोड़कर अन्य परिग्रह को

स्वयं न ग्रहण करे, न श्रमण के अयोग्य परिग्रह को दूसरों से ग्रहण करावे और न श्रमण के अयोग्य परिग्रह ग्रहण करने वाले दूसरों की अनुमोदना करे।

हे भगवन्! इस परिग्रह त्याग महाव्रत सम्बन्धी अतिचार का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, अपने दोषों की मैं निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। हे भगवन्! भूतकाल में मेरे द्वारा जो भी राग-द्वेष, मोह के वशीभूत हो स्वयं-श्रमण के अयोग्य परिग्रह का ग्रहण किया गया हो, श्रमण के अयोग्य परिग्रह दूसरों से ग्रहण कराया गया हो तथा श्रमण के अयोग्य परिग्रह को ग्रहण करते हुए अन्यों की अनुमोदना की हो तो उसका मैं त्याग करता हूँ। यह पञ्चम परिग्रह त्याग महाव्रत सभी व्रतधारियों के सम्यक्त्वपूर्वक दृढ़व्रत हो, सुव्रत हो, मैं स्वयं और शिष्यगण इस महाव्रत में आरूढ़ हों।

[शेष अर्थ प्रथम महाव्रत में देखिये]

पंचमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ।।१।।

पंचमं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।
पंचमं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।३।।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।
णमो अरहंताणं.......... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताणं....... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

छठे अणुव्रत रात्रिभोजन का प्रतिक्रमण

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते ! राइ-भोयणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से असणं वा, पाणं वा, खादियं वा, सादियं वा, कडुयं वा, कसायं वा, आमिलं वा, महुरं वा, लवणं वा, अलवणं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, तं-सव्वं-चउव्विहं-आहारं, णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (अहावरे) अब (छट्ठे अणुव्वदे) छठे अणुव्रत में (तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) मन से, वचन से, काय से, तीनों प्रकार से (सव्वं राइभोयणं) सब प्रकार रात्रिभोजन को (पच्चक्खामि) मैं त्यागता हूँ। (से) उस रात्रिभोजन त्याग छठे अणुव्रत में (असण वा) अशन या (पाणं वा) पान या (खादियं वा) खाद्य या (सादियं वा) स्वाद्य या (कडुयं वा) कटुक या (कसायं वा) कसैला या (आमिलं) खट्टा या (महुरं वा) मधुर या (लवणं वा) क्षार/खारा (अलवणं वा) क्षाररहित या (सचित्तं वा) सचित्त या (अचित्तं वा) अचित्त या (तं-सव्वं-चउव्विहं आहारं) उस चारों प्रकार के आहार को (णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज) स्वयं रात्रि को न खावे (णो अण्णेहिं) न दूसरों को (रत्तिं भुंजाविज्ज) रात्रि में खिलावे (णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जं पि समणुमणिज्जि) न अन्य को रात्रि में खाने वालों की अनुमोदना करे (भंते !) हे भगवन् ! (तस्स) उस छठे अणुव्रत में लगे (अइचारं) अतिचारों का (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ (णिंदामि) निन्दा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाणं वोस्सरामि) आत्मा से उनका त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! षष्ठम (छठे) अणुव्रत में सब प्रकार रात्रि-भोजन का त्रिविध मन-वचन-काय से जीवनपर्यन्त प्रत्याख्यान करता हूँ। उस रात्रि-भोजन विरति में क्षति के कारण अशन, पान, खाद्य, स्वाद, कटुक, कषैला, आमिला, खट्टा, मधुर/मीठा, लवण/खारा, सचित्त और अचित्त सब प्रकार के चतुर्विध आहार को मैं स्वयं रात्रि में नहीं खाऊँगा, न अन्य को रात्रि में खिलाऊँगा और न रात्रि में खाते हुए अन्य का अनुमोदन करूँगा।

हे भगवन् ! छठे अणुव्रत रात्रिभोजन विरति में जो भी अतिचार लगे हैं मैं उनका प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी निन्दा और गर्हा करता हूँ। मेरे द्वारा जो राग-द्वेष-मोह के वश हो चार प्रकार का आहार रात्रि में स्वयं खाया गया हो, दूसरों को रात्रि-भोजन खिलाया गया हो या रात्रि में भोजन करते हुए किसी की अनुमोदना की गई हो, उसका मैं त्याग करता हूँ।

[शेष अर्थ प्रथम महाव्रत में देखिये]

षष्ठ अणुव्रत सभी व्रतधारियों के सम्यक्त्वपूर्वक दृढ़व्रत हो, सुव्रत हों। मैं और शिष्य इस व्रत में आरूढ़ हों ॥

षष्ठं अणुव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।

षष्ठं अणुव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

णमो अरहंताणं....... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।

णमो अरहंताणं....... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

चूलिका

चूलियंतु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी ।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे ।।१।।

अन्वयार्थ—(चूलियंतु पवक्खामि) चूलिका को कहता हूँ (भावणा) भावना (पंचविंसदी) पच्चीस है (एक्केक्कम्हि महव्वदे) एक-एक महाव्रत मे (पंच-पंच) पॉच-पॉच (अणुण्णादा) स्वीकार की गई हैं।

चूलिका—उक्त-अनुक्त और दुरुक्त का कथन करने वाली चूलिका कहलाती है। [उक्त याने कहा हुआ, अनुक्त याने नही कहा हुआ तथा दुरुक्त याने कठिन विषय]

आचार्यश्री अब पॉच महाव्रतों संबंधी प्रतिक्रमण का वर्णन करने के बाद अब उक्त-अनुक्त और दुरुक्त का कथन करने वाली चूलिका का कथन करने की प्रतिज्ञा करते हैं। प्रथमत: पाँच महाव्रतो की रक्षिका पच्चीस भावनाओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—भावना २५ हैं उनमें एक-एक व्रत की पाँच-पॉच भावनाएँ है।

मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया-काय-संयदो ।
एसणा-समिदि संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो ।।२।।

अन्वयार्थ—(पढमं) प्रथम (वदमस्सिदो) अहिंसाव्रत का आश्रय वाला व्यक्ति (मणगुत्तो) मन से गुप्त अर्थात् मन गुप्ति (वचिगुत्तो) वचन गुप्त अर्थात् वचन गुप्ति (इरिया) ईर्यासमिति अर्थात् चार हाथ जमीन देखकर चलना (काय संयदो) शरीर को संयमित रखना और (एसणासमिदिसंजुत्तो) एषणा समिति अर्थात्

देख-शोधकर भोजन करना इन अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाओं से युक्त होता है। मैं इन पाँच भावनाओं से युक्त हो अहिंसा महाव्रत में स्थित होता हूँ। क्योंकि इनके बिना व्रत निर्मल नहीं रहता।

अकोहणो अलोहो य भय-हस्स-विवज्जिदो।
अणुवीचि-भास-कुसलो विदियं वदमस्सिदो ।।३।।

अन्वयार्थ—(विदियं वदमस्सिदो) द्वितीय सत्य महाव्रत के आश्रित जीव (अकोहणो) क्रोध से रहित (अलोहो) लोभ से रहित (भय-हस्सविवज्जिदो) भय, हास्य से रहित (य) और (अणुवीचिभासकुसलो) आगम के अनुकूल बोलने में कुशल हो। ये पाँच सत्य महाव्रत की भावनाएँ है। इन भावनाओं से युक्त सत्य व्रत निर्मल होता है। मै सत्यव्रत की निर्मलता के लिये इन भावनाओ को भाता हूँ, अपने व्रत मे स्थित होता हूँ।

अदेहणं भावणं चावि उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु तिदियं वदमस्सिदो ।।४।।

अन्वयार्थ—तृतीय अचौर्यव्रत की विशुद्धि को बनाये रखने के लिये मै अचौर्यव्रत की पाँच भावनाओं मे तत्पर होता हूँ, क्योंकि [अदेहणं] अदेहन अर्थात् कर्मवशात् जो देह मैंने प्राप्त किया है वही मेरा धन है, अन्य परिग्रह कोई मेरा नही है तथा अदेहन शब्द में पृषोदरादि इत्यादि वाक्य से ध का लोप होकर अदेहधन के स्थान मे अदेहन बन गया है। अत: जो १. प्रथम भावना शरीर मात्र को धन मानता है ? २. शरीर मे अशुचित्व की भावना करता है, ३. शरीर मे अनित्यत्व आदि भावना करता है [अदेहन से तीन भावनाओं को ग्रहण करना।] (या) जो (परिग्गहे) ४. परिग्रह में (उग्गहं) अवग्रह अर्थात् निर्वृत्ति की भावना भाता है (चा) और (भत्तपाणेसु संतुट्ठो) भोजन-पान आदि चतुर्विध आहार में गृद्धता से रहित होता है (तिदियं वदमस्मिदो) वह तृतीय अचौर्यव्रत का धारक है।

इत्थिकहा इत्थि-संसग्ग-हास-खेड-पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य चउत्थं वदमस्सिदो ।।५।।

अन्वयार्थ—(इत्थिकहा) स्त्रीकथा (इत्थिसंसग्ग) स्त्रियों का संसर्ग (हास-खेड-पलोयणे) स्त्रियों के साथ हास्य-विनोद/हँसी मजाक, स्त्रियों

के साथ क्रीडन, स्त्री के मुख आदि का राग भाव से अवलोकन (णियमम्मि) इनके नियमों में मैं (ट्ठिदो) स्थित हूँ। जो ब्रह्मचर्य के घातक होने से मैं इन क्रियाओं से निवृत्त होता हूँ। इसलिये मैं (चउत्थं) चतुर्थब्रह्मचर्य (वदमस्सिदो) महाव्रत में आश्रय लेता हूँ। १. स्त्री-कथा त्याग, २. स्त्री-संसर्ग त्याग, ३. स्त्री में हास्य त्याग, ४. स्त्री से क्रीडा त्याग और ५. स्त्री के अंगों का रागभाव से अवलोकन का त्याग, इन ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाओ का व्रत निर्मल होता है।

सचित्ताचित्त-दव्वेसु बज्झ-मब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो पंचमं वदमस्सिदो ।।६।।

अन्वयार्थ—(पंचमं वदमस्सिदो) पंचम परिग्रहत्याग महाव्रत का आश्रय लिया है जिसने ऐसा मैं (सचित्त अचित्त दव्वेसु) सचित्त द्रव्य—गाय, भैस, दासी-दास आदि द्रव्यों में, अचित्त—धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्यों में, (बज्झब्भंतरेसु) और बाह्य-वस्त्र, आभरण आदि द्रव्य में तथा आभ्यन्तर-ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि, द्रव्यों में तथा (परिग्गको) घर, क्षेत्र आदि सभी बाह्य आभ्यन्तर २४ परिग्रहों में (विंरदो) विरति अर्थात् त्याग करता हूँ। इस प्रकार सचित्त द्रव्य त्याग भावना, अचित्त द्रव्य त्याग भावना, बाह्य द्रव्य त्याग भावना, आभ्यन्तर द्रव्य त्याग भावना और सर्व परिग्रह त्याग भावना, इन पाँच भावनाओं के भाने वाले जीव के परिग्रह त्याग महाव्रत निर्मल होता है।

धिदिमंतो खमाजुत्तो, झाण-जोग-परिट्ठिदो।
परिसहाण-उरं देत्तो उत्तमं वदमस्सिदो ।।७।।

अन्वयार्थ—(धिदिमंतो) धैर्य्यवान (खमाजुत्तो) क्षमावान् (झाण-जोग-परिट्ठिदो) ध्यान और योग में अच्छी तरह से स्थित (परीसहाण-उरं देत्तो) बावीस परीषहों को जीतने वाला महापुरुष ही (उत्तम वदमस्सिदो) पाँच महाव्रत रूप उत्तम व्रतों का आश्रय लेता है।

जो सारो सव्वसारेसु सो सारो एस गोयम।
सारं झाणंति णामे ण सव्वं बुद्धेहिं देसिदं ।।८।।

अन्वयार्थ—(गोयम !) हे गौतम ! (सव्वसारेसु) सभी सार वस्तुओं में (जो) जो (सारो) सार है (सो) वह (सारो) वह सार (एस) यह

व्रत है। (सव्वं सारं झाणंति णामे ण) सब सार में "सार ध्यान" से (बुद्धेहिं) सर्वज्ञदेवों ने, ज्ञानियों ने (देसिदं) कहा है।

तात्पर्य यह है कि सब सारों मे सार व्रत हैं तथा उनमें ध्यान व्रत का भी सार है ऐसा जानना चाहिये क्योंकि ध्यान व्रतो की विशुद्धि का हेतु है।

इच्चेदाणि पंचमहव्वदाणि, राइ-भोयणादो वेरमणं छट्ठाणि, सभावणाणि, समाउग्ग-पदाणि, स उत्तर-पदाणि, सम्मं, धम्मं, अणुपाल-इत्ता, समणा, भयवंता, णिग्गंथा होऊण, सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, परिविज्जाणंति।

अर्थ—इस प्रकार ये पाँच महाव्रत और षष्ठम रात्रिभोजन विरक्ति/त्याग ये छह महान् व्रत हैं। जो भावनाओं सहित हैं, अष्ट प्रवचन मातृकाओं से सहित हैं, उत्तर पदों सहित है। ये व्रत सम्यक् धर्म है, इनका पालन करके श्रमण भगवन्त निर्ग्रन्थ अर्थात् पूर्ण रूप से अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह के त्यागी निर्ग्रन्थ हो करके स्वात्मोपलब्धि रूप सिद्धि को प्राप्त होते हैं, हेयोपादेय रूप विवेक से सम्पन्न हो केवलज्ञान प्राप्त कर बुद्ध होते हैं, अष्ट कर्मों से छूटकर मुक्त होते हैं, संसाररूप समुद्र से पार होते हैं, समस्त दु:खों का क्षय करते हैं और त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् अच्छी तरह से जानते हैं।

तं जहा—

वह इस प्रकार कहा है—

पाणादिवादं चहि मोसगं च, अदत्त मेहुण्ण परिग्गहं च।
वदाणि सम्मं अणुपाल-इत्ता, णिव्वाण-मग्गं विरदा उवेंति॥१॥

अन्वयार्थ—(विरदा) विरत मुनि (पाणादिवादं) प्राणातिपात अर्थात् हिंसा (च) और (मोसगं) असत्य (अदत्त) चोरी (मेहुण्ण) मैथुन (च) और (परिग्गहं) परिग्रह को (चहि) छोड़कर/त्यागकर (वदाणि) व्रतों का (सम्मं अणुपालइत्ता) समीचीन रूप से अनुपालन कर (णिव्वाणमग्गं) निर्वाणमार्ग को (उवेंति) प्राप्त होते हैं॥१॥

जाणि काणि वि सल्लाणि गरहिदाणि जिण-सासणे।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता णिसल्लो विहरदे सया मुणी॥२॥

अन्वयार्थ—(जिण सासणे) जिनेन्द्रदेव के शासन में (जाणि काणि वि) जो भी कोई (सल्लाणि) शल्य — माया, मिथ्यात्व, निदान, आदि या क्रोध, मान, माया, लोभ (गरहिदाणि) निन्दित कहे गये हैं (मुणी) मुनिराज (सया) सदा (ताणि सव्वाणि) उन सबको (वोसरित्ता) त्याग कर (णिसल्लो) नि:शल्य होते है, हुए (विहरदे) विहार करते हैं अथवा मुनिराज सब शल्यों का त्याग करके निज स्वरूप में "विहरदो" अर्थात् विचरण करते हैं।

उप्पण्णाणुप्पण्णा माया अणुपुव्वं सो णिहंतव्वा ।
आलोयण पडिकमणं णिंदण गरहणदाए ।।३।।

अन्वयार्थ—(उप्पण्ण) उत्पन्न अथवा (अणुप्पणा) अनुत्पन्न (माया) माया को (सो) वे मुनि (अणुपुव्वं) क्रमश: (आलोयण) आलोचना (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (णिंदण) निन्दा (गरहणदाए) गर्हा से (णिहंतव्वा) नाश करें।

मन-वचन-काय की कुटिलता का नाम माया है। मुनियों का कर्तव्य है कि जो-जो माया जब-जब उत्पन्न हो तब-तब आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा के द्वारा उनका विनाश करें।

अब्भुट्ठिद-करण-दाए अब्भुट्ठिद-दुक्कड-णिराकरणदाए ।
भवं भाव पडिक्कमणं सेसा पुण दव्वदो भणिदा ।।४।।

अन्वयार्थ—(अब्भुट्ठिदकरणदाए) माया जिन परिणामों से जिस काल मे उत्पन्न हुई है, (अब्भुट्ठिददुक्कडणिराकरणदाए) उत्पन्न हुई उस माया का उसी काल मे आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा के द्वारा निराकरण कर नष्ट करना चाहिये (भवं भाव पडिकमणं) इससे यह भाव प्रतिक्रमण होता है, (सेसा पुण) पुन: शेष सर्व प्रतिक्रमण (दव्वदो भणिदा) द्रव्य प्रतिक्रमण कहा गया है।

अर्थात् माया परिणति का निन्दा, गर्हा आदि से निराकरण करना भाव प्रतिक्रमण है और शेष शब्दोच्चारण मात्र रूप द्रव्य प्रतिक्रमण है।

एसो पडिक्कमण-विही पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
संजम-तव-ट्ठिदाणं णिग्गंथाणं महरिसीणं ।।५।।

अन्वयार्थ—(संजमतवड्डिदाणं) संयम और तप में स्थित (णिग्गंथाणं महरिसीणं) निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिये (एसो पडिकमणविही) यह द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की प्रतिक्रमण विधि (सव्वेहिं जिणवरेहिं) सभी चतुर्विंशति तीर्थंकरों ने (पण्णत्तो) कही है।

अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं भवे एत्थ।
तं खमउ णाण-देवय ! देउ समाहिं च बोहिं च ।।६।।

अन्वयार्थ—(अक्खर पयत्थहीणं) अक्षर, पद, अर्थ से हीन (च) और (मत्ताहीणं) मात्रा से हीन (जं) जो (भवे एत्थ) यहाँ हो (तं) उसे (णाण देवय !) हे श्रुतदेवि (खमउ) क्षमा करो (च) और (मे) मुझे (समाहिं) रत्नत्रय (च) (बोहिं) बोधि (देउ) दो।

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं लोयम्मि य सव्वसाहूणं ।।७।।

अन्वयार्थ—(लोयम्मि) लोक में (अरहंताणं) सब अरहंतों को (तहेव) उसी प्रकार (सिद्धाणं) सब सिद्धो को (आइरिय-उवज्झायाणं) सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को (य) और (सव्वसाहूणं) सब साधुओं को (णमोक्कारं काऊण) नमस्कार करके .....

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स, मूलपदाणं, उत्तर-पदाण-मच्चासणदाए तं जहा—

अर्थ—हे भगवन् ! सूत्र के मूल पदों की और उत्तर पदों की अवहेलना होने से जो कोई दोष उत्पन्न हुआ है उसका निराकरण करने के लिये यह प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। उसी को कहते हैं.....

पदादि की अवहेलना संबंधी प्रतिक्रमण

णमोक्कारपदे, अरहंतपदे, सिद्धपदे, आइरियपदे, उवज्झाय-पदे, साहु-पदे, मंगल-पदे, लोगोत्तम-पदे, सरण-पदे, सामाइय-पदे, चउवीस-तित्थयर-पदे, वंदण-पदे, पडिक्कमण-पदे, पच्चक्खाण-पदे, काउस्सग्ग-पदे, असीहिय-पदे, निसीहिय-पदे, अंगंगेसु, पुव्वंगेसु, पइण्णएसु, पाहुडेसु, पाहुड-पाहुडेसु, कदकम्मेसु वा, भूद कम्मेसु वा, णाणस्स-अइक्कमणदाए, दंसणस्स-अइक्कमणदाए, चरित्तस्स-अइक्कमणदाए, तवस्स-

अइक्कमणदाए, वीरियस्स-अइक्कमणदाए, से अक्खर-हीणं वा, सर-हीणं वा, विंजण-हीणं वा, पद-हीणं वा, अत्थ-हीणं वा, गंथ-हीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अट्टक्खाणेसु वा, अणि-योगेसु वा, अणि-योगद्दारेसु वा, जे भावा पण्णत्ता, अरहंतेहिं, भयवंतेहिं, तित्थयरेहिं, आदियरेहिं, तिलोग-णाहेहिं, तिलोग-बुद्धेहिं, तिलोग-दरसीहिं, ते सद्दहामि, ते पत्तियामि, ते रोचेमि, ते फासेमि, ते सद्दहंतस्स, ते पत्तयंतस्स, ते रोचयंतस्स, ते फासयंतस्स, जो मए पक्खिओ (चउमासिओ) (संवच्छरिओ) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, अकालो, सज्झाओ, कओ काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं, वा मेलिदं, अण्णहा-दिण्णं, अण्णहा-परिच्छदं, आवासएसु, पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(णमोक्कार पदे) नमस्कार पद में, (अरहंत पदे) अरहंत पद में (सिद्ध पदे) सिद्ध पद में (आइरियपदे) आचार्य पद में (उवज्झाय-पदे) उपाध्याय पद में (साहुपदे) साधु पद में (मंगल पदे) मंगल पद में, (लोगोत्तम पदे) लोकोत्तम पद में (सरण पदे) शरण पद मे (सामाइय-पदे) सामायिक पद में (चउवीस-तित्थयर पदे) चौबीस तीर्थंकर पद में (वंदण वदे) वन्दन पद में, (पडिक्कमण पदे) प्रतिक्रमण पद में (पच्चक्खाण पदे) प्रत्याख्यान पद में, (काउस्सग्ग पदे) कायोत्सर्ग पद में, (असीहिय पदे) अ:सही पद में (निसीहिय-पदे) निषेधिका पद में (अंगंगेसु) ११ अंगों में, (पुव्वंगेसु) पूर्वों में, (पइण्णएसु) प्रकीर्णकों में, (पाहुडेसु) प्राभृतों में, (पाहुड-पाहुडेसु) प्राभृत-प्राभृतों में, (कदकम्मेसु वा) कृतिकर्मों में, या (भूद कम्मेसु वा) भूत कर्मों में या (णाणस्स-अइक्कमणदाए) ज्ञान की अवहेलना में, या (दंसणस्स-अइक्कमणदाए) दर्शन की अवहेलना में (चरित्तस्स-अइक्कमणदाए) चारित्र की अवहेलना में (तवस्स अइक्कमणदाए) तपकी अवहेलना में (वीरियस्स-अइक्कमणदाए) वीर्य की अवहेलना में (से अक्खरहीणं वा) उनमें अक्षर की हीनता या (सरहीणं वा) स्वर की हीनता या (विंजण हीणं वा) व्यंजन की हीनता या (पद हीणं वा) पद की हीनता या (अत्थ हीणं वा) अर्थहीन या (गंथ हीणं वा) ग्रन्थ की हानि (थएसु वा) स्तव में या (थुइसु) स्तुति में या (अट्टक्खाणेसु वा)

अर्थाख्यानों में या (अणि-योगेसुवा) अनुयोगों में या (अणियोगद्दारेसु वा) अनुयोगद्वारों में (जे भावा पण्णत्ता) जो भावा प्रज्ञप्त हैं (अरहंतेहिं) अरहंतों (भयवंतेहिं) भगवन्तो (तित्थयरेहिं) तीर्थंकरों (आदियरेहिं) आदि तीर्थ कर्ता (तिलोय-णाहेहिं) त्रिलोकीनाथ (तिलोग बुद्धेहिं) त्रिलोक ज्ञाता (तिलोगदरसीहिं) त्रिलोक दृष्टा है (ते सद्दहामि) उनमे मैं श्रद्धा करता हूँ (ते पत्तियामि) उनमे विश्वास करता हूँ (ते रोचेमि) उनमें मैं रुचि करता हूँ (ते फासेमि) उनका स्पर्श करता हूँ (ते सद्दहंतस्स) उनका श्रद्धान करने वाले (ते पत्तयंतस्स) उनका विश्वास करने वाले (ते रोचयंतस्स) उनका रुचि करने वाले (ते फासयंतस्स) उनका स्पर्श करने वाले (जो मए) मेरे द्वारा जो (पक्खिओ) पाक्षिक (चउमासिओ) चातुर्मासिक (संवच्छरिओ) सांवत्सरिक (अदिक्कमो) अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार (आभोग) आभोग (अणाभोगो) अनाभोग दोष लगा हो (अकाले सज्झाओ) अकाल में स्वाध्याय किया हो (कओ काले वा परिहाविदो) या स्वाध्याय काल में स्वाध्याय नहीं किया हो (अच्छाकारिदं) अन्यथा किया हो (मिच्छा मेलिदं) मिथ्या के साथ मिलाया हो (आमेलिदं वा मेलिदं) अन्य अवयव को अन्य अवयव के साथ मिलाकर पढ़ा हो (अण्णहा-दिण्णं) अन्यथा कहा हो (अण्णहा पडिच्छदं) अन्यथा समझा हो (आवासएसु पडिहीणदाए) छः आवश्यको में परिहीनता की हो (तस्स मिच्छा मे दुक्कडं) तत्संबंधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

भावार्थ—पञ्चनमस्कार णमो अरहंताणं आदि पद में अरहंतपद में, सिद्धपद में आचार्य पद में, उपाध्याय पद में, साधु पद में, लोक में चार मंगल हैं–अरहंत, सिद्ध, साधु और जिनधर्म इन चार मंगल पदों मे, अरहंत, सिद्ध, साधु और जिनधर्म लोक में उत्तम हैं ऐसे लोकोत्तम पद में, अरहंत, सिद्ध, साधु और जिनधर्म लोक मे शरण हैं ऐसे लोक में चार शरण हैं, ऐसे चार शरण पदों में, सर्व सावद्य विरतोऽस्मि ऐसे सामायिक पद में, आदिनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर पद में, सिद्धानुद्धूत आदि और जयति भगवान हेमाम्भोज इत्यादि वन्दना पद में, पडिक्कमामि भंते रूप अथवा दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक,

चातुर्मासिक, सांवत्सारिक आदि रूप प्रतिक्रमण पद मे, अनागत, अतिक्रान्त आदि नौ प्रकार का प्रत्याख्यान पद मे, वन्दना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण योग सबंधी २८ प्रकार कायोत्सर्ग मे, अ:सही पद मे, नि:सही पद मे, आचारांग आदि ग्यारह अंगो मे, उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्वो मे, प्रकीर्णक मे, प्राभृत मे, प्राभृत-प्राभृत मे, करने योग्य षडावश्यक कर्मो मे या जिनके करने से पाप का क्षय होता है ऐसे कृति कर्मो मे, भूत कर्मो मे लगे दोषो का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। तथा ज्ञान की अवहेलना, दर्शन की अवहेलना, चारित्र की अवहेलना, तप की अवहेलना और वीर्य की अवहेलना मे, चौबीस तीर्थकरो के गुणो का वर्णन करने वाले स्तव मे और एक तीर्थकर के गुणो का वर्णन करने वाला स्तुति मे, पुराण पुरुषो के चारित्र का कथन करने वाले अर्थाख्यानो मे, प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग आदि अनुयोग मे, कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारो मे, स्वरहीन, अक्षरहीन, पदहीन, व्यञ्जनहीन, अर्थहीन और ग्रन्थहीन दोषो का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। अर्हतो, भगवन्तो, तीर्थकरो.. .. त्रिलोकीनाथो, त्रिलोकज्ञाताओ, त्रिलोकदृष्टाओ के द्वारा प्रतिपादित जो जीवादि पदार्थ है मै उनकी श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ , विश्वास करता हूँ। वीतराग अरहंत द्वारा प्रतिपादित उन पदार्थो मे श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, विश्वास करने वाले मुझे जो भी दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक [चातुर्मासिक सांवत्सरिक] अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, आभोग, अनाभोग दोष लगा, मैने अकाल मे स्वाध्याय किया, स्वाध्याय काल मे स्वाध्याय नही किया, अन्यथा किया अर्थात् बहुत जल्दी या बहुत धीरे उच्चारण किया, मिथ्या के साथ मिलाया, अन्य अवयव को अन्य अवयव के साथ जोड़कर पद्य बोला हो, उच्चध्वनियुक्त पाठ को नीचध्वनि से और नीचध्वनियुक्त पाठ को उच्चध्वनि से पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया, अन्यथा समझा, छह आवश्यक क्रियाओं मे परिहीनता की हो इन सब दोषो सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

तिथि, मास, वर्ष आदि के अन्तर्गत दोषों का प्रतिक्रमण

अह पडिवदाए, विदियाए, तिदियाए, चउत्थीए, पंचमीए, छट्ठीए, सत्तमीए, अट्ठमीए, णवमीए, दसमीए, एयारसीए बारसीए, तेरसीए,

चउद्दसीए, पुण्ण-मासीए, पण्णरस-दिवसाणं, पण्णरस-राइणं, (चउण्हं-मासाणं, अट्ठणं-पक्खाणं, वीसुत्तरसय-दिवसाणं, वीसुत्तरसय-राइणं) (बारसण्हं-मासाणं, चउवीसण्हं-पक्खाणं, तिण्हिं-छावट्ठि-सय-दिवसाणं, तिण्हिं-छावट्ठि-सय-राइणं) (पंचवरिसादो) परदो, अब्भतंरदो वा, दोण्हं-अट्ट-रूद्द-संकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं-अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं-दंडाणं, तिण्हं-लेस्साणं, तिण्हं-गुत्तीणं, तिण्हं-गारवाणं, तिण्हं-सल्लाणं, चउण्हं-सण्णाणं, चउण्हं-कसायाणं, चउण्हं-उवसग्गाणं, पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं-समिदीणं, पंचण्हं-चरित्ताणं, छण्हं-आवासयाणं, सत्तण्हं-भयाणं, सत्त-विहसंसाराणं, अट्ठण्हं-मयाणं, अट्ठण्हं-सुद्धीणं, अट्ठण्हं-कम्माणं, अट्ठण्हं-पवयण-माउयाणं, णवण्हं-बंभचेर-गुत्तीणं, णवण्हं-णो-कसायाणं, दस-विह-मुंडाणं, दसविह-समण-धम्माणं, दसविह-धम्मज्झाणाणं, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं किरियाणं, चउद्दसण्हं पुव्वाणहं, पण्णरसण्हं पमायाणं, सोलसण्हं कसायाणं बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए किरियासु, पणवीसाए भावणासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, पडिक्कंतं, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदं, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं करेमि, पज्जुवासं करेमि, ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(अह) अब (पडिवदाए) प्रतिपदा में (विदियाए) द्वितीया में (तदियाए) तृतीया में (चउत्थीए) चतुर्थी में (पंचमीए) पंचमी में (छट्ठमीए) षष्ठी में (सत्तमीए) सप्तमी में (अट्ठमीए) अष्टमी में (णवमीए) नवमी में (दसमीए) दशमी में (एयारसीए) एकादशी में (बारसीए) द्वादशी में (तेरसीए) त्रयोदशी में (चउद्दसीए) चतुर्दशी में (पुण्णमासीए) पूर्णमासी में (पण्णरस-दिवसाणं) पन्द्रह दिनों में (पण्णरस-राइणं) पन्द्रह रात्रियों में [चउण्हं-मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाणं, वीसुत्तरसय-दिवसाणं, वीसुत्तरसय-राइणं] चार माह में, आठ पक्षों में,

एक सौ बीस दिनो मे, एक सौ बीस रात्रियो मे [वारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हिं छावट्ठि-सय-दिवसाणं, तिण्हिं छावट्ठि-सय-राइणं] बारह महीनो मे, चौबीस पक्षो मे, तीन सौ छ्यासठ दिनो मे, तीन सौ छ्यासठ रात्रियो मे [पंचवरिसादो] पॉच वर्षो मे (परदो) पॉच वर्ष के आगे/परे (अब्भंतरदो वा) अथवा पॉच वर्ष के भीतर (दोण्हं-अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणं) दोनो प्रकार के आर्त्त-रौद्र संक्लेश परिणामो (तिण्हं-अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं) तीन प्रकार के अप्रशस्त संक्लेश परिणामो (तिण्हं दंडाणं) तीन प्रकार के दंड-मन-वचन-कायो (तिण्हं लेस्साणं) तीन प्रकार की लेश्याओ (तिण्हं-गुत्तीणं) तीन प्रकार की गुप्तियो (तिण्हं-गारवाणं) तीन गारवो (तिण्हं-सल्लाणं) तीन शल्यो (चउण्हं-सण्णाणं) चार संज्ञाओ (चउण्हं कसायाणं) चार कषायो (चउण्हं-उवसग्गाणं) चार प्रकार के उपसर्गो (पंचण्हं-महव्वयाणं) पॉच महाव्रतो (पंचण्हं-इंदियाणं) पॉच प्रकार इन्द्रियो (पंचण्ह-समिदीणं) पॉच प्रकार समितियो (पंचण्हं-चरित्ताणं) पॉच प्रकार चारित्रो (छण्हं-आवासयाणं) छह प्रकार के आवश्यको (सत्तण्हं-भयाणं) सात प्रकार के भयो (सत्तविह-संसाराणं) सात प्रकार का संसारो (अट्ठण्हं-मयाणं) आठ प्रकार के मदो (अट्ठण्हं-सुद्धीणं) आठ प्रकार की शुद्धियो (अट्ठण्हं-कम्माणं) आठ प्रकार के कर्मो (अट्ठण्हं-पवयण-माउयाणं) आठ प्रकार की प्रवचन मातृकाएँ (णवण्हं बंभचेर गुत्तीणं) नव प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियो (णवण्हं णो कसायाणं) नौ प्रकार की नोकषायो (दस-विह मुंडाणं) दस प्रकार के मुण्डो (दसविह-समण-धम्माणं) दस प्रकार का श्रमण धर्मो (दसविह-धम्मज्झाणाणं) दस प्रकार का धर्म्यध्यानो (वारसण्हं संजमाणं) बारह प्रकार का संयमो (वारसण्हं तवाणं) बारह प्रकार का तपो (वारसण्हं अंगाणं) बारह प्रकार के अंगो (तेरसण्हं किरियाणं) तेरह प्रकार की क्रियाओ (चउदसण्हं पुव्वाण्हं) चौदह प्रकार पूर्वो (पण्णरसण्हं पमायाणं) पन्द्रह प्रकार प्रमादो (सोलसण्हं कसायाणं) सोलह प्रकार कषायो (बावीसाए परीसहेसु) बावीस प्रकार परीसहो (पणवीसाए किरियासु) पच्चीस प्रकार क्रियाओ (पणवीसाए भावणासु) पच्चीस प्रकार भावनाओ (अट्ठारस-सील-सहस्सेसु) अठारह हजार शीलो मे (चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु) ८४ लाख गुणो मे (मूलगुणेसु) मूलगुणो मे (उत्तरगुणेसु) उत्तरगुणों में (अदिक्कमो)

अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार (आभोगो) आभोग (अणाभोगो) अनाभोग हुआ हो (भंते !) हे भगवन् ! (तस्स) तत्संबंधी (अइचारं पडिक्कमामि) अतिचार का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ (पडिक्कंतं) व्रतों का उल्लंघन (कदो वा) किया हो या (कारिदो वा) कराया हो या (समणुमण्णिदं) अच्छी तरह अनुमोदना की हो (भंते !) हे भगवन् (तस्स) तत्संबंधी (अइचारं पडिक्कमामि) अतिचार का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ (णिंदामि) निन्दा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाणं वोस्सरामि) आत्मा से/अन्तरंग से उनका त्याग करता हूँ (जाव अरहंताणं भयवंताणं) जितने अरहंत भगवन्त हैं उनको (णमोक्कारं करेमि) नमस्कार करता हूँ (पज्जुवासं करेमि) पर्युपासना करता हूँ (ताव कालं) उतने काल पर्यन्त (पावकम्मं-दुच्चरियं वोस्सरामि) पापकर्म, दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

भावार्थ—अब प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, पन्द्रह दिनों में, पन्द्रह रात्रि में, छह मास में, आठ पक्ष में, एक सौ बीस दिनों में, एक सौ बीस रात्रियों में, बारह माह में, चौबीस पक्ष में, तीन सौ छ्यासठ दिनों में, तीन सौ छ्यासठ रात्रियों में, पाँच वर्ष से परे अर्थात् आगे या पाँच वर्ष के भीतर दोनों प्रकार आर्त्त-रौद्र परिणाम, माया-मिथ्या-निदान रूप तीन प्रकार के अप्रशस्त संक्लेश परिणाम, मन-वचन-काय तीन दण्ड, तीन लेश्या कृष्ण-नील-कापोत, तीन गुप्ति, तीन गारव, तीन शल्य, चार संज्ञा आहार, भय, मैथुन व परिग्रह, चार कषाय, चार उपसर्ग, पाँच महाव्रत, पाँच इन्द्रिय, पाँच समिति, पाँच प्रकार का चारित्र, छह आवश्यक, सात भय, सात प्रकार संसार, आठ मद, आठ शुद्धि, आठ कर्म, आठ प्रवचनमातृका, नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, नौ नोकषाय, दस प्रकार मुण्ड, दसविध श्रमणधर्म, दसविध धर्मध्यान, बारहविध संयम, बारह तप, बारह अंग, तेरह क्रिया, चौदह पूर्व, पन्द्रह प्रमाद, सोलह कषाय, पच्चीस क्रियाओं में, पच्चीस भावनाओं में, बावीस परीषहों में, अठारह हजार शीलों में, चौरासी लाख मूलगुणों मे, उत्तरगुणों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग अर्थात् पूजासत्कार की भावना से

अतिप्रकट रूप से अनुष्ठान करना और अनाभोग अर्थात् लज्जा आदि के वश किसी को प्रकट न होने पावे, इस तरह छिपकर अनुष्ठान करना। आदि दोष लगे है। हे भगवन्! उन अतिचारो का प्रतिक्रमण करता हूँ

हे भगवन्! व्रतो का उल्लघन किया हो, कराया हो, करते हुए की अच्छी तरह अनुमोदना की हो, उस अतिचार का (दोष का) प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, आत्मा से उनका त्याग करता हूँ। जब तक अरहंत भगवान् को मै नमस्कार करता हूँ, उनकी पर्युपासना करता हूँ, तक तब पाप कर्मस्वरूप दुश्चरित्र रूप काय से ममत्व का त्याग करता हूँ।

णमो अरहंताणं....... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताणं....... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

श्रावक के १२ व्रतों के अन्तर्गत पाँच अणुव्रतों का वर्णन

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण, भयवदो, महदि, महावीरेण, महाकस्सवेण, सव्वण्हुण, सव्व-लोय-दरसिणा, सावयाणं, सावियाणं, खुड्डयाणं, खुड्डीयाणं, कारणेण, पंचाणुव्वदाणि, तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि सिक्खावदाणि, बारस-विहं गिहत्थ-धम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिये अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तिदिये अणुव्वदे, थूलयडे अदिण्णादाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे, थूलयडे सदार-संतोस-परदारा-गमण-वेरमणं, कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे, थूलयडे इच्छा-कद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

अर्थ—हे आयुष्मानो मैने [गौतम ने] यहाँ निश्चय से पूज्य श्रमण भगवान् महावीर, महाकश्यपगोत्रीय, सर्वज्ञदेव, सर्वलोकदर्शी से सम्यक् प्रकार उपदेशित श्रावक-श्राविका, क्षुल्ल्क-क्षुल्ल्किाओ के कारण से पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को प्रथम सुना है। उन बारह व्रतो मे ये पॉच व्रत है—प्रथम अहिंसा अणुव्रत मे स्थूल प्राणातिपात [जीवहिंसा] से विरति, दूसरे सत्याणुव्रत मे स्थूल असत्य वचनालाप से विरति, तीसरे अचौर्याणुव्रत मे अदत्तादान

से विरति, चतुर्थ ब्रह्मचर्य अणुव्रत में स्थूल ब्रह्मचर्य पालन अर्थात् स्वस्त्री मे संतोष और परस्त्री सेवन से विरति । पाँचवे अणुव्रत में इच्छाओं का परिमाण करना या परिग्रह का प्रमाण करना ये पॉच अणुव्रत है ।

श्रावक के १२ व्रतों में ३ गुणव्रत

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसि-विदिसि पच्चक्खाणं, विदिये, गुणव्वदे, विविध-अणत्थ-दंडादो वेरमणं, तिदिये गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि ।

अर्थ—श्रावक के बारह व्रतों मे ये तीन गुणव्रत हैं.....उनमें पहले गुणव्रत दिग्व्रत में दिशा और विदिशा मे प्रत्याख्यान है, दूसरे अनर्थदण्डव्रत नामक गुणव्रत मे विविध अनर्थदण्डो अर्थात् अप्रयोजनीय कार्यो से विरति है, और तीसरे भोगोपभोगपरिसंख्यापरिमाण नामक गुणव्रत में भोग और उपभोग की वस्तुओं की संख्या का नियत परिमाण हो जाता है, इत्यादि ये तीन गुणव्रत है ।

श्रावक के १२ व्रतों में ४ शिक्षाव्रत

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि तत्थ पढमे सामाइयं, विदिये पोसहोवासयं, तिदिये अतिथि-संविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं चेदि । इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खाव-दाणि ।

अर्थ—उन १२ व्रतों में ये चार शिक्षाव्रत है, उनमे पहला शिक्षाव्रत सामायिक, दूसरा प्रोषधोपवास, तीसरा अतिथिसंविभाग, चौथे शिक्षाव्रत में अन्तिम में सल्लेखनापूर्णक मरण । इस प्रकार ये चार शिक्षाव्रत है ।

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्ण-पाव-आसव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्ख-महि-कुसले, धम्माणु-रायरत्तो, पेम्माणुराय-रत्तो, अट्ठि-मज्जाणुराय-रत्तो,, मुच्छिदट्ठे, गिहि-दट्ठे, विहि-दट्ठे, पालि-दट्ठे, सेविदट्ठे, इणमेव णिग्गंथ-पवयणे, अणुत्तरे, से-अट्ठे, सेवणुट्ठे ।

अर्थ—उन श्रावक के १२ व्रतों में प्राप्त/स्वीकृत उपलब्ध जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष प्राप्ति मे कुशल हैं, धर्मानुरागरक्त होने पर मूर्च्छित अर्थ में गृहीत अर्थ में, विहित/कथित अर्थ में, पालित अर्थ में, सेवित अर्थ में इस प्रकार यह ही निर्ग्रंथ प्रवचन जो अनुपम/अनुत्तर है, उस पदार्थ के सेवन अर्थ में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए आठ अंग सहित सम्यग्दर्शन सेवनीय है ।

आभूषणो की उत्कृष्ट शोभा से युक्त हो, ग्यारह अंग के पाठी ऐसे महा ऋद्धि के धारक महर्द्धिक देवो मे उत्पन्न होते है ।

उक्कसेण दो-तिण्ण भव-गहणाणि, जहण्णेण सत्तट्ठ-भव-गहणाणि, तदो सुमाणुसत्तादो-सुदेवत्तं, सुदेवत्तादो-सुमाणुसत्तं, तदो साइहत्था, पच्छा-णिग्गंथा होऊण, सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाण-यंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति । जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं करेमि, पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अर्थ—वे निर्दोष श्रावक के व्रतो का पालन करने वाले भव्य जीव महर्द्धिक देवो मे उत्पन्न होते है तथा उत्कृष्ट से दो या तीन भव संसार मे लेते हैं, जघन्य से सात-आठ भवो को वे ग्रहण करते है, पश्चात् वे सुमनुष्यत्व से, सुदेवत्व, सुदेव से सुमानुष्य मे उत्पन्न हो पश्चात—निर्ग्रन्थ/ मुनिव्रत धारण करके सिद्धि को प्राप्त होते है, केवलज्ञान को प्राप्तकर बुद्ध होते है, कर्मो से मुक्त होते है, पूर्ण निर्वाण को प्राप्त करते है, सब दुखो का अन्त करते है ।

जब तक अरहंत भगवान् को नमस्कार करता हूँ, उनकी पर्य्युपासना अर्थात् पूजा-अर्चा-वन्दना करता हूँ, तब तक पाप कर्मरूप दुश्चरित्र को छोड़ता हूँ, त्याग करता हूँ ।

वीरभक्ति

अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां, कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री निष्ठितकरण-चन्द्रवीरभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक [चातुर्मासिक, सांवत्सरिक] प्रतिक्रमण क्रिया मे पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से समस्त कर्मो के क्षय करने के लिये भावपूजा, वन्दना, स्तुति सहित-निष्ठितकरण वीर भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ ।

विशेष—इस प्रकार उच्चारण के पश्चात् णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डक पढ़कर पाक्षिक प्रतिक्रमण मे ३०० उच्छ्वास तथा चातुर्मासिक व सांवत्सरिक प्रतिक्रमण मे ४००, ५०० श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें । पश्चात् थोस्सामि स्तव पढ़कर चन्द्रप्रभ और वीरस्तुति भक्ति अञ्जलिका सहित पढ़े ।

श्री चन्द्रप्रभजिनस्तुति

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवंद्यं, महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्तकषाय बंधम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(चन्द्रमरीचिगौरं) चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण (जगति) संसार में (द्वितीयं चन्द्रं इव कान्तम्) दूसरे चन्द्रमा के समान कान्तिमान/सुन्दर (ऋषीन्द्र) गणधर आदि ऋषियों के इन्द्र अर्थात् बड़े-बड़े ऋषियों के स्वामी (महतां अभिवन्द्य) इन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों से पूज्य, अभिवन्दनीय (जिनं) घातिया कर्मरूप शत्रुओं को जीतने से जिन और (स्वान्त-कषाय-बन्धम्-जित) अपने विभाव परिणामस्वरूप कषायों को जीतने से जो "जित" हैं (चन्द्रप्रभं) चन्द्रमा की कान्तिसम कान्ति के धारक चन्द्रप्रभ भगवान् की (वन्दे) मैं वन्दना करता हूँ ।

यस्याङ्गलक्ष्मी परिवेशभिन्नं, तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके (अङ्गलक्ष्मीपरिवेशभिन्नम्) शारीरिक सौन्दर्य रूप बाह्य लक्ष्मी रूप दिव्य प्रभामंडल से विदारित (बहुबाह्य तमः) बहुत सारा बाह्य अन्धकार (च) और (ध्यानप्रदीप अतिशयेन) शुक्लध्यानरूप दीपक के अतिशय से (भिन्नम्) विदारित (बहुमानस तमः) बहुत सारा मानसिक अज्ञान अन्धकार (तमोरे) सूर्य की (रश्मिभिन्नम्) किरणों से विदारित (तम इव) अन्धकार के समान (ननाश) नष्ट हो गया था ।

स्वपक्ष सौस्थित्यमदावलिप्ता, वाक्सिंह, नादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः ।।३।।

अन्वयार्थ—(यथा) जिसप्रकार (केसरिणः निनादैः) सिंह की गर्जनाओं से (मदार्द्रगण्डा गजा) मद से गीले हैं गण्डस्थल जिनके ऐसे हाथी (विमदा) मदरहित हो जाते हैं (तथा) उसी प्रकार (यस्य) जिनके (वाक्सिंहनादैः) वचनरूपी सिंह गर्जना के द्वारा (स्वपक्ष-सौस्थित्यमदावलिप्ता) अपने पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले (प्रवादिनः) प्रवादी जन (विमदा) मद रहित (बभूवुः) हो जाते थे ।

अर्थात्—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की वाणी रूप सिंहनाद से प्रवादीरूप गर्वीले हाथियों का मद चूर हो गया था ।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुत कर्मतेजाः ।
अनन्त-धामाक्षरविश्व-चक्षुः, समस्त दुःख क्षय शासनश्च ।।४।।

अन्वयार्थ—(यः) जो (सर्वलोके) तीन लोक में (परमेष्ठितायाः) परमेष्ठी के (पदं) स्थान (बभूव) हुए थे । (अद्भुत कर्मतेजाः) तीव्र

तपश्चरण रूप कार्य से जिनका तेज आश्चर्यकारी था अथवा भव्यात्माओं को प्रतिबोधित करने रूप कर्म में जिनका केवलज्ञानरूप तेज आश्चर्यकारी था (:अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षु:) अनन्त ज्ञान अर्थात् अनन्त केवलज्ञान ही जिनका लोकालोक प्रतिभासक अविनाशी चक्षु था (च) और (शासन:) जिनका शासन (समस्त) मुझ समन्तभद्र के अथवा सम्पूर्ण जीवों के समस्त चतुर्गति संबंधी (दु:खक्षय) दु:खों का क्षय करने वाला था।

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलङ्क-लेप: ।
व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-माल:, पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ।।५।।

अन्वयार्थ—जो (भव्यकुमुद्वतीनां) भव्यरूपी कुमुदिनियों को विकसित करने के लिये (चन्द्रमा:) चन्द्रमा हैं, (विपन्नदोषाभ्रकलंकलेप:) विनष्ट हो गया है रागादि दोषों रूप बादलों के कलंक का आवरण जिनका (व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमाल:) जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों की न्यायरूप किरणों की माला से युक्त हैं, (पवित्र:) पवित्र हैं, अर्थात् घाति कर्म रूप मल से रहित शुद्ध हैं (स: भगवान्) वे चन्द्रप्रभ भगवान् (मे) मेरे (मन:) मन को (पूयात्) पवित्र करें।

वीरभक्ति

य: सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवत: सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मत: सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नम: ।।१।।

वीर: सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो वीरं बुधा: संश्रिता,
वीरेणाभिहत: स्व-कर्म-निचयो वीराय भक्त्या नम: ।
वीरात् तीर्थ-मिदं प्रवृत्त-मतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-द्युति-कांति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ।।२।।

ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्यं,
ध्यान-स्थिता: संयम-योग-युक्ता ।
ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके
संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति ।।३।।

व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धितः शील-शाखः ।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम-सुगन्धिः सत्-तपश्चित्र-पत्रः ।।४।।
शिव-सुख -फलदायी यो दया-छाय-योद्धः,
शुभजन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरित-रविज-तापम् प्रापयन्-नन्तभावं,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तु चारित्र-वृक्षः ।।५।।
चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ।।६।।
धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान् नास्त्यपरः सुहृद्-भव-भृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्त-महं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ।।७।।
धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तं णमस्संति जस्स धम्मे सया मणो ।।८।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! वीरभत्ति काउस्सग्गो तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण-सम्म-चारित्त-तव-वीरियाचारेसु, जम-णियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु, सव्वमइचारं, सावज्ज-जोगं पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोय-अज्झवसायठाणाणि, अप्पसत्थ-जोग-सण्णा-णिंदिय-कसाय-गारव-किरियासु, मण-वयण-काय-करण-दुप्पणिहाणि, परिचिंतियाणि, किण्ह-णील-काउ-लेस्साओ, विकहापालिकुंचिएण-उम्मग्ग-हस्स-रदि-अरदि-सोय-भय-दुगंछ-वेयण-विज्जंभ-जंभाइ-आणि, अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणि, परिणामिदाणि, अणिहुद-कर-चरण-मण-वयण-काय-करणेण, अक्खित्त-बहुल-परायणेण, अपडिपुण्णेण वा, सरक्खरावय-परिसंघाय पडिवत्तिएण, अच्छा-कारिदं, मिच्छा-मेलिदं, आ-मेलिदं, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्हं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदू मज्झं

शान्ति-चतुर्विंशति-स्तुति

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं, शान्ति-चतुर्विंशति-तीर्थंकर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सर्व अतिचारों की विशुद्धि के लिये पाक्षिक (चातुर्मासिक-सांवत्सरिक) प्रतिक्रमण क्रिया में पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से, सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिये भावपूजा वन्दना, स्तव सहित, शान्ति चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

इस प्रकार उच्चारण कर णमो अरहंताण इत्यादि दण्डक पढ़कर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़े। पश्चात् थोस्सामि स्तव पढ़कर "विधाय रक्षां" इत्यादि शान्ति कीर्तना और चतुर्विंशति तीर्थंकर की कीर्तना पढ़कर अञ्चलिका पढ़ें।

शान्ति कीर्तना

विधाय रक्षां परतः प्रजानाम्, राजा चिरं योऽप्रति-मप्रतापः ।
व्यधात् पुरस्तात् स्वत एव शान्ति-र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(यः) जो शान्तिनाथ भगवान् (प्रजानां) प्रजा की (परतः) शत्रुओं से (रक्षां-विधाय) रक्षा करके (चिरं) चिरकाल तक (अप्रतिम प्रताप) अतुल प्रतापी (राजा) राजा हुए (पुरस्तात्) पश्चात् (स्वत एव) स्वयं ही बिना किसी के संबोधन या उपदेश को पा, स्वयंभू भगवान् (मुनिः शान्तिः) शान्ति को प्राप्त कर मुनि हो जिन्होंने (दयामूर्तिःइव) दया की मूर्ति की तरह (अघशान्तिं) घातिया कर्मरूप पापों की शान्ति (व्यधात्) की।

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण, जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जय-मोह चक्रम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(महोदयः) गर्भावतरण आदि पंचकल्याणक रूप अभ्युदयों से सहित होने से महोदय थे ऐसे (यः) जो शान्तिनाथ स्वामी गृहस्थावस्था मे (शत्रुभयंकरेण) शत्रु वर्ग मे भय को उत्पन्न करने वाले (चक्रेण) चक्र के द्वारा (सर्वनरेन्द्र चक्रं) समस्त राजाओ के समूह को (जित्वा) जीतकर (नृपः) पंचम चक्रवर्ती हुए। (पुनः) पश्चात् मुनि अवस्था मे वीतराग अवस्था को प्राप्त होकर (समाधिचक्रेण) शुक्लध्यानरूपी चक्र के द्वारा जिन्होने (दुर्जयमोहचक्रं) अत्यंत कठिनाई से जीतने योग्य ऐसे दर्शनमोह व चारित्र मोह की मूल उत्तरप्रकृतियों के समूह को (जिगाय) जीता था। [ऐसे घातिया कर्मों के क्षय करने वाले शान्तिनाथ जिनेन्द्र की स्तुति की गई है]

राजश्रिया राजसु राजसिंहो, रराज यो राजसु भोगतन्त्रः ।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुन-रात्मतन्त्रो, देवासुरोदार-सभेरराज ।।३।।

अन्वयार्थ—(राजसिंहः) राजाओ में श्रेष्ठ चक्रवर्ती (राजसुभोग तन्त्रः) राजाओ के उत्तम भोग के अधीन (यः) जो शान्तिनाथ जिनेन्द्र (गृहस्थावस्था में) (राजसु राजश्रिया) अनेक राजाओं के मध्य चक्रवर्ती की सम्पदा नौ निधि चौदह रत्न आदि से (रराज) सुशोभित थे (पुनः) पश्चात् वीतरागी संयम अवस्था मे (आत्मतन्त्रः) आत्मा के अधीन होते हुए (देव असुर उदार सभे) देव, असुर आदि की विशाल सभा में अर्थात् समवशरण सभा में (आर्हन्त्यलक्ष्म्या) अर्हन्त पद के योग्य समवशरण, अष्ट प्रातिहार्य आदि बहिरंग तथा अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरंग विभूति से (रराज) सुशोभित हुए थे ।

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं, मुनौ दया-दीधिति-धर्म-चक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्त-चक्रम् ।।४।।

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिन शान्तिनाथ जिनेन्द्र के (राजनि) चक्रवर्ती पद पर आसीन होने पर (राजचक्रं) राजाओं का समूह (प्राञ्जलि अभूत्) अञ्जलीबद्ध हुआ था, (मुनौ) उन्ही शान्तिनाथ भगवान् के मुनि होने पर (दयादीधितिधर्मचक्रम्) दयारूपी किरणों से युक्त उत्तम क्षमादि दस धर्मो अथवा रत्नत्रय धर्मो का समूह (प्राञ्जलि) उनके आधीन हुआ

(पूज्ये) उन्ही शान्तिनाथ भगवान् अर्हन्तदेव रूप मे पूज्य होने पर समवशरण मे विराजमान हो भव्यात्माओ के लिये हितोपदेश देने पर (देवचक्रं) देव समूह अर्थात् भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिषी व कल्पवासी चतुर्निकाय देवो का समूह (मुहु:) बार-बार (प्राञ्जलि) अञ्जलिबद्ध हुआ था तथा (ध्यानोन्मुखे) शुक्लध्यान के सम्मुख होने पर (ध्वंसि कृतान्तचक्रं) क्षय को प्राप्त हुआ कर्मो का समूह (प्राञ्जलि) अञ्जलिबद्ध था मानो शरण की भिक्षा मॉग रहा था।

स्वदोष-शान्त्या-विहितात्म-शान्तिः शान्ते-र्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भव-क्लेशभयोपशान्त्यै, शान्ति-र्जिनो मे भगवान् शरण्यः ।।५।।

अन्वयार्थ—(स्वदोषशान्त्या) अपने घातिया कर्म दोषो की शान्ति अर्थात् क्षय से (विहितात्मशान्तिः) प्राप्त किया है आत्मशान्ति को जिन्होने, जो (शरणं गतानां) शरण मे आये हुए भव्य जीवो को (शान्तेर्विधाता) शान्ति को करने वाले है, जो (जिनः) घातियाकर्म रूप शत्रुओ को जीतने से जिन है जो (भगवान्) भग=ज्ञान वान् युक्त अर्थात् जो केवल-ज्ञान से युक्त है (शरण्यः) संसार के दुःखो से अरक्षित जीवो को शरण देने मे निपुण है वे (शान्तिः) शान्तिनाथ/तीर्थकर जिनेन्द्र (मे) मेरे (भवक्लेशभयोपशान्त्यै) संसार के परिभ्रमण, जन्म-मरण रूप क्लेशो और भयो की पूर्ण शान्ति के लिये (भूयात्) होवे।

चतुर्विंशति स्तुति

[1]चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे ।
सव्वे सगण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।१।।

ये लोकेऽष्टसहस्र-लक्षण-धरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता,
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-मथना-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः ।
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-र्गीत-प्रणूतार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादि-वीर-चरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।२।।

नाभेयं देवपूज्यं जिनवर-मजितं, सर्व-लोक-प्रदीपम्,
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनि-गण-वृषभं, नन्दनं देव-देवम् ।

---

१. क्रियाकलाप पृष्ठ ११२ के अनुसार।

कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वर-कमल-निभं, पद्म-पुष्पाभि-गन्धम्,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकल-शशि-निभं, चंद्रनामान-मीडे ।।३।।
विख्यातं पुष्पदन्तं भव-भय-मथनं, शीतलं लोक-नाथम्,
श्रेयांसं शील-कोशं प्रवर-नर-गुरुं, वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमल-मृषि-पतिं, सैंहसेन्यं मुनीन्द्रम्,
धर्मंसद्धर्म-केतुं शम-दम-निलयं, स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ।।४।।
कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमण-पति-मरं त्यक्त-भोगेषु चक्रम्,
मल्लिं विख्यात-गोत्रं खचर-गण-नुतं सुव्रतं सौख्य-राशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरि-कुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तम्,
पार्श्वं नागेन्द्र-वंद्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ।।५।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं पंच-महा-कल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसाति-सयविसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणि-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइअणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा पुरिसाणं, णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि-मरणं जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं ।

वद-समि-दिंदिय रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

विशेष— [इनका अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण में देखिये]

चारित्रालोचना सहिता बृहदाचार्य भक्ति

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं चारित्रा-लोचनाचार्य-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं .... सव्वसाहूणं ।।१।।

चत्तारि मंगलं .... धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।।

अड्ढाइज्जदीव .... वोस्सरामि ।

[कायोत्सर्ग ९ बार णमोकार मंत्र का जाप करें]

थोस्सामि .... मम दिसंतु ।।८।।

आचार्य भक्ति

सिद्ध-गुण-स्तुति-निरता-नुद्धूत-
रुषाग्नि-जाल बहुल-विशेषान् ।
गुप्तिभि-रभिसम्पूर्णान् मुक्ति-युतः,
सत्य-वचन-लक्षित-भावान् ।।१।।
मुनि-माहात्म्य-विशेषान् जिन-
शासन-सत्प्रदीप-भासुर-मूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित् सुमनसो बद्ध-रजो-
विपुल-मूल-घातन-कुशलान् ।।२।।
गुण-मणि-विरचित-वपुषः षड्-
द्रव्य-विनिश्चितस्य धातृन् सततम् ।
रहित-प्रमाद-चर्यान् दर्शन-शुद्धान्,
गणस्य संतुष्टि-करान् ।।३।।
मोह-च्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-
परिशुद्ध-हृदय-शोभन-व्यवहारान् ।
प्रासुक-निलया-ननघा-नाशा-
विध्वंसि-चेतसो-हत-कुपथान् ।।४।।
धारित-विलसन् मुण्डान् वर्जित-
बहुदण्ड-पिण्ड-मण्डल-निकरान् ।
सकल-परीषह-जयिनः क्रियाभि-
रनिशं प्रमादतः परिरहितान् ।।५।।
अचलान् व्यपेत-निद्रान् स्थान-
युतान् कष्ट-दुष्ट-लेश्या-हीनान् ।

विधि-नानाश्रित-वासा-नलिप्त-
' देहान् विनिर्जितेन्द्रिय-करिणः।।६।।
अतुला-नुत्कुटिकासान् विविक्त-
चित्ता-नखण्डित स्वाध्यायान्।
दक्षिण-भाव-समग्रान् व्यपगत-
मद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान्।।७।।
भिन्नार्त-रौद्र-पक्षान् सम्भावित-
धर्म-शुक्ल-निर्मल-हृदयान्।
नित्यं पिनद्ध-कुगतीन् पुण्यान्,
गण्योदयान् विलीन-गारव-चर्यान्।।८।।
तरु-मूल-योग-युक्ता-नवकाशा-
ताप-योग-राग-सनाथान्।
बहुजन-हितकर-चर्या-नभया-
ननधान् महानुभाव-विधानान।।९।।
ईदृश-गुण-सम्पन्नान् युष्मान्,
भक्त्या विशालया स्थिर-योगान्।
विधि-नानारत-मग्रयान् मुकुली-कृत
हस्त-कमल-शोभित-शिरसा।।१०।।
अभिनौमि सकल-कलुष-प्रभवोदय-
जन्म-जरा-मरण-बंधन-मुक्तान्।
शिव-मचल-मनघ-मक्षय-मव्याहत-
मुक्ति-सौख्य-मस्त्विति-सततम्।।११।।

[विशेष—अर्थ आगे आचार्य भक्ति में पृ० ३४० पर देखिये]

लघु चारित्रालोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंच-समिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आऊ-काइया-जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा-तेऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं,

विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बे-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि-किमिसंख-खुल्लय-वराडय-अक्खरिट्ठय-गण्डवाल, संबुक्क सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ते-इंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थुद्देहियविंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु एदसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघाददो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! आइरिय भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण, सम्म-दंसण-सम्म-चरित्त-जुत्ताणं, पंच-विहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणो-वदेसयाणं, उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पाल ण रयाणं, सव्व-साहूणं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय भत्तं च ।।१।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोहं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

[इन सबका अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

वृहद् आलोचना सहित मध्यम आचार्य भक्ति

अर्थ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं वृहदालोचनाचार्य-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्–

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये बृहद् आलोचना और आचार्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ—

विशेष— [इस प्रकार उच्चारण करके "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडक पढ़कर कायोत्सर्ग करें और थोस्सामि इत्यादि स्तव पढ़कर देसकुलजाइ-सुद्धा इत्यादि रूप से मध्यम आचार्यभक्ति का पाठ करें]

देस-कुल-जाइ-सुद्धा-विसुद्ध-मण-वयण-काय-संजुत्ता।
तुम्हं पाय-पयोरुह-मिह मंगल-मत्थु मे णिच्चं।।१।।

अर्थ—(देसकुलजाइसुद्धा) जो देश-कुल-जाति से शुद्ध हैं अर्थात् आर्य देश में उत्पन्न होने से देश शुद्ध हैं व पिता के वंश से कुल, माता के वंश से जाति इन तीनों से जो शुद्ध हैं (विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता) विशुद्ध मन, विशुद्ध वचन, विशुद्ध काय से संयुक्त हैं ऐसे (तुम्हं पायपयोरुहं इह) आप आचार्य परमेष्ठी के चरण-कमल यहाँ (मे) मेरे लिये (णिच्चं) नित्य ही (मंगलमत्थु) मंगल के लिये अर्थात् मंगल रूप हों।

सग पर-समय-विदण्हू आगम-हेदूहिं चावि जाणित्ता।
सुसमत्था जिण-वयणे विणये सत्ताणु-रूवेण।।२।।

(आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता) जो अरहंत देव द्वारा प्रतिपादित आगम और हेतुओं से छः द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थों को जानकर (सगपरसमयविदण्हू) स्वमत और परमत के ज्ञाता, उनके विचारक हैं (जिणवयणे सुसमत्था) जिनेन्द्रकथित वचनों के अर्थों के सम्यक् समर्थन में और (सत्ताणुरूवेण) सत्त्वानुरूप से (विणये) विनय करने में (सुसमत्था) अच्छी तरह से समर्थ हैं।

बाल-गुरु-बुड्ढ सेक्खग्-गिलाण-थेरे य खमण-संजुत्ता ।
वट्टावयगा अण्णे दुस्सीले चावि जाणित्ता ।।३।।

अर्थ—जो आचार्य (बालगुरुबुड्ढसेक्खग) बाल, बड़े, वृद्ध, शिक्षक, साधुओं (गिलाणथेरे) रोगी व स्थविर साधुओं (य) तथा (खमण) क्षपक (च) और (अण्णे) अन्य भी (दुस्सीले) दुःशील में (संजुत्ता) स्थित साधुओं को (जाणित्ता) जानकर (वट्टावयगा) योग्यतानुसार सन्मार्ग में प्रवर्ताने/लगाने वाले हैं ।

वद-समिदि-गुत्ति-जुत्ता-मुत्ति-पहे ठाविया पुणो अण्णे ।
अज्झावय-गुण-णिलया साहु-गुणेणावि संजुत्ता ।।४।।

अर्थ—जो आचार्य भगवन्त (वयसमिदिगुत्तिजुत्ता) पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त हैं (पुणो) और (अण्णे) अन्य भव्यजीवों को (मुत्तिपहे ठाविया) मुक्तिमार्ग में स्थापित करने वाले हैं (अज्झावयगुणणिलया) अध्यापक अर्थात् उपाध्याय परमेष्ठी के पठन-पाठन तथा २५ गुणों के स्थान हैं तथा (साहुगुणेणावि) साधु परमेष्ठी के २८ मूलगुणों से भी (संजुत्ता) संयुक्त हैं ।

उत्तम-खमाए पुढवी पसण्ण-भावेण अच्छ-जल-सरिसा ।
कम्मिंधण-दहणादो अगणी वाऊ असंगादो ।।५।।

अर्थ—जो आचार्य परमेष्ठी (उत्तमखमाए पुढवी) उत्तम क्षमा में पृथ्वी के समान हैं (पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा) निर्मल भावों से स्वच्छ जल के समान हैं (कम्मिंधणदहणादो अगणी) कर्मरूपी ईंधन को जलाने के लिए अग्नि समान हैं तथा (असंगादो वाऊ) निष्परिग्रही होने से वायु के समान हैं ।

गयण-मिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणि-वसहा ।
एरिस-गुण-णिलयाणं पायं पणमामि-सुद्ध-मणो ।।६।।

अर्थ—(मुणिवसहा) मुनियों में श्रेष्ठ आचार्य परमेष्ठी (गयणमिव णिरुवलेवा) आकाश के समान निरुपलेप है (सायरुव्व अक्खोहा) सागर के समान क्षोभरहित हैं (एरिस गुणणिलयाणं) ऐसे उत्तमोत्तम गुणों के स्थान आचार्य परमेष्ठी के (पायं) चरणों को (सुद्धमणो) शुद्ध मन होकर (पणमामि) मैं प्रणाम करता हूँ ।

संसार-काणणे पुण बंभम-माणेहिं भव्व-जीवेहिं ।
णिव्वाणस्स हु मग्गो लद्धो तुम्हं पसाएण ।।७।।

अर्थ—(तुम्हं पसाएण) हे आचार्य परमेष्ठिन् ! आपके प्रसाद से (संसार काणणे पुण बंभम-माणेहिं) संसाररूपी वन में पुनः-पुनः भ्रमण करने वाले (भव्वजीवेहिं) भव्य जीवों ने (हु) निश्चय से (णिव्वाणस्स मग्गो लद्धो) मोक्ष का मार्ग पाया है ।

अविसुद्ध-लेस्स-रहिया-विसुद्ध-लेस्साहि परिणदा सुद्धा ।
रुद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता ।।८।।

अर्थ—(अविसुद्धलेस्स रहिया) जो आचार्य परमेष्ठी कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्या से रहित है, (विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा) पीत पद्म और शुक्ल इन तीन शुभ लेश्याओ में परिणत होने से शुद्ध हैं। पुनः (रूद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता) आर्त्त और रौद्र दो अशुभ ध्यानो का त्याग करके मोक्ष हेतु धर्म्य और शुक्ल ऐसे शुभ व शुद्ध ध्यान से संयुक्त है।

उग्गह-ईहावाया-धारण-गुण-संपदेहिं संजुत्ता ।
सुत्तत्थ-भावणाए भाविय-माणेहिं वंदामि ।।९।।

अर्थ—(उग्गहईहावाया, धारणगुणसंपदेहि संजुत्ता) जो अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा गुण रूप सम्पत्ति से संयुक्त हैं (सुत्तत्थ-भावणाए) श्रुतार्थ की भावना से युक्त हैं (भावियमाणेहिं) भव्य जीवों के द्वारा पूज्यनीय ऐसे आचार्यों की (वंदामि) मैं वन्दना करता हूँ ।

तुम्हं गुण-गण-संथुदि अजाण-माणेण जो मया वुत्तो ।
देउ मम बोहिलाहं गुरुभत्ति-जुदत्थओ णिच्चं ।।१०।।

अर्थ—हे आचार्य परमेष्ठिन् ! (अजाणमाणेण मया) अज्ञानता से मेरे द्वारा (जो) जो (तुम्हं गुणगणसंथुदि) आपके गुणों के समूह की स्तुति (वुत्तो) कही गई है (गुरुभत्तिजुदत्थओ) गुरुभक्ति से युक्त वह स्तुति (मम) मुझे (णिच्च) प्रतिदिन (बोहिलाहं) बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ (देउ) देवे। अर्थात् गुरुभक्ति के फलस्वरूप मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो।

वृहदालोचना

इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्हं राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि भंते ! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाणं, बीसुत्तर-सय-दिवसाणं, बीसुत्तर-सय-राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि भंते ! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्णिछावट्ठि सय-दिवसाणं, तिण्णि-छावट्ठि-सय-राइणं अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ।

तत्थ णाणायरो अट्ठविहो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि । णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खर-हीणं वा, सर-हीणं वा, विंजण-हीणं वा, पद हीणं वा, अत्थ-हीणं वा, गंथ-हीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्दारेसु वा, अकाले-सज्झाओ, कदो, वा कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छा-कारिदं वा, मिच्छा-मेलिदं वा, आ-मेलिदं, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्हं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

णिस्संकिय णिकंक्खिय णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठीय ।
उवगूहण ठिदि-करणं वच्छल्ल-पहावणा चेदि ।।१।।

दंसणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्ण-दिट्ठी-पसंसणाए, पर-पाखंड-पसंसणाए, अणायदण-सेवणाए, अवच्छल्लदाए, अपहावणाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो-छव्विहो, बाहिरो-छव्विहो चेदि । तत्थ बाहिरो अणसणं, आमोदरियं, वित्ति-परिसंखा, रस-परिच्चाओ, सरीर-परिच्चाओ, विवित्त-सयणासणं चेदि । तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं,

विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं-तवोकम्मं, ण कदं, णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वीरियाचारो पंचविहो परिहाविदो वर-वीरिय-परिक्कमेण, जहुत्त-माणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण णिगूहियं तवो कम्मं, ण कंद, णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

इच्छामि भंते! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंच-समिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आऊ-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा-तेऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बे-इंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खिकिमि-संख, खुल्लय-वराडय-अक्खरिट्ठय-गण्डवाल, संबुक्कसिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ते-इंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थुद्देहियविंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिया, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-

जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूल-गुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोहं ।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

विशेष— [इन सब का अर्थ पूर्न में आ चुका है]

क्षुल्लकालोचना सहित क्षुल्लकाचार्य भक्तिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्य-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्—

अर्थ—अब सब अतिचारों की विशुद्धि के लिये क्षुल्लक आलोचना आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूँ। [९ बार णमोकार मंत्र का जाप करें]

(यहाँ पूर्ववत् "णमो अरहंताणं" इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करें, पश्चात् थोस्सामि हं जिणवरे" इत्यादि स्तव बोलकर नीचे लिखी लघु आचार्य भक्ति पढ़ें)

लघु आचार्य-भक्ति

प्राज्ञः प्राप्त-समस्त-शास्त्र-हृदयः प्रव्यक्त-लोक-स्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभा-परः प्रशमवान् प्रागेवदृष्टोत्तरः ।
प्रायः प्रश्न-सहः प्रभुः पर-मनोहारी परानिन्दया,
ब्रूयाद् धर्म-कथां गणी-गुण-निधिः प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः ।।१।।

(प्राज्ञः) जो बुद्धिमान हैं (प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय) जान लिया है समस्त शास्त्रो के हार्द को जिनने (प्रव्यक्त लोकस्थितिः) लोक की स्थिति जिनके ज्ञान में पूर्ण स्पष्ट है (प्रास्ताशः) जिनकी सांसारिक आशा-इच्छा समाप्त हो गई है तथा (प्रतिभापरः) जो प्रतिभासम्पन्न हैं (प्रशमवान्) *समताभावी/श्रेष्ठ* उपशम भाव से सहित हैं (प्रागेव दृष्टोत्तरः) प्रश्नकर्ता के प्रश्न करने से पूर्व ही उसके उत्तर को जानने वाले हैं (प्रायः प्रश्न

सहः) बहुत प्रश्न किये जाने पर भी जो सहन करने वाले हैं (प्रभुः) समर्थ हैं (परमनोहारी) दूसरों के मन को हरण करने वाले हैं (पर अनिन्दया) दूसरों की अथवा पराई निन्दा से रहित हैं (गुणनिधिः) गुणों के स्वामी/गुणनिधि हैं (प्रस्पष्ट मिष्ट अक्षरः) जिनके वचन स्पष्ट और मधुर हैं (गणी) ऐसे संघनायक आचार्य परमेष्ठी (ब्रूयाद् धर्मकथां) धर्म कथा को कहें।

श्रुत-मविकलं, शुद्धा वृत्तिः, पर-प्रति-बोधने,
परिणति-रुरुद्योगो मार्ग-प्रवर्तन-सद्-विधौ ।
बुध-नुति-रनुत्सेको लोकज्ञता मृदुता-स्पृहा,
यति-पति-गुणा यस्मिन् नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ।।२।।

(अविकलं श्रुतम्) जिनका श्रुतज्ञान अथवा शास्त्रज्ञान पूर्ण है (वृत्तिः शुद्धा) जिनका चारित्र निर्दोष है (परप्रतिबोधने परिणति) भव्यजीवों को संबोधन करने में जिनकी परिणति है (मार्ग प्रवत्तनसद्विधौ उरु उद्योगः मोक्षमार्ग या सन्मार्ग की प्रवृत्ति कराने की समीचीन विधि में जिनका बहुत भारी उद्योग है (बुधनुतिः) जो पूज्य पुरुषों के प्रति नम्रीभूत हैं (अनुत्सेकः) अहंकार से रहित हैं (लोकज्ञता) जिनमे लोकज्ञता अर्थात् व्यावहारिकता है (मृदुता) कोमलता है (अस्पृहा) जो स्पृहा/(होड़-प्रतिस्पर्धा) इच्छा से रहित है (च) और (यस्मिन्) जिनमें (अन्ये) अन्य (यतिपति) आचार्यों के (गुणाः) गुण हैं (सः) वह (सताम्) भव्य जीवों का (गुरुः) गुरु (अस्तु) होता है।

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-
मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः ।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो,
नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ।।१।।

छत्तीस-गुण-समग्गे पंच-विहाचार-करण-संदरिसे ।
सिस्साणुग्गह-कुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ।।२।।
गुरु-भत्ति-संजमेण य तरंति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ।।३।।
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः
षट्-कर्माभिरता-स्तपो-धन-धनाः साधु क्रियाः साधवः ।

शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका ।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणंतु मां साधवः ।।४।।
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः ।
चारित्रार्णव-गंभीरा मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ।।५।।

अंचलिका

इच्छामि भंते ! आइरिय-भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्म-णाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पंच-विहाचाराणं, आयरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं, उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं, सव्व-साहूणं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होदु मज्झं ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोहं ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

विशेष—[इन सबका अर्थ पूर्व में आ चुका है]

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं (पाक्षिक) (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वंदना-स्तव-समेतं सिद्ध-चारित्र-प्रतिक्रमण-निष्ठित करण-चन्द्रवीर-शान्ति-चतुर्विंशति-तीर्थंकर-चारित्रालोचानाचार्य वृहदालोचनाचार्य-मध्यमालोचनाचार्य, क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष-विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्री-करणार्थं, समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्–

अर्थ—अब अपने व्रतों में लगे सब अतिचारों की विशुद्धि के लिये पाक्षिक अर्थात् १५ दिन में (चातुर्मास में, एक वर्ष में) प्रतिक्रमण क्रिया में किये दोषों का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिये, भावपूजा, वन्दना, स्तव सहित सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितंकरण

चन्द्र वीरभक्ति, शान्ति चौबीस तीर्थंकरभक्ति, चारित्र आलोचना आचार्य, बृहद् आलोचना आचार्य, क्षुल्लक आलोचना आचार्यभक्ति को करके उनमे हीनाधिकत्व आदि दोषो की विशुद्धि के लिये समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ ॥१॥

विशेष— [इस प्रकार प्रज्ञापन कर ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप करे]

समाधि भक्ति

अथेष्ट प्रार्थना—

" प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः "

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुतिःसङ्गति सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद् यावन् निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥२॥
अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेवय ! मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ॥३॥

अंचलिका

इच्छामि भंते ! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयण-त्तय-सरूव परमप्प-ज्झाण लक्खणं समाहि-भत्तीए णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वन्दामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होदु मज्झं ।

(पश्चात् आचार्यदेव की सिद्धश्रुत-आचार्य भक्तिपूर्वक वंदना करे)

पाक्षिक प्रतिक्रमण समाप्त

श्रावक प्रतिक्रमण

संकल्प

जीवे प्रमाद-जनिताः प्रचुराः प्रदोषा,
यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।

तस्मात्तदर्थममलं गृहि-बोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्र-भव-कर्म-विशोधनार्थम् ।।१।।

जीव मे प्रमाद जनित अनेक दोष पाये जाते हैं। वे दोष प्रतिक्रमण करने से क्षय को प्राप्त होते हैं। इसलिये अनेक भवों में संचित हुए विचित्र कर्मरूप दोषों की विशुद्धि के लिये गृहस्थों को समझने के लिये मैं प्रतिक्रमण को कहूँगा।

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ।।२।।

हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव ! अत्यन्त पापी, दुरात्मा, मूर्खबुद्धि, मायावी, लोभी, राग-द्वेष से मलीन मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका सतत/निरंतर समीचीन मार्ग में चलने का इच्छुक मैं आप जिनेन्द्र के चरण-कमलों में अब निन्दा अर्थात् स्वसाक्षी से अपने दुष्कृत्यों की निन्दा करता हुआ, त्याग करता हूँ।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि ।।३।।

सब जीवों को मैं क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, सब जीवों में मेरा मैत्रीभाव है, मेरा किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है।

रागबंधपदोसं च, हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ।।४।।

राग परिणाम से होने वाले कर्मबंध और द्वेष, हर्ष, दीनभाव, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति का परित्याग करता हूँ।

राग–इष्ट प्राप्ति में होने वाले परिणाम। **द्वेष**–अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग जनित परिणाम। **दीनता**–विषय प्राप्ति के परिणाम। **हर्ष**–मदोन्मत्तता अर्थात् अभिमान से उत्पन्न परिणाम। **भय**– इहलोक-परलोक सम्बन्धी भय। **शोक**–इष्ट वियोग जनित परिणाम। **रति**–पर वस्तु की आकांक्षा रूप मनोविकार। **अरति**–परवस्तु की अनाकांक्षा रूप परिणाम।

हा दुट्ठ-कयं हा दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ।।५।।

हाय ! हाय मैंने दुष्टकर्म किये, हाय ! हाय मैंने दुष्ट कर्मों का चिंतन किया और हाय ! हाय ! मैंने दुष्ट मर्मभेदी वचन कहे, अब मुझे अपने द्वारा किये कुत्सित कर्मों से बहुत पश्चात्ताप होता है, मेरा अन्त:करण अत्यन्त क्लेशित हो रहा है। अर्थात् मै मन-वचन-काय से किये कुकृत कर्मों का पश्चात्ताप करता हूँ, भीतर ही भीतर खेद का अनुभव करता हूँ।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदाऽवराह-सोहणयं ।
णिंदण-गरहण-जुत्तो मण-वय-कायेण पडिक्कमणं ।।६।।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से की गई किसी जीव की विराधना या प्राणपीड़ा का आत्मनिन्दा या गर्हापूर्वक (दोषों के चिन्तन-पूर्वक ग्लानि का होना) मन, वचन, काय की शुद्धि से परित्याग करना पडिक्कमण अर्थात् प्रतिक्रमण है।

एइंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया-वणप्फदिकाइया तसकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक इन जीवों को स्वयं वियोग रूप मारण किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्हीं जीवों का परितापन अर्थात् संताप किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्हीं जीवों का विराधन अर्थात् पीड़ा दी हो, दुखी किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो तथा उपघात अर्थात् जीवों को एकदेश या सर्वदेश प्राणरहित किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो, निरर्थक हो।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य ।
बंभाऽरंभ-परिग्गह-अणुमणुमुद्दिट्ठ-देसविरदे य ।।

१. दर्शन २. व्रत ३. सामायिक ४. प्रोषध ५. सचित्तत्याग ६.

रात्रिभुक्तित्याग ७ ब्रह्मचर्य ८ आरभत्याग ९ परिग्रहत्याग और १० अनुमतित्याग और ११ उद्दिष्टत्याग ये नैष्ठिक श्रावक की ११ प्रतिमा होती है।

एयासु जहाकहिद-पडिमासु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं, होउ मज्झं।

इन यथाकथित प्रतिमाओ मे प्रमाद से अतिचार, अनाचार रूप दोष लगे हो उसकी शुद्धि के लिये मै उपस्थापना करता हूँ।

अरहंत सिद्ध .... मे भवदु।

अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु इन पॉच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व, उत्तम व्रतो की दृढता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरिय कमेण आलोयण-सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गं करोमि।

अथ (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण मे व्रतो मे मन-वचन-काय से लगे सर्व अतिचारो की शुद्धि के लिये पूर्व आचार्यो के क्रम से आलोचना सिद्धभक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोकवर्ती सर्व वीतरागी निरारभी साधु परमेष्ठियो को मेरा नमस्कार हो।

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

लोक मे चार मगल है—अरहंत जी, सिद्ध जी, "आचार्य, उपाध्याय साधु" अर्थात् साधु गण और केवली भगवान् के द्वारा कहा गया अहिंसामयी धर्म मगल है। लोक मे अरहंत, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ही उत्तम है, तथा ये ही चारो शरण है।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं पारगयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं ।

जम्बूद्वीप, धातकीखंड और अर्द्धपुष्कर द्वीप इन ढाई द्वीपों में तथा लवण और कालोदधि समुद्रो मे पाँच भरत, पाँच ऐरावत व पाँच विदेह—१५ कर्मभूमियो मे होने वाले जितने अरहंत आदि तीर्थप्रवर्तक तीर्थंकर, जिनदेव, जिनो मे श्रेष्ठ तीर्थंकर केवली, सिद्ध, बुद्ध, मुक्तिप्राप्त सिद्ध, अन्तःकृतकेवली, धर्माचार्य, उपाध्याय, साधु धर्मानुष्ठान करने धर्मनायक उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरंग सेना के अधिपति देवाधिदेव अरहंत देव व ज्ञान-दर्शन-चारित्र संबंधी मैं सदा कृतिकर्म करता हूँ ।

करेमि भंते ! सामायियं सव्व-सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि, ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

हे भगवन् ! मै सामायिक काल पर्यन्त सब सावद्य योग का त्याग करता हूँ। जीवन पर्यन्त मन-वचन-काय से सावद्य योग का कृत-कारित-अनुमोदना से त्याग करता हूँ। हे भगवन् ! अपने व्रत मे लगे अतिचारो का प्रतिक्रमण निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जितने काल मै अरहंत भगवन्तो की उपासना करता हूँ उतने कालपर्यन्त पापकर्मो व दुष्चेष्टाओ का त्याग करता हूँ।

[इस प्रकार दण्डक पढ़कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके, ९ बार णमोकार मंत्र, २७ श्वासोच्छ्वास मे जपे, कायोत्सर्ग करे पश्चात् तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशति स्तव पढ़े ।]

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे ।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रय-मले महप्पण्णे ।।१।।

लोयस्सुज्जोय-यरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चौबीसं चेव केवलिणो।।२।।
उसह-मजियं च वन्दे संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे।।३।।
सुविहिं पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।
कुंथुं च जिण वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामिरिट्ठ-णेमिं तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।
एवं मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला-पहीण-जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्य-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चंदेहिं णिम्मल-यरा आइच्चेहिं अहिय-पया-संता।
सायर-मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

मै जिनेन्द्र, तीर्थकर, केवली, अनन्तजिन, मनुष्यो मे श्रेष्ठ, लोक-पूज्य, कर्ममल से रहित महान् आत्माओ की स्तुति करता हूँ।

लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ को करने वाले जिनदेव की मै वन्दना करता हूँ। अरहत परमेष्ठी, चौबीस भगवान् और केवली जिनो का कीर्तन करता हूँ।

मै आदिनाथ, अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दनाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ जिनो की वन्दना करता हूँ।

सुविधिनाथ/पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपुज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ भगवान की मै वन्दना करता हूँ।

कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर/वर्धमान जिनो की मै वन्दना करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति किये गये चौबीस जिनेन्द्र, चौबीस तीर्थकर जो कर्ममल से रहित है तथा जन्म-जरा-मरण से रहित है, मुझ पर प्रसन्न हो।

कीर्तन, वंदन, पूजन किये गये ये लोक मे उत्तम अरहत, सिद्ध

परमेष्ठी मुझे निर्मल केवलज्ञान का लाभ, बोधि/रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि अर्थात् ध्यान की सिद्धि प्रदान करे।

चन्द्रमा के समान निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान, सागर के समान गभीर ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मेरे लिये सिद्धि को प्रदान करे।

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानाऽन्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदाऽयते।।१।।

जिनके ज्ञान मे तीन लोक के समस्त पदार्थ गोखुर (गया के खुर) के समान झलकते है, जिनके चरणो मे उपसर्ग करने वाले शत्रु का सिर झुक गया है ऐसे बाह्य समवशरण लक्ष्मी और अन्तरग अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के धारक श्री वर्धमान जिन के लिये नमस्कार हो।

लघु सिद्ध भक्ति

तव-सिद्धे णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसाणमंस्सामि।।२।।

तप सिद्ध, नय सिद्ध, सयम सिद्ध, चरित्र सिद्ध, ज्ञान और दर्शन से सिद्ध पद को प्राप्त हुए सभी सिद्ध परमात्माओ को नमस्कार हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्म-दंसण-सम्म-चरित्त-जुत्ताणं, अट्ठ-विह-कम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठ-गुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोए-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं, अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

हे भगवन्! मैने सिद्धिभक्ति का कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र से युक्त आठ प्रकार के कर्मो से रहित, सम्यक्त्व आदि आठ गुणो से सम्पन्न ऊर्ध्वलोक के मस्तक प्रतिष्ठित तपसिद्ध, नयसिद्ध, सयमसिद्ध, चारित्रसिद्ध, भूत-भविष्यत्-वर्तमान काल त्रयकालसिद्ध सब सिद्धो की मै सदा नित्यकाल/

प्रतिसमय अर्चना करता हूँ, पूजता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो और जिनेन्द्र गुण रूप सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

इच्छामि भंते ! देवसियं (राइय) आलोचेउं तत्थ—

हे भगवन्! मै (रात्रिक) दैवसिक सम्बन्धी दोषो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ जैसे—

दर्शन प्रतिमा

पंचुम्बर सहियाइं, सत्तवि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविशुद्ध मई, सो दंसण सावओ भणिओ।।१।।

जो पॉच उदुम्बर फल—बड़फल, पीपलफल, कठूमर, पाकर और ऊमर सहित सात—१. जुआ खेलना, २ मांस खाना ३. सुरा याने शराब पीना, ४. शिकार करना ५. वेश्यागमन ६. चोरी करना और ७ परस्त्री सेवन करना इनका त्यागी है और सम्यक्त्व से विशुद्धिमति है जिसकी वह प्रथम दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

सम्यक्त्व—सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु पर दृढ़ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

व्रत प्रतिमा

पंच य अणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि, जाणं विदियम्मि ठाणम्मि।।२।।

पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत को पालन करना द्वितीय स्थान व्रत प्रतिमा है।

सामायिक प्रतिमा

जिणवयण धम्मचेइय, परमेट्ठि जिणालयाण णिच्चंपि।
जं वंदणं तिआलं, कीरइ सामाइयं तं खु।।३।।

जिनवचन, जिनधर्म, जिन चैत्य, पॉच परमेष्ठी–अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु तथा जिन चैत्यालय इन नव देवताओ की प्रतिदिन तीनो कालो मे वन्दना करना वह निश्चय से सामायिक प्रतिमा है। बाह्य-आभ्यंतर शुद्धि को धारण कर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ मुख कर,

एकान्त निर्भय स्थान मे १२ आवर्त को करता हुआ चार प्रमाण चारो दिशा मे करे और स्थिर मन-वचन-काय से समतापूर्वक सामायिक करे।

प्रोषध प्रतिमा

उत्तम मज्झ जहण्णं, तिविहं पोसहविहाण मुद्दिट्ठं ।
सगसत्तीएमासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्वं ।।४।।

उत्तम, मध्यम और जघन्य तीन प्रकार से प्रोषध विधान कहा गया है। अपनी शक्ति के अनुसार एक माह मे चार पर्वो [दो अष्टमी, दो चतुर्दशी] मे करना चाहिये।

सचित्तत्याग प्रतिमा

जं वज्जिजदि हरिदं, तय पत्त पवाल कंदफल वीयं ।
अपसुगं च सलिलं, सचित्तणिव्वत्तियं ठाणं ।।५।।

सचित्त वस्तु, हरित अंकुर पत्र, प्रवाल, कंद, फल-बीज और अप्रासुक जलादि का सेवन नही करना सो पञ्चम प्रतिमा है।

दिवामैथुनत्याग या रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा

मण वयण काय कद, कारिदाणुमोदेहिंमेहुणं णवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि, गुणम्मि जो सावओ छट्ठो ।।६।।

मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से नवकोटिपूर्वक मैथुन का दिन मे त्याग करना सो वह गुणी श्रावक की छठवी प्रतिमा है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा

पुव्वुत्तणव विहाणं पि, मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो ।
इत्थिकहादि णिवित्ती, सत्तमगुण बंभचारी सो ।।७।।

मन, वचन, काय कृत, कारित, अनुमोदना रूप नव कोटि से हमेशा के लिये स्त्री मात्र का त्याग तथा स्त्री-कथा आदि का भी नवकोटि से त्याग करना सो सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है ॥७॥

आरंभत्याग प्रतिमा

जं किं पि गिहारंभं, बहुथोवं वा सया विवज्जेदि ।
आरंभणिवित्तमदी, सो अट्ठम सावओ भणिओ ।।८।।

जो कुछ भी थोड़ा या बहुत सम्पूर्ण गृहारंभ/घर सम्बन्धी आरंभ का सदा के लिये त्याग करना सो आठवी आरम्भ त्याग प्रतिमा है।

परिग्रहत्याग प्रतिमा

मोत्तूण वत्थमित्तं, परिग्गहं जो विवज्जदेसेसं ।
तत्थवि मुच्छणं करेदि, वियाण सो सावओ णवमो ।।९।।

वस्त्र मात्र को छोड़कर शेष सभी परिग्रहों का जो त्यागी है तथा उन वस्त्रों में भी जो मूर्च्छा को नही करता है, वह नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक है।

अनुमतित्याग प्रतिमा

पुट्ठो वाऽपुट्ठो वा, णियगेहिं परेहिं सग्गिहं कज्जे ।
अणुमणणं जो ण कुणदि, वियाण सो सावओ दसमो ।।१०।।

जो अपने या दूसरों के गृहकार्य संबंधी आरम्भ मे पूछने पर या नही भी पूछने पर जो अनुमति नही करता है वह दसमी अनुमति त्याग प्रतिमाधारी श्रावक है।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा

णवकोडीसु विशुद्धं, भिक्खायरणेण भुंजदे भुंजं ।
जायणरहियं जोग्गं, एयारस सावओ सो दु ।।११।।

नवकोटि से शुद्ध, भिक्षा के आचरणपूर्वक दीनतारहित जो भोजन करता है वह, ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक है।

एयारसम्मि ठाणे, उक्किट्ठो सावओ हवई दुविहो ।
वत्थेय धरो पढमो, कोवीण परिग्गहो विदिओ ।।१२।।

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा स्थान में श्रावक दो प्रकार के हैं प्रथम खंड वस्त्रधारक (चद्दर, लंगोटधारी) दूसरे कोपीन (लंगोट) मात्र परिग्रह धारक।

तव वय णियमावासय, लोचं कारेदि पिच्छगिण्हेदि ।
अणुवेहा धम्मझाणं, करपत्ते एय-ठाणम्मि ।।१३।।

उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत, नियम, आवश्यकों का पालन करते हुए बारह अनुप्रेक्षा और धर्म्यध्यान में समय व्यतीत करते हैं। लोच करते हैं,

पिच्छि ग्रहण करते है तथा करपात्र अर्थात् हाथ मे एक बार भोजन करते है। [क्षुल्लक थाली, कटोरा आदि मे आहार करते है तथा ऐलक कर-पात्र मे ही आहार करते हैं, क्षुल्लक केशलोच करे या कैची से बालो को निकाल सकते है पर ऐलक के लिये केशलोच का ही विधान है]

एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स भंते ! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं, समाहिमरण, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

हे भगवन् ! इस प्रकार एक से ग्यारह प्रतिमा पर्यन्त मेरे व्रतो मे रात्रि या दिन मे जो कोई अतिचार या अनाचार लगा हो उस दोष की शुद्धि के लिये मै प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करने वाले मेरा सम्यक्त्वपूर्वक मरण हो, समाधिमरण हो, पडितमरण हो, वीरमरण हो, दु खो का क्षय हो, बोधि/रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो। जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त रायभत्तेय ।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदोय ।।१।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं । अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु ।

[अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए, सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण पडिक्कमण भत्ति कायोत्सर्गं करोमि ।

अब (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण मे सर्व अतिचारो की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यो के क्रम से मै प्रतिक्रमण का कायोत्सर्ग करता हूँ।

[चत्तारि दण्डक पढकर नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करके, थोस्सामि स्तव पढे]

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

णमोजिणाणं णमोजिणाणं णमोजिणाणं णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमोत्थुदे णमोत्थुदे णमोत्थुदे अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाणं ! सल्लघत्ताणं ! णिब्भय ! णिराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिसल्ल ! माणमाय-मोसमूरण, तवप्पहावण, गुणरयण, सीलसायर, अणंत, अप्पमेय, महदि महावीर वड्ढमाण, बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे ।

जिनेन्द्रदेव को तीन बार नमस्कार हो, १७ प्रकार के निषिद्धिका स्थानो को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहंत, निःशेष कर्म क्षय कारक सिद्ध, केवलज्ञानी, कर्म ज्ञानावरण-दर्शनावरण की रज से रहित, समताधारक, शुभमन, शुभध्यानधारी परीषह उपसर्गों के सहन में समर्थ, उपशम योग वाले, समभाव वाले अरहंतादि को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

हे-माया-मिथ्या-निदान शल्य के नाशक, संसारी जीवों के शल्य नाशक, निर्भय, रागरहित, निर्दोष, निर्मोह, निर्मम, निष्परिग्रह, माया-मिथ्या-निदान शल्य रहित, मान, माया और झूठ का मर्दन करने वाले हे तप प्रभावक, हे गुणों के स्वामी गुणरत्न, हे शीलसागर, हे अनन्त चतुष्टय धारक, हे अनन्त, हे अप्रमेय, हे पूजनीय महावीर, हे वर्द्धमान, हे बुद्धर्षिन् ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

गद्य—मम मंगलं अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जयणाणिणो, चउदस-पुव्वगामिणो, सुदसमिदिसमिद्धाय, तवोय, बारह विहो तवसी, गुणाय गुणवंतोय, महरिसी तित्थं तित्थंकराय, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणदा ए, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ, चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तिओचेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ, चेव समिदि मंतो य, सुसमय परसमय विदु, खंति खंतिवंतो य, खवगा य, खीणमोहा य, खीणवंतो य, बोहिय बुद्धाय, बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खाय चेईयाणि ।

अरहंत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी,

चौदह पूर्व के ज्ञाता, श्रुत समूह से युक्त, बारह प्रकार का तप और तपस्वी, ८४ लाख गुण और गुणवान, ऋद्धिधारी मुनि, तीर्थ और तीर्थंकर, प्रवचन व प्रवचन के धारी ज्ञान और ज्ञानी, सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि जीव, संयम और संयमी, विनय और विनयवान, ब्रह्मचारी आश्रम और ब्रह्मचारी, गुप्ति और गुप्ति के धारक, बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह त्याग और त्यागी, समिति और समिति के धारक, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता, क्षमा और क्षमागुण के धारक, क्षपक-श्रेणी और श्रेणी पर चढ़ने वाले बोधित बुद्धव कोष्ठबुद्धि के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्यालय (कृत्रिम-अकृत्रिम) आदि ये सब मेरे लिये मंगलदायक हों।

उड्ढ-मह-तिरियलोए, सिद्धायदणाणि णमंस्सामि, सिद्धणिसीहियाहो, अट्ठावय पव्वये, सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाय, जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहीयाओ जीवलोयम्मि इसिपब्भारतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु आइरिय उवज्झायाणं पव्वतित्थेर कुलयराणं चउवण्णोय समण-संघोय, दससु भरहेरावएसु पंचसु महाविदेहेसु जो लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं एदेहं मगलं करेमि भावदो विसुद्धोसिरसा अहिवंदिऊण सिद्धेकाऊण अंजलिं मत्थयम्मि तिविहं तियरण सुद्धो।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक, सिद्धायतनों को नमस्कार है, निर्वाण-स्थलों को, अष्टापद कैलाश पर्वत, सम्मेद-शिखर, गिरनार, चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमा नगरी हस्तिपालक राजा की सभा में और भी जो कोई निषिद्धिका स्थान हैं, अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रों में, ईषत्प्रागभार मोक्षशिला पर स्थित सिद्धों को, बुद्धों को, अष्टकर्मों से रहित, पापरहित, भाव कर्म मल से रहित निर्मल गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर तथा चार प्रकार के श्रमण संघ, ऋषि, यति, मुनि व अनगार, भरत ऐरावत दस क्षेत्रों में, पाँच विदेह क्षेत्रों में और मनुष्य लोक में जो साधु संयमी तपस्वी हैं ये सब मेरा पवित्र मंगल करें, इनको मैं विशुद्ध भाव से मस्तक झुकाकर सिद्धों को नमस्कार करके मस्तक पर अंजुली रखकर त्रिविध मन-वचन-काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ इस प्रकार मैं मंगल करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते ! दंसण पडिमाए, संकाए, कंखाए विदिगिंच्छाए, परपासंडपसंसणाए, पसंथुए, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा म दुक्कडं ।।१।।

हे भगवन् ! मै व्रतो मे लगे दोषो का पश्चात्तापपूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। दर्शन प्रतिमा मे शंका—जिनेन्द्रकथित मार्ग मे शंका, कांक्षा—शुभाचरण पालन कर संसार शरीर भोगो की इच्छा रूप निदान, जुगुप्सा—धर्मात्माओ के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना परपांखडियो की प्रशंसा–मिथ्या मार्ग व उनके सेवन करने वालो की प्रशंसा की हो, स्तुति की हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि सम्बंधी अतिचार, अनाचार मन से, वचन से, काय से स्वयं किये हो, कराये हों, करते हुए की अनुमोदना की हो तो तत्संबंधी मेरे समस्त दुष्कृत्य निरर्थक हो, मिथ्या हो। मै समस्त दोषो की आलोचना करता हूँ, पश्चात्ताप करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पढमे थूलयडे हिंसाविरदिवदे:– वहेण वा, बंधेण वा, छेएण वा, अइभारारोहणेण वा, अण्णपाणणिरोहणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२-१।।

हे भगवन् ! मै अपने कृत दोषो की आलोचना करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरी व्रत प्रतिमा मे स्थूल हिंसा त्याग व्रत मे वध से, या बंध से, छेदन या अतिभारारोपण या अन्नपाननिरोध करने से अर्थात् जीवो को मैने बाँधा हो, मारा हो, अंगोपांग का छेदन किया हो, शक्ति से अधिक बोझा लादा हो और अन्न-पान निरोध किया हो। मेरे द्वारा रात्रि या दिन मे व्रतो मे अतिचार, अनाचार, मन-वचन-काय से किये गये हो, कराये गये हो अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो वे सब दुष्कृत्य मेरे निरर्थक हो, मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए विदिये थूलयडे असच्चविरदिवदे:- मिच्छोपदेसेण वा, रहो अब्भक्खाणेण वा, कूडलेह करणेण वा, णायापहारेण

वा, सायारमंतभेएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-२।।

हे भगवन् ! दूसरी प्रतिमा मे स्थूल असत्य विरति त्याग व्रत मे लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मिथ्या उपदेश देने से, एकान्त में कही गई बात को प्रकट कर देने से, झूठे दस्तावेज आदि लिखने से, दूसरों की धरोहर हरण करने से, किसी के द्वारा इंगित चेष्टा से उसके अभिप्राय को प्रकट कर देने से इत्यादि प्रकार से स्थूलसत्याणुव्रत में दिन या रात में अतिचार-अनाचार मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हो वे सभी व्रत संबंधी मेरे दुष्कृत निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा थेणहरियादाणेण वा, विरुद्धरज्जा-इक्कमणेण वा, हीणाहियमाणुम्माणेण वा, पडिरूवय ववहारेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, कायेण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-३।।

हे भगवन् ! मैं कृतकर्मों का प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् पश्चात्ताप पूर्वक अपने व्रतों में लगे दोषों की आलोचना करता हूँ। दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत अचौर्याणुव्रत में दिन या रात्रि में मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना से चोरी करने के प्रयोग को बतलाया हो [अर्थात् स्वयं तो चोरी नहीं की परन्तु दूसरों को ऐसा व्यापार बताना जिससे वह चोरी करे] चोर से अपहरण किये द्रव्य को ग्रहण किया हो, राज्य के विरुद्ध कार्य किया हो अर्थात् राज्य के विरुद्ध वस्तु, टिकिट आदि दिया हो, टेक्स-चुराना आदि किया हो, राजा की आज्ञा का भंग किया हो, तोलने के बाट आदि कम या ज्यादा रखे हों और अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर दी हो, इस प्रकार व्रतसंबंधी मेरे सब अतिचार-अनाचार रूप दोष निरर्थक हों, मेरे व्रत संबंधी पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए चउत्थे थूलयडे अबंभविरदिवदे:-परविवाहकरणेण वा, इत्तरियागमणेण वा, परिग्गहिदा परिग्गहिदागमणेण

वा, अणंगकीडणेण वा, कामतिव्वाभिणिवसेण वा, जो मए देवसिओ (राइवो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-४ ।।

हे भगवन् ! द्वितीय प्रतिमा के अब्रह्मविरति व्रत मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय प्रतिमा के अन्तर्गत स्थूल ब्रह्मचर्य व्रत मे मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से दिन या रात मे दूसरो का विवाह किया हो, इत्वरिका (व्यभिचारिणी स्त्री) के घर आना-जाना रूप व्यवहार रखा हो, अपरिग्रहीत कुमारिका और परिग्रहीत वेश्या, सधवा-विधवा स्त्रियो के साथ व्यवहार रखा हो, इनके साथ कामवासना से व्यवहार किया हो, काम-सेवन के अंगो को छोडकर अन्य अंगो से काम चेष्टा की हो, काम के तीव्र विकार मे लोलुपता की हो अथवा घृणित परिणाम किये हो, कराये हो, अनुमोदना की हो इत्यादि व्रत संबंधी दोषो की मै आलोचना करता हूँ मेरे व्रत सम्बंधी पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पंचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदे:- खेत्तवत्थूणं परिमाणाइक्कमणेण वा, धणधण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, हरिण्णसुवण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, दासीदासाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, कुप्पभांडपरिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-५ ।।

हे भगवन् ! मै दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत परिग्रहपरिमाण अणुव्रत मे लगे दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रत प्रतिमा मे स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत मे क्षेत्र, मकान आदि के परिमाण का अतिक्रमण करने से, धन–गाय, बैल आदि धान्य, गेहूँ, चना आदि परिमाण का अतिक्रमण करने से चाँदी-सोना के परिमाण का अतिक्रमण करने से या दासी-दास के परिमाण का अतिक्रमण करने से या कुप्य-वस्त्र, बर्तन आदि समस्त परिग्रह का अतिक्रमण करने से जो भी मेरे द्वारा दिन या रात्रि मे मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से व्रत सम्बन्धी अतिचार-अनाचार हुआ, वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पढमे गुणव्वदे:-उड्ढवइक्कमणेण वा, अहोवइक्कमणेण वा, तिरियवइक्कमणेण वा, खेत्तवड्डिएण वा, अंतराधाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२-६-१।।

हे भगवन् ! मै द्वितीय प्रतिमा के मध्य प्रथम गुणव्रत-दिग्व्रत में लगे अतिचार-अनाचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरा व्रत प्रतिमा में प्रथम गुणव्रत में ऊर्ध्वदिशा में गमन की सीमा उल्लंघन किया हो, अधोदिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, तिर्यक् दिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, सीमित क्षेत्र में वृद्धि की हो या दशोदिशा संबंधी की गई मर्यादा को भूल गया हो इस प्रकार दिन या रात्रि में व्रतसंबंधी दोष अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से किया हो, कराया हो, या करने वालों की अनुमोदना की हो तो मेरा व्रत संबंधी दोष/पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाएविदिए गुणव्वदे:-आणयणेण वा, **विणिजोगेण वा, सद्दाणुवाएण वा, रूवाणुवाएण वा, पुग्गलखेवेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२-७-२।।**

हे भगवन्! द्वितीय व्रत प्रतिमा मे दूसरे गुणव्रत-देशव्रत में लगे दोषों की विशुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रतप्रतिमा गुणव्रत के भेद देशव्रत मे मर्यादा के बाहर से वस्तु मँगाई हो, बाँधी गई सीमा से बाहर वस्तु भेजी हो, शब्दों के इशारे से मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, रूप दिखाकर मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, कंकर, पत्थर आदि फेंककर मर्यादा के बाहर अपना कार्य किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में मन से, वचन से, काय से कृत, कारित, अनुमोदना से व्रतसंबंध अतिचार, अनाचार हुआ हो तो वह मेरा व्रत संबंधी पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाएतिदिए गुणव्वदेः- कंदप्पेण वा, कुकुवेएण वा, मोक्खरिएण वा, असमक्खिया हिकरणेण वा, भोगोपभोगाणत्थकेण वा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-८-३ ।।

हे भगवन् ! मै द्वितीय प्रतिमा तीसरे गुणव्रत अनर्थदण्ड में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। अनर्थदण्डविरति व्रत मे कंदर्प से अर्थात् राग के उदय स्मित से हँसी से, ठट्ठा से, कौतकुच्य अर्थात् कुत्सित भाषण किया हो, शरीर की खोटी चेष्टा की हो, मौखर्य याने बिना प्रयोजन बकवाद किया हो, व्यर्थ संभाषण किया हो, असमीक्ष्याधिकरण याने बिना सोच-विचार के कार्य किया हो, भोगोपभोग की सामग्री का अनर्थ बिना प्रयोजन अधिक संग्रह किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन में या रात्रि में व्रत संबंधी मे जो भी अतिचार मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना से हुए हों तत्संबंधी मेरे दुष्कृत/पाप मिथ्या हों ?

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए पढमे सिक्खावदेः—फासिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदियपरिभोगपरि-माणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, चक्खिंदियभोगपरिमाणाइक्क-मणेण वा, सवणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-९-१ ।।

हे भगवन् ! द्वितीय व्रतप्रतिमा में प्रथम शिक्षाव्रत में लगे अतिचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रथम शिक्षाव्रत में स्पर्शेन्द्रिय संबंधी भोगपरिमाण के अतिक्रमण से, रसना इन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, घ्राण इन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, श्रोत्रेन्द्रिय संबंधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी व्रत संबंधी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुआ तत्संबंधी मेरा दुक्कृत्य मिथ्या हो। जो एक बार भोगा जाता है वह भोग कहलाता है

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए विदियसिक्खावदे:—फांसिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, घाणिंदिय-परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, चक्खिंदियपरिभोग-परिमाणाइक्कमणेण वा, सवणिंदिय परिभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२-१०-२।।

हे भगवन् ! द्वितीय व्रतप्रतिमा में द्वितीय शिक्षाव्रत परिभोगपरिमाण व्रत में लगे अतिचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। स्पर्शेन्द्रिय संबंध परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, रसनेन्द्रिय संबंधी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से, घ्राणेन्द्रिय संबंधी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय संबंधी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से या श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रिय संबंधी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से, काय से, स्वयं किया हो, दूसरों से कराया हो तो परिभोगपरिमाणव्रत संबंधी मेरे दुष्कृत/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाएतिदिए सिक्खावदे:— सचित्तणिक्खेवेण वा, सचित्तपिहाणेण वा, परउवएसेण वा, कालाइक्कमणेण वा, मच्छरिएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२-११-३।।

हे भगवन् ! व्रत प्रतिमा मे तीसरा शिक्षाव्रत है अतिथिसंविभाग उसमें सचित्त [योनिभूत] वस्तु मे प्रासुक पदार्थ को रखा हो, सचित्त से ढका हो, पर के उपदेश से या अन्य का द्रव्य अपना कहकर दिया हो, दान देने के समय का उल्लंघन किया हो, दान देते समय अन्य दाताओं से मात्सर्य किया हो इत्यादि अनेक प्रकार से मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हों तो व्रत संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए चउत्थे सिक्खावदे: —

जीविदासंसणेण वा, मरणासंसणेण वा, मित्ताणुराएण वा, सुहाणुबंधेण वा, णिदाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-१२-४।।

हे भगवन् ! व्रत प्रतिमा में चौथे शिक्षाव्रत समाधिमरण व्रत पालन में जीवित रहने की आशा से, शीघ्र मरण की आशा या मरण का भय करना या मैं मर जाऊँगाँ क्या ? आदि परिणामों से संक्लेश रखना, इष्ट- मित्रजनों से प्रेम रखना, सुखानुबन्ध अर्थात् पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण करना और व्रतादि का पालनकर सांसारिक सुखों की इच्छा करना रूप निदान से जो भी मेरे द्वारा दिन में या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से स्वयं किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो समाधिमरण व्रत सम्बन्धी मेरे दोष/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! सामाइय पडिमाए:—मणदुप्पणिधाणेण वा, वयदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणि-धाणेण वा, अणादरेण वा, सदि अणुवट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

हे भगवन् ! सामायिक प्रतिमा व्रत पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। सामायिक प्रतिमा (तीसरी) के पालने में मन के दुष्प्रणिधान अर्थात् मन की अस्थिरता, वचन दुष्प्रणिधान अर्थात् वचनों के उच्चारण में शीघ्रता या मंदता या अशुद्धि की हो, काय दुष्प्रणिधान अर्थात् काय की चंचलता की हो–एक आसन से निश्चलतापूर्वक बैठकर निर्विकार सामायिक न कर काय की दुष्प्रवृत्ति की हो, शरीर के अंग-उपांगों को चलायमान किया हो, सामायिक अनादर से की हो, सामायिक पाठ का विस्मरण किया हो इत्यादि मेरे द्वारा जो भी कोई दिन या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से, काय से स्वयं किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो सामायिक व्रत प्रतिमा संबंधी मेरा दुष्कृत/पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! पोसह पडिमाए:—अप्पडि-वेक्खियापमज्जियो-सग्गेण वा, अप्पडिवेक्खियापमज्जिया-दाणेण वा, अप्पडिवेक्खियापज्जिया-संथारोवक्कमणेण वा, आवस्सयाणादरेण वा, सदिअणुवट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

हे भगवन् ! चतुर्थ प्रोषध प्रतिमा के पालन करने मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रोषध प्रतिमा को पालते हुए जीव-जन्तुओ को बिना देखे ही अथवा भूमि प्रदेश का जीव-जन्तु रहित है या नही शोधन किये बिना ही मल-मूत्र का क्षेपण किया हो अथवा पूजा के उपकरण आदि बिना शोधे उपयोग किये हो, बिना देखे शोधी भूमि मे ही वस्तु धरी हो और बिना शोधे उपकरण, पुस्तक, पीछी (कोमल वस्त्र की पीछी), कमंडलु आदि उपयोगी वस्तुएँ ग्रहण की हों, बिना देखे, बिना शोधे संस्तर, चटाई-पाटा आदि बिछाये हों, देव-पूजा गुरुपास्ति आदि षट् आवश्यक कर्तव्यों में हानि या अनादर किया हो, सामायिक, पूजन, स्तव आदि का विस्मरण किया हो इत्यादि, जो भी दोष मेरे द्वारा दिन या रात्रि में स्वयं किये गये हों, कराये गये हों या अनुमोदना की गई हो, सामायिक प्रतिभा व्रत संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों ।

पडिक्कमामि भंते ! सचित्तविरदिपडिमाए:—पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइआ जीवा अणंताणंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णाभिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

हे भगवन् ! सचित्तत्याग नामक पंचम प्रतिमा मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। सचित्तविरति त्याग प्रतिमा को पालने में मेरे द्वारा असंख्यातासंख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का, असंख्यातासंख्यात जलकायिक जीवो का, असंख्यातासंख्यात तेजस्कायिक (अग्निकायिक) जीवों का, असंख्यातासंख्यात वायुकायिक जीवो का और अनन्तानंत वनस्पतिकायिक जीवो मे हरित, बीज, अंकुर का छेदन-भेदन किया हो, इन जीवो को उत्तापन/त्रास दिया हो, पीड़ित किया हो, विराधन किया हो या उपघात

किया हो, कराया हो या करते हुए की अनुमोदना की हो तो हे भगवन् ! व्रत संबंधी मेरे दोष/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! राइभत्तपडिमाए:—णवविह-बंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।६।।

हे भगवन् ! मैं रात्रिभुक्ति नामक षष्ठम/छठी प्रतिमा लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा व्रत में दिन में नव प्रकार के ब्रह्मचर्य में मेरे द्वारा अतिचार मन से, वचन से, काय से किया गया हो, कराया गया हो अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो रात्रि-भुक्ति त्याग या दिवामैथुन त्याग प्रतिमा संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! बंभपडिमाए:—इत्थि-कहायत्तणेण वा, इत्थिमणोहरांगनिरिक्खिणेण वा, पुव्वरयाणुस्सरणेण वा, कामकोवणर-सासेवणेण वा, शरीर-मंडणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।७।।

हे भगवन् ! ब्रह्मचर्य प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। ब्रह्मचर्य प्रतिमा व्रत में स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं को कहा हो, स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण किया हो, पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण किया हो या कामोत्पादक गरिष्ठ रसों का सेवन किया हो या शरीर का शृंगार किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से किया हो, करवाया या करते हुए की अनुमोदना की हो तो ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रतसंबंधी मेरे दोष/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! आरंभविरदिपडिमाए:—कसायवसंगएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) आरम्भो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।८।।

हे भगवन् ! आरंभत्याग नामक आठवीं प्रतिमा के व्रत पालन में लगे दोषों का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। आरंभत्याग प्रतिमा में कषाय के वश से

मेरे द्वारा जो भी आरंभ दिन या रात्रि मे मन-वचन-काय या कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो उस आरंभत्याग व्रत संबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! परिग्गहविरदिपडिमाए:—वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मे देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।९।।

हे भगवन् ! परिग्रहत्याग प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। परिग्रहत्याग प्रतिमा व्रत मे वस्त्रमात्र पारग्रह से भिन्न दूसरे परिग्रह मे मूर्च्छापरिणाम होने से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि मे अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से, कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो व्रत संबंधी मेरा दोष मिथ्या हो ।

पडिक्कमामि भंते ! अणुमणविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१०।।

हे भगवन् ! अनुमतिविरत दसवी प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। अनुमतित्याग प्रतिमा मे जो अन्य के द्वारा पूछने या नही पूछने पर भी जो कुछ भी मेरे द्वारा अनुमति दी गई हो, दिलाई गई हो या अनुमोदना की गई हो तो मेरे सभी पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-बहुलं अहोरदियं आहारयं वा आहारावियं वा आहारिज्जंतं वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।११।।

हे भगवन् ! मैं उद्दिष्टत्याग ग्यारहवी प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। उद्दिष्टत्याग प्रतिमा व्रत मे उद्दिष्ट दोष से युक्त आहार को मैने किया हो, उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार दूसरो को कराया हो या उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार को करने की अनुमति दी हो तो उस व्रत संबंधी मेरा पाप मिथ्या हो।।११।।

निर्ग्रन्थ पद की वांछा

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं, अवितहं, अविसंति-पवयणं, उत्तमं तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परि-णिव्वाण-यंति, सव्व-दुक्खाण-मंतकरेंति, पडि-वियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवधि-णियडि-माण-माया-मोसमूरण-मिच्छाणाण-मिच्छा-दंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, इत्थ मे जो कोई (राइओ) देवसिओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

हे भगवन् ! इस निर्ग्रथ लिंग की मैं इच्छा करता हूँ। यह निर्ग्रथ लिंग मोक्षप्राप्ति का उपाय साक्षात् कारण है। यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रथ लिंग से भिन्न दूसरा कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नही है। केवली संबंधी अर्थात् केवली कथित है। सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने मे समर्थ है नैकायिक अर्थात् रत्नत्रय के निकाय से संबंध रखने वाला है, सामायिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य योग का अभाव होने से यह ही सामायिक है। शुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यो से दुखी जीवो के शल्य का नाश करने वाला है। सिद्धि का मार्ग है, श्रेणी का मार्ग है, शान्ति और क्षमा का मार्ग है, उत्कृष्ट मार्ग है, मोक्ष का मार्ग, अरहंत-सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है, चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है निर्वाण का मार्ग है, सर्व दुखो के नाश का मार्ग है, सुचारित्र के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग है, निर्विवाद रूप से निर्ग्रथ लिंग से मुक्ति होती है, मोक्षार्थी इसी लिंग का आश्रय लेते है यह लिंग सर्वज्ञप्रणीत है उस उत्तम लिग की मै श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ, उसी को प्राप्त होता हूँ। इससे भिन्न अन्य कोई मोक्ष का हेतु नही है, न भूत मे था और न भविष्य मे

होगा। ज्ञान-दर्शन-चारित्र व श्रुत का ज्ञापक होने से इस निर्ग्रंथ लिग से जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते है, केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो, कर्मो से रहित होते है। कृतकृत्य हो जाते है, सब दुखो का अन्त करते है। निर्ग्रंथ लिग के द्वारा ही समस्त पदार्थो को जानते है। 'मै श्रमण होता हूँ, सयत होता हूँ, विषय भोगो से उपरत होता हूँ, उपशात होता हूँ। परिग्रह, निकृति/वचना मान, माया, कुटिलता, असत्य भाषण, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र इनसे विरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे श्रद्धा करता हूँ। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये जो तत्त्व है उन्ही की मै श्रद्धा करता हूँ इस प्रकार मेरे द्वारा दिन-रात्रि की क्रियाओ मे जो कोई अतिचार-अनाचार हुए हो तत्संबंधी मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

इच्छामि भंते ! पडिकमणाइचारमालोचेउं जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, अभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चरिओ, दुच्चारिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते, सामाइए, एयारसण्हं-पडिमाणं विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिदेण वा, णिस्सासिदेण वा, उम्मिस्सिदेण वा, णिम्मिस्सिदेण वा, खासिदेण वा, छिंकिदेण वा, जंभाइदेण वा, सुहुमेहिं-अंग-चलाचलेहिं, दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं, अ-समाहिं-पत्तेहिं, आयरेहिं, जाव अरंहताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

हे भगवन्! मै प्रतिक्रमण मे लगे अतिचारो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। मेरे द्वारा दिन या रात्रि की क्रियाओ मे अतिचार-अनाचार आभोग-अनोभोग कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चिंतन हुआ हो, दुश्चरित्र हुआ हो। दुर्वचनो का उच्चारण हुआ हो, खोटे परिणाम हुए हो, ज्ञान मे, दर्शन मे, चारित्र मे, सूत्र मे, सामायिक मे, ग्यारह प्रतिमाओ की विराधना की हो, आठ कर्मो का नाश करने वाली क्रियाओ के प्रयत्न करने मे, श्वासोच्छ्वास मे नेत्रो की टमकार से, खाँसने से, छीकने से, जंभाई लेने से, सूक्ष्म अंगो के हलन-चलन करने से, दृष्टि को चलायमान करने से इत्यादि अशुभ क्रियाओ से सूत्रपाठ आदि क्रियाओ का विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररूपणा की हो, असमाधि को प्राप्त कराने वाली क्रियाओ के आचरण से जो दोष लगा

हो तो मैं इस प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ और जब तक अरहंत भगवन्तों की पर्य्युपासना मैं करता हूँ तब तक पाप कर्म रूप दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदेदे ।।१।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण निष्ठितकरण वीरभक्ति कायोत्सर्गं करेमि।

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण सर्व अतिचार की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से निष्ठितकरण वीरभक्ति के कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

(इति विज्ञाप्य - णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्। थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत्)

[इति विज्ञाप्य ..... पठेत्।]

इस प्रकार विज्ञापन करके णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक को पढ़कर कायोत्सर्ग करे। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि स्तव को पढ़ें।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवितः सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञइत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।।१।।
वीरः सर्व-सुराऽसुरेन्द्र-महितो वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो वीराय भक्त्या नमः।
वीरात् तीर्थ-मिदं-प्रवृत्त-मतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं-त्वयि ।।२।।

ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्यं,
ध्यान-स्थिताः संयम-योग-युक्ताः।

ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके,
संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति ।। ३ ।।
व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम नियम-पयोभि-र्वर्धितःशील-शाखः ।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम सुगन्धिःसत्-तपश्चित्र-पत्रः ।। ४ ।।
शिव-सुख-फलदायी यो दया-छाययोद्धः,
शुभजन-पथिकानां खेदनो दे समर्थः ।
दुरित-रविज-तापं प्रापयन्नन्तभावं,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तुचारित्र-वृक्षः ।। ५ ।।
चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ।। ६ ।।
धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भव-भृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय ।। ७ ।।
धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ।। ८ ।।

जो सम्पूर्ण चेतन-अचेतन विधिवत् द्रव्यो को और उनके गुणो को भूत-भावी-वर्तमान सम्पूर्ण पर्यायो मे सदा सर्वकाल प्रतिसमय मे एक-साथ जानता है अत: वह सर्वज्ञ कहे जाते है, उन सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान् महावीर के लिये नमस्कार हो ॥१॥

वीर भगवान् सभी सुर-असुरो तथा इन्द्रो से पूजित है, ज्ञानीजन वीर प्रभु का आश्रय लेते है, वीर भगवान् ने कर्मसमूह को नष्ट कर दिया है, वीर प्रभु को भक्ति से नमस्कार हो, वीरप्रभु से ही यह अनुपम तीर्थ प्रवृत्त हुआ है वीर भगवान् का तप उत्कृष्ट है, वीर भगवान् मे अन्तरंग-अनंत चतुष्टय और बाह्य मे समवशरण आदि लक्ष्मी, तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान है । हे वीर भगवान् - आप ही कल्याणकारी है ॥२॥

जो भव्य पुरुष ध्यान मे स्थित होकर संयम व योग से सहित होते

हुए प्रतिदिन वीर भगवान् के दोनों चरण-कमलों को नमस्कार करते हैं वे संसार में निश्चित रूप से शोक-मुक्त होते हैं तथा विषम संसार अटवी से तिरकर मुक्त हो जाते हैं ॥३॥

व्रतों का समूह जिसकी जड़ है, संयम जिसका स्कन्ध बंध है, यम-नियम रूपी जल के द्वारा जो वृद्धि को प्राप्त है, १८ हजार शील जिसकी शाखा है, पाँच समिति रूपी कलिकाएँ भार हैं, तीन गुप्तियाँ जिसमें गुप्त प्रवाल हैं, मूल और उत्तरगुण श्रावक अपेक्षा ८ मूलगुण, १२ उत्तरगुण जिसके पुष्पों की सुगंधी है, समीचीन तप चित्र-विचित्र पत्ते हैं जो मोक्षरूपी फल को देने वाला है, दयारूपी छाया समूह से युक्त है, शुभोपयोग में दत्तचित्त पथिकों के खेद को दूर करने में समर्थ है, पापरूपी सूर्य से उत्पन्न ताप को नाश करने वाला है वह चारित्ररूपी वृक्ष हमारे संसार रूप वैभव के नाश के लिये हो ॥४-५॥

सब तीर्थंकरों के द्वारा जिस चारित्र का आचरण किया गया तथा समस्त शिष्यों के लिये जिस चारित्र का उपदेश दिया गया उस सामायिक छेदोपस्थापना आदि पाँच भेद युक्त चारित्र को मैं पंचम यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ॥६॥

सब सुखों की खानि, हित को करने वाला धर्म है। बुद्धिमान लोग धर्म का संचय करते हैं। धर्म के द्वारा ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। इसलिये उस धर्म को नमस्कार हो। संसारी प्राणियों का धर्म से भिन्न अन्य कोई दूसरा मित्र नहीं है। धर्म की जड़ दया है। मैं प्रतिदिन धर्म में मन को लगाता हूँ। हे धर्म, मेरी रक्षा करो ॥७॥

अहिंसा संयम तप रूप धर्म मंगल कहा गया है जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं ॥८॥

इच्छामि भंते ! वीरभत्ति काउस्सग्गं करेमि तत्थ देसासिआ, असणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्दासिआ, काउसग्गासिआ पणमासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमणाए तत्थसु आवासएसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्समिच्छा मे दुक्कडं ।।९।।

हे भगवन् ! मैं वीरभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। उसमें देश के आश्रय से, आसन के आश्रय से, स्थान के आश्रय से, काल के आश्रय से, मुद्रा के आश्रय से, कायोत्सर्ग के आश्रय से, नमस्कारादि विधि के आश्रय से, आवर्त्त आदि, से प्रतिक्रमण में, उनमें आवश्यक कर्मों के करने में मेरे द्वारा हीनता, अत्यासादना मन से, वचन से, काय से, की गई हो, कराई गई हो अथवा करने वाले की अनुमोदना की गई हो तो वीर भक्ति सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हों।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य।
बंभाऽऽरंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदेदे ।।१।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण चउवीस तित्थयर भक्ति कायोत्सर्गं करोमि।

अब मैं दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में लगे सब अतिचार रूप दोषों की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

[णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक पढ़कर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ें। पश्चात् थोस्सामि स्तव पढ़कर चौबीस तीर्थंकर भगवान् की भक्ति पढ़ें।]

चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे।
सव्वेसगण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमस्सामि ।।१।।

वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीरपर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त मुनिराज, गणधर और सिद्ध परमात्माओं को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

ये लोकेऽष्ट-सहस्र-लक्षण-धरा; ज्ञेयार्णवान्तर्गता;
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-मथना-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः ।
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-र्गीत-प्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादि-वीर-चरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।२।।

जो लोक मे १००८ लक्षणो के धारक है, जो समीचीन कारण है, संसाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाशक है, चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है, गणधर, मुनिवर, इन्द्र, देव तथा सैकड़ो अप्सराओ के समूह से जिनकी स्तुति की गई है, पूजा की गई है उन वृषभनाथजी को आदि ले अन्तिम महावीरपर्यन्त २४ तीर्थकर देवो को मै भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

नाभेयं देवपूज्यं जिनवर-मजितं सर्व-लोक-प्रदीपम्,
सर्वज्ञं सम्भवाख्यं मुनि-गण-वृषभं नन्दनं देव-देवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वर-कमल-निभं पद्म-पुष्पाभि-गन्धम्,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकल शशि-निभं चंद्रनामान-मीडे ।।३।।
विख्यातं पुष्पदन्तं भव-भय-मथनं शीतलं लोक-नाथम्,
श्रेयांसं शील-कोशं प्रवर-नर-गुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमल-मृषि-पतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रम्,
धर्मं सद्धर्म-केतुं शम-दम-निलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ।।४।।
कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमण-पतिमरं त्यक्त-भोगेषु चक्रम्,
मल्लिं विख्यात-गोत्रं खचर-गण नुतं सुव्रतं सौख्य-राशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरि-कुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तम्,
पार्श्वं नागेन्द्र-वन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ।।५।।

जिनों मे श्रेष्ठ, देवों से पूज्य, नाभिराजा के पुत्र आदिनाथजी की, उत्कृष्ट दीप सम, त्रैलोक्यप्रकाशक अजितनाथ जिनेन्द्र की, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों, उनके गुण व पर्यायो को युगपत् जानने वाले संभव जिनेन्द्र की, मुनियो के समूह मे श्रेष्ठ देवाधिदेव अभिनन्दन की, कर्मशत्रुनाशक सुमति जिनेन्द्र की, कमलसम आभा व सुगंधित शरीर के धारक पद्मप्रभ

जिनेन्द्र क्षमायुक्त, सहिष्णु जितेन्द्रिय सुपार्श्व जिनेन्द्र की और पूर्णचन्द्रमा के समान कांति के धारक चन्द्रप्रभ भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ। प्रसिद्धिप्राप्त पुष्पदन्त जी की संसार के भय के नाशक शीतल जिनेन्द्र क, शील के समुद्र श्रेयांसनाथ जी की सौ इन्द्रों से पूज्य श्रेष्ठ जनों के गुरु वासुपूज्य भगवान् की, घातिया कर्मो से रहित, इन्द्रियविजेता विमलनाथ भगवान् ऋद्धिधारी मुनियों के स्वामी अनन्तनाथ भगवान् की, रत्नत्रय की ध्वजा-स्वरूप धर्मनाथ जी की और साम्यभाव के खजाने, संसार-दुःखों से पीड़ित, जीवों के शरणभूत शान्तिनाथ भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।

सिद्धालय में स्थित कुन्थुनाथ भगवान् की, हस्तगत चक्ररत्न के त्यागी "अर" जिनेन्द्र की, प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न मल्लिजिनेन्द्र, विद्याधरों के समूह से नमस्कृत सुख की राशि मुनि सुव्रतनाथ जी की, देवों से पूज्य नमि जिनेन्द्र की, भव का अन्त करने वाले हरिवंश के तिलकस्वरूप नेमिनाथजी, धरणेन्द्रवंदित पार्श्वनाथजी और वर्धमान जिनेन्द्र की मैं भक्ति से शरण को प्राप्त होता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंच-महाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसाऽतिसयविसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं, सया णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं।

भंते ! हे भगवन् ! चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग मैंने किया। मैं तत्संबंधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। पञ्चकल्याणक से सम्पन्न, आठ प्रातिहार्यों से युक्त, बत्तीस देवेन्द्रों के मणिमय मुकुटों से सुशोभित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि व अनगार से पूजित लाखों स्तुतियों के खजाने श्री वृषभदेव से लेकर महावीरपर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की मैं हमेशा अर्चना, पूजा, वन्दना करता हूँ, नमस्कार

करता हूँ। मेरे दुखो का, कर्मो का क्षय हो, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधि-मरण हो, जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्तराइ भत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइकदादिचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाएसव्वादिचार विसोहिणिमित्तं पुव्वायरिय कमेण आलोयण श्री सिद्धभत्ति पडिक्कमणभत्ति णिट्ठिदकरण वीरभत्ति चउवीस-तित्थयर भत्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष परिहारार्थं सकल दोष निराकरणार्थं सर्वमलातिचार विशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्ति कार्योत्सर्गं करोमि।

मै अब दिन या रात्रि मे प्रतिक्रमण मे लगे सर्व अतिचारो की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यो के क्रम से आलोचना सिद्ध भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, निष्ठितकरण वीर भक्ति, चतुर्विंशति भक्ति, करके उनमे हीनाधिक दोषो के परिहार के लिये, सकल दोषो का निराकरण करने के लिये सर्व मल व अतिचारो की शुद्धि के लिये, आत्मा को पवित्र करने के लिये समाधि भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

[९ बार णमोकार मंत्र का जाप करे]

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अर्थ— प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुतिःसङ्गतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादो च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ।।१।।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाण-सम्प्राप्तिः ।।२।।
अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ।।३।।

हे भगवन्! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न होवे तब तक भव-भव मे शास्त्रों का पठन-मनन-चिंतन, जिन-चरणों को नमन, सज्जनों की संगति, सच्चारित्रवानो के गुणों की कथा, परदोष-कथन मे मौन, विवाद मे मौन, सब जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन, अपने आत्मस्वरूप की भावना इन सबकी मुझे प्राप्ति हो।

हे जिनेन्द्र, मुझे जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में विराजमान रहें, मेरा हृदय आपके चरण-कमलों मे लीन रहे।

हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव! मेरे द्वारा जो भी अक्षर मात्रा-पद-अर्थ मे हीनाधिक कहा गया हो उसे क्षमा कीजिये और मेरे दुखों का क्षय कीजिये।

आलोचना

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्प-ज्झाण-लक्खण-समाहि-भत्तीए सया णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

हे भगवन्! मैंने समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग किया, तत्संबंधी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। मैं रत्नत्रयस्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका ऐसी समाधिभक्ति की सदा अर्चना, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, सम्यक् प्रकार आधिव्याधि-उपाधिरहित समाधिपूर्वक मरण हो मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

[इति श्रावक प्रतिक्रमण समाप्तं]

ईर्यापथ भक्ति

स्रग्धरा

निःसंगोऽहं जिनानां सदन- मनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या ।
स्थित्वा नत्वा[1]निषद्यो-च्चरण-परिणतोऽन्तः शनै-र्हस्त-युग्मम् ।।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम, दुरित-हरं कीर्तये शक्र-वन्द्यम् ।
निन्दा-दूरं सदाप्तं क्षय-रहित-ममुं ज्ञान-भानुं जिनेन्द्रम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(अह) मै (नि संग) मन-वचन-काय से शुद्ध होकर अथवा संसार संबन्धी सुखो की अभिलाषा/इच्छा से रहित, निस्पृह हुआ (भक्त्या) भक्ति से (जिनानां अनुपमं सदनं) जिनेन्द्र देव के उपमा रहित जिनालय (एत्य) आकर (त्रि परीत्य) तीन प्रदक्षिणा देकर (स्थित्वा) खडा होकर। पश्चात् (नत्वा) नमस्कार करके (निषद्य) बैठकर (अन्त· शनै उच्चरण परिणत) मन मे धीरे/मन्द स्वर से उच्चारण करता हूँ (हस्तयुग्मम्) दोनो हाथो को (भाले सस्थाप्य) ललाट पर रखकर (बुद्धया) बुद्धिपूर्वक (मम) मेरे (दुरितहर) पाप को हरने वाले (शक्रवन्द्यं) इन्द्रो से वन्दनीय (निन्दादूर) निन्दा से दूर/निर्दोष (क्षयरहित) अविनाशी (ज्ञानभानु) ज्ञानसूर्य (आप्त) वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी ऐसे (अमुं) इन जिनेश्वर की (सदा) सर्वदा/हमेशा (कीर्तये) स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—मै त्रियोगो की शुद्धिपूर्वक, निस्पृह व निःशंक होकर भक्ति से तीन लोक के स्वामी के उपमा रहित जिनालय मे आकर तीन प्रदक्षिणा देकर खडा होता हूँ। फिर गवासन, पंचांग आसन या अष्टांग से नमस्कार करके बैठकर मन मे मन्द-मन्द स्वर से उच्चारण करता हूँ। दोनो हाथो को कमलाकार से जोडकर भक्ति से मस्तक पर रखता हूँ, तथा बुद्धिपूर्वक मेरे पापहर्ता, सौ इन्द्रो से वन्दनीय, १८ दोषो से रहित अविनाशी, केवलज्ञानसूर्य से प्रतापित, वीतरागी, सर्वज्ञ हितोपदेशी ऐसे इन जिनेश्वर की सदा स्तुति करता हूँ।

वसन्ततिलका

श्रीमत् पवित्र-मकलंक-मनन्त-कल्पम्,
स्वायंभुवं सकल-मंगलमादि-तीर्थम् ।

---

१ "गत्वा" पाठ भी है।

नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानाम्,
त्रैलोक्य-भूषणमहं शरणं प्रपद्ये ।।२।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) शोभायुक्त, परम ऐश्वर्य सहित (पवित्रम्) पवित्र (अकलङ्कम्) निर्दोष, कलंक रहित (अनन्त कल्पम्) अनन्त काल से जिनकी रचना चली आ रही है (सकल मंगलम्) समस्त जीवों के लिये मंगल रूप (आदितीर्थं) अद्वितीय तीर्थ स्वरूप (नित्योत्सवं) निरन्तर होने वाले उत्सवों युक्त (मणिमयं) मणियों से निर्मित (त्रैलोक्यभूषणं) तीन लोकों के आभूषण रूप (जिनानाम्) जिनेन्द्रदेव के (स्वायंभुवं निलयं) अकृत्रिम आलय-"जिनालयों" की (शरणं प्रपद्ये) शरण को प्राप्त होता हूँ ।

भावार्थ—जो चैत्यालय समवशरण की शोभा रूप ऐश्वर्य से सहित हैं, जिनेन्द्रदेव के संबंध से पवित्र हैं, कलंक से रहित हैं, जिनकी विविध प्रकार के मंगल होते रहते हैं, जो अद्वितीय तीर्थ रूप हैं, अष्टाह्निका, दसलक्षण, पूजा-विधान महाभिषेक, महायज्ञ आदि उत्सव जहाँ निरन्तर होते रहते हैं जो विविध मणियों से मंडित है तीनों लोकों का आभूषण रूप है ऐसे अकृत्रिम चैत्यालयों की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ ।

अनुष्टुप

श्रीमत्परम-गम्भीर, स्याद्वादामोघ-लाञ्छनम् ।
जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिनशासनम् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी से पूर्ण (परम-गंभीर) अत्यन्त गंभीर (स्याद्वाद-अमोघ-लाञ्छनम्) स्याद्वाद जिसका सार्थक/सफल चिह्न है एव (त्रैलोक्यनाथस्य शासनम्) तीन लोक के स्वामी-चक्रवर्ती आदि पर जो शासन करने वाला है ऐसा (जिनशासनं) जिनशासन (जीयात्) जयवन्त रहे ।

भावार्थ—जो अनेक प्रकार की अन्तरंग लक्ष्मियों से भरपूर है, अत्यंत गंभीर "स्याद्वाद" ही जिसका सफल निर्विवाद चिह्न है, तथा तीन लोकों के अधिपति-अधोलोक के स्वामी धरणेन्द्र, मध्यलोक के स्वामी चक्रवर्ती व ऊर्ध्वलोक के स्वामी इन्द्र आदि पर जो शासन करने वाला है ऐसा वीतराग अर्हन्तदेव का "जिनशासन" सदा जयवन्त रहे ।

श्री-मुखालोकनादेव, श्री-मुखालोकनं भवेत् ।
आलोकन-विहीनस्य, तत् सुखावाप्तय: कुत: ।।४।।

अन्वयार्थ—(श्रीमुखालोकनात् एव) वीतरागता रूप लक्ष्मी से युक्त जिनेन्द्रदेव के मुख के देखने से ही (श्रीमुख अलोकनं) मुक्तिलक्ष्मी के मुख का दर्शन/अवलोकन (भवेत्) होता है । (आलोकनविहीनस्य) जिनेन्द्र देव के दर्शन से रहित जीव को (तत्सुख) वह सुख (कुत:) कैसे (अवाप्तय:) प्राप्त हो सकता है ?

भावार्थ—वीतराग रूप लक्षमी से अलंकृत जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से ही साक्षात् मुक्ति-लक्ष्मी का दर्शन हो जाता है किन्तु जो मनुष्य जिनेन्द्रदेव का दर्शन ही नहीं करते हैं; उन्हें वह सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता।

वसन्ततिलका

अद्याभवत्-सफलता नयन-द्वयस्य,
देव ! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन ।
अद्य-त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधि-रयं चुलुक-प्रमाण: ।।५।।

अन्वयार्थ—(देव !) हे वीतराग देव ! (अद्य) आज (त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन) आपके चरण-कमलों को देखने से/दर्शन से (में) मेरे (नयनद्वयस्य) दोनों नयनों की (सफलता) सार्थकता (अभवत्) हो गई (त्रिलोकतिलक) हे तीन लोकों के तिलक स्वरूप भगवन् ! (अद्य) आज (मे) मुझे (अयं संसार-वारिधि:) यह संसार सागर (चुलुक प्रमाण:) (प्रतिभासते) जान पड़ता है ।

भावार्थ—हे वीतराग भगवान् ! आपके पावन चरण-कमलों के दर्शन से आज मेरे दोनों नयन सफल हो गये हैं। हे तीन लोकों के तिलक भगवन् ! आज आपके दर्शन से मुझे यह अगाध संसार भी मात्र चुल्लूभर पानी सम प्रतीत होता है। जो अल्प समय में ही बूँद बूँद कर रिक्त होने वाला है ।

अनुष्टुप

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते।
स्नातोऽहं धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र! तव दर्शनात्।।६।।

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र भगवान्! (तव दर्शनात्) आपके दर्शन से (अद्य मे गात्रं क्षालितं) आज मेरा शरीर प्रक्षालित हो गया (नेत्रे विमलीकृते) दोनो नेत्र निर्मल हो गये (च) और (अहं) मैने (धर्मतीर्थेषु) धर्मतीर्थो मे (स्नातः) स्नान कर लिया।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान्! आपके पावन दर्शनो से आज मेरा शरीर पवित्र हो गया, मेरे दोनो नेत्र निर्मल हो गये तथा मैने आज जिनदर्शन कर मानो धर्मतीर्थों मे ही स्नान कर लिया है। ऐसी विशुद्ध अनुभूति मुझे हो रही है।

उपजाति

नमो नमः सत्त्व-हितंकराय, वीराय भव्याम्बुज-भास्कराय।
अनन्त-लोकाय सुरार्चिताय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय।।७।।

अन्वयार्थ—(सत्वाहितंकराय) प्राणीमात्र का हित करने वाले (भव्य-अम्बुज-भास्कराय) भव्य रूपी कमलो को सूर्य रूप (वीराय) वीर जिन के लिये (नमः नमः) बार-बार नमस्कार हो। (अनन्त लोकाय) अनन्त पदार्थो को देखने वाले (सुर अर्चिताय) देवो के द्वारा पूजित (देवाधिदेवाय) देवो के भी देव (जिनाय) जिनेन्द्र भगवान् के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—समस्त प्राणियो के हितकारी, भव्य रूपी कमलों को विकसित करने के लिये सूर्यरूप ऐसे भगवान महावीर को बारम्बार नमस्कार है तथा जिनके पूर्ण ज्ञान मे त्रिलोक के अनन्त पदार्थ युगपत् दिखाई देते है, जो देवो के द्वारा पूजा को प्राप्त है ऐसे देवो के भी देव जिनेन्द्रदेव को मेरा नमस्कार हो।

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय, विनष्ट-दोषाय गुणार्णवाय।
विमुक्ति-मार्ग-प्रतिबोधनाय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय।।८।।

अन्वयार्थ—(त्रिदश अर्चिताय) देवो से पूजित (विनष्ट दोषाय) नष्ट हो गए है दोष जिनके जो (गुण-अर्णवाय) गुणो के सागर है ऐसे

(जिनाय) जिनदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो। (विमुक्तिमार्गप्रतिबोधकाय) जो विशेष रूप से मुक्ति मार्ग के उपदेश को देने वाले हैं ऐसे (देवाधिदेवाय) देवों के भी देव (जिनाय) जिनदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—जो चतुर्णिकाय देवो से पूज्य हैं, जिनके १८ दोष क्षय हो गये हैं तथा जो अनन्त गुणों के सागर हैं; ऐसे वीतराग जिनेन्द्र को नमस्कार है। जो मुमुक्षु जीवों को मुक्ति मार्ग का उपेदश देते हैं ऐसे देवों के भी देव अरहंत देव/जिनेन्द्र देव को मेरा नमस्कार हो।

वसन्ततिलका

देवाधिदेव ! परमेश्वर ! वीतराग !
सर्वज्ञ ! तीर्थंकर ! सिद्ध ! महानुभाव !
त्रैलोक्यनाथ ! जिन-पुंगव ! वर्धमान !
स्वामिन्! गतोऽस्मि शरणं चरण-द्वयं ते ।।९।।

अन्वयार्थ—(देवाधिदेव ! परमेश्वर ! वीतराग ! सर्वज्ञ ! तीर्थंकर ! सिद्ध ! महानुभाव ! त्रैलोक्यनाथ ! जिनपुङ्गव ! वर्धमान ! स्वामिन् !) हे देवाधिदेव ! हे परमेश्वर ! हे वीतराग ! हे सर्वज्ञ ! हे तीर्थंकर ! हे सिद्ध ! हे महानुभाव ! हे त्रैलोक्यनाथ ! हे जिन श्रेष्ठ ! हे वर्धमान ! हे स्वामिन् ! मैं (ते) आपके (चरणद्वयं) दोनों चरणयुगल की (शरणं) शरण को (गतः अस्मि) प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ—जो वीतरागी, परमदेव, सर्वज्ञ, तीर्थंकर, सिद्ध, महानुभाव, त्रैलोक्यनाथ, जिनश्रेष्ठ, वर्धमान स्वामी आदि विविध नामों से पुकारे जाते हैं ऐसे वीतराग देव ! मैं आपके पूज्य, वन्दनीय चरण-युग की शरण में आया हूँ।

आर्या

जित-मद-हर्ष-द्वेषाजित-मोह-परीषहाः जित-कषायाः।
जित-जन्म-मरण-रोगाजित-मात्सर्या जयन्तु जिनाः ।।१०।।

अन्वयार्थ— जिन्होंने (जितमद-हर्ष-द्वेषा) जीता है मद-हर्ष-द्वेष को (जित-मोह-परीषहा) जीता है मोह और परीषहों को (जितकषायाः)

जीता है कषायो को (जित-जन्म-मरण-रोगा:) जीता है जन्म-मरण रूप रोगो को (जितमात्सर्या:) जीता है ईर्ष्या भावो को ऐसे (जिना:) जिनेन्द्रदेव (जयन्तु) जयवन्त हो।

भावार्थ—जिन्होने मद-हर्ष-द्वेष-मोह-परीषह-कषाय-जन्म-मरणरूपी रोग तथा ईर्ष्या आदि विभावपरिणामो को जीत लिया है, वे जिनदेव/वीतराग प्रभु सदा जयवन्त हो।

जयतु जिन वर्धमानस्त्रिभुवन-हित-धर्म-चक्र-नीरज-बन्धुः ।
त्रिदशपति-मुकुट-भासुर, चूडामणि-रश्मि-रञ्जितारुण-चरणः ।।११।।

अन्वयार्थ—जो (त्रिभुवनहित-धर्मचक्र-नीरजबन्धु) तीन लोको के जीवों का हितकारक धर्मचक्र रूपी सूर्य है, जिनके (अरुण-चरण:) लाल-लाल चरण (त्रिदश-पति-मुकुट-भासुर-चूडामणि-रश्मि-रञ्जित) इन्द्र के मुकुट मे दीप्तिमान चूडामणि की किरणो से अत्यधिक शेभायमान है, ऐसे (जिनवर्धमान:) महावीर जिनेन्द्र (जयतु) जयवन्त हो।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य, पद्म को विकसित करता है उसी प्रकार जिनका धर्मचक्ररूपी सूर्य तीनो लोको के भव्यजीवरूपी कमलों का हित करने वाला है। जिनके लाल-लाल चरण १०० इन्द्रो के मुकुटो मे देदीप्यमान चूड़ामणि की किरणो से अत्यधिक शोभायमान है, ऐसे महावीर भगवान सदा जयवन्त हो।

हरिणी

जय जय जय त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे ,
नुद नुद नुद स्वान्तं-ध्वान्तं जगत्-कमलार्क नः ।
नय नय नय स्वामिन्! शान्तिं नितान्त-मनन्तिमाम्,
नहि नहि नहि त्राता, लोकैक-मित्र-भवत्-परः ।।१२।।

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे !) तीनो लोको के समूह पर शोभायमान शिखामणि/चूड़ामणि स्वरूप हे भगवान्! (जय-जय-जय) आपकी जय हो, जय हो, जय हो। (जगत्कमलार्क) तीन जगत् के संसारी प्राणियो रूपी कमलो को विकसित करने के लिये सूर्य स्वरूप हे भगवान्! (न: स्वान्तध्वान्तं) हमारे हृदय के अन्धकार को

(नुद-नुद-नुद) नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये स्वामिन् ! हे स्वामी (अनन्तिमां शान्तिं) अविनाशी/शाश्वत शान्ति को (नितान्तं) अवश्य ही (नय-नय-नय) प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये (लोकैकमित्र !) हे लोक के एकमात्र मित्र ! (भवत्पर:) आपसे भिन्न/आपको छोड़कर दूसरा कोई (त्राता) रक्षक (नहि-नहि-नहि) नही है, नही है, नही है।

भावार्थ—हे अधो-मध्य-ऊर्ध्व तीनो लोको के समूह पर सुशोभित, चूडामणि रूप त्रिलोकीनाथ ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे सूर्यसम त्रिजगत् के भव्यरूपी कमलो को विकसित करने वाले "सूर्यस्वरूप भगवन्" ! हमारे हृदय मे वासित मिथ्यात्व व अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। हे स्वामिन् ! कभी भी नष्ट नही होने वाली शाश्वत शान्ति को मुझे/ हमारे लिये प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये। हे तीन लोक के अद्वितीय मित्र ! भगवान् ! आपको छोड़कर इस गहन संसार मे मेरा अन्य कोई रक्षक नही है, नही है। नही है, अत: हे नाथ मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मुझे संसार के दु.खो से बचाइये।

बसन्ततिलका

चित्ते मुखे शिरसि पाणि-पयोज-युग्मे,
भक्तिं स्तुतिं विनति-मञ्जलि-मञ्जसैव।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति,
यश्चर्करीति तव देव ! स एव धन्य: ।।१३।।

अन्वयार्थ—(देव) हे स्वामिन् ! (य:) जो (अञ्जसा एव) यथार्थ रूप से (चित्ते) मन में (तव) आपकी (भक्तिं) भक्ति को (चेक्रीयते) करता है। (मुखे तव स्तुतिं) मुख में आपकी स्तुति को (चरिकरीति) करता है (शिरसि तव विनतिं) शिर पर आपकी विनती को (चरीकरीति) करता है (पाणिपयोजयुग्मे) हस्तकमल युगल मे (तव अञ्जलिं चर्करीति) आपके लिये अञ्जलिबद्ध करता है (स एव धन्य:) वही धन्य है।

भावार्थ—हे त्रिलोकीनाथ स्वामिन् ! जो भव्यात्मा अपने दोनो हस्तकमलों अञ्जलि बाँधकर अर्थात् दोनों हाथो को कमलाकर रूप से जोड़कर मन से

श्रद्धापूर्वक आपकी भक्ति करता है, वचनों से आपकी स्तुति करता है तथा काय से आपके चरणो में नत-मस्तक होता है/शिर झुकाता है, आपको प्रणाम करता है यथार्थ में वही धन्य है।

मन्दाक्रान्ता

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पाद-पद्मं न लभ्यम्,
तच्चेत्-स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते,
क्षुद्-व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः ।।१४।।

अन्वयार्थ—यदि किसी जीव को (जन्म-उन्मार्ज्यं) अपने संसार भ्रमण से छूटना है/जन्म का माजर्न-निवारण करना है तो (सः) वह (भवतः पाद पद्मं भजतु) आपके चरण-कमलो की सेवा करे। (चेत् तत् न लभ्यं) यदि आपके चरण-कमल प्राप्त न हो सकें तो (स्वैरं चरतु) अपनी इच्छानुसार आचरण करे परन्तु (दुर्देवतां न सेवताम्) कुदेवों की उपासना न करे। (बुभुक्षुः) भूखा मनुष्य (इह यत् सुलभं) यहाँ जो सुलभ है उस (अन्नं अश्नाति) अन्न को खाता है (चेत्) यदि (दुर्लभं) अन्न दुर्लभ (आस्ते) है तो (मुधा क्षुद् व्यावृत्यै) व्यर्थ ही भूख को दूर करने के लिये (कालकूट कः) कालकूट-विष को कौन (कवलयति बुभुक्षु) भूखा खाता है ? कोई नहीं।

भावार्थ—जो कोई भव्यात्मा संसार के जन्म-मरण के दुःखों से छूटना चाहता है वह सर्वप्रथम आप जिनदेव के चरण-कमलों की सेवा करे। यदि जिनदेव चरण-कमल प्राप्त न हों सकें तो अपनी इच्छानुसार आचरण करे; उससे हमें कोई हानि नहीं। परन्तु कभी भूलकर भी कुदेवों की उपासना न करे। सत्य ही है कि भूखा मनुष्य जो भी उसे सुलभ है उस अन्न को खाता है; परन्तु अपनी क्षुधा को दूर करने के लिये कालकूट विष को कोई नहीं खाता।

हे भव्यात्माओं ! यहाँ पूज्यपाद स्वामी का यह तात्पर्य है कि कुदेवों की उपासना विषवत् है। विषमिश्रित लड्डू देखने में अच्छे हों, पर खाते ही जान ले लेते हैं ठीक वैसे ही कुदेवों की उपासना अनन्त संसार में परिभ्रमण कराने वाली है अतः इसका कभी सेवन न करो।

"देव की वन्दना आवश्यक है" ऐसा मानकर कुदेव की आराधना नही करना चाहिये। किसी क्षेत्र या काल मे सुदेव का सुयोग न मिल पावे तो हृदय मे सुदेव स्मरण करते हुए नियम का पालन करे परन्तु कुदेव-कुगुरु/रागी-द्वेषी देव-गुरुओ की आराधना न करे।

शार्दूलविक्रीडितम्

रूपं ते निरुपाधि-सुन्दर-मिदं, पश्यन् सहस्रेक्षणः,
प्रेक्षा-कौतुक-कारिकोऽत्र भगवन् नोपैत्यवस्थान्तरम्।
वाणीं गद्गद्यन् वपुः पुलकयन्, नेत्र-द्वयं स्रावयन्,
मूर्द्धानं नमयन् करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन्॥१५॥

अन्वयार्थ—[भगवन्!] हे नाथ! (सहस्र-ईक्षण प्रेक्षा कौतुककारि) हजारो नेत्रो से देखने का कुतूहल/उत्कंठा/उत्सुकता करने वाले (निरुपाधिसुन्दरं ते इदं रूपं) उपाधि अर्थात् वस्त्र, आभूषण आदि के बिना ही सुन्दर आपके इस रूप को (पश्यन्) देखने वाला (कः अत्र) कौन मानव इस जगत् मे (वाणी गद्गद्यन्) वाणी को गद्गद् करता हुआ, (वपु पुलकयन्) शरीर को रोमाञ्चित करता हुआ (नेत्रद्वयं स्रावयन्) दोनो नेत्रो से हर्षाश्रु झराता हुआ (मूर्धानं नमयन्) मस्तक को नमाता हुआ (करौ मुकुलयन्) दोनो हाथो को जोड़ता हुआ और (चेत· अपि निर्वापयन्) चित्त को संतुष्ट करता हुआ (अवस्थान्तरं न उपैति) दूसरी अवस्था को प्राप्त नही होता ? अर्थात् आपके इस रूप को देखकर कौन पुरुष अपनी अवस्था को नही बदल लेता ?

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! आपका रूप वस्त्र, आभूषण आदि के बिना ही अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है तथा दर्शको को कौतुक उत्पन्न करने वाला है। संसार मे ऐसा कौन पुरुष है जो आपके सुन्दर रूप को देखकर अपनी अवस्था को न बदल ले। अर्थात् आपके सुन्दर रूप को देखकर सब जीवो की अवस्था मे परिवर्तन हो जाता है। हजारो नेत्रो को धारण करने वाला इन्द्र भी आपके सुन्दर प्रशान्तमयी रूप को देखकर अपनी गद्गद्मयी वाणी से सहस्रनामो से आपकी स्तुति करते हुए ऐसा रोम-रोम मे पुलकित होता है जिससे ललित तांडव नृत्य करता है। जो जीव हर्षाश्रुओ से रोमांचित होता हुआ दोनो

हाथो को जोड़ता हुआ आपके चरणो मे नतमस्तक होता है, वह आपके दर्शन से अत्यन्त संतुष्ट होता है।

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति,
श्रेयः सूति-रितिश्रियां निधिरिति, श्रेष्ठः सुराणामिति ।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्य-मगतिस्त्वां तत्-त्यजोपेक्षणम्,
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन ! किं, विज्ञापितैर्गोपितैः ।।१६।।

अन्वयार्थ—हे भगवान् ! (त्रस्त आराति इति) आप शत्रुओ को नष्ट करने वाले है, इसलिये (त्रिकालविद् इति) आप तीनो लोको के ज्ञाता है, इसलिये (त्रिलोक्याः त्राता इति) आप तीन लोको के रक्षक है इसलिये (श्रेयः सूतिरिति) आप कल्याण की उत्पत्ति करने वाले है इसलिये (श्रियां निधिरिति) लक्ष्मी की निधि है इसलिये और (सुराणां श्रेष्ठः) देवो मे श्रेष्ठ है इसलिये (अगतिः अहं) अन्य उपाय से रहित ऐसा मै (शरण्यं) शरण देने मे निपुण (क्षेमपदं) कल्याण/कुशल-मंगल के स्थानभूत (त्वां शरणं) आपकी शरण को (प्राप्तः) प्राप्त हुआ हूँ (तत्) इसलिये (जिन !) हे जिनदेव (उपेक्षण त्यज) उपेक्षा को छोड़िये (रक्ष) मेरी रक्षा कीजिये (प्रसीद) प्रसन्न होइये (विज्ञपितैः गोपितैः किम्) मेरी इस प्रार्थना को गुप्त रखने से क्या प्रयोजन ? अर्थात् इस प्रार्थना को गुप्त रखने से क्या लाभ ? आप सर्वज्ञ सभी जानते है।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! आप घातिया कर्मरूप शत्रुओ का क्षयकर त्रिकालज्ञ हुए इसलिये आप तीनो लोको के रक्षक है। हे नाथ आप तीनो लोको के जीवो का कल्याण करने वाले बहिरंग समवशरणादि व अन्तरंग मे अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के स्वामी है। लोक के देवो मे श्रेष्ठ देवाधिदेव आप ही हैं। अन्य कोई देव मेरा रक्षक नही हो सकता है। इस जगत् मे एक अद्वितीय शरण देने मे निपुण, कल्याण-मंगल-सर्वकुशल के स्थानभूत हे प्रभो ! मै आज आपकी शरण मे आ चुका हूँ। हे जिनदेव ! मेरे प्रति अब उपेक्षा को छोड़ियो। मेरी रक्षा कीजिये। मुझ पर प्रसन्न होइये। मै आपनी वेदना को प्रार्थना को, गुप्त रखूँ यह भी ठीक नही। आप सर्वज्ञ प्रभो ! मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये। मेरा कल्याण कीजिये।

उपजाति

त्रिलोक-राजेन्द्र-किरीट-कोटि-प्रभाभि-रालीढ-पदार-विन्दम् ।
निर्मूल-मुन्मूलित-कर्म-वृक्षं,जिनेन्द्र-चन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ।।१७।।

अन्वयार्थ—(त्रिलोक-राजेन्द्र-किरीट-कोटि-प्रभाभि:-आलीढ-पदारविन्दम्) तीनो लोको के अधिपति, राजा, महाराजा और इन्द्रो के करोड़ों मुकुटों की प्रभा से जिनके चरण-कमल सुशोभित हो रहे हैं (निर्मूलम् उन्मूलित कर्मवृक्षम्) जिन्होंने कर्मरूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया है या निर्मूल कर उखाड़ दिया है, ऐसे (जिनेन्द्रचन्द्रं) चन्द्रमा के समान शीतलता/शान्ति देने वाले जिनेन्द्र देव को अथवा चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को (भक्त्या प्रणमामि) मैं भक्ति से प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ—जो तीनो लोको के स्वामी है, मुकुटधारी राजा महाराजा चक्रवर्ती व इन्द्र आदि जिनके चरणो मे नतमस्तक है, जिन्होने कर्मवृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया है, ऐसे चन्द्रसम शीतलता/शान्तिदायक श्री जिनदेव या चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को मै भक्ति से प्रणाम करता हूँ।

आर्या

करचरणतनु विघाता, दटतो निहित: प्रमादत: प्राणी ।
ईर्यापथर्मिति भीत्या, मुञ्चे तद्दोषहान्यर्थम् ।।१८।।

अन्वयार्थ—(प्रमादत: अटत:) प्रमाद से गमन करते हुए मेरे (कर-चरण-तनु-विघातात्) हाथ-पैर अथवा शरीर के आघात से (प्राणी निहत:) प्राणी का घात हुआ है (इति) इस प्रकार (भीत्या) भय से (तद्दोषहान्यर्थम्) उस प्राणीघात से उत्पन्न दोषों की हानि के लिए (ईर्यापथं) ईर्यापथ को अर्थात् गमन को (मुञ्चे) छोड़ता हूँ।

भावार्थ—हे स्वामिन् ! गमन करते हुए प्रमाद से अपने हाथ-पैर या शरीर के द्वारा किसी प्राणी का हनन/घात हुआ है, इस भय से मैं अब गमन की क्रिया मे लगे दोषों का नाश करने के लिये गमन का त्याग करता हूँ। गमन काल मे लगे दोषो का पश्चाताप करता हूँ।

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा-देकेन्द्रिय प्रमुख जीव निकायबाधा ।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा, मिथ्या-तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ।।१९।।

अन्वयार्थ—(यदि) यदि (अद्य) आज (ईर्यापथे) मार्ग में (प्रचलता) चलते हुए (मया) मेरे द्वारा (प्रमादतः) प्रमाद से (एकेन्द्रिय प्रमुख) एकेन्द्रिय आदि (जीव निकायबाधा) जीवों के समूह को पीड़ा (निर्वतिता भवेत्) की गई हो (अयुगान्तरेक्षा) चार हाथ भूमि के अन्तराल को न देखा हो—चार हाथ भूमि देखकर गमन नहीं किया हो तो (मे तद्दुरितं) मेरा वह पाप (गुरुभक्तितः) गुरु भक्ति से (मिथ्या) मिथ्या (अस्तु) हो।

भावार्थ—हे भगवन्! मार्ग मे चलते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रिय आदि जीवों के समूह को पीड़ा दी गई हो, ईर्यासमिति का पालन नहीं किया गया हो तो मेरा वह पाप गुरुभक्ति के प्रसाद से मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! इरिया-वहियाए, विराहणाए, अणागुत्ते, अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवणखेल-सिंहाण-वियडियपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाण-चंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्त-करणं, तस्स विसोहि-करणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं, पज्जुवासं करेमि, ताव कालं, पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन! (इरियावहियाए) ईर्यापथ में (अणागुत्ते) मन-वचन-काय की गुप्ति रहित होकर (विराहणाए) जो कुछ जीवों की विराधना की है (पडिक्कमामि) उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ! (अइगमणे) शीघ्र गमन करने में (णिग्गमणे) चलने की प्रथम क्रिया प्रारंभ करने में (ठाणे) जहाँ कहीं ठहरने में (गमणे) गमन में (चंकमणे) हाथ-पैर फैलाने या संकोच करने में (पाणुग्गमणे) प्राणियों पर गमन करने में (बीजुग्गमणे) बीज पर गमन करने में (हरिदुग्गमणे) हरितकाय पर गमन करने में (उच्चार पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडियपइ-ट्ठावणियाए) मल-मूत्र क्षेपण करने में, थूकनें में, कफ डालने में, इत्यादि विकृतियों के क्षेपण में। (जे) जो (एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया

वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा) एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय (जीवा) जीव (णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा संघादिदा वा परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेम्सिदा वा, छिंदिदा वा भिंदिदा वा हाणदो वा ठाण, चंकमणदो वा) रोके गये हो, स्वस्थान से दूसरे स्थान रखे गये हो, एक दूसरे की रगड से पीड़ित हुए हो, समस्त जीव इकट्ठे एक जगह रखे गये हो, संतापित किये गये हो, चूर्ण कर दिये हो, मूर्छित किये गये हो, टुकडे-टुकडे कर दिये हो, विदीर्ण किये हो, अपने ही स्थान पर स्थित हो, गमन कर रहे हो ऐसे जीवो की मुझ से (विराहणाए) जो कुछ विराधना हुई हो (तस्स पायच्छिसकरणं) उसका प्रायश्चित करने के लिये (तस्स विसोहिकरणं) उसकी विशुद्धि करने के लिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

(जाव) जब तक मै (अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं) अरहंत भगवन्तो को नमस्कार करता हूँ, (पज्जुवासं करेमि) उनकी उपासना करता हूँ (ताव कालं) उतने काल तक (पावकम्मं) अशुभ कर्मो/पाप कर्मो को (दुच्चरियं) अशुभ-चेष्टाओ को (वोस्सरामि) छोडता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! ईर्यापथ से गमन मे त्रिगुप्ति रहित होकर गमन करने से मेरे द्वारा अतिशीघ्र गमन करने से, सबसे पहले गमने करने मे, यत्र-तत्र कही भी ठहरने, गमन मे, हाथ पैर फैलाने या संकोचने मे, प्रमादवश सूक्ष्म प्राणियो पर गमन मे, बीज पर चलने मे, हरितकाय/घास/अंकुर आदि पर चलने मे, प्रमाद वश बिना देखे/शोधे स्थान पर मल-मूत्र-क्षेपण करने मे, थूकने मे, कफ डालने आदि विकृतियो के क्षेपण मे एकन्द्रियादि जीवो की विराधना हुई हो, उनको इष्टस्थान पर जाने से रोका हो, इष्टस्थान से दूसरे स्थान मे रखा हो, घर्षण से वे पीड़ित हो, सब जीव एक स्थान पर रखे गये हो, संतप्त किये हो, चूर्ण किये हो, चूर्ण, मूर्च्छित किये हो, टुकड़े-टुकड़े हुए हो या भेदे गये हो इस प्रकार स्वस्थान मे ठहरे हुए या चलते हुए जीवो की मुझसे प्रमादवश किसी भी प्रकार विराधना हुई हो, उसके प्रायश्चित रूप, शुद्धिकरणरूप प्रतिक्रमण को मै करता हूँ। अरहंत भगवान की आराधना से सभी पाप क्षय को प्राप्त होते है अत: मै जब तक अरहंत भगवान का स्तवन-वन्दन करता हूँ तब तक समस्त पापो का दुश्चेष्टाओ का त्याग करता हूँ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकान्ताय शान्तये।

मैं परमात्मा के लिये नमस्कार करता हूँ, तथा अनेकान्त स्वरूप तत्त्वों का निरूपण करने वाले और अत्यंत शान्त वीतराग परमदेव के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

इच्छामि भंते! इरियावहियस्स आलोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिम चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण, जुगंतर दिट्ठिणा, भव्वेण, दट्ठव्वा। पमाददोसेण डवडवचरियाए पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! (इरियावहियस्स आलोचेउं) ईर्यापथ के दोषों की आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिम चउदिसुविदिसासु) पूर्व-उत्तर-दक्षिण-पश्चिम चारों दिशाओं व विदिशाओं [आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऐशान] में (विहरमाणेण) विहार करते हुए (जुगंतर दिट्ठिणा भव्वेणदट्ठव्वा) भव्य जीव के द्वारा चार हाथ प्रमाण भूमि को दृष्टि से देखकर चलते हुए (पमाद दोसेण) प्रमाद के वश से (डवडवचरियाए) जल्दी-जल्दी ऊपर को मुख कर चलने से (पाण-भूद-जीव-सत्ताणं) विकलेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, पंचेन्द्रिय व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीवों का (उवघादो) उपघात (कदो वा) स्वयं किया हो, (कारिदो वा) कराया हो या (कीरंतो व समणुमण्णिदो) करते हुए की अनुमोदना की हो तो (तस्स) तत्संबंधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हों।

भावार्थ—चार दिशा व विदिशाओं में गमन करते हुए प्रमाद वश जीवों की हिंसा की हो, कराई हो अनुमोदना भी की हो तो मैं तत्संबंधी दोषों की आलोचना करता हूँ। मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।

आलोचना—निन्दा व गर्हा को आलोचना कहते हैं।

निन्दा—दुष्कार्य के प्रति हृदय में पश्चात्ताप का होना।

गर्हा—गुरु के समीप जाकर दोषों का प्रायश्चित करना गर्हा है।

पाण—दो-तीन-चतुरीन्द्रिय जीव/विकलेन्द्रिय जीव।

भूत—वनस्पतिकायिक।

जीव—पञ्चेन्द्रिय और।

सत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक।

द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः प्राणाः भूतास्ते तरवः स्मृताः।
जीवाः पंचेन्द्रियाः ज्ञेयाः शेषाः सत्वाः प्रकीर्तिताः।।

शार्दूलविक्रीडितम्

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया, मायाविना लोभिना,
रागद्वेषमलीमसेन मनसा, दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते! जिनेन्द्र! भवतः श्रीपाद मूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं, निर्वर्तये कर्मणाम्।।१।।

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्याधिपते !) हे तीन लोक के अधिपति (जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र देव (पापिष्ठेन, दुरात्मना, जडधिया) मुझ पापी, दुष्ट, मन्दबुद्धि ने (मायाविना, लोभिना) मायाचारी लोभी ने (रागद्वेषमलीमसेन मनसा) राग-द्वेष की मलीनता से मलीन मनसे (यत्) जो (दुष्कर्म) पाप कर्म (निर्मितम्) किये है (अधुना) अब (भवतः श्री पादमूले) आप श्री जिनदेव के चरण मूल मे (अहं) मै (कर्मणाम् निर्वर्तये) कर्मो का क्षय करने के लिये (सततं) हमेशा के लिये (निन्दापूर्वम्) निन्दा पूर्वक/पश्चात्ताप करता हुआ (जहामि) छोड़ता हूँ।

भावार्थ—हे तीन लोक के स्वामी ! हे जिनेन्द्र देव ! मुझ पापी, दुष्ट, मन्दबुद्धि, मायावी, लोभी राग-द्वेष की मलीनता से मलीन मन ने जो भी पाप उपार्जन किये है, आप श्री के चरण कमलो मे पापकर्मो का मै मुक्ति प्राप्ति के लिये सदा के लिये त्याग करता हूँ।

जिनेन्द्रमुन्मूलित कर्मबन्धं, प्रणम्य सन्मार्गकृत स्वरूपम्।
अनन्तबोधादि भवंगुणौघं, क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये।।२।।

अन्वयार्थ—जिन्होने (कर्मबन्धं उन्मूलित) चार घातिया कर्म को जड़ से क्षय कर दिया (सन्मार्गकृतस्वरूपम्) समीचीन मुक्ति मार्ग अनुसार अपने स्वरूप को प्रकट किया है (अनन्तबोधादि भवं गुणौघं)

अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य को धारण करने वाले (जिनेन्द्रम्) जिनेन्द्र देव को (प्रणम्य) नमस्कार करके मैं (क्रियाकलापं प्रगटं प्रवक्ष्ये) क्रिया-कलाप को प्रकट रूप कहूँगा।

भावार्थ—चार घातिया कर्मों रहित, अनन्त चतुष्टय के स्वामी जिनेन्द्र/ अरहंत देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

।। इति श्री ईर्यापथ भक्ति ।।

सिद्धभक्ति

स्रग्धरा

सिद्धा - नुद्धूत - कर्म - प्रकृति-
समुदयान् साधितात्मस्वभावान्,
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्ध्यै तदनुपम-
गुण - प्रग्रहाकृष्टि - तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः,
प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्,
योग्योपादान - युक्त्या दृषद्,
इह यथा हेम - भावोपलब्धिः ।।१।।

अन्वयार्थ—(तत्-अनुपम-गुण-प्रग्रह-आकृष्टि-तुष्ट·) सिद्ध भगवान् के उन प्रसिद्ध उपमातीत गुण रूपी रस्सी के आकर्षण से संतुष्ट हुआ मै-पूज्यपाद आचार्य (उद्धूत-कर्मप्रकृति-समुदयान्) नष्ट कर दिया है अष्ट कर्मो की प्रकृतियो के समूह को जिन्होने तथा (साधित-आत्मस्वभावन्) प्राप्त कर लिया है आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि स्वभाव को जिन्होने ऐसे (सिद्धान्) सिद्ध भगवानो को (सिद्धि-प्रसिद्धयै) स्व आत्मा की सिद्धि/मुक्ति की प्राप्ति के लिये (वन्दे) वन्दना/नमस्कार करता हूँ। (इह) इस लोक मे (यथा) जिस प्रकार (योग्य-उपादान-युक्त्या) योग्य उपादान व निमित्त अथवा अन्तरंग-बहिरंग कारणो की संयोजना से (दृषद:) स्वर्णपाषाण (हेमभाव-उपलब्धि:) स्वर्ण पर्याय को प्राप्त होता है, उसी प्रकार (प्रगुणगुणगणो च्छादि-दोष-अपहारात्) श्रेष्ठतम ज्ञानादि गुणों के समूह को आवृत करने वाले ज्ञानावरणादि कर्मो अथवा राग-द्वेष-मोह आदि दोषो के क्षय हो जाने से (स्व-आत्मा उपलब्धि:) अपने शुद्ध आत्मस्वरूप-वीतराग, सर्वज्ञ, अविनाशी, अनन्त, आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो जाना (सिद्धि:) मुक्त अवस्था कही गयी है।

भावार्थ—जिस प्रकार स्वर्णपाषाण मे शुद्धस्वर्ण पर्याय प्राप्त करने की योग्यता है किन्तु किट्ट-कालिमा आदि से युक्त होने से वह शुद्धपर्याय प्रकट नही हो पाती। जब बुद्धिमान व्यक्ति १६ ताव देकर उसे अग्नि से

संतप्त कर किट्टकालिमा को दूर कर देता है तब स्वर्ण पाषाण अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो शुद्धता से युक्त स्वर्ण पर्याय को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" शुद्धनय से प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध भगवन्तो के समान शुद्ध है। प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध-अवस्था/सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने की योग्यता रखता है, परन्तु ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मो से आवृत हुआ, कर्मकीट्टिका से मलीन होता हुआ शुद्ध मुक्त पर्याय को प्रकट नही कर पाता है। जब भव्यात्मा "१२ तप और ४ आराधना रूप १६ ताव" रूप तपश्चरणादि करणो/निमित्तो की संयोजना करता है तब विकारी भाव नष्ट होते ही कर्म-कीट से रहित हो आत्मा सिद्ध/मुक्त पर्याय को प्राप्त होता है। जिन भव्य जीवो ने अष्टकर्मो का क्षय कर दिया है आत्मा के सत्यस्वरूप को प्राप्त कर लिया है वे सिद्ध कहलाते है।

यहाँ स्तुतिकर्ता आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये, उनके गुणो का स्मरण करते हुए, पूर्ण विशुद्ध अवस्था को प्राप्त सिद्ध भगवन्तो की वन्दना की है। यहाँ स्तुतिकर्ता आचार्य ने "गुणप्रग्रहाकृष्टितुष्ट" पद दिया यह अपने आपमे विचारणीय है—जैसे कूप/बावड़ी आदि मे गिरी वस्तु को रस्सी के माध्यम से ऊपर खीचा जाता है, वैसे ही संसार रूपी गहन कूप मे गिरे भव्य जीवो को सिद्ध परमेष्ठियो के श्रेष्ठ/महानतम गुणो मे की जाने वाली भक्ति रूपी रस्सी ही तिराने मे/ऊपर लाने मे समर्थ हो सकती है।

नाभावः सिद्धि-रिष्टा न,
निज-गुण-हतिस्तत् तपोभिर्न युक्तेः,
अस्त्यात्मानादि - बद्धः,
स्व-कृतज-फल-भुक्-तत्-क्षयान् मोक्षभागी।
ज्ञाता दृष्टा स्वदेह-प्रमिति-
रुपसमाहार - विस्तार - धर्मा,
ध्रौव्योत्पत्ति - व्ययात्मा,
स्व-गुण-युत-इतो नान्यथा साध्य-सिद्धिः ।।२।।

अन्वयार्थ—(अभावः सिद्धिः इष्टा न) आत्मा का अभाव हो जाना

सिद्धि इष्ट नही है (निजगुणहति: न) ज्ञान-दर्शन आदि स्व गुणो का नष्ट हो जाना सिद्धि नही है। (तत्) क्योकि आत्मा का अभाव और गुणो का नाश सिद्धि मानने वालो के यहाँ (तपोभि: न युक्ते:) तपश्चरण आदि की योजना नही बनती (आत्मा अस्ति) आत्मा है, (अनादि बद्ध) अनादि-काल से कर्मो से बद्ध है/कर्म सहित है (स्वकृतज फलभुक्) अपने द्वारा किये शुभ-अशुभ कर्मो के फल का भोक्ता है (तत्क्षयात्) कर्मो के क्षय हो जाने से (मोक्षमार्गी) मुक्ति को प्राप्त होता है, (ज्ञाता-दृष्टा) जानने-देखने स्वभाव वाला है (स्वदेह-प्रमिति:) अपने शरीर प्रमाण है (उपसमाहार विस्तार धर्मा) संकोच विस्तार स्वभाव वाला है (ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है तथा (स्वगुण युत) अपने आत्मीय गुणो से सहित है। (इत: अन्यथा) इससे भिन्न मान्यता वालो के (साध्यसिद्धि: न) साध्य की सिद्धि नही हो सकती, मुक्ति की प्राप्ति नही हो सकती।

भावार्थ—यहाँ सिद्धभक्ति मे पूज्यपाद स्वामी ने अन्य दर्शनो की मान्यताओ का निराकरण करते हुए सिद्ध भगवान् के गुणो का सुन्दर चित्रण किया है—

बौद्ध दर्शन वालो का मत है कि तैल के क्षय हो जाने पर दीपक की लौ ऊपर नीचे इधर-उधर कही न जाकर वही समाप्त हो जाती है, वैसे ही कर्मो का क्षय/क्लेश का नाश हो जाने से आत्मा वही समाप्त हो होता है यही सिद्धि है। इस कथन का निराकरण करने के लिये आचार्य देव ने लिखा है "नाभाव: सिद्धिरिष्टा"।

वैशेषिक व योग दर्शनो की मान्यता मे बुद्धि, ज्ञान, सुख, इच्छा आदि विशेष गुणो का नाश सिद्धि है। इस कथन का निराकरण करते हुए आचार्य देव लिखते है—

तत्तपोभिर्न युक्ते: ! क्योकि कोई भी बुद्धिमान अपने आप का सर्वथा नाश करने के लिये अथवा अपने विशिष्ट गुणो का घात करने के लिये तपश्चरण आदि को नही करता।

आत्मा के अस्तित्व के संबंध मे विविध दर्शनो की विभिन्न मान्यताएँ हैं—चार्वाक आत्मा को पृथ्वी आदि से उत्पन्न मानते हैं। वे शरीर से

अतिरिक्त आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। उसके निराकरणार्थ आचार्य देव ने स्तुति में "अस्त्यात्मा" आत्मा है, पद रखा है।

ईश्वरवादी दर्शन आत्मा को "सदा-अकर्मा" मानते हैं उसके निराकरण के लिये भक्ति में "अनादि बद्ध" पद दिया गया है। जिसका भाव है प्रत्येक आत्मा अनादिकाल से कनकोपलवत् कर्मबद्ध है। अपनी विशुद्धि, साधना, तपश्चरणादि से कर्म रहित होता है।

वेदान्त दर्शन जीव को लोकव्यापी मानता है, उसका खंडन करने के लिये आचार्य देव ने "स्वदेह-प्रमिति:" यह पद दिया है। जिसका भाव है—आत्मा नामकर्म के उदय से प्राप्त अपने शरीर प्रमाण है।

आत्मा संकोच विस्तार स्वभाव वाला होने से चीटी के शरीर में संकोच को हाथी के शरीर में विस्तार को प्राप्त होता है। अर्थात् जैसा शरीर प्राप्त होता है, उसमें रहता है। तथापि केवल समुद्घात के समय यह आत्मा समस्त लोक में फैल जाता है।

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि कर्म का कर्ता पुरुष/आत्मा नहीं, प्रकृति है तथा कर्म फल का भोक्ता भी आत्मा नही है। इस मान्यता का निराकरण करने के लिये यहाँ "स्वकृतजफलभुक्" पद दिया है। इसका भाव है–आत्मा अपने द्वारा किये कर्मों के फल को स्वयं भोगता है।

वैशेषिक और योग दर्शन में मान्यता है कि आत्मा के सिद्धि अवस्था को प्राप्त होने पर गुणों का नाश हो जाता है, उसके निराकरण में "ज्ञाता-दृष्टा" पद की यहाँ संयोजना की है अर्थात् मुक्ति अवस्था में जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अनंत गुणों का स्वामी रहता है।

नैयायिक दर्शन गुण और गुणी में सर्वथा भेद मानता है, उनकी इस मान्यता का खंडन करते हुए "स्वगुणयुत" पद दिया गया है। जिसका भाव है–आत्मा सदैव अपने आत्मीय गुणों से तन्मय रहता है। तथा

सांख्य दर्शन की मान्यता है आत्मा कूटस्थ नित्य है और बौद्ध दर्शन की मान्यता है कि आत्मा क्षण-क्षण में नष्ट हो रहा है, इन दोनों मतों के निराकरणार्थ आचार्य देव ने यहाँ —"ध्रौव्योत्पत्ति व्ययात्मा" पद

दिया है। जिसका भाव है कि आत्मा सांख्य दर्शन की तरह सर्वथा कूटस्थ नहीं है अपितु द्रव्यदृष्टि से नित्य है तथा बौद्धमत की तरह सर्वथा क्षणिक भी नहीं है किन्तु पर्याय दृष्टि से अनित्य/ उत्पाद-व्यय स्वभाव वाला है। अत: आत्मा नित्यानित्यात्मक है।

आचार्य श्री के इस स्तुति पद मे द्रव्यसंग्रह की गाथा नं०२ का सजीव चित्रण ही मानों लिपिबद्ध हो उठा है—

जीवो उवओगमओ अमुत्तिकत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।

स त्वन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-संपद्धेति-प्रघात-क्षत दुरित-तया व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः। कैवल्यज्ञान-दृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य 'सम्यक्त्व-लब्धि-ज्योति - र्वातायनादि - स्थिर- परम-गुणै-रद्भुतै-र्भासमानः ।।३।।

अन्वयार्थ—(तु) और (स) वह सिद्धात्मा (अन्तर्बाह्यहेतु-प्रभव-विमलसद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-संपद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया) अन्तरंग-बहिरंग कारणों से उत्पन्न निर्मल सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति रूप शस्त्र के प्रबल प्रहार से पाप कर्मो के पूर्ण क्षय हो जाने से (व्यञ्जिता अचिन्त्यसारैः) प्रकट हुए अचिन्त्य सार से युक्त (कैवल्यज्ञान-दृष्टि-प्रवर सुख-महावीर्य-सम्यक्त्व-लब्धि ज्योतिर्वातायन आदि स्थिर परमगुणैः अद्भुतैः) केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग रूप नवलब्धियों, भामण्डल, चंवर, सिंहासन, छत्र आदि आश्चर्यकारी श्रेष्ठ गुणो से [भासमानः] शोभायमान हैं।

भावार्थ—जीवात्मा अनादिकाल से कर्मों से बद्ध है। कर्मों से मुक्त हो सिद्ध अवस्था की प्राप्ति में रत्नत्रय की एकता सर्वोपरि है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनो के अन्तरंग-बहिरंग कारणों के मिलने पर ही रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम अन्तरंग कारण है, तथा जिनबिंब दर्शन, पंचकल्याण पूजा, वेदना, जातिस्मरण व सद्गुरु की देशना आदि बहिरंग कारण हैं। सम्यग्ज्ञान

की प्राप्ति में अन्तरंग कारण ज्ञानावरणकर्म का क्षय व क्षयोपशम है तथा बहिरंग कारण स्वाध्याय, गुरु उपदेश आदि हैं। इसी प्रकार सम्यक्चारित्र का अन्तरंग कारण चारित्रमोहनीय का उपशम-क्षय-क्षयोपशम अन्तरंग कारण है और हिंसा आदि पांच पापों का त्याग रूप व २८ मूलगुणों के पालने रूप निग्रंथ मुद्रा बहिरंग कारण है।

इन रत्नत्रय की विशुद्धता के प्रभाव से संसारी आत्मा क्रमशः बढ़ते हुए १२वे गुणस्थान के चरम समय में चार घातिया कर्मों का क्षय करके अरहंत अवस्था को प्राप्त करता है। १३वें गुणस्थान में अरहंत अवस्था को प्राप्त यह आत्मा अनन्त-चतुष्टय रूप अन्तरंग/आत्मिक गुणों को व अष्ट प्रातिहार्य व समवसरण आदि बहिरंग आश्चर्यकारी विभूति को प्राप्त होता है।

चौदहवें गुणस्थान में चतुर्थ शुक्लध्यान व्युपरतक्रियानिवर्ती के बल चार अघातिया कर्मों का क्षय करके परम परमेष्ठी रूप सिद्ध पर्याय को प्राप्त होता है। सिद्ध पर्याय की प्रकटता होती बहिरंग विभूति अष्टप्रातिहार्य व दान-लाभ-भोग-उपभोग आदि का नाश हो जाता है मात्र केवलज्ञान केवलदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य आदि आत्मिक गुण शाश्वत विद्यमान रहते हैं। शाश्वत आत्मीय गुणों से शोभायमान वे सिद्ध परमेष्ठी सदा अनन्तकाल के लिये ऊपर लोकाग्र में विराजमान रहते हैं।

जानन् पश्यन् समस्तं, सम-मनुपरतं संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं, निचित-मनुसभं[1] प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनासौ क्षण-मुपजनयन्-सत्-स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥४॥

अन्वयार्थ—(असौ स्वयंभू आत्मा) वे स्वयंभू अरहंत परमात्मा (समस्तं) सम्पूर्ण लोक-अलोक को (समं) युगपत् (जानन् पश्यन्) जानते देखते हुए (अन् उपरत) सतत/बाधारहित (सम्प्रतृप्यन्) आत्मीक सुख से अच्छी तरह तृप्त होते हुए (वितन्वन्) आत्म ज्ञान को सर्वलोक में विस्तृत करते हुए (नितान्तं निचितं) अनादिकाल से संचित (ध्वान्तं) मोहरूपी अन्धकार का (धुन्वन्) नष्ट करते हुए (अनुसभं, समवशरण) सभा में (प्रीणयन्) सबको सन्तुष्ट करते हुए (सर्वप्राणिनां) तीन लोक

१. "अनुपमं" पाठ भी है।

के समस्त प्राणियो के (ईश भावं) ईश्वरत्व/स्वामीपने को (कुर्वन्) करते हुए (अपरं ज्योतिः अभिभवन्) सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि की अन्य ज्योति को अपनी ज्योति से पराभूत करते हुए और (आत्मानम्) अपनी आत्मा का (क्षणं) प्रतिक्षण (आत्मनि) अपनी आत्मा मे (एव) ही (आत्मना) आत्मा के द्वारा (उपजनयन्) निमग्न करते हुए (सत् प्रवृतः) समीचीन रूप में प्रवृत हुए थे।

भावार्थ—शुद्ध आत्मा पर के उपदेश आदि की अपेक्षा के बिना ही स्वयं मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस मोक्षमार्ग का अनुष्ठान कर अनन्तज्ञान स्वरूप हो जाता है, उस समय उस परम शुद्ध आत्मा को स्वयंभू कहते हैं। अथवा जो स्वयं हों वे स्वयंभू कहलाते हैं। यह आत्मा अपने रत्नत्रय गुणों की पूर्णता से अनंतज्ञानी होता हुआ अरहंत पद पर प्रतिष्ठित होता है। इसीलिये भगवान् अरहंत देव को स्वयंभू कहते हैं।

स्वयंभू भगवान् अरहंत अवस्था को प्राप्त कर समस्त लोक व अलोक को एक साथ जानते-देखते हैं। कृतकृत्य हो जाने के कारण पूर्ण तृप्ति को प्राप्त हो जाते हैं। अनन्तकाल तक अपने आत्मा में लीन रहते हैं अथवा वे अरहंत देव केवलज्ञान के द्वारा अनन्त काल तक समस्त लोकालोक को जानते देखते रहते हैं।

मोह रूप महांधकार का नाश करते ही केवलज्ञान सूर्य को प्राप्त कर वे अरहंत देव अपनी समवसरण सभा में या गंधकुटी रूप सभा में अमृतसम सप्ततत्त्वमयी दिव्यध्वनि रूपी वचनामृत से कल्याणकारी उपदेश देकर सभासदों को अत्यंत संतुष्ट करते हैं। तीनों लोकों का प्रभुत्व प्राप्त कर वे अरहंत देव बारह सभा में समस्त प्रजा के मध्य विराजित होकर अपनी केवलज्ञान ज्योति से अपने आप को असर्वज्ञ अवस्था में ही ईश्वर मानने वाले अथवा अन्य के द्वारा असर्वज्ञता में ही ईश्वरत्व माने हुए ईश्वर के ज्ञानरूप तुच्छ ज्योति को भी तिरस्कृत करते हुए तथा अपनी अनुपम कांति से चन्द्रसूर्य आदि को छविहीन करते हैं। मात्र ज्ञाता-दृष्टा बनकर आत्मस्वभाव की सिद्धि करने वाले वे अरहंत प्रभु अपने आत्मा को अन्य किसी के पदार्थ में न लगाकर शुद्ध आत्मा को शुद्ध आत्मा में ही प्रतिक्षण निमग्न करते हैं।

छिन्दन् शेषा-नशेषान्-निगल-बल-कलीं-स्तैरनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरु-लघुक-गुणैः क्षायिकैः शोभमानः ।
अन्यै-श्चान्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्वं-व्रज्या स्वभावात्, समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये ।।५।।

अन्वयार्थ—वे अरहंत देव (शेषान्) बारहवें गुणस्थान में क्षय की गई घातिया कर्मों की प्रकृतियों से बची हुई (अशेषान्) समस्त अघातिया कर्मों की प्रकृतियो को जो (निगलबलकलीन्) बेड़ी के समान बलवान हैं (छिन्दन्) नष्ट करते हुए/क्षय करके (तैः अनन्तस्वभावैः) उन अनन्त/अविनाशी स्वभाव को धारण करने वाले सम्यग्दर्शन आदि गुणों से (शोभमानः) शोभायमान होते हैं । (च) और (अन्यैः) इसके (क्षायिकैः) कर्मों के अत्यन्त क्षय से उत्पन्न होने वाले (सूक्ष्मत्वाग्रयावगाहा-गुरुलघुगुणैः) सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व आदि गुणों से (शोभायमान) सुशोभित होते हैं एवं (अन्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावैः) अन्य कर्म प्रकृतियों के क्षय से प्रकट शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति रूप लब्धि के प्रभाव से (शोभमानः) शोभायमान होते हैं । पश्चात् (उर्ध्वव्रज्यास्वभावात्) उर्ध्वगमन स्वभाव से (समयम् उपगतः) एक समय में ही (अग्रये धाम्नि) लोक के अग्र भाग/सिद्धालय में (संतिष्ठते) सम्यक् प्रकार से स्थित हो जाते हैं ।

भावार्थ–अरहंत पद की प्राप्ति पूर्वक ही सिद्ध अवस्था होती है अतः आचार्य देव सिद्ध भगवान की क्रमिक उन्नत अवस्था का वर्णन/स्तवन करते हुए स्तुति करते हैं—वे अरहंत भगवान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान के चरम समय तक ६३ प्रकृतियों - घातिया कर्मों की ४७ नामकर्म की १३ और आयु कर्म की ३ प्रकृतियों को क्षय कर चुकते हैं। फिर भी अघातिया कर्मों की ८५ प्रकृतियों की सत्ता बनी रहती हैं । उनमें आयु कर्म बेड़ी के समान कष्टप्रद है संसार में रोकने वाला है । चौदहवे अयोगकेवली गुणस्थान में व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यान रूपी तीक्ष्ण तलवार के बल से अयोगी जिन उपान्त्य समय में ७२ और अन्त समय में १३ प्रकृतियों क्षय कर कर्मों की सत्ता को जड़ से उखाड़ देते हैं । वे परमात्मा नामककर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, आयु कर्म के क्षय से अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के अभाव

से अगुरुलघुत्व और वेदनीय कर्म के नाश से अव्याबाधत्व इन चार गुणों से और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय के क्षय से प्रकट हुए क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक वीर्य/ अनन्त चतुष्टय इन आठ गुणों से शोभायमान होते हैं। समस्त घाति-अघाति कर्मों का क्षय होते होते ही उर्ध्वगमन स्वभाव होने से एक समय में ही ७ राजू ऊपर लोकाग्र पर स्थित तनुवातवलय में ४५ लाख योजन सिद्धालय में जा सदा के लिये विराजमान हो जाते हैं।

विशेष—सिद्धक्षेत्र पर समस्त सिद्धपरमेष्ठियों के शिर लोक से स्पृष्ट रहते हैं और शेष भाग अपनी अवगाहना के अनुसार नीचे रहता है।

अन्याकाराप्ति-हेतु-र्न च, भवति परो येन तेनाल्प-हीनः।
प्रागात्मोपात्त-देह-प्रति- कृति-रुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह-
व्यापत्त्याद्युग्र-दुःख-प्रभव-भव-हतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

अन्वयार्थ—(च) और (येन) जिस कारण से उन सिद्ध भगवन्तों के (परः) दूसरा कोई (अन्य-आकार-आप्ति हेतुः न) अन्य आकार की प्राप्ति का कारण नहीं है (तेन) इस कारण से (अल्पहीनः) किंचित् कम (प्राक्-आत्मा-उपात्त-देह-प्रतिकृति-रुचिर-आकार एवं भवति) पूर्व में आत्मा के द्वारा ग्रहण किये शरीर के प्रतिबिंब समान सुन्दर आकार ही होता है। तथा वह (हि अमूर्तिः) निश्चय से अमूर्तिक होता है। और (क्षुत्तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरण-जरा-अनिष्ट-योग-प्रमोह-व्यापत्त्यादि-उग्र) दुःख-प्रभव-भवहतेः) भूख, प्यास, श्वास, खांसी, बुखार, मरण, बुढ़ापा, अनिष्ट संयोग, प्रकृष्टमूर्च्छा, विशेष आपत्ति आदि भयंकर दुःखों की उत्पत्ति का कारणभूत संसार का अभाव होने से (अस्य) इन सिद्ध परमेष्ठी के (सौख्यस्य) सुख का (माता) जानने वाला अथवा परिमाण (कः) कौन हो सकता है अर्थात् उनके सुख को कोई नहीं जान सकता, वह सुख अपरिमेय है।

भावार्थ—मनुष्य जिस शरीर से मुक्त होता है, वह उसका अन्तिम

शरीर चरम शरीर कहलाता है। सिद्ध अवस्था में मुक्त जीवों का शरीर चरम शरीर से कुछ कम आकार वाला होता है। संसार अवस्था में एक भव से दूसरे भव को जाते हुए इस जीव का आकार कर्मों के उदय से बदलता था। अब सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाने मुक्त अवस्था में जीव का आकार चरम शरीर/पूर्व शरीर के आकार ही रहता है; तथा उसका परिमाण अन्तिम शरीर से कुछ कम रहता है क्योंकि शरीर के जिन भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं उतना परिमाण घट जाता है। यह कमी आकार की अपेक्षा नहीं किन्तु घनफल की अपेक्षा से है। टंकोत्कीर्ण रूप उनकी अविनाशी, अचिन्त्य अवस्था है।

मुक्त अवस्था मे आत्मा स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित अमूर्तिक ही रहता है। इसके सिवाय वे भगवान क्षुधा, तृषा, श्वास, खासी, दमा, ज्वर आदि तथा घोर, दुख जिससे उत्पन्न होते हैं ऐसे संसार वर्द्धक दुखों के क्षय से अनंत सुखों को प्राप्त हो गये हैं। सिद्धों के अनन्त सुखों का परिमाण कौन कर सकता है अर्थात् कोई नही कर सकता है।

आत्मोपादान-सिद्धं स्वयं-मतिशय-वद्-वीत-बाधं विशालम्।
वृद्धि - ह्रास - व्यपेतं, विषय-विरहितं निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्।
अन्य - द्रव्यानपेक्षं, निरुपममितं शाश्वतं सर्व-कालम्।
उत्कृष्टानन्त - सारं, परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्।।७।।

अन्वयार्थ—(अतः) क्षुधा आदि भयंकर दुःखों के अभाव से (तस्य सिद्धस्य) उन सिद्धपरमेष्ठी के (परम सुखं) श्रेष्ठ अनन्त सुख (जातम्) उत्पन्न हुआ है वह (आत्मा-उपादान-सिद्धं) आत्मा की उपादान शक्ति से अथवा आत्मा से ही उत्पन्न है। वह सुख (स्वयम्-अतिशयवत्) सहज/ स्वाभाविक अतिशयवान् है, (वीतबाधं) बाधा रहित है, (विशालं) अत्यन्त विस्तीर्ण होता है अर्थात् आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में व्याप्त होकर रहता है (वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं) वह सुख हीनाधिकता से रहित है, (विषय-विरहितं) पंचेन्द्रिय विषयों से रहित है, (निःप्रतिद्वन्द-भावं) प्रतिपक्षी भाव से रहित है, (अन्य-द्रव्यानपेक्षं) अन्य द्रव्य/पदार्थों की अपेक्षा से रहित है (निरुपमं) उपमातीत है (अमितं) सीमातीत है प्रमाणातीत है (शाश्वतं) अचल है, अविनाशी है, (सर्वकालं) सदा बना रहने वाला

है और (उत्कृष्ट-अनन्त-सारं) उत्कृष्ट, अनन्त काल तक रहने वाला व सारपूर्ण है।

भावार्थ—संसारी जीवों का सुख पुण्य कर्म रूप अन्तरंग कारण वह बाह्य में भोग-उपभोग की सामग्री की अपेक्षा रखता है। उनका यह सुख अन्तराय कर्म का क्षयोपशम या साता वेदनीय के आदि की अपेक्षा से उत्पन्न होता है इसलिये क्षणिक होता है वह सुख नहीं सुखाभास मात्र हैं पर सिद्ध परमेष्ठी का सुख मात्र आत्मा के उपादान से उत्पन्न होने से स्वाभाविक है, शाश्वत है। इन्द्रिय सुखों में निरन्तर बाधा रहती है पर सिद्धों का सुख निर्बाध/अव्याबाध है। आत्मा के समस्त प्रदेशों में वह अतीन्द्रिय सुख व्याप्त होकर रहता है। सिद्धों का सुख इच्छा रहित होने से न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है। संसारी जीवों का सुख स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्द रूप पंचेन्द्रियों की अनुकूलता चाहता है पर सिद्ध भगवन्तों का सुख इन्द्रिय विषयों से रहित/स्वाभाविक है संसारी जीवों के सुख का विपक्षी दुख सदा लगा रहता है पर सिद्धों का सुख सदा सुख रूप ही उसका कोई विपक्षी नहीं है। संसारी जीवों का सुख सातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त भोजन, पानी, पुष्प माला, चन्दन, सुगंधित द्रव्य आदि से होता है परसापेक्ष है, सिद्ध भगवन्तो के वह सुख सहज है, अन्य द्रव्यों से रहित है। उपमा से रहित, प्रमाण से रहित, चिरकाल स्थायी, सदा काल पाया जाने वाला, इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि के सुखों से भी विशेष उत्कृष्ट, सिद्ध परमेष्ठी का सुख वास्तव में संसारी जीवों के क्षणिक सुख से अत्यंत विलक्षण आत्मसापेक्ष है।

नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद्, विविध-रस-युतै-रन्न-पानै-रशुच्या।
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-र्नहि-मृदु-शयनै-र्ग्लानिं-निद्राद्यभावात्।
आतंकार्ते रभावे, तदुपशमन-सद्भेषजानर्थतावद्।
दीपा-नर्थक्य-वद् वा, व्यपगत-तिमिरे दृश्यमाने समस्ते॥८॥

अन्वयार्थ—(आतङ्क-आर्तेः अभावे) रोग-जनित पीड़ा का अभाव होने पर (तत् उपशमन सत्-भेषज-अनर्थ तावत्) उस रोग को शमन करने वाली समीचीन/उत्तम औषधि की अप्रयोजनीयता के समान (वा) अथवा (व्यपगत-तिमिरे) अन्धकार रहित स्थान में (समस्ते दृश्यमाने)

समस्त पदार्थों के दिखाई देने पर (दीप-अनर्थक्यवत्) दीप की निरर्थकता के समान सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तों के (क्षुत्तृट्-विनाशात्) क्षुधा/भूख, प्यास का विनाश हो जाने से (विविध-रसयुतैः अन्नपानैः) षट् रस मिश्रित भोजन व पानी आदि से (न अर्थः) कोई प्रयोजन नहीं है। (अशुच्याः अस्पृष्टेः) अशुचिता/अपवित्रता से स्पर्श नहीं होने से (गन्धमाल्यैः न) सुगंधित चन्दन, इत्र, फुलेल आदि व पुष्प मालाओं आदि से कोई प्रयोजन नहीं है तथा (ग्लानि-निद्रादि-अभावात्) थकावट, निद्रा आदि का सर्वथा अभाव होने से (मृदुशयनैः न हि अर्थः) निश्चय से कोमल शय्या से भी कोई प्रयोजन नहीं है।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा की सिद्धपर्याय पूर्ण स्वातन्त्र्य की प्रतीक है। उस पर्याय में पर की अपेक्षा ही नहीं है। संसारी जीवों के असाता-वेदनीय के उदय से क्षुधा, पिपासा आदि पीड़ाएँ उत्पन्न होती है अतः षट्रस युत विविध व्यञ्जन व पेय पदार्थों से व शरीर की रक्षा करते हैं। सिद्ध परमेष्ठी जिनों के क्षुधा, तृषा आदि दोषों का पूर्ण अभाव हो गया है अतः उन्हें विविध प्रकार के भोजन व पानी आदि से कोई प्रयोजन नहीं रहता, , वे सदा स्वरूप में लीन रहते हैं। संसारी जीवों का शरीर सात कुधातुओं से भरा अशुचि है, अशुचिता के संबंध होने से संसारी जीव उसे दूर करने के लिये नाना प्रकार के सुगंधित पदार्थों का उपयोग करते हैं परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के शरीर के अभाव होने अशुचिता का स्पर्श नहीं देखा जाता। अतः सुगंधित द्रव्य तथा मालाओं से उन्हें कोई प्रयोजन ही नहीं है। संसारी जीव निरन्तर मोहाभिभूत हो श्रम करता रहता है। थकावट होने पर कोमल शय्या आदि पर शयन करता है परन्तु सिद्ध परमेष्ठी जिनों के पास अनन्त वीर्य एक ऐसी अद्भुत शक्ति है कि "त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को देखते-जानते रहने पर भी वे कभी थकते नहीं। जहाँ थकान नहीं है ऐस सिद्धों के कोमल शय्या आदि से भी कोई प्रयोजन नहीं रहता।

सत्य ही है जैसे रोग के अभाव में औषधि का कोई प्रयोजन नहीं, अंधकार के अभाव में दीपक का कोई उपयोग नहीं, ठीक उसी प्रकार पूर्ण स्वावलंबी आत्मा के सिद्धपर्याय में पूर्ण स्वाधीनता हो जाने पर द्रव्य/पर पदार्थ का कोई प्रयोजन नही रहता। वास्तव में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त सिद्ध परमात्मा ही है।

तादृक् - सम्पत्-समेता, विविध-नय-तपः-संयम-ज्ञान-दृष्टि-
चर्या-सिद्धाः समन्तात, प्रवितत्-यशसो विश्व-देवाधि-देवाः ।
भूता भव्या भवन्तः, सकल-जगति ये स्तूयमाना विशिष्टै-
स्तान् सर्वान् नौम्यनन्तान्, निजिग-मिषु-ररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(ये) जो सिद्ध भगवान् (तादृक सम्पत समेता) अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुणो रूपी निधी के स्वामी है। (विविधनय तप· संयम-ज्ञानदृष्टि-चर्या सिद्धा:) अनेक प्रकार के नय, तप, संयम, ज्ञान, दर्शन/सम्यक्त्व व चारित्र से सिद्ध हुए है (समन्तात् प्रवितत यशस.) जिनका यश चारो दिशओ मे फैला हुआ है (विश्व देवाधिदेवा:) विश्व मे जितने देव है उन सबके जो अधिदेव देवाधिदेव/सब दोवो के स्वामी है, (सकल जगति) सारे विश्व मे/समस्त संसार मे (विशिष्टै: स्तुयमानै:) तीर्थकर जैसे विशिष्ट महापुरुषो के द्वारा जो स्तुति को प्राप्त है, ऐसे जो (भूता भव्या भवन्त:) भूतकाल मे हो चुके, भविष्यकाल में होंगे और वर्तमान मे हो रहे है (तान् सर्वान् अनन्तान्) उन सभी अनन्त सिद्ध परमेष्ठियो को (अरं) शीघ्र ही (तत्स्वरूपं) उस सिद्ध स्वरूप को (निजिगिमिषु:) प्राप्त करने की इच्छा करने वाला मै (त्रिसंध्यम्) प्रात:-मध्याह्न-सायं तीनों कालों में (नौमि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो सिद्ध भगवान अष्ट कर्मो के क्षय से सम्यक्त्व, ज्ञान आदि अनन्त गुणरूपी सम्पत्ति के स्वामी हो लोकाग्र मे शोभायमान है, नैगम-संग्रह आदि विविध नय व्यवहार-निश्चयनय, अन्तरंग-बहिरंग तप, सामायिक, छेदोपस्थापना आदि सात संयम, केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथाख्यातचारित्र से सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए है। जिनका यश समस्त दिक्-दिगन्तराल मे व्याप्त है, जो सब देवो मे प्रधान है देवाधिदेव है, दीक्षा ग्रहण करते समय तीर्थकर भी जिनकी जिनकी वन्दना करते है, ऐसे भूतकाल मे जो हो गये, भावीकाल मे जो होगे और वर्तमान मे जो हो रहे है उन समस्त सिद्धो को मै सिद्ध पद का इच्छुक, शीघ्र सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूॅ। जो जिस गुण का इच्छुक है वह उन गुणो से युक्त महापुरुषो की आराधना करता है। आचार्यदेव कहते है–मै पूज्यपाद

आप सम बनने का इच्छुक, शीघ्र सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये आपकी प्रात: मध्याह्न, सायंकाल तीनों सन्ध्याओं वन्दना करता हूँ।

"क्षेपक श्लोक"

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतु-रष्टदोष विरहितं सु परिशुद्धं।
अतिभक्ति संप्रयुक्तो, यो वन्दते सो लघु लभते परम सुखम्॥

अन्वयार्थ—(य:) जो जीव (अतिभक्ति संप्रयुक्त:) अत्यंत भक्ति से युक्त होकर (चतुरष्टदोष विरहितं) ३२ दोषों से रहित हो (सुपरिशुद्धं) अत्यन्त निर्मल, अत्यंत विशुद्ध (कायोत्सर्गं कृत्वा) कायोत्सर्ग करके (वंदते) वन्दना करता है (स लघु लभते परमसुखं) वह शीघ्र ही अतीन्द्रिय/मुक्ति सुख को प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो भव्यजीव अत्यंत भक्ति श्रद्धा से प्रेरित हो निर्मल शुद्ध परिणामों से बत्तीस दोष रहित कायोत्सर्ग करके सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करता है, उनकी वन्दना करता वह परम मुक्ति स्थान को प्राप्त हो उत्तम सुखों का भोक्ता होता है।

इच्छामि भंते ! सिद्धभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठ-विह-कम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठ-गुण-सम्पण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं-अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि,णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन ! (सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ) सिद्धभक्ति करके जो कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउं इच्छामि) उसमें लगे दोषों की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त जुत्ताणं) जो सिद्ध भगवान सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त हैं (अट्ठविह-कम्म-मुक्काणं) आठ प्रकार के कर्मों से रहित हैं (अट्ठगुणसंपण्णाणं) आठ गुणों से सम्पन्न हैं (उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं) ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर जाकर विराजमान हैं

(तव सिद्धाणं) तप सिद्धो को (णय सिद्धाणं) नय सिद्धो को (संजमसिद्धाणं) संयम सिद्धो को (चरित्तसिद्धाणं) चारित्र सिद्धो को (अतीत-अणागद वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं) भूत-भविष्य व वर्तमान तीनो कालो मे होने वाले सिद्धो को (सव्वसिद्धाणं) समस्त सिद्ध परमात्माओ को (सया णिच्चकालं) सदा काल/हर समय (अंचेमि) मैं अर्चा करता हूँ, (पूजेमि) पूजा करता हूँ, (वंदामि) वन्दन करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दु:खो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो, (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमणं) उत्तम गति मे गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (जिनगुणसम्पत्ति) जिनेन्द्र देव के गुणो की सम्पत्ति (मज्झ होऊ) मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—हे भगवन्! मै सिद्धभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग को करके उसमे लगे दोषो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो सिद्ध परमात्मा रत्नत्रय से मंडित है, अष्टकर्मो से रहित है सम्यक्त्व दर्शन, ज्ञान सुख, अव्याबाध, अगुरुलघु, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व आदि आठ गुणो से शोभायमान है लोकाग्र मे विराजमान है, ऐसे तप से सिद्ध नयो से सिद्ध, संयम से सिद्ध, चारित्र से सिद्ध होने वाले त्रिकाल सिद्धो को समस्त सिद्धो की मै प्रत्येक समय अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ मेरे समस्त दु:खो को क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तम देवादि मोक्षगति मे गमन हो, समाधिमरण हो। हे भगवन्! हे जिनदेव! आपके समान अनन्त गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो। मै भी आप के समान अनन्त गुणो का स्वामी बन परमपद को प्राप्त होऊं।

।। इति श्री सिद्धभक्ति ।।

चैत्यभक्तिः

स्रग्धरा

श्री गौतमादिपद-मद्‌भुतपुण्यबन्ध मुद्योतिता-खिल-ममौघ-मघप्रणाशम् ।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं निर्वाणकारण-मशेषजगद्धितार्थम् ।।

अन्वयार्थ—(श्री गौतमादिपद-मद्‌भुतपुण्यबन्धं) श्री गौतम आदि गणधरों के द्वारा की गई महावीर भगवान् की "जयति भगवान्" इस श्लोक से की गई स्तुति अद्‌भुत पुण्यबन्ध को करने वाली है (अखिलं अमौघम् अघ प्रणाशम्) सम्पूर्ण पाप समूह को नाश करने वाली है (तथ्यं उद्योतिता) सत्य को प्रकाशन करने वाली है (अहं) मैं संस्कृत टीकाकार (निर्वाणकारणम्) मुक्ति के कारण (अशेष जगत् हितार्थम्) सम्पूर्ण जगत् / संसारी जीवों के हितकारक (जिनेश्वरं प्रणिपत्य) जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके (वक्ष्ये) उस स्तुति की टीका कहूँगा ।

भावार्थ—यह श्लोक संस्कृत टीकाकार कृत है । टीकाकार यहाँ प्रतिज्ञा करते हुए कह रहे हैं—मैं सत्यस्वरूपी, मोक्षप्राप्ति में कारण, सम्पूर्ण जगत् हितकारक ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार करके श्री गौतम स्वामी के द्वारा की गई महावीर भगवान की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हूँ । गौतम स्वामी के द्वारा की गई यह स्तुति भव्य जीवों को पुण्य प्राप्ति कराने वाली है । सत्य का प्रकाशन करने वाली है । अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । पाप समूह का नाश करने वाली है । अर्थात् गौतम गणधर ने महावीर स्वामी भगवान को प्रत्यक्ष देखकर "जयति भगवान इस श्लोक से जिस स्तुति का प्रारंभ किया है ऐसी पुण्यानुबन्धी स्तुति की है, उसके स्पष्टीकरण रूप टीका को मैं करता हूँ ।

जयति भगवान स्तोत्रम्

देव-धर्म-वचन ज्ञान स्तुति

जयति भगवान हेमाम्भोज-प्रचार-विजृम्भिता-
वमर - मुकुटच्छायोद्गीर्ण - प्रभा - परिचुम्बितौ ।
कलुष-हृदया मानोद्‌भ्रांताः परस्पर-वैरिणः,
विगत-कलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ।।१।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिन अरहंत देव के (हेम-अम्भोज-प्रचार-विजृम्भितौ) स्वर्णमयी कमलो पर अन्तरीक्ष गमन/चलने से शोभायमान तथा (अमर-मुकुटच्छाया-उद्‌गीर्ण प्रभा-परिचुम्बितौ) देवो के मुकुटो की कान्ति से निकली हुई प्रभा से सुशोभित हुए (पादौ) चरण-युगल को (प्रपद्य) प्राप्त करके (कलुष हृदया) कलुषित-मलिन हृदय वाले अर्थात् कलुषित परिणामो वाले जीव, (मान-उद्‌भ्रान्ता) अहकार से भ्रान्ति को प्राप्त जीव और (परस्पर-वैरिण) आपस मे वैरभाव रखने वाले जीव (विगत-कलुषा) कलुषता/मलिन परिणामो से रहित होते हुए (विशश्वसु) परस्पर मे विश्वास को प्राप्त होते है (स) वे (भगवान) केवलज्ञानयुक्त, परम अन्तरग बहिरग लक्ष्मी के स्वामी अरहत परमेष्ठी (जयति) जयवत रहते है ।

भावार्थ—अरहत परमेष्ठी का गमन/विहार सामान्य पुरुषो की तरह नही होता । वे सामान्य जीवो की तरह पीछे, आगे पैर रखकर नही चलते है । वे दोनो चरणो को कमल समान रखते हुए विहार करते है । वे सदा अन्तरीक्ष मे विहार करते है । विहार के समय देवगण चरण-कमलो के नीचे २२५ कमलो की सुन्दर रचना करते है । एक आचार्य के मत से केवली भगवान डगभरकर चलते है । विहार करते हैं उस समय देवो के मुकुटो की मणियो से निकलती हुई किरणो के संयोग से जिनदेव के चरण-कमल विशेष शोभा को प्राप्त होते है । जिनदेव के ऐसे परम-पुनीत शोभायमान चरण-कमलो का आश्रय पाकर अर्थात् दर्शन पाकर जीवो के परिणामो मे निर्मलता आती है, अहंकार गल जाता है, भ्रांतियाँ दूर हो जाती है । इतना ही नही, जिनदेव के आश्रय को पाकर जातिविरोधी जीव सर्प-नेवला, चूहा, बिल्ली आदि भी आपस मे प्रीति को प्राप्त हो जाते है । शान्ति का अनुभव करते है, ऐसे देवो से वन्दनीय त्रिलोकीनाथ, वीतराग, अरहंत देव सदा जयवंत रहते है ।

भक्तामर स्तोत्र मे आचार्य देव लिखते है—

रखते जहाँ वहीं रचते है, स्वर्ण कमल सम दिव्य ललाम ।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम ।।

तदनु जयति श्रेयान्-धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः,
कुगति-विपथ-क्लेशा-द्योसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणत-नयस्यांगी-भावाद्-विविक्त-विकल्पितम्,
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र-वचोऽमृतम्।।२।।

अन्वयार्थ—(तदनु) अरहंत देव के जयघोष के बाद (यः) जो (प्रजाः) जीवों को (कुगति-विपथ-क्लेशात्) नरक-तिर्यञ्च आदि अशुभ गतियों के खोटे मार्ग सम्बंधी कष्टों से/ दुःखों से (विपाशयति) बन्धन मुक्त करता है (प्रवृद्ध महोदयः) स्वर्ग-मोक्ष रूप अभ्युदय को देने वाला (श्रेयान्) कल्याणकारी है ऐसा (असौ धर्मः) यह धर्म/वीतराग अहिंसामयी यह जिनधर्म (जयति) जयवंत रहता है। जिनधर्म के पश्चात् (परिणतनयस्य) विविक्षित नय अर्थात् द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के (अंगीभावात्) स्वीकृत करने से (विविक्त विकल्पितं) अंग व पूर्व के भेदों युक्त अथवा द्रव्य-पर्याय के भेद से युक्त (त्रेधा) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक अर्थात् तीन प्रकार के वस्तु स्वरूप का निरूपण करने वाले अथवा ११ अंग, १४ पूर्व और अंग बाह्य के भेद से तीन प्रकार अथवा शब्द-अर्थ-ज्ञान के भेद से तीन प्रकार के (जिनेन्द्र-वचः अमृतम्) जिनेन्द्र भगवान के अमृत तुल्य वचन (भवतः) संसार से (त्रातृ) रक्षा करने वाले (भवतु) हों।

भावार्थ—जो जीवों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुखों को प्राप्त करावे वह धर्म है। धर्म के प्रभाव से जीव बलदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, मंडलीक, महामंडलीक, स्वर्ग और मुक्ति को प्राप्त करता है। जिस धर्म के प्रभाव से जीवों के हिंसादि पाप मिथ्यात्व, कषाय आदि कुभावों/ दुर्भावों का अभाव होता है तथा नरकादि गतियों मे जाने का मार्ग बन्द हो जाता है ऐसा अहिंसामयी जैनधर्म सदा जयशील हो।

जिनधर्म की प्राप्ति जिनेन्द्रकथित वाणी–जिनवाणी से होती है। जिसप्रकार अमृत-पान करने वाले जीव का शरीर पुष्ट होता है उसी प्रकार जिन वचन रूपी अमृत का पान करने वाले भव्यात्मा ज्ञानामृत से पुष्ट हो नरकादि के दुखों से बच जाते हैं। जो जिनेन्द्रवाणी सप्तभंगमयी, सप्तनयों अथवा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयों से पुष्ट है। द्रव्य-गुण-पर्याय का विवेचन करने वाली, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक वस्तु स्वरूप का निरूपण करने

वाली है, अमृतमयी है, ऐसी माँ जिनवाणी संसार-सागर मे डूबते भव्यजीवो की रक्षा करे।

इस श्लोक मे आचार्यदेव ने जिनधर्म व जिनागम के जयवन्त रहने की भक्तिपूर्ण भावना का उद्घोष किया है।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंग-तरंगिणी,
प्रभव-विगम ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी।
निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम्,
विगत-रजसं मोक्षं देयान् निरत्यय-मव्ययम्।।३।।

अन्वयार्थ—(तदनु) जिनधर्म, जिनागम की स्तुति के बाद (प्रभङ्ग तरङ्गिणी) स्यात् अस्ति, नास्ति आदि सप्त भंग रूप तरंगो से युक्त तथा (प्रभव-विगम-ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी) उत्पाद-व्यय, ध्रौव्य रूप द्रव्य के स्वभाव को प्रगट करने वाली (जैनी वित्ति·) जिनेन्द्र भगवान् की केवलज्ञानमयी प्रवृत्ति (जयतात्) जयवन्त प्रवर्ते। इस प्रकार (इदं) ये जिनदेव, जिनधर्म, जिनवाणी और जिनेन्द्र का केवलज्ञान रूप चतुष्टय (निरुपमसुखस्य) उपमातीत सुख के (द्वारं विघट्य) द्वार को खोलकर (निरर्गलं) अर्गल रहित करे व (निरत्ययम्) व्याधि रहित (अव्ययम्) अविनाशी (विगत रजसं) कर्म रहित (मोक्षं) मोक्ष को (दैयात्) देवें।

भावार्थ—यहाँ आचार्य देव ने केवलज्ञान को नदी की उपमा दी है। यथा नदी लहरो से भरपूर है, उसी प्रकार यह केवलज्ञान रूपी नदी भी सप्तभंगमय वस्तु तत्त्व का ज्ञाता है अत: सप्तभंगरूप है।

"भङ्ग" शब्द के भाग लहर, प्रकार, विघ्न आदि अनेक अर्थ होते हैं, उनमे से यहाँ पर प्रकार वाचक "भङ्ग" शब्द लिया है। तदनुसार वचन के भङ्ग सात प्रकार के हो सकते है, उससे अधिक नही क्योकि आठवी तरह का कोई वचनभङ्ग होता नही। सात से कम मानने से कोई न कोई वचनभङ्ग छूट जायेगा।

इसका कारण यह है कि किसी भी पदार्थ के विषय मे कोई भी बात्त कही जाती है वह मौलिक रूप से तीन प्रकार की होती है या हो सकती है, १. "है" (अस्ति) के रूप मे, २. "नही" (नास्ति) के रूप मे, ३. न कह सकने योग्य (अवक्तव्य) के रूप मे।

इन मूल तीन भंगों के परस्पर मिलाकर तीन युगल (द्वि संयोगी) रूप होते हैं १. है और नहीं (अस्ति नास्ति) रूप, २. है और न कह सकने योग्य (अस्ति अवक्तव्य), ३. नहीं और न कह सकने योग्य (नास्ति अवक्तव्य) रूप।

एक भंग तीनो का मिला हुआ (त्रिसंयोगी) होता है—है, नहीं और न कह सकने योग्य (अस्ति नास्ति अवक्तव्य)।

इस तरह वचनभंग सात प्रकार के हैं, इन सातों भंगों के समुदाय को (सप्तानां भंगानां समुदायः सप्तभंगी) "सप्तभंगी" कहते हैं। इस तरह स्यात् पद लगाकर उन सात भंगों के नाम यों हुए—१. स्यात् अस्ति, २. स्यात् नास्ति, ३. स्यात् अस्ति नास्ति, ४. स्यात् अवक्तव्य, ५. स्यात् अस्ति अवक्तव्य, ६. स्यात् नास्ति अवक्तव्य ७. स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य।

१. प्रत्येक वस्तु अपने (विवक्षित-कहने के लिये इष्ट) दृष्टिकोण (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा) अस्तित्व रूप होती है।

२. प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तु या अन्य (अविवक्षित) दृष्टिकोणों की अपेक्षा अभाव नास्तित्व रूप होती है जैसे- राम राजा जनक की अपेक्षा से पुत्र नहीं हैं। (३) दोनों दृष्टिकोणों को क्रम से कहने पर अस्तित्व तथा अभाव (अस्ति-नास्ति) रूप होती है। जैसे-राम दशरथ के पुत्र हैं, जनक के पुत्र नहीं है। (४) परस्पर विरोधी [हैं तथा नहीं रूप] दोनों दृष्टिकोणों से एकसाथ वस्तु वचन द्वारा कही नहीं जा सकती क्योंकि वैसा वाचक (कहने वाला) कोई शब्द नहीं है। अतः उस अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य होती है। जैसे-राम राजा दशरथ तथा जनक की युगपत् [एक साथ एक शब्द द्वारा] अपेक्षा कुछ नहीं कहे जा सकते। ५. वस्तु न कह सकने योग्य [युगपत् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य] होते हुए भी अपने दृष्टिकोण से होती तो है [स्यात् अस्ति अवक्तव्य] जैसे राम यद्यपि दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य [न कहे जा सकने योग्य] है फिर भी राजा दशरथ की अपेक्षा पुत्र है। [स्यात् अस्ति अवक्तव्य] (६) वस्तु अवक्तव्य [युगपत् कहने की अपेक्षा] होते हुए

भी अन्य दृष्टिकोण से नही रूप है [स्यात् नास्ति अवक्तव्य] जैसे राम युगपत् दशरथ तथा जनक की अपेक्षा अवक्तव्य होते हुए भी राजा जनक की अपेक्षा पुत्र नही है। [स्यात् नास्ति अवक्तव्य] (७) परस्पर विरोधी [है और नही रूप] दृष्टिकोणो से युगपत् [है और नही रूप] दृष्टिकोणो से युगपत् [एकसाथ एक ही शब्द द्वारा] अवक्तव्य [न कह सकने योग्य] होते हुए भी वस्तु क्रमशः उन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणो से है, नही रूप होती है। [अस्ति नास्ति अवक्तव्य] जैसे--राम राजा तथा जनक की अपेक्षा युगपत् रूप से कुछ भी नही कहे अवक्तव्य है किन्तु युगपत् की अपेक्षा अवक्तव्य होकर भी क्रमश राम राजा दशरथ के पुत्र है, राजा जनक के पुत्र नही है।

इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रत्येक पदार्थ मे लागू होती है। सप्तभंगी के लागू होने के विषय मे मूल बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ मे अनुयोगी [अस्तित्व रूप] और प्रतियोगी [अभाव रूप-नास्तित्व रूप] धर्म पाये जाते है तथा अनुयोगी प्रतियोगी धर्मो को युगपत् [एकसाथ] किसी भी शब्द द्वारा न कह सकने योग्य रूप अवक्तव्य धर्म भी प्रत्येक पदार्थ विद्यमान है। अनुयोगी, प्रतियोगी और अवक्तव्य इन तीनो धर्मो के एक संयोगी [अकेले-अकेले] तीन भंग होते है, द्विसंयोगी [युगल रूप] तीन भंग होते हैं तथा तीनो का मिलकर त्रिसंयोगी भंग एक होता है। इस तरह सब मिलकर सात भंग हो जाते है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक पदार्थ के स्वरूप का प्रकाशक केवलज्ञान सदा जयवंत हो। जिस सुख के पीछे कोई दुख नही है, जो जन्म-जरा-मृत्यु व अनेक व्याधियो से रहित सुख है वही वास्तव मे निरुपम सुख है, वह सुख मुक्त अवस्था मे है। यहॉ आचार्य देव जिनदेव, जिनधर्म, जिनागम व जिनज्ञान/केवलज्ञान रूप चतुष्टय महानिधियो से प्रार्थना करते है कि हे प्रभो ! अनुपम सुखरूपी मुक्तिद्वार पर मोहरूपी सॉकल व अन्तराय रूपी अर्गल/बेड़ा लगा हुआ है। अतः मोहरूपी द्वार खोलकर अन्तराय रूपी अर्गल को भी दूर कीजिये तथा रज रहित कीजिये अर्थात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म को दूर कीजिये। तात्पर्य हे प्रभो ! मुझे चार घातिया कर्मो से अथवा अष्ट कर्मो के रज से दूर कर मुक्ति प्रदान कीजिये।

यहाँ आचार्य देव का तात्पर्य है—इस संसार में अष्टकर्मरूपी रज से मलीन जीव, जन्म-जरा-मृत्यु से पीड़ित हो निरन्तर दुखी है, यदि यह शाश्वत अनुपम सुख की प्राप्ति करना चाहता है तो जिनदेव, जिनधर्म, जिनागम व केवलज्ञान की भक्ति, स्तुति, आराधना करें, इनकी आराधना से भिन्न कोई मुक्ति-मार्ग नही है।

२. दश-पद-स्तोत्रम्

पञ्च परमेष्ठियों को नमस्कार

आर्या छन्द

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः ।
सर्व-जगद्-वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ।।४।।

अन्वयार्थ—(सर्व-जगत्-वन्देभ्यः) तीन लोक के समस्त प्राणियों से वन्दनीय (सर्वेभ्यः) समस्त (अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्यायेभ्यः) अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय (तथा च) और (साधुभ्यः) साधुओं के लिये (सर्वत्र) जहाँ-जहाँ विराजमान हैं (नमः अस्तु) मेरा नमस्कार हो।

भावार्थ—तीन लोकों के समस्त प्राणियों से वन्दनीय अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय व साधु पंच परमेष्ठी भगवान ढाई द्वीप में जहाँ-जहाँ विराजमान हैं, सबको मेरा नमस्कार है।

अरहंतों को नमस्कार

मोहादि-सर्व-दोषारि-घातकेभ्यः सदा हत-रजोभ्यः,
विरहित-रहस्-कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ।।५।।

अन्वयार्थ—(मोह-आदि-सर्व-दोष-अरि-घातकेभ्यः) मोह आदि अर्थात् राग-द्वेष-क्रोधादि अथवा दर्शनमोह व चारित्रमोह आदि व सर्व दोष–१८ दोषों रूपी शत्रुओं का क्षय करने वाले/नाश करने वाले (हत-रजोभ्यः) ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्मरज को नष्ट करने वाले व (विरहित-रहस्कृतेभ्यः) नष्ट कर दिया है अन्तराय कर्म को जिन्होंने ऐसे (पूजा अर्हेभ्यः) पूजा के योग्य (अर्हद्भ्यः) अरहंत परमेष्ठी के लिये (सदा नमः) सर्वकाल नमस्कार हो।

भावार्थ—"अरि-रज-रहस-विहीन" जो अरहंत परमेष्ठी मोहरूपी शत्रु व १८ दोषो से रहित है ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्मरूपी रज से रहित है, तथा अन्तराय कर्म से रहित है अर्थात् चार घातिया कर्मो के क्षय से चार अनन्त चतुष्टय को प्राप्त होने से पूज्य अरहन्त भगवन्तो को मेरा नमस्कार हो।

धर्म को नमस्कार

क्षांत्यार्जवादि-गुण गण-सुसाधनं सकल-लोक-हित-हेतुम्।
शुभ-धामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्॥६॥

अन्वयार्थ—(क्षान्ति-आर्जव-आदि गुण-गण-सु साधनं) जो उत्तम क्षमा, सरलता आदि गुण समूह की प्राप्ति का उत्तम साधन है (सकल-लोक-हित-हेतुम्) सम्पूर्ण लोक के जीवो के हित का कारण है (शुभ-धामनि) स्वर्ग-मोक्ष रूप उत्तम स्थानो मे (धातारं) धरने वाला है उस (जिनेन्द्र-उक्तम्) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये (धर्म) धर्म को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रतिपादित उस धर्म की मै वन्दना करता हूँ जो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, अथवा शांति, कोमलता, सरलता, संतोष आदि गुणो के समूह की प्राप्ति कराने के लिये अमोघ साधन है, तीन लोक के समस्त प्राणियो का हितकारी है तथा संसार के दु:खो से छुड़ाकर स्वर्ग-मोक्ष रूप उत्तम स्थानो मे पहुँचाने वाला है।

जिनवाणी की स्तुति

मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैक-ज्योति-रमित-गमयोगि।
सांगोपांग-मजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे॥७॥

अन्वयार्थ—(मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोक-एकज्योति:) मिथ्या ज्ञान रूप अन्धकार मे डूबे लोक मे जो अद्वितीय ज्योतिरूप है (अमित-गम-योगि) अपरिमित श्रुत ज्ञान से जो सहित है (अजेय) अजेय है/किसी परवादी के द्वारा जीतने योग्य नही है ऐसे (साङ्ग-उपाङ्ग) अंग और उपाङ्गों से युक्त (जैनं वचनं) जिनेन्द्र वचन-जिनवाणी को (सदा वन्दे) मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—ग्यारह अंग-चौदह पूर्व अथवा अंग प्रविष्ट व अंगबाह्य

रूप से जिनेन्द्र कथित अपरिमित श्रुतज्ञान जिनवाणी को, जो मिथ्यात्व में डूबे, अज्ञान अन्धकार से घिरे जीवों के लिये एक अनुपम, अद्वितीय ज्योतिरूप प्रकाशपुंजिका है, प्रतिवादियों के द्वारा अपराजित है ऐसी माँ जिनवाणी के लिये मै सदा नमस्कार करता हूँ।

जिन प्रतिमाओं को नमस्कार

भवन-विमान-ज्योति-र्व्यन्तर-नरलोक विश्व-चैत्यानि।
त्रिजग-दभिवन्दितानां त्रेधा वन्दे जिनेन्द्राणाम्।।८।।

अन्वयार्थ—(त्रिजगत् अभिवन्दितानां) तीनों लोकों के जीवों के द्वारा अभिवन्दनीय (जिनेन्द्राणाम्) अरहंत/जिनेन्द्रदेव की (भवन-विमान-ज्योतिः-व्यन्तर, नरलोक, विश्व चैत्यानि) भवनवासी, वैमानिक, ज्योतिषी, व्यन्तर देवों के विमानों में, समस्त निवास स्थानों मे विराजमान तथा ढाई दीप/मनुष्यलोक में, सर्व लोक में विराजमान समस्त जिनबिम्बों की मै (त्रेधा वन्दे) मन-वचन-काय से वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक सर्व विश्व में विराजमान कृत्रिमाकृत्रिम जिनेन्द्रदेव की वीतराग प्रतिमाएँ जो समस्त जीवों के द्वारा अभिवन्दनीय हैं उनको मैं मन-वचन-काय से सदा वन्दना करता हूँ।

चैत्यालय की स्तुति

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थ-कर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्नि-शान्त्यै विभवाना-मालयालीस्ताः।।९।।

अन्वयार्थ—(विभवानाम्) संसार रहित (भुवनत्रय-अधिप-अभ्यर्च्य) तीन लोकों के पतियो के द्वारा पूज्य (तीर्थकर्तृणाम्) तीर्थकरों के (भुवनत्रयेऽपि) तीनो लोकों में (आलय-अली) जो मन्दिरो की पक्तियाँ हैं (ताः) उनको (भव-अग्नि-शान्त्यै) संसाररूपी अग्नि को शान्त करने के लिये (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो जन्म-जरा-मरणरूप संसार से रहित हैं, इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि तीन लोक के अधिपतियो से वन्दनीय हैं/पूज्य है, ऐसे तीर्थंकर परमदेव के जिनालयो की पक्तियाँ जहाँ-जहाँ भी शोभायमान है, उनको मै संसाररूपी अग्नि को शान्त करने के लिये नमस्कार करता हूँ।

स्तुति करने का फल

इति पञ्च-महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम् ।।१०।।

अन्वयार्थ—(इति प्रणुताः) इस प्रकार स्तुति किये गये ये (पंच-महापुरुषाः) पंच-परमेष्ठी भगवन्त (जिनधर्म-वचन-चैत्यानि-चैत्यालयाः) जिनधर्म, जिनागम, चैत्य और चैत्यालय (बुधजन-इष्टां) ज्ञानी जनों/गणधरों को इष्ट (विमलां) निर्मल (बोधिं) ज्ञान (दिशन्तु) देवें।

भावार्थ—इस प्रकार मैंने अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-जिनधर्म-जिनागम, जिन-प्रतिमा और जिनालयों की वन्दना की। ये सब मेरे लिये अत्यन्त निर्मल, बुद्धिमानों को भी इष्ट ऐसी रत्नत्रय निधि प्रदान करें।

३. जिन-प्रतिमा-स्तवनम्

कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं की स्तुति
वियोगिनी छन्दः

अकृतानि कृतानि-चाप्रमेय-द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु ।
मनुजामर-पूजितानि वन्दे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ।।११।।

अन्वयार्थ—(जगत्त्रये) तीनों लोकों में (मनुज अमर-पूजितानि) मनुष्य व देवों से पूज्य (अप्रमेय द्युतिमत्सु मन्दिरेषु) अप्रमित कान्ति से युक्त जिनालयों में (जिनानां) जिनेन्द्रदेवों की (अकृतानि-कृतानि) अकृत्रिम व कृत्रिम (अप्रमेयद्युतिमन्ति) अपरिमित कान्ति से युक्त (प्रतिबिम्बानि) प्रतिमाओं को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—तीनों लोकों में-अधोलोक में ७ करोड़ ७२ लाख, मध्यलोक में ४५८ व ऊर्ध्वलोक में ८४ लाख ९७ हजार २३ इतने प्रमाणातीत कान्ति से युक्त अकृत्रिम जिनालय हैं तथा असंख्यात कृत्रिम जिनालय हैं तथा उनमें अप्रमित कान्ति से युक्त वीतराग जिनबिम्ब विराजमान हैं, ये जिनालय व जिनबिम्ब मनुष्यों व देवों से भी पूज्य हैं। इनकी मैं पूज्यपाद आचार्य वन्दना करता हूँ।

द्युति-मण्डल-भासुरांग-यष्टीः, प्रतिमाऽप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ।।१२।।

अन्वयार्थ—(भुवनेषु) तीनों लोकों में (प्रवृत्ताः) विराजमान/वर्तमान (द्युतिमण्डल-भासुर-अङ्ग-यष्टीः) कान्ति-मण्डल से देदीप्यमान शरीर यष्टि अर्थात् शरीररूपी लकड़ी से युक्त (वपुषा अप्रतिमाः) स्वरूप या तेज से उपमातीत (जिनोत्तमानां) जिनेन्द्रदेव की (प्रतिमाः) प्रतिमाओं को (विभूतये) अनन्त चतुष्टय आदि रूप अर्हन्त देव की सम्पदा की प्राप्ति के लिये अथवा स्वर्ग, मुक्तिरूपी पुण्य सम्पदा की प्राप्ति के लिये (वपुषा वन्दमानः) शरीर से नमस्कार करता हुआ (प्राञ्जलिः अस्मि) मैं अञ्जलिबद्ध हूँ।

भावार्थ—यहाँ आचार्य देव ने जिनेन्द्रदेव के शरीर को लकड़ी की उपमा दी है–"अङ्गयष्टी"। क्योंकि जिस प्रकार लकड़ी समुद्र से पार कर देती है, उसी प्रकार भगवान का शरीर भी संसारी प्राणियों को संसार-समुद्र से पार कर देता है। अतः भगवान का शरीर एक लकड़ी के समान है।

जिनकी शरीररूपी लकड़ी प्रभामंडल से अत्यंत दीप्ति को प्राप्त हो रही है अर्थात् जिनेन्द्र प्रतिमाएँ प्रभामंडल से शोभा को प्राप्त हो रही हैं, संसार में जिनके तेज की कोई उपमा नही है, ऐसी जिन-प्रतिमाओं को मैं अर्हन्त पद की विभूति के लिये अथवा स्वर्ग मोक्ष रूप अतुल सम्पदा की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हुआ अञ्जलिबद्ध हूँ। अर्थात् उन सब प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

विगतायुध-विक्रिया-विभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमा-गृहेषु कान्त्याऽ-प्रतिमाः कल्मष-शान्तयेऽभिवन्दे ।।१३।।

अन्वयार्थ—(प्रतिमागृहेषु) कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों में विराजमान/विद्यमान (कृतिनां) कृतकृत्य (जिनेश्वराणाम्) जिनेन्द्र भगवान् की (विगत-आयुध-विक्रिया-विभूषाः) अस्त्र रहित, विकार रहित और आभूषण से रहित (प्रकृतिस्थाः) स्वाभाविक वीतराग मुद्रा में स्थित (कान्त्या अप्रतिमाः) दीप्ति से अनुपम (प्रतिमाः) जिनेन्द्र प्रतिमाओं को, मैं (कल्मष-शान्तये) पापों की शान्ति के लिये (अभिवन्दे) सन्मुख होकर अच्छी तरह से मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो कृतकृत्य है अर्थात् जिन्होने चार घातिया कर्मों का क्षय कर दिया है; केवल शुभ कर्म जिनके शेष रह गये हैं ऐसे अरहंत देव की अनुपम तेज-कान्ति से देदीप्यमान प्रतिमाएँ हैं। कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालयो मे, तलवार, बर्छी, दंड, भाला आदि आयुधो/ अस्त्रो से रहित, विकार, रहित व केयूर, हार, कुण्डल आदि आभूषणो से रहित वीतराग स्वभाव मे स्थित/विराजमान समस्त जिनप्रतिमाओ को मै समस्त पापो की शान्ति के लिये उनके सन्मुख होकर नमस्कार करता हूँ। उनकी स्तुति करता हूँ। आचार्य वादिराज स्वामी एकीभाव स्तोत्र मे भी लिखते है—

जो कुदेव छवि हीन वसन भूषण अभिलाखै,
बैरी सों भयभीत होय सो आयुध राखै।
तुम सुन्दर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई,
भूषण वसन गदादि ग्रहण काहे को होई।।१९।।

कथयन्ति कषाय-मुक्ति-लक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूप-मूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

अन्वयार्थ—(भवान्तकानाम्) संसार का अन्त करने वाले (जिनानाम्) जिनेन्द्रदेवो की (अभिरूप-मूर्तिमंति) चारो ओर से अत्यंत सुन्दरता को धारण करने वाली (कषाय-मुक्ति-लक्ष्मी) कषायो के त्याग से अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी की युक्तता को (परया शान्ततया) अत्यंत शान्तता के द्वारा (कथयन्ति) सूचित करती है ऐसी उन (प्रतिरूपाणि) जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओ को मै (विशुद्धये) विशुद्धि के लिये (प्रणमामि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जन्म-मरणरूप संसार का अन्त करने वाले वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवन्तो की चारो ओर से अत्यधिक सुन्दरता को धारण करने वाली कषायो के अभाव से अन्तरङ्ग अनन्त-चतुष्टय व बहिरङ्ग समवशरण लक्ष्मी की प्राप्ति की दशा को अत्यन्त शान्तता के द्वारा सूचित करने वाली समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाओ को मैं आत्मा की विशुद्धि के लिये नमस्कार करता हूँ।

स्तुति करने का फल

यदिदं मम सिद्धभक्ति-नीतं, सुकृतं दुष्कृत-वर्त्म-रोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भव-ताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ।।१५।।

अन्वयार्थ—(सिद्धभक्ति-नीतं) तीन जगत् में प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्ति से प्राप्त और (दुष्कृतवर्त्मरोधि) खोटे मार्ग को रोकने वाला (मम) मेरा (यत् इदं सुकृतं) जो यह पुण्य है (तेन पटुना) उस प्रबल पुण्य से (मे भक्तिः) मेरी भक्ति (जन्मनि-जन्मनि) जन्म-जन्म में (जिनधर्मे) जिनधर्म में (एव) ही (स्थिरा भवतात्) स्थिर हो।

भावार्थ—हे प्रभो ! मैंने पाप-मार्ग को रोकने वाली जगत् प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्ति से जो पुण्य प्राप्त किया है, उसके फल से मेरी जन्म-जन्म में मुक्ति प्राप्ति न हो तब तक जिनेन्द्र कथित धर्म में ही स्थिरता बनी रहे। मुझे निर्वाणपर्यन्त जैनधर्म की ही प्राप्ति हो।

४. विश्व-चैत्य-चैत्यालय-कीर्तन

अनुष्टुप

अर्हतां सर्वभावानां दर्शन-ज्ञान-सम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ।।१६।।

अन्वयार्थ—(सर्वभावानाम्) सर्व पदार्थों की समस्त पर्यायों को युगपत् जानने वाले-सर्वज्ञ (ज्ञान-दर्शन-सम्पदाम्) ज्ञान दर्शन रूप सम्पत्ति से सहित (अर्हतां चैत्यानि) अरहन्त भगवन्तों के प्रतिबिम्बों की (यथाबुद्धि) अपनी बुद्धि के अनुसार (विशुद्धये) विशुद्धि प्राप्त करने के लिये (कीर्तयिष्यामि) स्तुति करूँगा।

भावार्थ—त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों की त्रैकालिक पर्यायों को युगपत् विषय करने वाले सर्वज्ञदेव, जो अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन रूप सम्पत्ति से सुशोभित हैं, उन अरहन्त-देव की समस्त त्रिलोक स्थित प्रतिमाओं की मैं अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करूँगा।

श्रीमद्-भवन-वासस्था स्वयं भासुर-मूर्तयः ।
वन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

अन्वयार्थ—(स्वयं-भासुर-मूर्तय:) स्वभाव से देदीप्यमान शरीर को धारण करने वाली (श्रीमत् भवनवासस्था:) बड़ी विभूति को धारण करने वाले भवनवासी देवो के भवनो मे स्थित (प्रतिमा:) जिनप्रतिमाएँ (वन्दिता:) वन्दना को प्राप्त होती हुई (न:) हम सब की (परमां गतिं) उत्कृष्ट गति (विधेयासु.) करे अर्थात् उनकी वन्दना से हम सबको उत्कृष्ट गति की प्राप्ति हो।

भावार्थ—बड़ी विभूति के धारक भवनवासी देवो के सुन्दर-सुन्दर विमानो मे विराजित अनादि-निधन, स्वभाव से ही देदीप्यमान शरीर को धारण करने वाली, देवो के द्वारा सदा पूज्य/वन्दित जिन प्रतिमाओ की वन्दना से हम सब भक्तजनो को उत्तम मोक्ष गति की प्राप्ति हो। अर्थात् जो वीतराग देव की स्तुति, आराधना करता है वह जीव मुक्ति का पात्र बनता है।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च ।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ।।१८।।

अन्वयार्थ—(अस्मिन् लोके) इस मध्य लोक/तिर्यक् लोक मे (यावन्ति) जितनी (अकृतानि) अकृत्रिम (च) और (कृत्रिम) कृत्रिम (चैत्यानि) प्रतिमाएँ (सन्ति) है (तानि सर्वाणि) उन सबको (भूयांसि भूतये) अन्तरंग-बहिरंग महा विभूति के लिये (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मध्य लोक मे ४५८ अकृत्रिम चैत्यालयो के जिनबिम्ब व कृत्रिम चैत्यालयो मे जितने भी जिनबिम्ब है, उन समस्त जिनबिम्बो/जिनप्रतिमाओ को मै अनन्त चतुष्टय रूप अन्तरंग व समवसरणादि बहिरंग परम विभूति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

ये व्यन्तर-विमानेषु स्थेयांस: प्रतिमागृहा: ।
ते च संख्या-मतिक्रान्ता: सन्तु नो दोष-विच्छिदे ।।१९।।

अन्वयार्थ—(व्यन्तरविमानेषु) व्यन्तर देवो के विमानो मे (ये) जो (स्थेयांस:) सदा स्थिर रहने वाले (प्रतिमागृहा:) चैत्यालय है (च) और (संख्याम् अतिक्रान्ता:) असंख्यात है (ते) वे (न:) हमारे (दोष-विच्छिदे सन्तु) दोषो को नाश करने के लिये होवे।

भावार्थ—व्यन्तर देवों के विमानों में शाश्वत असंख्यात चैत्यालय हैं वे हमारे राग-द्वेष-मोह आदि सर्व दोषों के नाशक हों। अर्थात् व्यन्तर देवों के विमानों में विराजित जिनप्रतिमाओं की भक्ति/वन्दना से हमारे सर्व दोषो का क्षय हो।

ज्योतिषा-मथ लोकस्य भूतयेऽद्भुत-सम्पदः।
गृहाः स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

अन्वयार्थ—(अथ) अब (ज्योतिषां लोकस्य विमानेषु) ज्योतिर्लोक के विमानों में (स्वयंभुवः) अर्हन्त भगवान् की (अद्भुत-सम्पदः) आश्चर्यकारी सम्पदा से सहित जो (गृहाः) चैत्यालय (सन्ति) हैं (भूतये) अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग विभूति की प्राप्ति के लिये (तान्) उनको (नमामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—ज्योतिषी देवों के विमानों में स्थित चैत्यालयों को जो अर्हन्त देव की लोक आश्चर्यकारक सम्पदा सहित शोभायमान हैं, मैं अपनी शाश्वत आत्मनिधि की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

वन्दे सुर-किरीटाग्र-मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि-लब्धये।।२१।।

अन्वयार्थ—(याः) जो प्रतिमाएँ (सुर किरीटाग्रमणिच्छाया-अभिषेचनम्) वैमानिक देवों के मुकुटों के अग्रभाग में लगी मणियों की कान्ति द्वारा होने वाले अभिषेक को (क्रमेण एव) चरणों से ही (सेवन्ते) प्राप्त करती है (तत् अर्च्चाः) पूज्यनीय उन प्रतिमाओं को मैं (सिद्धि-लब्धये) मुक्ति की प्राप्ति के लिये (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—वैमानिक देव अपने विमानों स्थित प्रतिमाओं के चरणों में मस्तक झुकाकर जिस समय नमस्कार करते हैं तब उनके मुकुटों के अग्र-भाग में लगी मणियों की कान्ति जिन प्रतिमाओं के चरणों में ऐसी गिरती है मानों देव मुकुटों के अग्रभाग में लगी मणियों से जिनेन्द्रदेव के चरणों का अभिषेक ही कर रहे हैं। ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाओं को मैं मुक्ति प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

स्तुति के फल की प्रार्थना

इति स्तुति पथातीत-श्रीभृता-मर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव-निरोधिनी।।२२।।

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (स्तुति-पथ-अतीत) स्तुति मार्ग से अतीत (श्रीभृतां) शोभा अथवा अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले (अर्हतां) अरहन्त भगवान की (चैत्यानां) प्रतिमाओं की (संकीर्तिः) सम्यक् स्तुति (मम) मेरे (सर्व-आस्रव-निरोधिनी) समस्त आस्रवों को रोकने वाली (अस्तु) हो।

भावार्थ—जिन अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरङ्ग व समवशरणादि रूप बहिरङ्ग लक्ष्मी को धारण करने वाले अरहन्त भगवान की स्तुति साक्षात् इन्द्र भी करने में समर्थ नहीं है, उन अरहंत भगवान की प्रतिमाओं की मैंने जो स्तुति की है, गुणानुवादन किया है वह मेरे समस्त कर्मों के आस्रवों को रोकने में समर्थ हो। अर्थात् आस्रव निरोध से संवर पूर्वक निर्जरा हो, अन्त में मुक्ति की प्राप्ति हो।

५. अर्हन्-महानद-स्तवन

अर्हन्-महा-नदस्य-त्रिभुवन-भव्यजन-तीर्थ-यात्रिक-दुरित-
प्रक्षालनैक-कारणमति-लौकिक-कुहक-तीर्थ-मुत्तम-तीर्थम्।।२३।।

अन्वयार्थ—(अर्हत् महानदस्य) अर्हन्त रूप महानद का (उत्तमतीर्थं) उत्कृष्ट तीर्थ–घाट (त्रिभुवन-भव्य-जन-तीर्थ-यात्रिकदुरित-प्रक्षालन-एककारणम्) तीन लोक के भव्यजीव रूप तीर्थयात्रियों के पापों का प्रक्षालन करने, पापों का क्षय करने के लिये एक मुख्य कारण है। (अति-लौकिक कुहक तीर्थम्) जो लौकिक जनों के दम्भपूर्ण तीर्थों का अतिक्रान्त करने वाला है।

भावार्थ—नदी का प्रवाह पूर्व दिशा की ओर होता है किन्तु जिनका प्रवाह पश्चिम दिशा की ओर हो उनको नद कहते हैं। संसाररूपी नदी का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है भगवान अरहंत का उससे सर्वथा विपरीत है। संसारी जीवों का प्रवाह संसार की ओर जा रहा है और अरहन्त भगवान का प्रवाह मोक्ष की ओर जा रहा है अतः यहाँ आचार्य-

देव ने अरहन्तदेव को नद की उपमा दी है। अरहन्तरूपी नद विशाल होने से इसे महानद कहा है।

जिस प्रकार महानद में तीर्थ होते हैं उसी प्रकार इस महानद में भी ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्व रूपी उत्तम तीर्थ हैं, जिनमें डुबकी लगाने वाला भव्य जीव संसार-सागर से पार हो जाता है। अथवा जिससे संसार-समुद्र तिरा जाय उसे तीर्थ कहते हैं। इस द्वादशांग का आश्रय लेने वाले संसारी जीव संसार से तिर जाते हैं अत: अर्हंत् भगवान का मत उत्तम तीर्थ है।

लौकिक नदों के तीर्थ में स्नान से शरीर-मल दूर होता है किन्तु अरहन्तदेवरूपी महानद के उत्तम तीर्थ में स्नान करने से पाप पंक का प्रक्षालन होता है। भव्य जीव इस नद के उत्तम तीर्थ में समस्त पापों का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं। यह एक असाधारण तीर्थ है, सर्वश्रेष्ठ है। तीनों लोकों की यात्रा करने वाले भव्यजीवों के पापों का नाश करने में अद्वितीय कारण है। यह अलौकिक महानद का महातीर्थ मेरे समस्त पापों का नाश करने वाला हो।

लोकालोक - सुतत्त्व - प्रत्यव - बोधन - समर्थ - दिव्यज्ञान-
प्रत्यह-वहत्प्रवाहं व्रत-शीलामल-विशाल-कूल-द्वितयम् ।।२४।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-सुतत्त्व-प्रति-अवबोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-प्रत्यह-वहत्-प्रवाहं) लोक और अलोक के समीचीन तत्त्वों का ज्ञान कराने में समर्थ दिव्यज्ञान का प्रवाह जिसमे निरन्तर बह रहा है (व्रत-शील-अमल-विशाल-कूल-द्वितयं) व्रत और शील जिसके दो निर्मल विशाल तट हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार तीर्थ से पानी का प्रवाह बहता रहता है उसी प्रकार अरहन्तदेवरूप महानद से लोक और अलोक का जो स्वरूप है, जीवादिक पदार्थों का जो यथार्थ स्वरूप है उसको पूर्ण रूप से जानने में समर्थ ऐसे केवलज्ञानरूप दिव्य ज्ञान का प्रवाह प्रतिदिन बहता रहता है। उस महानद के ५ महाव्रत और १८ हजार प्रकार का शील ये दो तट हैं।

शुक्लध्यान-स्तिमित स्थित-राज-द्राजहंस-राजित-मसकृत् ।
स्वाध्याय-मन्द्रघोषं नाना-गुण-समिति-गुप्ति-सिकता-सुभगम् ।।२५।।

अन्वयार्थ—(शुक्ल-ध्यानस्तिमित-स्थित-राजत्-राजहंस-राजितम्) जो जिनदेव/अरहन्तदेवरूपी महानद शुक्लध्यान में निश्चल होकर स्थित रहने वाले शोभायमान श्रेष्ठ मुनिराजरूपी राजहंस पक्षियों से सुशोभित है (असकृत् स्वाध्याय-मन्द्रघोषं) जिसमें बार-बार होने वाले स्वाध्याय का गंभीर शब्द गुंजन कर रहा है। (नानागुण-समिति-गुप्ति-सिकता-सुभगम्) जो अनेक गुणों के समूह रूप समिति और गुप्ति रूप बालू से सुन्दर है।

भावार्थ—जैसे महानद के किनारे राजहंस पक्षियों से सुन्दर दिखाई देते हैं, वैसे ही अरहन्तदेवरूपी महानद के किनारे शुक्लध्यान में निश्चल रहने वाले श्रेष्ठ दिगम्बर सन्तों रूपी राजहंसों से शोभायमान हैं तथा जैसे महानद के किनारे पर पक्षियों का कलरव/गुंजन होता है वैसे ही अरहन्त रूपी महानद में बार-बार होने वाले जिनेन्द्र कथित गंभीर आगम के मधुर शब्दों के स्वाध्याय का घोष/गुंजन होता रहता है। महानद के किनारे बालू से मनोहर दिखते हैं, इसी प्रकार अरहंतदेवरूपी महानद भी ८४ लाख उत्तरगुण, पाँच समिति, तीन गुप्ति रूपी बालू से अपूर्व शोभा को धारण करता हुआ भव्यों का मनोहारी बना हुआ है। ऐसा यह अरहंत देव रूपी महानद मेरे समस्त पापों का प्रक्षालन करने वाला हो।

क्षान्त्यावर्त-सहस्रं सर्व-दया-विकच-कुसुम-विलसल्लतिकम्।
दुःसह-परीषहाख्य-द्रुततर-रंग-त्तरंग-भङ्गुर-निकरम्।। २६।।

अन्वयार्थ—(क्षान्ति-आवर्त-सहस्रं) उत्तम क्षमारूपी हजारों भँवरें जहाँ उठ रही हैं (सर्वदया-विकच-कुसुम-विल-सल्लतिकम्) जहाँ अच्छी-अच्छी लताएँ सब जीवों पर दयारूपी खिले हुए पुष्पों से विशेष सुशोभित है (दुःसह-परीषहाख्य-द्रुततरङ्गतरंगभङ्गुर-निकरम्) जहाँ अत्यन्त कठिन परीषह नामक अतिशीघ्र चलती हुई तरङ्गों का क्षणभंगुर/विनश्वर समूह है।

भावार्थ—जैसे महानद में भँवर उठा करती हैं, उसी प्रकार अरहंत देवरूपी महानद में उत्तम क्षमारूपी भँवर सदा उठते रहते हैं। महानद में लताओं पर फूल खिलते सुन्दर लगते हैं वैसे ही अरहंतदेवरूपी महानद में सुन्दर लताएँ सर्व जीवों पर दयारूपी खिले हुए पुष्पों से शोभायमान हो रही हैं। जैसे महानद में विनाशी लहरें/तरंगें उठती रहती हैं वैसे ही अरहंतदेवरूपी जिस महानद में अत्यन्त कठोर परीषह अतिशीघ्र चलने

वाली तरङ्गों का विनाशीक समूह है। ऐसा अरहंत महानद पापरूपी कर्दम से हमारी रक्षा करें।

व्यपगत-कषाय-फेनं राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितम् ।
अत्यस्त-मोह-कर्दम-मतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम् ।।२७।।

अन्वयार्थ—(व्यपगत-कषाय-फेनं) जहाँ कषायरूपी फेन/झाग बिल्कुल क्षपित हो गया है। (राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितं) जो राग-द्वेष आदि दोषरूपी काई से रहित है (अति-अस्त-मोह-कर्दमं) जिसमें मोहरूपी कीचड़ अत्यन्त रूप से नष्ट हो चुकी है और (अतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम्) जिससे मरणरूपी मगर-मच्छरों का समूह अत्यन्त दूर हटा दिया गया है।

भावार्थ—प्रकृति का नियम है फेन पानी को मलिन कर देता है। जैसे महानद के तीर्थ में फेन नहीं होते वैसे ही अरहंतदेवरूपी महानद में आत्मा का कलुषित करने वाले कषायरूपी फेन नहीं होते हैं।

जिस प्रकार महानद के तीर्थ में शैवाल याने काई नहीं होती, क्योंकि शैवाल चिकना होता है यहाँ मनुष्य पैर फिसलने से गिर पड़ता है। उसी प्रकार अरहंतदेवरूपी महानद में राग-द्वेषरूपी शैवाल नहीं होते। रागद्वेष-रूपी काई/दोष भी व्रतियों को अपने पद से/व्रत से गिरा देते हैं। अरहन्त रूपी महानद में राग-द्वेष की शैवाल कभी नहीं होती अतः वे अत्यन्त निर्मल, शुद्ध परम वीतरागी है।

जिस प्रकार महानद में कीचड़ नहीं होती अतः पानी स्वच्छ व निर्मल बना रहता है उसी प्रकार अरहन्तदेवरूपी महानद मोहरूपी कीचड़ से सर्वथा रहित है। मोह के अभाव में शुद्ध आत्मा १८ दोषों रूपी कर्दम से रहित सर्वज्ञ हो, समस्त पदार्थों को युगपत् जानने वाला केवलज्ञानी बनता है।

जिस प्रकार महानद मगरमच्छों से रहित होता है क्योंकि यदि मगरमच्छ हों तो स्नान करने वालों को पीड़ा उत्पन्न होगी उसी प्रकार भगवान अरहंत देवरूपी महानद में मरणरूपी मगरमच्छों का समूह नहीं होता, अरहंत देवरूपी महानद साक्षात् मुक्ति का कारण है। इस प्रकार अत्यन्त निर्मल अरहंतदेवरूपी महानद मेरे पापों को दूर करें।

ऋषि-वृषभ-स्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम् ।
विविध-तपोनिधि-पुलिनं सास्रव-संवरण-निर्जरा-निःस्रवणम् ।।२८।।

अन्वयार्थ—(ऋषि-वृषभ-स्तुति-मन्द-उद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम्) ऋषियो मे श्रेष्ठ गणधरो की स्तुतियो का गंभीर तथा सबल शब्द ही जिसमे नाना प्रकार के पक्षियो का शब्द है। (विविध-तपोनिधि-पुलिनं) अनेक प्रकार मुनिराज ही जिसमे पुलिन अर्थात् संसार-सागर से पार करने वाला पुल है और जो (सास्रव-संवरण-निर्जरा-निःस्रवणम्) आस्रव का संवरण अर्थात् संवर व निर्जरारूपी निःस्रवण/ निर्झरणो अर्थात् जल के निकलने के स्थानो से सहित है।

भावार्थ—जैसे महानद मे पक्षियो का शब्द गूँजता रहता है वैसे ही गणधरादि देव जो भगवान की स्तुति करते हुए गंभीर, मनोज्ञ, मनोहर, मधुर शब्दो का उच्चारण करते है, वह मधुर पाठ ही अरहन्तदेवरूपी महानद के पक्षियो का गान है।

जैसे महानद मे ऊँचे किनारे होते है, जिससे तिरने वाले जीव किनारे पर पहुँच जाते है वैसे ही अरहन्तारूपी महानद के किनारे अनेक प्रकारेण तप करने वाले महा मुनिराज है। ये मुनिराज संसार-सागर मे पड़े जीवो को भेद-विज्ञान की नाव मे बैठा, किनारे लगाने वाले है।

जिस प्रकार नद मे पानी अधिक होने पर रोक दिया जाता है और भरा हुआ पानी निकाल दिया जाता है, यह सारी सुविधा वहाँ होती है। उसी प्रकार अर्हन्तदेवरूपी महानद मे आस्रव का द्वार तो बन्द हो चुका है, मात्र संवर व निर्जरा से ही यह महानद सदा सुशोभित है। ऐसा यह महानद मेरी आत्मा के आस्रव के द्वार का निरोध कर संवर निर्जरा का मार्ग प्रशस्त करे।

गणधर-चक्र-धरेन्द्र-प्रभृति-महा-भव्य-पुण्डरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलि-कलुष-मलापकर्षणार्थ-ममेयम् ।।२९।।

अन्वयार्थ—(गणधर-चक्र-धरेन्द्र-प्रभृति-महा-भव्य-पुण्डरीकैः) गणधरदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र आदि निकट भव्य पुरुषो मे श्रेष्ठ (बहुभिः पुरुषैः) अनेको पुरुषो ने (कलि-कलुष मल-अपकर्षणार्थं) पञ्चमकाल के

पापरूप मैल को दूर करने के लिये जिसमें (भक्त्या स्नातं) भक्तिपूर्वक स्नान किया है तथा जो (अमेयं) अति विशाल है।

भावार्थ—जो अरहंतरूपी महानद अत्यन्त विशाल है, जिसमें इस कलिकाल के पापमल को दूर करने के लिए गणधर, चक्रवर्ती, इन्द्र आदि अनेक निकट भव्य श्रेष्ठ पुरुष भक्ति से स्नान किया करते हैं और अपनी आत्मा को निर्मल बनाते हैं। ऐसा यह अरहंतदेवरूपी महानद मेरे भी कर्ममल को/पापरूपी मैल को दूर करने वाला हो/मेरे भी पाप मैल को दूर करे।

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि, दुस्तर-समस्त-दुरितं दूरम्।
व्यपहरतु परम-पावन-मनन्य, जय्य-स्वभाव-भाव-गम्भीरम्।।३०।।

अन्वयार्थ—जो (परम-पावनम्) अत्यन्त पवित्र है तथा (अनन्यजय्य-स्वभाव-भाव-गम्भीरं) अन्य परवादियों से अजेय स्वभाव वाले पदार्थों से गंभीर है ऐसे अरहन्तदेवरूपी महानद के उत्तम तीर्थ में (स्नातुं) स्नान करने के लिये (अवतीर्णवतः) उतरे हुए (मम अपि) मेरे भी (दुस्तर-समस्त-दुरितं) बड़े भारी समस्त पाप (दूरं व्यपहरतु) दूर से ही नष्ट करो।

भावार्थ—अरहन्तदेवरूपी महानद सर्व तीर्थों मे श्रेष्ठ है, किसी भी परवादी के द्वारा वह खंडन नही किया जा सकता। जीवादिक ९ पदार्थों से अत्यन्त गंभीर है अर्थात ९ पदार्थों का जैसा यथार्थ स्वरूप, उनके अनन्त गुणों का चित्रण जैसा अरहंतदेव के शासन में है वैसा किसी भी अन्य मत में नहीं पाया जाता है। ऐसे महानद में मैं भी कर्ममल को धोने के लिये उतर पड़ा हूँ। हे प्रभो ! मेरे अनन्त भवों के अति दुस्तर समस्त पाप दूर कीजिये। मेरे सब पापों/कर्मों का क्षय कर दीजिये।

यहाँ श्लोक नं० २३ से ३० तक ८ श्लोकों में आचार्य देव ने रूपक अलंकार के चित्रण से अर्हन्तदेवरूपी महानद का सुन्दर चित्रण-चित्रित किया है। लोक में मान्यता है कि गंगा आदि महानदियों के तीर्थ-घाट पर स्नान करने वाले लोगों के पाप क्षय कर देते है, इसी विशेषता को लेकर यहाँ उपर्युक्त श्लोकों में अरहन्तदेवरूपी महानद उसके किनारे, पक्षीगण मधुर शब्द गुंजन आदि का मनोरम दृश्य उपस्थित करते हुए, उत्तम

महानद के उत्तम तीर्थ मे अवगाहन करने वाले, डुबकी लगाने वाले अपने पापो को क्षय करने की प्रार्थना आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने की है।

जिनरूप स्तवन

पृथ्वी-छन्द

अताम्र-नयनोत्पलं सकल-कोप-वह्ने-र्जयात्,
कटाक्ष - शर - मोक्ष - हीन -मविकारतोद्रेकत: ।
विषाद-मद-हानित: प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते हृदय-शुद्धि-मात्यन्तिकीम् ।।३१।।

अन्वयार्थ—हे प्रभो (सकल-कोप-वह्ने:-जयात्) सम्पूर्ण क्रोधरूपी अग्नि को जीत लेने से (अताम्र-नयन-उत्पलं) जिनके नेत्र रूप कमल लाल नही है (अविकारत.-उद्रेकत:) विकारी भावो का उद्रेक नही होने से (कटाक्ष-शर-मोक्षविहीनं) जो कटाक्ष रूप बाणो के छोड़ने से रहित है तथा (विषाद-मद-हानित:) खेद व अहंकार का अभाव होने से जो (सदा-प्रहसितायमानं मुखं) सदा हँसता हुआ-सा ज्ञात होता है ऐसा आपका मुख (ते) आपकी (आत्यन्तिकी हृदय शुद्धिम्) अत्यंत/सर्वोकृष्ट/ अविनाशी हृदय की शुद्धि को ही (कथयति इव) मानो कह रहा है।

भावार्थ—हे प्रभो ! संसारी जीवो के नेत्रो मे लालिमा क्रोध के कारण आती है, उस क्रोध का आपके पूर्ण अभाव होने से आपके नयन-कमल लाल नजर नही आते है। संसारी जीव विकारी भावो से पीडित हो कटाक्ष रूप बाण छोड़ते हैं, आपके विकार का पूर्ण अभाव है अत: आप कभी भी कटाक्ष रूप बाणो को नही छोड़ते है तथा संसारी जीवो के मुख पर मलिनता, खेद या मद से ही होती है परन्तु आपके हर्ष-विषाद या खेद-मद आदि १८ दोषो का ही अभाव हो चुका है अत: आपका सदा हँसता हुआ प्रसन्न मुख ही मानो आपकी अन्तरंग अत्यन्त/अविनाशी शुद्धि का कथन करता है। अर्थात् हे प्रभो ! आप क्रोध-मान-विकारी भाव आदि विभाव परिणतियो से रहित अन्तरंग मे व बाह्य मे आत्यन्तिक शुद्धता को प्राप्त कर चुके है। ऐसी विशुद्धता की सूचना आपकी मुखाकृति कर रही है।

निराभरण-भासुरं विगत-राग-वेगोदयात्,
निरम्बर-मनोहरं प्रकृति-रूप-निर्दोषतः ।
निरायुध-सुनिर्भयं विगत-हिंस्य-हिंसा-क्रमात्,
निरामिष-सुतृप्ति-मद्-विविध-वेदनानां क्षयात् ।।३२।।

अन्वयार्थ—(विगत-राग-वेग-उदयात्) राग के उदय का वेग समाप्त हो जाने से जो (निराभरण-भासुरं) आभूषण रहित होकर भी देदीप्यमान है (प्रकृतिरूपनिर्दोषतः) प्रकृति रूप स्वाभाविक/यथाजात नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण करने से (निरम्बर-मनोहरं) वस्त्र के बिना ही मनोहर है (विगत-हिंस्य-हिंसा क्रमात्) हिंस्य और हिंसा का क्रम दूर हो जाने से जो (निरायुध-सुनिर्भयं) अस्त्र-शस्त्र रहित निर्भय है और (विविध-वेदनानां-क्षयात्) विविध प्रकार की वेदनाओं–क्षुधा, तृषा आदि के क्षय हो जाने से जो (निरामिष-सुतृप्तिमद्)आहार रहित होकर भी उत्तम तृप्ति को प्राप्त हैं।

भावार्थ—हे प्रभो ! संसारी राग के वश हो अनेक प्रकार आभूषणों से शरीर को सजाता है उस रागभाव का पूर्ण अभाव हो जाने से आपको कभी आभूषणों को धारण करने की भी इच्छा नहीं रहती है; तथापि आपका शरीर आभूषणों के बिना भी अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है।

हे प्रभो ! संसारी जीवों का शरीर स्वभाव से सुन्दर नहीं होता है अतः वे विविध प्रकार के वस्त्रों से ढककर इसे सुन्दर बनाने की चेष्टा करते हैं तथा मन की वासना को ढकने के लिये, विकारों को शमन करने के लिये वस्त्र पहनते हैं, परन्तु आपका शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है और राग-द्वेष-विषय-वासनाओं की कालिमा आपमें लेशमात्र भी नहीं है अतः आपको वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं है।

इसी प्रकार हे प्रभो ! आपने हिंस्य और हिंसा [मारने योग्य और मारना] भाव की परिपाटी को ही समाप्त कर दिया है, अतः आप दयालु न किसी की हिंसा करते हैं और न कोई आपकी हिंसा करता है। इसी कारण आप अस्त्र-शस्त्र से रहित होकर भी निर्भय हैं।

हे नाथ ! भूख, प्यास आदि वेदनाओं का आपने पूर्ण क्षय कर दिया

है अतः आप आहार नहीं करते हुए भी सदा तृप्त रहते हैं। जिसे भूख आदि की वेदना सताती है वही भोजन-पान करता है। परन्तु, हे अरहन्त प्रभो ! आप कवलाहार न करते हुए भी अन्य किसी में नहीं पाई जाने वाली ऐसी अनन्त तृप्ति को धारण करते हैं। हे देव ! आपका यह महास्वरूप मुझे भी पवित्र करे।

मितस्थित-नखांगजं गत-रजोमल-स्पर्शनम्,
नवाम्बुरुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्धोदयम् ।
रवीन्दु-कुलिशादि-दिव्य-बहु लक्षणालङ्कृतम्,
दिवाकर-सहस्र-भासुर-मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।

अन्वयार्थ—(मित-स्थित-नखाङ्गजं) जिनके शरीर के नख और केश प्रमाण में स्थित हैं अर्थात् अब केवलज्ञान होने के बाद वृद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं (गत-रजो-मल-स्पर्शनं) जो रज और मल के स्पर्श से रहित है (नव-अम्बुरुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्ध-उदयम्) जिनके नवीन कमल और चन्दन की गन्ध के समान दिव्य गन्ध का उदय है। (रवि-इन्दु-कुलिश-आदि-दिव्य-बहुलक्षण-अलंकृतं) जो सूर्य, चन्द्रमा तथा वज्र आदि दिव्य लक्षणों से सुशोभत है और (दिवाकर-सहस्र-भासुरम्-अपि ईक्षणानां प्रियम्) जो सहस्रों/हजारों सूर्यों के समान देदीप्यमान होने पर भी नेत्रों के लिये प्रिय है।

भावार्थ—हे भगवान ! केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् आपका शरीर समस्त धातु-उपधातुओं से रहित परमौदारिक अवस्था को प्राप्त हो जाता है। परमौदारिक शरीर में आपके नख और केश पूर्ववत् ही रहते हैं अर्थात् बढ़ते नहीं हैं। आपके दिव्य शरीर से नवीन विकसित कमल व चन्दन की दिव्य सुगन्ध सदा निकलती रहती है। आपका दिव्य परमशरीर इन्दु/चन्द्र, सूर्य, वज्र, वस्त्र आदि १००८ शुभ लक्षणों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों की दीप्ति को एक समय में ही प्राप्त होकर भी भव्यजनों के नेत्रों को अति प्रिय हैं। जहाँ संसारी जीव एक सूर्य के तेज को भी देखने में असह्य है, अप्रियता का अनुभव करता है वहाँ उसे आपकी हजारों सूर्यों की कान्ति भी निर्निमेष दृष्टि से देखने को बाध्य करती है। ऐसे महादिव्यरूप के धारक हे विभो ! मुझे पवित्र कीजिये।

हितार्थ-परिपन्थिभिः प्रबल-राग-मोहादिभिः,
कलंकितमना जनो यदभवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुख-मेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः,
शरद्-विमल-चन्द्र-मण्डल-मिवोत्थितं दृश्यते ।।३४।।

अन्वयार्थ—(हितार्थ-परि-पन्थिभिः) प्राणियों का सर्वोत्कृष्ट हित मोक्ष है, उसका विरोधी (प्रबल-राग-मोहादिभिः) प्रबल शत्रु राग-द्वेष मोह आदि से (कलङ्कितमना जनः) कलुषित हृदय वाले मानव भी (यत्) जिनको (अभिवीक्ष्य) देखकर (शोशुद्ध्यते) अत्यन्त निर्मलता को प्राप्त होते हैं (जगति) संसार में (सर्वतः पश्यताम्) चारों ओर से देखने वालो को, (यत् सदाभिमुखमेव) जो सदा सामने ही (उत्थितं) उदय को प्राप्त (शरद्-विमल-चन्द्र-मण्डलम्-इव) शरद ऋतु के चन्द्रमण्डल के समान (दृश्यते) दिखाई देता है।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! प्राणियों का उत्तम हित मोक्ष की प्राप्ति है। उस मुक्ति की प्राप्ति के प्रबल विरोधी शत्रु राग-द्वेष-मोह आदि हैं। राग-द्वेष-मोह से कलुषित हृदय वाले जीव भी आपके मुख की अपूर्व वीतरागता को देखकर अत्यन्त शुद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। हे प्रभो ! समवशरण मे आपका वह प्रशान्त रूप चारों दिशाओं में दिखाई पड़ता है। अतः वह रूप संसार के जो भव्यजीव आपके दर्शन के इच्छुक है उन्हे अपने सामने ही दिखाई पड़ता है। तथा आपका दिव्य शरीर शरद् ऋतु में मेघ-पटल से रहित निर्मल आकाश मे उदय को प्राप्त निर्मल चन्द्रमंडल की तरह अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। ऐसा दिव्य अनुपम जिनेन्द्रमुख मुझे सदा पवित्र करे।

तदेत - दमरेश्वर - प्रचल - मौलि - माला - मणि,
स्फुरत् - किरण - चुम्बनीय - चरणारविन्द - द्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूप-मन्धीकृतम्,
जगत् - सकल - मन्यतीर्थ - गुरु - रूप - दोषोदयैः ।।३५।।

अन्वयार्थ—(भगवत्-जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र देव ! (अमर-ईश्वर-प्रचल मौलिमाला मणि-स्फुरत्-किरण-चुम्बनीय-चरणारविन्द-द्वयम्) देवों के स्वामी इन्द्रों के चलायमान/नम्रीभूत मुकुटों की मालाओ में लगी मणियो

की स्फुरायमान/चमकती हुई किरणो से जिनके दोनो चरण-कमल चुम्बित हो रहे है / स्पर्शित किये गये है (एतत्-तद तव रूपम्) ऐसा यह आपका रूप (अन्यतीर्थ-गुरुरूप-दोष-उदयैः) मिथ्या/अन्यतीर्थ-कुगुरु-कुदेव आदि उपदेशो के दोषो के उदय से (अन्धीकृतं) अन्ध किये गये (सकलम् जगत्) पूर्ण संसार को (पुनातु) पवित्र करे ।

भावार्थ—हे भगवन् ! हे जिनेन्द्रदेव १०० इन्द्रो से वन्दनीय आपके पावन चरण-कमलो का दर्शन प्राप्त कर संसार के समस्त प्राणी मिथ्यात्व का वमन कर सम्यक्त्व को प्राप्त करे । पञ्चमकाल मे साक्षात् अरहंत-देव का दर्शन दुर्लभ है, ऐसे समय मे एकमात्र स्थापना निक्षेप ही हमारे परिणामो की निर्मलता का सम्बल है अत· यहाँ आचार्यदेव साक्षात् अरहन्त के अभाव मे स्थापना निक्षेप से युक्त वीतराग प्रतिमाओ को ही साक्षात् जिनेन्द्र मानकर सुन्दर स्तवन किया है ।

क्षेपक श्लोकाः

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल, सत्खातिका पुष्पवाटी ,
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं, वेदिकांत र्ध्वजाद्याः ।
शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं, स्तूपहर्म्यावली च ,
प्राकारः स्फाटिकोन्तनृसुरमुनिसभा, पीठिकाग्रे स्वयंभूः ।।१।।

अन्वयार्थ—तीर्थकर प्रभु की समवशरण सभा मे (मानस्तम्भाः) मानस्तम्भ (सरांसि) सरोवर (प्रविमल जल सत्खातिका) निर्मल स्वच्छन्द जल से भरी हुई खातिका भूमि (पुष्पवाटी) उद्यानभूमि (प्राकारो-नाट्यशाला) कोट, नाटकशाला (द्वितीयमुपवनं) दूसरा उपवन (वेदिका-अन्तर्ध्वजाद्याः) वेदिका के मध्य ध्वजा व पताकाएँ (शालः) कोट (कल्पद्रुमाणां) कल्पवृक्ष (सुपरिवृत्तवनं) चारो ओर से वनो से घिरा हुआ ऐसा कोट (स्तूप-हर्म्यावली च) स्तूप और प्रासादो की पंक्ति (प्राकारः स्फाटिकः अन्त-नृसुर-मुनिसभा) स्फटिक की दीवालो के मध्य मनुष्य-देव व मुनियो की इस प्रकार बारह सभाएँ तथा (पीठिका-अग्रे-स्वयंभू) सिंहासन पर अधर स्वयंभू-साक्षात् तीर्थकर भगवान् विराजमान है ।

भावार्थ—तीर्थकर भगवान केवलज्ञानोत्पत्ति के बाद १३वे गुणस्थान मे अन्तरङ्ग मे अनन्त-चतुष्टय व बहिरंग मे समवशरण लक्ष्मी से शोभायमान

होते हैं। यहाँ इस श्लोक में समवशरण की शोभा का सुन्दर चित्रण किया गया है—समवशरण सभा में सबसे पहले मान गलित करने वाला मानस्तंभ है, उसके बाद तालाब, खातिका, प्रथम भूमि कोट, उद्यान भूमि द्वितीय कोट, नाट्यशाला, उपवन, वेदिका, ध्वजाभूमि, कोट, कल्पवृक्ष भूमि, कोट, स्तूप और प्रासादों की पंक्तियाँ इस प्रकार स्तूप-कोट व सातभूमियाँ है। पश्चात् स्फटिक की दीवालों से सुशोभित बारह सभाएँ हैं उनमे—मुनि, कल्पवासी देवियाँ, आर्यिकाएँ, भवनवासी देवियाँ, व्यन्तरवासी देवियाँ, ज्योतिषी देवियाँ, ज्योतिषी देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य व तिर्यञ्च विराजमान हो शोभा को प्राप्त होते हैं। उसके भी आगे मेखला है जिसमें भी तीन कटनियाँ हैं। तीसरी कटनी पर सिंहासन है। उस सिंहासन पर चार अंगुल ऊपर साक्षात् केवलज्ञानी तीर्थंकर प्रकृति से विशिष्ट साक्षात् अरहन्त जिनेन्द्र विराजमान रहते हैं।

लघु चैत्य भक्तिः

इन्द्रवज्रा

वर्षेषु वर्षान्तर पर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके, सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(लोके) तीनों लोक-ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक में (जिनपुङ्गवानां) जिनेन्द्र भगवन्तों के (वर्षेषु) भरत-ऐरावत आदि क्षेत्रों में (वर्षान्तर-पर्वतेषु) भरत आदि क्षेत्रों के मध्य स्थित कुलाचल/पर्वतों पर (नन्दीश्वरे) नन्दीश्वरद्वीप में और (मन्दरेषु) पाँच मेरु पर्वतों पर (यावन्ति) जितने (च) और (यानि) जो (चैत्य-आयतनानि) चैत्यालय हैं (तानि सर्वाणि) उन सब को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—तीनों लोकों में—ऊर्ध्वलोक में सौधर्म स्वर्ग में ३२ लाख, ईशान स्वर्ग में २८ लाख, सनतकुमार स्वर्ग में १२ लाख, महेन्द्र स्वर्ग में ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में ४ लाख, लान्तव, कापिष्ठ स्वर्ग में ५० हजार शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग में ४० हजार, शतार-सहस्रार स्वर्ग में ६ हजार, आनत-प्राणत-आरण-अच्युत स्वर्गों में ७००, अधोग्रैवेयक में १११, मध्य ग्रैवेयक में १०७, ऊर्ध्व ग्रैवेयक में ९१, नव अनुदिश में ९

तथा पॉच अनुत्तर मे ५ इस प्रकार कुल ८४९७०२३ जिनालय है उनको मै नमस्कार करता हूँ।

मध्यलोक मे पॉच मेरु संबंधी ८० जिनालय है, तीस कुलाचलो पर ३० जिनालय है, वक्षारगिरि के ८०, गजदन्त के २०, चार इष्वाकार पर ४, मानुषोत्तर पर ४, एक सौ सत्तर विजयार्द्धों पर १७०, ५, जम्बूवृक्षों पर ५ और पॉच शाल्मलि वृक्षो पर ५ जिनमन्दिर स्थित है। इस प्रकार नरलोक मे कुल (८०+३०+८०+२०+४+४+१७०+५+५=) ३९८ जिन-मन्दिर है। तथा नरलोक के बाहर नन्दीश्वर द्वीप मे ५२, रुचकगिरि पर ४, कुण्डलगिरि पर ४=३९८+५२+४+४=४५८ चैत्यालयो की मै वन्दना करता हूँ।

अधोलोक मे भवनवासी के भवनो मे ७ करोड़ ७२ लाख चैत्यालय है उनमे असुरकुमार के ६४ लाख, नागकुमार के भवनो मे ८४ लाख, सुपर्णकुमार के ७२ लाख, द्वीप कुमार के भवनो के ७६ लाख, तथा दिक्-कुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार विद्युत्कुमार, अग्निकुमार इन पॉचो के भवनो मे ७६-७६ लाख तथा वायुकुमार के भवनो मे ९६ लाख चैत्यालय है। उन सबकी मै वन्दना करता हूँ।

अर्थात् तीन लोक स्थित सर्व चैत्यालयो को मै नमस्कार करता हूँ।

मालिनी

अवनितलगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणाम्,
वनभवनगतानां दिव्य वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृतानां देव राजार्चितानाम्,
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ।।३।।

अन्वयार्थ—(अवनितल-गताना) पृथ्वी तल पर स्थित (कृत्रिम-अकृत्रिमाणां) कृत्रिम और अकृत्रिम (वनभवनगतानां) व्यन्तर और भवनवासियो के स्थानो पर स्थित (दिव्य वैमानिकानां) स्वर्ग के निवासी वैमानिक देवो के विमानो मे स्थित तथा (इह) यहाँ इस लोक मे (मनुज कृतानां) मनुष्यो के द्वारा बनवाये गये (देवराज-अर्चितानां) इन्द्रो के द्वारा पूजित (जिनवर-निलयानां) जिनमन्दिरो का (अहं) मै (भावतः स्मरामि) भावपूर्वक स्मरण करता हूँ।

भावार्थ—लोक में पृथ्वी पर स्थित कृत्रिम, अकृत्रिम चैत्यालयों, अधोभाग में भवनवासी व व्यन्तरों के निवासों में स्थित चैत्यालयों, ऊर्ध्वभाग मे देव-विमानों में स्थित चैत्यालयो तथा यहाँ मनुष्य लोक में मनुष्यों द्वारा बनाये गये, इन्द्र-धरणेन्द्र आदि से पूजित जिनेन्द्र देव के पावन, वन्दनीय जिनालयों को मैं भावपूर्वक स्मरण करता हूँ।

शार्दूल-विक्रीडितम्

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवा -
श्चंद्राम्भोज शिखण्डि कण्ठ-कनक-प्रावृंघनाभाजिना: ।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धना: ।
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ।।४।।

अन्वयार्थ—(जम्बूधातकि-पुष्करार्द्ध-वसुधा-क्षेत्रत्रये ये भवा:) जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करार्द्ध द्वीप इन तीन क्षेत्रो में वसुधा तल पर जो उत्पन्न हुये हैं (चन्द्र-अम्भोज-शिखण्डि-कण्ठकनकप्रावृङ्घनाभा:) चन्द्रमा, कमल, मयूरकण्ठ, स्वर्ण और वर्षा ऋतु के मेघ के समान कान्ति वाले (सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा:) सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप लक्षण के धारक (दग्धार्ध-कर्म-ईन्धना:) चार घातिया कर्मरूपी ईधन को जलाने वाले (भूत अनागत-वर्तमान समये) भूत-भविष्य वर्तमान काल में होने वाले जो (जिना:) जिनेन्द्र हैं (तेभ्यो जिनेभ्यो नम:) उन सब जिनेन्द्रों के नमस्कार हो।

भावार्थ—इस वसुन्धरा पर जम्बूद्वीप, धातकीखंड और अर्ध पुष्कर-द्वीप इन ढाई द्वीपों में भरत ऐरावत विदेह तीन क्षेत्रों में चन्द्रसम, कमलसम, मयूरकण्ठसम, स्वर्णसम व वर्षाऋतु के मेघ सम कान्ति के धारक, रत्नत्रय मण्डित, चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाले जितने अरहंत केवली भूतकाल में हो चुके हैं, जितने भावी काल में होंगे व जितने वर्तमान में हो रहे हैं, उन सबको मेरा नमस्कार हो—

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मली जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषांके ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले, यानि चैत्यालयानि ।।५।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत् मेरौ) श्री-शोभा सम्पन्न मेरु पर्वतो पर (कुलाद्रौ) कुलाचलो पर (रजतगिरि वरे) विजयार्द्ध पर्वतो पर (शाल्मलौ) शाल्मलि वृक्षो पर (जम्बूवृक्षे) जम्बू वृक्ष पर (वक्षारे) वक्षारगिरियो पर (चैत्यवृक्षे) चैत्यवृक्षो पर (रतिकर रुचके) रतिकर और रुचकगिरि पर (कुण्डले मानुषाङ्के) कुण्डलगिरि और मानुषोत्तर पर (इष्वाकारे) इष्वाकार पर्वतो पर (अञ्जनाद्रौ) अञ्जनगिरियो पर (दधिमुखशिखरे) दधिमुख पर्वतो के शिखरो पर (व्यन्तरे) व्यन्तरो के आवासो पर (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक मे (ज्योतिर्लोके) ज्योतिष्क देवो के लोक मे तथा (भुवनमहितले) भवनवासियो के भवनो मे (यानि चैत्यालयानि) जितने चैत्यालय है (तानि अभिवन्दे) उन्हे मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—श्रीमंडप की शोभा से सम्पन्न मेरु के ८०, कुलाचलो के ३०, विजयार्द्ध के १७०, शाल्मलि वृक्षो के ५, जम्बूवृक्ष पर ५, वक्षार-गिरियो के ८०, रुचकगिरि के ४, कुण्डलगिरि के ४, मानुषोत्तर के ४, इष्वाकार के ४, रतिकर पर्वत, अञ्जनगिरियो व दधिमुख शिखरो पर ५२ चैत्यालयो, व्यन्तरो के असंख्यात जिनालयो, स्वर्गलोक के ८४९७०२३ जिनालयो, भवनवासियो के ७ करोड ७२ लाख जिनालयो तथा ज्योतिष्क देवो के आवासो मे शोभायुक्त जिनालयो को मै अच्छी तरह से मनसा-वचसा-कर्मणा नमस्कार करता हूँ।

देवासुरेन्द्र नर-नाग-समर्चितेभ्यः, पापप्रणाशकर भव्य मनोहरेभ्यः ।
घंटाध्वजादि परिवार विभूषितेभ्यो, नित्यं नमो जगति सर्व जिनालयेभ्यः ।।६।।

अन्वयार्थ—(देव-असुरेन्द्र-नर-नाग-समर्चितेभ्यः) देवेन्द्र, असुरेन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्र ने जिनकी सम्यक् प्रकार से पूजा की है जो (पापप्रणाशकर) पापो का नाश करने वाले है (भव्य मनोहरेभ्यः) भव्य जीवो के मन को आकर्षित करते है (घंटाध्वजा-आदि परिवार विभूषितेभ्यो) घंटा-ध्वजा-माला-धूपघट, अष्टमंगल, अष्टप्रातिहार्य आदि मंगल वस्तुओ के समूह से सुसज्जित है/अलंकृत है ऐसे (जगति) तीन लोक मे स्थित (सर्वजिनालयेभ्यः) सभी जिनमन्दिरो के लिये (नित्यं) प्रतिदिन/प्रत्येक काल याने सदा सर्वदा (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—देवों के इन्द्र, असुरों के इन्द्र, मनुष्यों के इन्द्र, धरणेन्द्र रूप १०० इन्द्रों से जिनकी अर्चा वन्दना सम्यक् प्रकार की गई है, जो पाप प्रणाशक है, भव्य मनहारी है, उत्तमोत्तम मंगलवस्तुओं से अलंकृत हैं ऐसे तीन लोक में स्थित सर्व जिनालयों के लिये मेरा नमस्कार हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चेइय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पूजंति वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं सया णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ-मज्झं।

अर्थ—(भंते !) हे भगवन्! मैंने (चेइयभत्ति काउस्सगो कओ) चैत्यभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया (तस्सालोचेउं) उस सम्बन्धी आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ। (अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि) अधोलोक, मध्यलोक व ऊर्ध्व लोक में (जाणि) जितने (किट्टिमाकिट्टिमाणि) कृत्रिम-अकृत्रिम (जिण चेइयाणि) जिन चैत्यालय हैं (ताणि सव्वाणि) उन सबकी (तीसु वि लोएसु) तीनों लोकों में रहने वाले (भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति) भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी इस प्रकार (चउविहा देवा सपरिवारा) चार प्रकार के देव अपने परिवार के साथ (दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण) दिव्य जल, दिव्य गंध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फलों से (णिच्चकालं) सदा काल (अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमस्संति) अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं (अहमवि) मैं भी (इह संतो) यहाँ ही रहकर (तत्थ संताइं) उन समस्त चैत्यालयों की (णिच्चकालं) सदाकाल (अंचेमि

पूजेमि वंदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं) मेरे दुखो का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो तथा (जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं) जिनेन्द्रदेव के गुणो की मुझे प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन्! मैने चैत्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक सम्बन्धी ७ करोड़ ७२ लाख, मध्य लोक सम्बन्धी ४५८ व ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी ८४ लाख ९७ ह.२३ जिनालय इस प्रकार तीनो लोको मे जितने भी कृत्रिम, अकृत्रिम जिनालय है उन सबकी तीनो लोको मे रहने वाले भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिषी व कल्पवासी इस प्रकार चारो प्रकार के देव दिव्य जल, दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फलादि अष्ट द्रव्यो से सदा, त्रिसन्ध्याओ मे अर्चा, पूजा वन्दना करते है, मै भी सभी कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालयो की साक्षात् अर्चा करने मे असमर्थ हुआ यहाँ रहकर ही उन सबकी सदा अर्चा, पूजा, वन्दना, नमन करता हूँ। इस अर्चा, पूजा के फलस्वरूप मेरे सब दु:खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के अनुपम गुणसम्पत्ति प्राप्त हो।

।। इति चैत्य भक्तिः ।।

श्री श्रुतभक्ति

आर्या

स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्ष-प्रत्यक्ष-भेद-भिन्नानि ।
लोकालोक-विलोकन-लोलित-सल्लोक-लोचनानि सदा ।।१।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-विलोकन-लोलित-सल्लोक-लोचनानि) लोक और अलोक को देखने में उत्सुक/लालायित सत्पुरुषों के नेत्रस्वरूप ऐसे (परोक्ष-प्रत्यक्ष-भेद-भिन्नानि) परोक्ष और प्रत्यक्ष के भेद से युक्त (संज्ञानानि) सम्यक् ज्ञानों की [मैं पूज्यपाद आचार्य] (सदा) हमेशा (स्तोष्ये) स्तुति करूँगा। अथवा

भावार्थ—सम्यक्ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद हैं। जैसे जीव को नेत्रों के द्वारा घट-पट आदि पदार्थों का ज्ञान होता है, वैसे ही भव्यजीवों को मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधि-ज्ञान, मन:पर्ययज्ञान केवलज्ञान इन पाँच समीचीन ज्ञानों से लोक व अलोक का पूर्ण ज्ञान होता है अत: आचार्य देव पूज्यपाद स्वामी यहाँ प्रतिज्ञा वाक्य में कहते हैं–ऐसे समीचीन ज्ञानों की मैं सदा स्तुति करता हूँ/उन्हीं का स्तवन करूँगा।

मतिज्ञान की स्तुति

अभिमुख-नियमित-बोधन-माभिनिबोधिक-मनिन्द्रियेन्द्रियजम् ।
बह्वाद्यवग्रहादिक - कृत - षट्त्रिंशत् - त्रिशत - भेदम् ।।२।।
विविधर्द्धि-बुद्धि-कोष्ठ-स्फुट-बीज - पदानुसारि - बुद्ध्यधिकम् ।
संभिन्न - श्रोतृ - तया, सार्धं श्रुतभाजनं वन्दे ।।३।।

अन्वयार्थ—जो (अभिमुख-नियमित-बोधनं) योग्य क्षेत्र में स्थित स्पर्श आदि नियमित पदार्थों को जानता है (अनिन्द्रिय-इन्द्रियजं) मन व इन्द्रियों से उत्पन्न होता है व (बहु-आदि-अवग्रह-आदिक कृत-षट्त्रिंशत त्रिशतभेदम्) बहु आदि १२ व अवग्रह आदि ४ की अपेक्षा से ३३६ भेदों से सहित हैं। (विविध-ऋद्धि-बुद्धि-कोष्ठ-स्फुट-बीज-पदानुसारि-बुद्धि-अधिकम्) जो अनेक प्रकार की ऋद्धि से सम्पन्न तथा कोष्ठबुद्धि, स्फुटबीजबुद्धि और पदानुसारिणी बुद्धि से अधिक परिपूर्ण है तथा (सभिन्न श्रोतृतया सार्धं) संभिन्न श्रोतृऋद्धि से सहित है (श्रुत-भाजनं) श्रुत ज्ञान की उत्पत्ति

का कारण होने से श्रुतज्ञान का भाजन/पात्र है; उस (आभिनिबोधिकं) आभिनिबोधिक/मतिज्ञान को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मतिज्ञान को आभिनिबोधिक ज्ञान भी कहते है। तत्त्वार्थ-सूत्र ग्रंथ मे उमास्वामि आचार्य ने लिख भी है—"मति. स्मृति. मंज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्" [त.सू अ १/सू.१३] मतिज्ञान की आभिनिबोधिक यह सार्थक संज्ञा है। अभि का अर्थ है—ज्ञान के योग्य देश-काल और ग्रहण करने योग्य सामग्री को "अभि" कहते है। "नि" शब्द का अर्थ है नियम। जैसे चक्षु आदि के द्वारा रूप आदि का ज्ञान। पञ्चेन्द्रियो से जो नियमित रीति से ज्ञान होता है वह "निबोध" कहलाता है। इस प्रकार योग्य क्षेत्र पर योगय काल मे निर्दोष इन्द्रियो से होने वाला पदार्थो का ज्ञान "आभिनिबोधिक" ज्ञान है।

मतिज्ञान सम्यग्ज्ञान का प्रथम भेद है। इसके ३३६ भेद है। बहु-बहुविध आदि १२ पदार्थ, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ये ४ ज्ञान = १२×४=४८। यह ज्ञान अर्थावग्रह-व्यञ्जनावग्रह की अपेक्षा दो प्रकार का है। उनमे अर्थावग्रह ५ इंद्रियो मन से उत्पन्न होता है अत: ४८×६=२८८ भेद हुए। व्यञ्जनावग्रह मे मात्र अवग्रह हो होता है तथा यह ४ इन्द्रियो से ही होता चक्षु इन्द्रिय व मन से नही होता है अत: १२×४=४८। २८८+४८=३३६ मतिज्ञान के भेद है।

मतिज्ञान अनेक ऋद्धियो से शोभायमान है। दिगम्बर साधुओ के तपश्चरण के फल स्वरूप विविध ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती है। यथा—

कोष्ठबुद्धि ऋद्धि—जिस प्रकार भंडारी एक ही कोठे मे अनेक प्रकार के धान्य आदि वस्तुएँ रखता है उसी प्रकार इस बुद्धि के धारक ऋषिगण अपनी बुद्धि मे अनेक प्रकार के ग्रन्थो को धारण कर रखते है। धारणा को कभी नष्ट नही होने देते है। कोष्ठ सम बुद्धि की प्राप्ति को 'कोष्ठबुद्धि' कहते है।

बीज बुद्धि ऋद्धि—खेत मे बोया एक बीज ही बहुत से धान्य को उत्पन्न कर देता है वैसे ही एक पद के ग्रहण से अनेक पदो का ज्ञान हो जाय उसे बीज बुद्धि ऋद्धि कहते है।

पदानुसारि बुद्धि ऋद्धि—जिस बुद्धि में ग्रन्थ का प्रथम या अन्तिम पद ग्रहण करने से ही पूर्ण ग्रन्थ का ज्ञान हो जावे उसे पदानुसारि बुद्धि ऋद्धि कहते हैं।

संभिन्नश्रोतृत्वऋद्धि—एक ही समय में होने वाले अनेक शब्दों को एक साथ अलग-अलग जिस बुद्धि विशेष से जाना जाता है उसे संभिन्नश्रोतृ-बुद्धि ऋद्धि कहते हैं। चक्रवर्ती के १२ योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े सैन्य में रहने वाले मानव, पशु, पक्षी आदि सभी की अक्षरात्मक अनक्षरात्मक भाषा को एक साथ अलग-अलग जान लेना इस ऋद्धि का कार्य है।

इन सबके साथ ही मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है। क्योंकि उमास्वामि आचार्य ने लिखा है—"श्रुतंमतिपूर्वं" मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार अनेक भेदों से शोभायमान, ऋद्धियों से युक्त ऐसे इस मतिज्ञान को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रुतज्ञान की स्तुति

श्रुतमपि-जिनवर-विहितं गणधर-रचितं द्व्यनेक-भेदस्थम्।
अंगांगबाह्य-भावित-मनन्त-विषयं नमस्यामि ।।४।।

अन्वयार्थ—जो (जिनवर विहितं) जिनेन्द्र देव के द्वारा अर्थरूप जाना गया है (गणधररचितं) गणधरों के द्वारा जिसकी रचना की गई है, (द्वि-अनेक-भेद-स्थम्) जो दो और अनेक भेदों में स्थित है, (अङ्ग-अङ्ग बाह्य भावितं) जो अङ्ग और अङ्ग बाह्य के भेद से प्रसिद्ध है तथा (अनन्त-विषयं) अनन्त पदार्थों को विषय करने वाला है (श्रुतम् अपि) उस श्रुत-ज्ञान को भी (नमस्यामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो श्रुतज्ञान अर्थरूप से जिनेन्द्रदेव के द्वारा निरूपित है, अर्थ व पद रूप से जिसकी अंग रूप में रचना गणधर देवों ने की है तथा जो अङ्ग प्रविष्ट व अङ्ग बाह्य रूप दो व अनेक भेद वाला है अनन्त पदार्थों को विषय करने वाले उस श्रुतज्ञान को मैं नमस्कार करता हुआ। इनमें अर्थ रूप ज्ञान "भावश्रुत" है और शब्दरूप ज्ञान द्रव्यश्रुत है।

द्रव्यश्रुत की अंग प्रविष्ट व अङ्ग बाह्य संज्ञा का हेतु क्यां है ? अङ्ग-बाह्य द्वादशांग में गर्भित है या नहीं ? ऐसी शंका होने पर आचार्य देव उत्तर देते हुए कहते हैं—

द्वादशांग के समस्त अपुनरुक्त अक्षरो का प्रमाण १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ कुल बीस अंग प्रमाण है। मध्यम पद के अक्षरो का प्रमाण सौलह सौ चौतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी है। मध्यमपद के अक्षरो का जो प्रमाण है उसका समस्त द्वादशांग के अक्षरो के प्रमाण मे भाग देने पर जितना लब्ध आवे उतने अंग प्रविष्ट अक्षर होते है और शेष जितने अक्षर रहे उतना अंगबाह्य अक्षरो या श्रुत का प्रमाण होता है। वास्तव मे यहाँ अङ्ग बाह्य या अंग-प्रविष्ट का भेद मध्यमपदो की अपेक्षा है अत: अंग बाह्य या अंग प्रविष्ट दोनो द्वादशांग के ही भेद है। अर्थात् ये सब द्वादशांग मे ही गर्भित है।

ऐसा यह श्रुतज्ञान परोक्षरूप से अनन्त पदार्थों को जानता है अत: उस श्रुतज्ञान को मै नमस्कार करता हूँ।

भावश्रुतज्ञान

पर्यायाक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्तिकानुयोग-विधीन्।
प्राभृतक-प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च॥५॥
तेषां समासतोऽपि च विंशति-भेदान् समश्नुवानं तत्।
वन्दे द्वादशधोक्तं गम्भीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या॥६॥

अन्वयार्थ—(पर्याय-अक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्तिक-अनुयोग विधीन्) पर्याय, अक्षर, पद संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग विधि को (च) और (प्राभृतक प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु पूर्व) प्राभृतक-प्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु तथा पूर्व को व (तेषां समासत: अपि च) उनके भी समास से होने वाले पर्याय समास, अक्षर समास, पद समास, संघात समास, प्रतिपत्तिक समास, अनुयोग समास, प्राभृतक प्राभृतक समास, प्राभृतक समास, वस्तु समास और पूर्व समास इन (विंशतिभेदान्) बीस भेदो को (समश्नुवानं) व्याप्त करने वाले तथा (गंभीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या) गंभीर उत्कृष्ट शास्त्र पद्धति से (द्वादशधा उक्तं) बारह प्रकार के कहे गये (तत्) उस (श्रुतं वन्दे) श्रुतज्ञान को (वन्दे) मै वन्दन करता हूँ/नमन करता हूँ।

भावार्थ—श्रुतज्ञान के पर्याय आदि २० भेद है। इनमें पर्यायज्ञान सबमे जघन्य ज्ञान है। इस ज्ञान का दूसरा नाम लब्ध्यक्षर ज्ञान भी है।

श्रुतज्ञान के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं। जिस ज्ञान का कभी नाश नहीं होता उसको अक्षर कहते हैं। यह ज्ञान अक्षर का अनन्तवाँ भाग है, इसका कभी नाश नहीं होता। यह ज्ञान सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्य-पर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के पहले समय होता है। यह ज्ञान अक्षर का अनन्तवाँ भाग होकर सदा निरावरण होता है। इसका जीव के कभी अभाव नहीं होता। यदि इसका अभाव हो जाय तो जीव का ही अभाव हो जाय।

पर्याय ज्ञान के ऊपर और अक्षर श्रुतज्ञान से पहले तक पर्यायसमास ज्ञान कहलाता है। अकार, आकार आदि श्रुतज्ञान को अक्षर श्रुतज्ञान कहते हैं। यह अक्षर श्रुतज्ञान सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के अनन्तानन्त लब्ध्यक्षरों के बराबर होता है [ध.पु. १३, पृ. २६४] । अक्षरज्ञान के ऊपर पद श्रुतज्ञान से नीचे श्रुतज्ञान के समस्त भेद अक्षर समास हैं।

जिससे अर्थ का बोध हो सो पद है—१. अर्थपद २. मध्यमपद व प्रमाणपद। अक्षर समास के ऊपर एक अक्षरज्ञान के बढ़ने पर यह पद ज्ञान होता है। पद नामक श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर-प्रमित श्रुतज्ञान के बढ़ने पर पदसमास नामक श्रुतज्ञान होता है।

एक गति का निरूपण करने वाला संघात नामक श्रुतज्ञान है। एक मध्यमपद के ऊपर भी एक-एक अक्षर की वृद्धि होते हुए संख्यात हजार पदों की वृद्धि जिसमें हो वह संघात नामक श्रुतज्ञान है। संघात श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान की वृद्धि होने पर संघात समास नामक ज्ञान होता है।

संख्यात संघात श्रुतज्ञानों का आश्रयकर एक प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है। अथवा जितने पदों के द्वारा चार गति, मार्गणा का प्ररूपण हो वह प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान है। इसमें एक अक्षर प्रमाण वृद्धि होने पर प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञान होता है संख्यात प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान का एक अनुयोग श्रुतज्ञान होता है अथवा चौदह मार्गणाओं से प्रतिबद्ध जितने पदों के द्वारा अर्थ जाना जाता है उतने पदों से उत्पन्न श्रुतज्ञान को अनुयोग कहते है। अनुयोग के ऊपर अक्षर की वृद्धि होने पर अनुयोग समास श्रुतज्ञान होता है। अनुयोग के ऊपर क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि होते हुए चतुरादि

अनुयोगो की वृद्धि होने पर प्राभृत-प्राभृत श्रुतज्ञान होता है। इस ज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान की वृद्धि होने पर प्राभृत-प्राभृत समास श्रुतज्ञान होता है।

चौबीस प्राभृत-प्राभृत का एक प्राभृत श्रुतज्ञान होता है। प्राभृत श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण वृद्धि होने पर प्राभृत समास श्रुतज्ञान होता है। तथा १-१ वस्तु मे २०-२० प्राभृत होते है। १४ पूर्वो मे १९५ वस्तुएँ है और प्राभृतो का प्रमाण ३९०० है।

संक्षेप मे–कम से कम श्रुतज्ञान को पर्यायज्ञान, इन्द्रियो से ग्रहण मे आवे सो अक्षरज्ञान, जिससे अर्थ का बोध हो वह पद ज्ञान, एक गति स्वरूप को प्रकट करने वाला संघात ज्ञान, ४ गतियो के स्वरूप को जानने वाला प्रतिपत्तिक ज्ञान, १४ मार्गणाओ का निरूपक अनुयोग ज्ञान ४ निक्षेप, सत् संख्यादि का कथन करनेवाला प्राभृत-प्राभृत ज्ञान। प्राभृतक-प्राभृतक का अधिकार प्राभृत ज्ञान, पूर्व का अधिकार वस्तु और शास्त्र के अर्थ का पोषक पूर्व तथा हर एक के भेदो को समास कहते है, इस प्रकार भावश्रुतज्ञान के क्रमिक विकास अपेक्षा २० भेद है।

श्रुतज्ञान के बारह भेद

आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवाय-नामधेयं च।
व्याख्या-प्रज्ञप्तिं च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने।।७।।
वन्देऽन्तकृद्दश-मनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि।।८।।

अन्वयार्थ—(आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवायनामधेयं) आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग (व्याख्याप्रज्ञप्तिं च) और व्याख्या-प्रज्ञप्ति (ज्ञातृकथा - उपासकाध्ययने) ज्ञातृकथा और उपासकाध्ययन को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ (अन्तकृद्दशम्-अनुत्तरोप-पादिकदशं दशावस्थं प्रश्नव्याकरणं हि विपाक सूत्रं च) अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिक दशांग, प्रश्नव्याकरणाङ्ग, विपाकसूत्र (च) दृष्टिवाद इन १२ अंगो को (विनमामि) मै विशेष रूप से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मुनियो के आचार का वर्णन करने वाला **आचाराङ्ग** है,

५ प्रकार का विनय, अध्ययन व व्यवहार धर्म क्रिया का वर्णन करने वाला **सूत्रकृताङ्ग** है, सम्पूर्ण द्रव्यों के क्रमश: एक से लेकर अनेक स्थानों का वर्णन करने वाला **स्थानाङ्ग** है, समस्त द्रव्य में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा समानता का वर्णन करने वाला **समवायाङ्ग** है, जीव द्रव्य के सम्बन्ध में ६००० प्रश्नों का समाधान करने वाला **व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग** हैं, तीर्थंकरादि महापुरुषों के वैभव व गुणों का वर्णन करने वाला **ज्ञातृकथाङ्ग** है, श्रावको के आचार का कथन करने वाला **उपासकाध्ययनाङ्ग** है, प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थकाल में १०-१० मुनि उपसर्ग केवली हो मुक्त हुए इनका वर्णन करने वाला **अन्तकृद्दशाङ्ग** है, महोपसर्ग सहन कर विजयादि विमानों मे उत्पन्न हुए उनका वर्णन करने वाला **अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग** है, तीन काल में लाभ-अलाभ व चार प्रकार की कथाओ का वर्णन करने वाला **प्रश्नव्याकरण अङ्ग** है तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार कर्मफलों का वर्णन करने वाला **विपाकसूत्राङ्ग** है। इन **अङ्गों** में **४ करोड़ १५ लाख २ हजार पद** हैं। ग्यारह अङ्ग रूप पूर्ण श्रुतज्ञान को मैं नमस्कार करता हूँ।

दृष्टिवाद (बारहवें) अंग की स्तुति

परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोग-पूर्वगते।
सार्द्धं चूलिकयापि च पंचविधं दृष्टिवादं च ।।१।।

अन्वयार्थ—(परिकर्म च सूत्रं च प्रथमानुयोग पूर्वगते सार्द्धं चूलिकयापि च) परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका सहित (पञ्चविध दृष्टिवादं) पाँच प्रकार के दृष्टिवाद अङ्ग की (स्तौमि) मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अङ्ग है, इसके पाँच भेद हैं १. परिकर्म २. सूत्र ३. प्रथमानुयोग ४. पूर्वगत और ५. चूलिका इन सबकी मैं स्तुति/वन्दना करता हूँ।

परिकर्म—जिसमें गणित की व्याख्या कर उसका पूर्ण विचार किया हो उसको परिकर्म कहते है। इसके पाँच भेद हैं—१. चन्द्रप्रज्ञप्ति २. सूर्यप्रज्ञप्ति ३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ४. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और ५. व्याख्या प्रज्ञप्ति।

जिसमें चन्द्रमा की आयु, गति, विभूति आदि का वर्णन हो वह

चन्द्रप्रज्ञप्ति है। जिसमे सूर्य की आयु, गति, परिवार आदि का वर्णन हो वह **सूर्यप्रज्ञप्ति** है। जिसमे जम्बूद्वीप संबंधी सात क्षेत्र कुलाचल आदि का वर्णन है वह **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** है। जिसमे असंख्यात व समुद्रो का वर्णन है वह **द्वीपसागरप्रज्ञप्ति** है। और जिसमे जीव, अजीव आदि द्रव्यो के स्वरूप का वर्णन है वह **व्याख्याप्रज्ञप्ति** है।

सूत्र—जिसमे जीव का विस्तृत विवेचन-कर्ता भोक्ता आदि रूप है वह सूत्र है।

प्रथमानुयोग—जिसमे ६३ शलाका पुरुषो का निरूपण है वह प्रथमानुयोग है।

पूर्वगत—इसके उत्पाद आदि १४ भेद है।

चूलिका—इसके पाँच भेद हैं—जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता।

जलगता—इसमे जल मे गमन, जल का स्तंभन करने के लिये जो मंत्र-तंत्र आदि कारण है उनका वर्णन है। **स्थलगता**—पृथ्वी पर गमन करने के कारण मंत्र-तंत्र और तपश्चरण आदि का वर्णन इसमे है। **मायागता**—इसमे इन्द्रजाल संबंधी मंत्र-तंत्रो का वर्णन है। **रूपगता**—इसमे सिंह, व्याघ्र आदि के रूप धारण करने के मंत्र-तंत्रो का वर्णन है तथा **आकाशगता**—इसमे आकाश मे गमन करने के कारण मन्त्र-तन्त्र और तपश्चरण आदि का वर्णन है।

पूर्वगतं तु चतुर्दशधोदित-मुत्पादपूर्व-माद्यमहम्।
आग्रायणीय-मीडे पुरु-वीर्यानुप्रवादं च ।।१०।।
संततमहमभिवन्दे तथास्ति-नास्ति प्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवाद-सत्यप्रवाद-मात्मप्रवादं च ।।११ ।।
कर्मप्रवाद-मीडेऽथ प्रत्याख्यान-नामधेयं च।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च ।।१२।।
कल्याण-नामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं च।
अथ लोकबिंदुसारं वन्दे लोकाग्रसारपदम् ।।१३।।

अन्वयार्थ—(पूर्वगतं नु चतुर्दशधा उदितम्) दृष्टिवाद के ५ भेद है

उनमें पूर्वगत १४ प्रकार का कहा गया है। (अहम्) मैं (आद्यम्) सर्वप्रथम (उत्पादपूर्वम्, आग्रायणीय पुरुवीर्यानुप्रवादं च) उत्पादपूर्व, आग्रायणीय पूर्व और पुरुवीर्यानुप्रवाद पूर्व को (ईडे) नमस्कार करता हूँ। (तथा) उसी तरह (अहम्) मैं (अस्ति-नास्ति प्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवाद-सत्य प्रवादम्-आत्मप्रवादं च) अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व, सत्यप्रवाद पूर्व और आत्मप्रवाद पूर्व को भी (संततं) सदा/सतत/निरन्तर (अभिवन्दे) पूर्णरूपेण मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

(अथ) उसके पश्चात् मैं (कर्मप्रवादम्, प्रत्याख्यानामधेयं च, दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च) कर्मप्रवाद पूर्व और प्रत्याख्यान पूर्व तथा जो अनेक विद्याओ का आधार भूत है ऐसे दशवें विद्यानुवाद पूर्व की (ईडे) मैं स्तुति करता हूँ।

(अथ) उसके पश्चात् (कल्याण नामधेयं) कल्याणवाद नाम पूर्व (प्राणावायं) प्राणावाद (क्रियाविशालं) क्रियाविशाल (च) और (लोक-अग्र-सार-पदम्) मुक्ति-पद की सारभूत क्रियाओं का आधारभूत (लोकबिन्दुसारं वन्दे) लोकबिन्दुसार की मैं वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—उत्पादपूर्व द्रव्यों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यादि धर्मों का वर्णन करता है। आग्रायणीय पूर्व ७०० सुनय-दुर्नयों द्वारा ६ द्रव्य, ७ तत्त्व, ९ पदार्थों का वर्णन करता है। वीर्यानुवाद, आत्मवीर्य व परवीर्य, उभयवीर्य तप, द्रव्य, गुण वीर्य का वर्णन करता है। अस्ति नास्ति पूर्व सप्तभंगी का कथन करता है। ज्ञानप्रवाद आठ ज्ञानो का कथन करता है। सत्यप्रवाद अनेक प्रकार के शब्दों का तथा १० प्रकार के सत्य वचनों का वर्णन करता है। आत्मप्रवाद आत्मा के उपयोग आदि का, कर्मप्रवाद मूलोत्तर कर्म प्रकृतियों के बंध उदयादि का, प्रत्याख्यान पूर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपेक्षा त्याग धर्म का, विद्यानुवाद ७०० लघुविद्या, ५०० रोहिणी आदि विद्या तथा महाविद्याओं का, कल्याणवाद तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों का, प्राणवाद पूर्व वैद्य चिकित्सा आदि से प्राणों की रक्षा के उपाय का, क्रिया-विशाल पूर्व संगीत, छन्द, अलंकार, आदि ७२ कलाओं का तथा त्रिलोकबिन्दुसार-तीन लोक का वर्णन करता है।

दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयो-र्द्विषट्कं च ।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पञ्चदश च तथा ।।१४।।
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम् ।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ।।१५ ।।

अन्वयार्थ—(पूर्वाणाम् एषु अनुपूर्व) १४ पूर्वो की ये क्रमशः (दश च चतुर्दश च अष्टौ-अष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च षोडश च विंशतिं च त्रिशतम् अपि पंचदश च दश दशानि वस्तूनि) १०, १४, ८, १८, १२, १२, १६, २०, ३०, १५, १०, १०, १०, १० वस्तुऍ (भाषितानि) कही गई है (तथा) तथा (प्रतिवस्तु) प्रत्येक वस्तु मे (विशतिं विंशतिं) २०-२० (प्राभृतकानि) प्राभृतक कहे गये है (नौमि) मै सबको नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—उत्पाद आदि १४ पूर्वो मे क्रमशः उत्पाद पूर्व मे १०, आग्रायणीय पूर्व मे १४, पुरुवीर्यानुवाद मे ८, अस्तिनास्ति प्रवाद मे १८, ज्ञानप्रवाद मे १२, सत्यप्रवाद मे १२, आत्मप्रवाद मे १६, कर्मप्रवाद मे २०, प्रत्याख्यान पूर्व मे ३०, विद्यानुवाद मे १५, कल्याणवाद मे १०, प्राणवाद मे १०, क्रियाविशाल मे १० तथा लोकबिन्दुसार मे १०, वस्तुऍं कही गई है। एक-एक वस्तु मे २०-२० प्राभृतक है। मै उत्पाद पूर्व की कुल १९५ वस्तुओ और ३९०० प्राभृतको को नमस्कार करता हूँ।

आग्रायणीय पूर्व के १४ अधिकारों के नाम

पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुव-मध्रुव-च्यवनलब्धि-नामानि ।
अध्रुव-सम्प्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ।।१६।।
सर्वार्थ-कल्पनीय ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम् ।
सिद्धि-मुपाध्यं च तथा चतुर्दश-वस्तूनि द्वितीयस्य ।।१७।।

अन्वयार्थ—(द्वितीयस्य) दूसरे आग्रायणीय पूर्व की (पूर्वान्तं हि अपरान्तं ध्रुवम् अध्रुव च्यवनलब्धि नामानि) पूर्वान्त, अपरान्त, ध्रुव, अध्रुव, च्यवनलब्धि नाम युक्त (च) और (अध्रुवसंप्रणिधिं च अपि अर्थ भौमावयाद्यं च सर्वार्थ-कल्पनीयं ज्ञानम् अतीतं तु अनागतकालम् सिद्धिम् उपाध्यं च तथा, अध्रुवसंप्रणिधिं, च अपि अर्थ भौमावयाद्यं च सर्वार्थ कल्पनीयं ज्ञानम् अतीतं तु अनागत कालम् सिद्धिम् उपाध्यं च तथा) व्रतादि, सर्वार्थ

कल्पनीय, ज्ञान अतीत काल, अनागत काल, सिद्धि और उपाध्य इस प्रकार (चतुर्दश वस्तूनि) १४ वस्तुएँ है।

भावार्थ—द्वितीय आग्रायणी पूर्व की १४ वस्तुएँ—१. पूर्वान्त, २. अपरान्त, ३. ध्रुव, ४. अध्रुव, ५. च्यवनलब्धि, ६. अध्रुव संप्रणिधि ७. अर्थ ८.भौम, ९. व्रतादिक, ९. सर्वार्थ-कल्पनीय, १०. ज्ञान, ११. अतीत काल १२, अनागत काल १३. सिद्धि और १४ उपाध्य हैं, इन सबको मेरा नमस्कार है।

कर्म प्रकृति के २४ अनुयोगों के नाम

पञ्चमवस्तु - चतुर्थं - प्राभृतकस्यानुयोग - नामानि।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिमेव ।।१८ ।।
बन्धन - निबन्धन - प्रक्रमानुपक्रम - मथाभ्युदय - मोक्षौ।
सङ्क्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्म-परिणामौ ।।१९।।
सात-मसातं दीर्घं ह्रस्वं भवधारणीय-संज्ञं च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्त-मनिधत्त-मभिनौमि ।।२०।।
सनिकाचित-मनिकाचित-मथ-कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ।
अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ।।२१।।

अन्वयार्थ—(पञ्चमवस्तु चतुर्थप्राभृतकस्य) पाँचवीं वस्तु च्यवनलब्धि के चौथे कर्मप्रभृति प्राभृतक के (अनुयोग नामानि) अनुयोगों के नाम (कृतिवेदने) कृति और वेदना (तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिम् एव बन्धन निबन्धन-प्रक्रम-अनुपक्रमम्) स्पर्शन कर्म, प्रकृति, बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, अनुपक्रम (अथ) पश्चात् (अभ्युदयमोक्षौ) अभ्युदय व मोक्ष (च) और (संक्रम लेश्ये) संक्रम व लेश्या (तथा) तथा (लेश्यायाः कर्म-परिणामौ) लेश्याकर्म व लेश्या परिणाम (च) और (सातमसातं दीर्घं-ह्रस्वं-भवधारणीय-संज्ञं) सातासात, दीर्घ-ह्रस्व, भवधारणीय नाम वाले (च) तथा (पुरुपुद्गलात्मनाम) पुरुपुद्गलात्म नामक (च) व (निधत्तम् अनिधतम्) निधत्तानिधत्त (अथ) पश्चात् (सनिकाचितम् अनिकाचिम्) निकाचित-अनिकाचित (अथ) इसके बाद (कर्मस्थितिक- पश्चिमस्कन्धौ) कर्मस्थिति व पश्चिम स्कन्ध (च) और (अल्पबहुत्वं) अल्पबहुत्व हैं। (तद्द्वाराणां चतुर्विंशम्) उन

२४ द्वारो को (यजे अभिनौमि) मै भक्तिपूर्वक मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—दूसरे आग्रयणीय पूर्व की पञ्चम वस्तु च्यवनलब्धि है, उसमे २४ अनुयोगद्वार है—१ कृति, २. वेदना, ३ स्पर्शन, ४. कर्म, ५. प्रकृति, ६. बन्ध, ७. निबन्धन, ८. प्रक्रम, ९. अनुपक्रम, १०. अभ्युदय, ११. मोक्ष, १२. संक्रम, १३. लेश्या, १४. लेश्याकर्म, १५. लेश्या परिणाम, १६. सातासात, १७. दीर्घह्रस्व, १८. भवधारणीय, १९ पुद्गलात्म, २०. निधत्तानिधत्त,, २१. निकाचितानिकाचित, २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कन्ध और २४. अल्पबहुत्व। ये २४ अनुयोग चतुर्थ कर्मप्रभृति प्राभृतक मे प्रवेश करने के लिये द्वार के समान है। इन सबको मेरा भक्तिपूर्वक नमस्कार है।

द्वादशांग श्रुतज्ञान की पद संख्या

कोटीनां द्वादशशत-मष्टापञ्चाशतं सहस्राणाम्।
लक्षत्र्यशीति-मेव च पञ्च च वन्दे श्रुतपदानि।।२२।।

अन्वयार्थ—(श्रुतपदानि) द्वादशाङ्ग के समस्त पदो (कोटीनां द्वादशशतम् अष्टपञ्चाशतम् सहस्राणाम् लक्षत्रि अशीति एव च पञ्च च) एक सौ बारह करोड़ तेरासी लाख अट्ठावन हजार पॉच पदो को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—द्वादशांग के ११२८३५८००५ पदो की मै वन्दना करता हूँ।

एक एक पद के अक्षरों की संख्या

षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां त्र्यशीति-लक्षाणि।
शतसंख्याष्टा सप्तति-मष्टाशीतिं च पद-वर्णान्।। २३ ।।

अन्वयार्थ—(षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां) सोलह सौ चौतीस करोड़ (त्रि अशीतिलक्षाणि) तेरासी लाख (सप्ततिम्) सात हजार (च) और (शतसंख्याष्टा अष्टाशीतिं) आठ सौ अठासी (पदवर्णनम्) पद के अक्षर है।

जिनागम मे पद के तीन भेद किये गये है। १. अर्थपद २. मध्यमपद

और ३. प्रमाणपद। इनमें जितने अक्षरों से वक्ता का अभिप्राय प्रकट होता हो ऐसे अनियत अक्षरों के समूह या वाक्य को अर्थ पद कहते हैं, जैसे— अग्नि लाओ, पानी छानकर पीओ, मन्दिर जाओ आदि। आठ, चौदह आदिक अक्षरों के समूह को प्रमाणपद कहते है, जैसे अनुष्टुप श्लोक के एक पाद में ८ अक्षर होते हैं, वसन्ततिलका के एक पाद में १४ अक्षर होते है। इसमें अक्षरों का प्रमाण उस-उस छन्द के अनुसार न्यूनाधिक होता है। परन्तु मध्यम पद में कहे गये १६३४८३०७८८८ अक्षरों का प्रमाण हमेशा के लिये निश्चित है।

जिनागम में २७ स्वर, ३३ व्यञ्जन, ४ अयोगवाह इस प्रकार ६४ मूल अक्षर माने गये हैं। इनका विरलन कर, उसके ऊपर दुआ माँडकर परस्पर गुणा करने पर श्रुतज्ञान का प्रमाण १८४४६७४४०७३ ७०९५५१६१५ बीस अंक अथवा एक कम एकट्ठी प्रमाण है। समस्त श्रुत के इन अनुरुक्त अक्षरों में मध्यमपद का भाग देने पर जो लब्ध आता है वह द्वादशांग का प्रमाण व शेष अंग बाह्य/प्रकीर्णक का प्रमाण आता है।

अंगबाह्य के भेदों की स्तुति

सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वन्दना प्रतिक्रमणम्।
वैनयिकं कृतिकर्म च पृथु-दशवैकालिकं च तथा।।२४।।
वर-मुत्तराध्ययन-मपि कल्पव्यवहार-मेव-मभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्पं पुण्डरीकं च।।२५।।
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च प्रकीर्णकान्यंग-बाह्यानि।।२६।।

अन्वयार्थ—(प्रणिपतितः अहम्) नम्रीभूत हुआ मैं (परिपाट्या) परिपाटी क्रम से (सामयिकं) सामायिक (चतुर्विंशतिस्तवं) चतुर्विंशतिस्तव (वन्दना) वन्दना (प्रतिक्रमणम्) प्रतिक्रमण (वैनयिकं) वैनयिक (च) और कृतिकर्म (पृथुदशवैकालिकम्) विशाल दशवैकालिक (तथा च) और (वरम्) उत्कृष्ट (उत्तराध्ययनम् अपि) उत्तराध्ययन को भी (एवम्) इसी प्रकार (कल्पव्यवहारम्) कल्प-व्यवहार को (अभिवन्दे) नमस्कार करता हूँ।

(कल्पाकल्पं महाकल्पं पुण्डरीकं च) कल्पाकल्प, महाकल्प और पुण्डरीक की (स्तौमि) मै स्तुति करता हूँ तथा (महापुण्डरीक नामैव अशीतिकं च) महापुण्डरीक और निषिद्धिका के प्रति (प्रणिपतित: अस्मि) मै नम्रीभूत हूँ (निपुणानि) वस्तु तत्त्व का सूक्ष्म विवेचन करने मे निपुण ये (अङ्ग बाह्यानि) अङ्गबाह्य (प्रकीर्णक) प्रकीर्णक है। अर्थात् अङ्गबाह्य श्रुत को प्रकीर्णक भी कहते है, इनमे वस्तु तत्त्व का सूक्ष्मरीत्या विवेचन पाया जाता है।

भावार्थ—सामायिक की विधि का कथन करने वाला **सामायिक** प्रकीर्णक है। २४ तीर्थकरो की स्तुति जिसमे हो वह **चतुर्विंशति स्तव** प्रकीर्णक है। एक तीर्थकर की मुख्यता स्तुति करने वाला **वन्दना** प्रकीर्णक है। प्रमादजन्य दोषो को दूर करने के उपायो का कथन करने वाला **प्रतिक्रमण** प्रकीर्णक है। विनय के स्वरूप की विवेचना जिसमे हो वह **वैनयिक** प्रकीर्णक है। नित्य-नैमित्तिक क्रियाओ को बताने वाला **कृतिकर्म** प्रकीर्णक है। मुनि की आचार संहिता किस काल मे कैसी हो दिखाने वाला **दशवैकालिक** प्रकीर्णक है। उपसर्ग व परीषहो को सहन की विधि का जिसमे वर्णन है वह **उत्तराध्ययन** प्रकीर्णक है। योग्य आचरण का विधान करने वाला **कल्पव्यवहार** प्रकीर्णक है। योग्य अयोग्य आहार की प्ररूपणा करने वाला **कल्पाकल्प** प्रकीर्णक है। महापुरुषो के आचरण का प्ररूपक **महाकल्प** प्रकीर्णक है। चार प्रकार के देवो मे उत्पत्ति के साधनो को प्रज्ञापक **पुण्डरीक** प्रकीर्णक है। इन्द्रो मे उत्पत्ति के साधनो को दर्शाने वाला **महापुण्डरीक** प्रकीर्णक है तथा प्रमादजन्य सूक्ष्म या स्थूल दोषो के शक्ति अनुसार प्रायश्चित का उपदेष्टा शास्त्र **अशीतिका** या **निषिद्दिका** प्रकीर्णक कहलाता है। ये सभी १४ प्रकीर्णक अङ्गबाह्य शास्त्र है। द्वादशांग मे ही गर्भित है। मै नम्रीभूत हुआ इनकी स्तुति, पूजा, वन्दना करता हूँ। ये सभी शास्त्र वस्तुस्वरूप की सूक्ष्म प्ररूपणा मे कुशल महाशास्त्र है।

अवधिज्ञान की स्तुति

पुद्गल-मर्यादोक्तं प्रत्यक्षं सप्रभेद-मवधिं च।
देशावधि-परमावधि-सर्वावधि-भेद-मभिवन्दे ।।२७।।

अन्वयार्थ—(पुद्गल-मर्यादा-उक्तं) जिसमे विषयभूत पुद्गल की

मर्यादा कही गई है अर्थात् जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादारूपी द्रव्य को विषय करता है (प्रत्यक्षं) अक्ष याने इन्द्रिय आदि की अपेक्षा न रखकर जो मात्र अक्ष याने आत्मा से उत्पन्न होने के कारण प्रत्यक्ष है। (च) और जो (सप्रभेदं) अवान्तर भेदो से सहित है। (देशावधि-परमावधि-सर्वावधिभेदं) देशावधि-परमावधि-सर्वावधि भेदो से सहित (तं अविधं) उस अवधिज्ञान को (अभिवन्दे) नमस्कार करता हूँ।

प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद है—१ सांव्यवहारिक २ पारमार्थिक। जो ज्ञान इन्द्रिय प्रकाश आदि की सहायता के बिना मात्र आत्मा से ही उत्पन्न होता है वह ज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भी २ भेद है—१. विकलपारमार्थिक २. सकल पारमार्थिक। अवधिज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान होने से व मात्र रूपी पदार्थो को ही ज्ञान का विषय करने से विकलपारमार्थिक है। अवधिज्ञान—"अव=नीचे-धि" ज्ञान अर्थात् जिसका ज्ञान नीचे-नीचे अधिक है वह अवधिज्ञान है। इसके क्षयोपशम की अपेक्षा असंख्यात भेद है। क्योकि जघन्य देशावधिज्ञान का क्षेत्र सूक्ष्म निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना प्रमाण है और उत्कृष्ट क्षेत्र-लोक प्रमाण है। तथा इस ज्ञान के देशावधि, परमावधि व सर्वावधि तीन भेद है। देशावधि चारो गति के जीवो को होता है। परमावधि व सर्वावधि उत्कृष्ट चारित्रधारक संयमी मुनियो के ही होता है।

देशावधि के गुणप्रत्यय व भवप्रत्यय दो भेद है। गुणप्रत्यय ६ भेद रूप है वर्धमान, हीयमान, अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित व अनवस्थित। भवप्रत्यय मे भी गुणप्रत्यय की छह अवस्थाएँ पाई जाती है। परन्तु यह मात्र देव-नारकियो के ही होता है।

इस विशुद्धि प्राप्त अवधिज्ञान की मैं अभिवन्दना करता हूँ।

मन:पर्ययज्ञान की स्तुति

परमनसि स्थितमर्थं मनसा परिविद्य मन्त्रि-महित-गुणम्।
ऋजु-विपुलमति-विकल्पं स्तौमि मन:पर्ययज्ञानम्।। २८।।

अन्वयार्थ—(परमनसि) दूसरे के मन मे (स्थितम् अर्थम्) स्थित रूपी पदार्थ को (मनसा परिविद्यमंत्रिमहितगुणम्) मन से जानकर

जो महर्षियों से पूजित कृतकृत्य गुण को प्राप्त होता है तथा जो (ऋजु-विपुलमति-विकल्पं) ऋजुमति व विपुलमति दो भेद रूप है, उस (मन: पर्ययज्ञानम्) मन: पर्ययज्ञान की (स्तौमि) मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—मन:पर्ययज्ञान दूसरे के मन में स्थित सरल व कुटिल पदार्थों को विषय करता है। यह कर्मभूमिया संयमी मुनियों के ही उत्पन्न होता है। उनमें भी विशेष चारित्र के आराधक छठें से १२ गुणस्थानवर्ती मुनिवर के ही होता है। इस ज्ञान के ऋजुमति व विपुलमति ऐसे भेद जानना चाहिये।

केवलज्ञान की स्तुति

क्षायिक-मनन्त-मेकं त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपदवभासम्।
सकल-सुख-धाम सततं वन्देऽहं केवलज्ञानम् ।। २९ ।।

अन्वयार्थ—(क्षायिकम्-अनन्तम्) जो ज्ञान ज्ञानावरण कर्म के क्षय से प्राप्त होने से क्षायिक है, कभी नाश न होने से अनन्त है जो (एकं) एक अद्वितीय है, जिसके साथ कोई क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं रहता (त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपत्-अवभासम्) जो तीनों कालों सम्बन्धी समस्त पदार्थों का एक साथ जानता है (सकलसुखधाम) पूर्ण सुखों का स्थान है, ऐसे (केवलज्ञानम्) केवलज्ञान को (अहम्) मैं (सततम्) हमेशा (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। यह ज्ञानावरण के अत्यन्त क्षय से उत्पन्न हुआ निर्मल, विशुद्ध व अनन्त है। यह असहाय ज्ञान है इसे पर- इन्द्रिय आदि की अपेक्षा नहीं है। यह सकल पारमार्थिक है। त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य उनके अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों को यह ज्ञान हस्तामलकवत् जानता है। आत्मा में इसके उदय होने पर क्षायोपशमिक ज्ञानों का अभाव हो जाता है।

स्तुति के फल की प्रार्थना

एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त-लोक-चक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि-र्ज्ञानफलं सौख्य-मच्यवनम् ।।३०।।

अन्वयार्थ—(एवम्) इस प्रकार (समस्त-लोक-चक्षूंषि) तीनों लोकों

के नेत्रस्वरूप (ज्ञानानि) मति आदि ज्ञानों की (अभिष्टुवतः) स्तुति करने वाले (मे) मुझे (लघु) शीघ्र ही (ज्ञानफलं) ज्ञान का फल (ज्ञान-ऋद्धिः) ज्ञानरूप ऋद्धि व (अच्यवनम् सौख्यम्) अविनाशी सुख (भवतात्) प्राप्त हो।

भावार्थ—इस प्रकार यद्यपि मैने सामान्य से पॉचो ज्ञानों की व विशेष रूप से श्रुतज्ञान की इस श्रुतभक्ति मे स्तुति की है। इस स्तुति को करने वाले मुझ पूज्यपाद को केवलज्ञान ऋद्धि व अविनाशी सिद्ध पद, जो अनन्त सुखरूप है उसकी प्राप्ति हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंग-पइण्णए पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! मैंने (सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ) श्रुतभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। (तस्सालोचेउं इच्छामि) उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। (अंगोवंगपइण्णए) अङ्ग, उपाङ्ग, प्रकीर्णक (पाहुडयं) प्राभृत (परियम्म) परिकर्म (सुत्त) सूत्र (पढमाणिओग) प्रथमानुयोग (पुव्वगय) पूर्वगत (चूलिया) चूलिका (चेव) तथा (सुत्तत्थयथुइ) सूत्र, स्तव, स्तुति व (धम्मकहाइयं) धर्मकथा आदि की (णिच्चकालं) नित्यकाल/सदा (अच्चेमि) अर्चा करता हूँ (पुज्जेमि) पूजा करता हूँ, (वंदामि) नमस्कार करता हूँ। [इनकी स्तुति, पूजा आदि के फलस्वरूप] मेरे (दुक्खक्खओ) दुःखो का क्षय हो, (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो, (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो, (सुगइगमणं) सुगति में गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (मज्झं) मुझे (जिनगुणसंपत्ति) जिनेन्द्र देव के गुणों का लाभ हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैं श्रुतभक्ति के माध्यम से अंग-उपांग, प्रकीर्णक, प्राभृत, परिकर्म प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका, सूत्र, स्तव, स्तुति व

धर्मकथा आदि की अर्चा, वन्दना आदि करता हूँ। मेरे समस्त दुःखो का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति हो, समाधिमरण हो तथा अन्त मे मुझे जिनेन्द्र के अनुपम गुणों की प्राप्ति हो।

।। इति श्री श्रुतभक्ति ।।

श्री चारित्र भक्ति

शार्दूलविक्रीडितम्

चारित्र की वन्दना

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्-केयूर-हारांगदान्,
भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा-प्रविसरोत्-तुंगोत्तमांगान्नतान् ।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनय-श्चक्रुः प्रकामं सदा,
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम् ।।१।।

अन्वयार्थ—जिनके शरीर (विलसत्-केयूर-हार-अङ्गदान्) केयूर, हार व बाजूबन्द से शोभायमान हैं, जिनके (उत्तुंग उत्तमाङ्गान्) ऊँचे उठे हुए मस्तक (भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा प्रवसर:) देदीप्यमान मुकुटों की मणियों की कान्ति के विस्तार से, शोभायमान हैं/सहित हैं ऐसे (भुवनत्रयस्य) तीनों लोकों के (इन्द्रान्) समस्त इन्द्रों को/स्वामियों को (येन मुनय:) जिन मुनियों ने (सदा) हमेशा (प्रकामं) अच्छी तरह (स्वेषां पाद-पयोरुहेषु) अपने चरण-कमलों में (नतान् चक्रु:) नम्रीभूत किया है, ऐसे (अभि अर्चितम्) अत्यन्त पूज्य (पञ्चतयं निगदन्) पंचाचारों का कथन करता हुआ मैं (अद्य) आज (तम्) उस पंचभेद वाले (आचारं) आचार को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—यहाँ श्री पूज्यपाद स्वामी चारित्र भक्ति के माध्यम से पञ्चाचारों के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हुए लिखते है कि जिन पूज्य दिगम्बर मुनिराजों के पंचाचारों के आचरण से प्रभावित होकर तीनों लोकों के इन्द्रों ने स्वयं आकर उन मुनिराजों के चरणों में मस्तक झुकाया उन दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार को मैं नमस्कार करता हूँ ।

ज्ञानाचार का स्वरूप

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता-कालोपधा-प्रश्रया:,
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मति-श्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) अन्तरङ्ग, बहिरंङ्ग लक्ष्मी के स्वामी (ज्ञाति कुल इन्दुना) ज्ञातृवंश के चन्द्रमास्वरूप (तीर्थस्यकर्त्रा) धर्मतीर्थ के

कर्ता (भगवता) भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा (अर्थव्यञ्जन-तद्द्वयाविकलता) अर्थ-अविकलता, व्यञ्जन अविकलता, अर्थव्यञ्जन अविकलता (कालोपधा प्रश्रया:) कालशुद्धि, उपधान शुद्धि व विनय (स्व-आचार्य-आदि-अनपह्नव:) अपने आचार्य आदि का नाम नहीं छिपाना (च) और (बहुमति:) बहुमान (इति) इस प्रकार (अष्टधा व्याहृतम्) आठ प्रकार से कहे गये (ज्ञानाचारं) ज्ञानाचार को (अहं) मैं (कर्मणाम् उद्धूतये) कर्मों के क्षय करने के लिये (त्रिधा) मन-वचन काय से (अञ्जसा प्रणिपतामि) सम्यक् प्रकार से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—अन्तरङ्ग अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख व अनन्त-वीर्य तथा बहिरंग समवशरण विभूति से शोभा को प्राप्त श्री ज्ञातृवंश के उद्योत करने के लिये चन्द्रमास्वरूप अवसर्पिणी काल में अन्तिम धर्म तीर्थकर्ता श्री वर्धमान भगवान् ने ज्ञानाचार के आठ अंग कहे हैं—

१. **अर्थाचार**—आगम के अर्थ, पद तथा वाक्यों के शुद्ध अर्थ का अवधारण करना।

२. **व्यञ्जनाचार**—आगम के पद, वाक्यों, अक्षरों का शुद्ध उच्चारण करना।

३. **अर्थव्यञ्जन शुद्धि/उभयाचार**—अर्थ-पद व शब्दों आदि का शुद्ध उच्चारण व निर्दोष अवधारण करना।

४. **कालाचार**—आगम ग्रन्थों को तीन संध्याओं, ग्रहण, उल्कापात, अतिवृष्टि आदि निषिद्ध कालों में स्वाध्याय न करके योग्य काल में स्वाध्याय करना।

५. **उपधानाचार**—स्वाध्याय प्रारम्भ होने पर समाप्ति पर्यन्त कोई विशेष नियम लेना, तथा शास्त्रों पर कँवर आदि लगाना, ग्रंथ नाभिसे ऊँचा रखकर स्वाध्याय करना स्मरणपूर्वक पढ़ना आदि ये उपधानाचार के स्वरूप हैं।

६. **विनयाचार**—योग्यक्षेत्र तथा काल में श्रुतभक्ति-आचार्यभक्ति आदि रूप कृतिकर्म करके विनयपूर्वक स्वाध्याय करना।

७. *अनिह्नवाचार*—जिन गुरु से शिक्षण प्राप्त किया है उसका नाम नहीं छिपाना। और

८. **बहुमानाचार**—मुझे इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ, इस विचार से अपना अहोभाग्य समझना, इस तरह आगम के प्रति बहुमान प्रकट करना बहुमानाचार है।

इस प्रकार ८ अंगों सहित जो जीव स्वयं स्वाध्याय करते हैं, दूसरे को सुनाते हैं उनके ज्ञानाचार की सिद्धि होती है। ज्ञानाचार की आराधना से उनके ज्ञानावरण का क्षयोपशम बढ़ता है तथा निकट भविष्य में ज्ञान के आवरण का पूर्ण अभाव होकर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। ऐसे ज्ञानाचार को भी पूज्यपाद स्वामी मन-वचन-काय से नमस्कार करते हैं।

दर्शनाचार का स्वरूप

शंका-दृष्टि-विमोह-काङ्क्षणविधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धताम्,
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं धर्मोपबृंह-क्रियाम्।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनम्,
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात्।।३।।

अन्वयार्थ—(शंका व्यावृत्ति-सन्नद्धतां) शंका का त्याग करने में तत्परता (दृष्टि-विमोह व्यावृत्तिसन्नद्धतां) अमूढ़दृष्टि अथवा दृष्टि विमोह/ मूढ़दृष्टि के त्याग में तत्परता (काङ्क्षणविधि व्यावृत्ति सन्नद्धतां) नि:कांक्षित अर्थात् भोगाकांक्षा के त्याग में तत्परता (वात्सल्यं) रत्नत्रयधारकों में प्रेम रखना (विचिकित्सात् उपरतिं) ग्लानि से दूर रहना (धर्म उपबृंहक्रियाम्) धर्म की वृद्धि करना (शक्त्या) शक्ति अनुसार (शासन-दीपनं) जिन शासन की प्रभावना करना (हितपथात्-भ्रष्टस्य संस्थापनं) हितकारी संयम आदि के मार्ग से च्युत व्यक्ति को पुन: सम्यक् प्रकार से मार्ग में स्थिर करना। इस प्रकार (दर्शन-गोचंर) सम्यक्दर्शन विषयक (सुचरितं) उत्तम आचार को (आदरात्) आदर से (नमन्) नमस्कार करता हुआ मैं (मूर्ध्ना) सिर से (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—दर्शनाचार का पालन अष्ट अंगों सहित होता है—१. नि:शंकित अंग २. नि:कांक्षित ३. निर्विचिकित्सा ४. अमूढदृष्टि ५. उपगूहन

६. स्थितिकरण, ७. वात्सल्य और ८ प्रभावना। यहाँ ८ अंगों के क्रम में छन्द की मर्यादावश व्यतिक्रम हुआ है, परन्तु क्रम को यथाभ्यस्त दृष्टि में रखते हुए यथायोग्य पालन करना भव्यात्माओं का कर्तव्य है।

यहाँ पूज्यपाद स्वामी आचार्य ने पञ्चम अंग का नाम उपबृंहण दिया है जिसका अर्थ होता है—अपने रत्नत्रय रूप गुणों को बढ़ाने का पुरुषार्थ/प्रयत्न करना। इसी पञ्चम अंग का नाम रत्नकरंड-श्रावकाचार में श्री समन्तभद्र आचार्यजी ने "उपगूहन" दिया है। जिसका अर्थ है—धर्मात्माओं, रत्नत्रयधारियों के द्वारा कर्मवशात् कोई दोष हो जावे तो उसका गोपन करना। वैसे भी उपगूहन यह प्रचलित नाम है।

ऐसे अष्टअंग सहित दर्शनाचार की मैं [पूज्यपाद] आदर से नतमस्तक हो वन्दना करता हूँ।

तपाचार (बाह्यतप) का स्वरूप

एकान्ते शयनोपवेशन-कृतिः संतापनं तानवम्,
संख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशनं विष्वाण-मर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्,
षोढ़ा बाह्य-महं स्तुवे शिव गति-प्राप्त्यभ्युपायं तपः ।।४।।

अन्वयार्थ—(शिवगति-प्राप्ति-अभि-उपायं) मोक्षगति की प्राप्ति के उपायभूत (एकान्ते शयन-उपवेशन कृतिः) एकान्त स्थान में शयन-आसन करना (तानवं सन्तापनं) शरीर को संतापित करना अर्थात् कायक्लेश करना (वृत्ति-निबन्धनां संख्या) चर्या में कारण-भूत संख्या को नियमित करना (अनशनं) उपवास करना, (अर्द्ध उदरम् विष्वाणं) ऊनोदर आहार करना (च) तथा (इन्द्रिय दन्तिनः मदयतः स्वादः रसस्य अनिशं त्यागं) इन्द्रियरूपी हाथियों के मद को बढ़ाने वाले स्वादिष्ट रसोंका हमेशा त्याग करना, ये (षोढ़ा बाह्यं तपः) छः प्रकार के बहिरंग तप हैं (अहम् स्तुवे) मैं इनकी स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—कर्मों के क्षय के लिये जो तपा जाता है वह तप कहलाता है। तप मोक्ष प्राप्ति में साधकतम करण है। तप के दो भेद हैं एक बहिरंग, दूसरा अन्तरङ्ग। बहिरंग तप के छह भेद हैं—अनशन, ऊनोदर,

वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश। उमास्वामि आचार्य ने इन तपों की उत्तरोत्तर अधिक गुणाधिक्यता को ध्यान में रखते हुए यही क्रम दिया है, यहाँ छन्द की मर्यादा/पराधीनता-वश क्रम का व्यतिक्रम हुआ है।

बाह्य तप को बाह्य कहने का प्रथम हेतु है—१. इन तपों की प्रवृत्ति बहिरंग मे देखी जाती है तथा २. इन तपों को संयम मार्ग से दूर रहने वाले अन्यमति जीव भी करते देखे जाते हैं।

स्वामी समन्तभद्रआचार्य ने बहिरंग तप को अन्तरङ्ग तप की वृद्धि का हेतु कहा है—"**आभ्यन्तरस्य तपसः परिबृहणार्थं बाह्यं तपः परमदुश्चर माचरस्त्वम्**" अर्थात् हे कुन्थुनाथ प्रभो! आपने अन्तरङ्ग तप की वृद्धि के लिये अत्यन्त कठोर ऐसा बाह्य तप किया था। इन छहों प्रकार के बहिरंग तपों की पूज्यपाद आचार्य स्तुति करते हैं।

अन्तरङ्ग तपों का वर्णन

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम्,
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ।
कायोत्सर्जन सत्क्रिया विनय-इत्येवं तपः षड्विधं,
वंदेऽभ्यन्तरमन्तरंग बलवद्विद्वेषि विध्वंसनम्॥५॥

अन्वयार्थ—(स्वाध्यायः) स्वाध्याय करना (शुभकर्मणः च्युतवतः) शुभ क्रियाओं से च्युत होने वाले अपने आपको (संप्रति-अवस्थापनं) पुनः सम्यक् प्रकार से स्थिर करना (ध्यानं) धर्म्य-शुक्लध्यान करना (आमयाविनि) रोगी (गुरौ) गुरु (वृद्धे च बाले यतौ) वृद्ध और अल्पवय वाले मुनियों के विषय मे (व्यापृति) सेवा/वैय्यावृत्य आदि करना (कायोत्सर्जन सत्क्रिया) शरीर से ममत्व छोड़कर कायोत्सर्ग की क्रिया करना (विनय) विनय (इत्येवं) इस प्रकार (अन्तरङ्ग-बलवत्-विद्वेषि-विध्वंसनं) अन्तरङ्ग के बलवान् काम-क्रोध-मान-माया आदि शत्रुओं को नष्ट करने वाले (षट्-विधं) छह प्रकार के (अभ्यन्तरं तपः) अन्तरङ्ग तप को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—उमास्वामि आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में अन्तरङ्ग तपों

का वर्णन करते हुए सूत्र दिया—प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥ अर्थात् १. प्रायश्चित्त २. विनय ३. वैयावृत्ति ४. स्वाध्याय ५. कायोत्सर्ग और ६. ध्यान। यह क्रम उत्तरोत्तर अधिकाधिक निर्जरा का हेतु होने के पक्ष की सिद्धि करता है। आगम मे भी अन्तरङ्ग तपो का यही क्रम प्रसिद्ध है। यहाँ पूज्यपाद स्वामी को छन्दकला की रक्षार्थ क्रम का व्यतिक्रम करना पड़ा है। तप दुधारु गाय की तरह द्विगुणित लाभ का संकेत करता है, जैसा कि कहा भी है—"तपसा निर्जरा च" तप के द्वारा कर्मों का संवर व निर्जरा दोनों ही होते हैं। पञ्चम काल में "स्वाध्याय परमो तप:" स्वाध्याय परम तप है क्योंकि इसके करने से मन-वचन-काय तीनों एकाग्र हो जाते हैं। इस काल में शुक्लध्यान का अभाव ही है, पर धर्म्यध्यान के बल से आज भी जीव रत्नत्रय की शुद्धि करके लौकान्तिक, इन्द्र आदि पदों को प्राप्त कर सकता है।

वीर्याचार का स्वरूप

सम्यग्ज्ञान विलोचनस्य दधतः, श्रद्धानमर्हन्मते,
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वन्दे सतामर्चितम् ।।६।।

अन्वयार्थ—(सम्यकज्ञान विलोचनस्य) सम्यक् ज्ञानरूपी नेत्र से युक्त तथा (अर्हत् मते) अर्हन्त देव के मत में/जिनशासन में (श्रद्धानम् दधत:) श्रद्धान को रखने वाले (यतेः) मुनि के (स्वस्य वीर्यस्य) अपनी शक्ति को (अविनिगूहनेन) नहीं छिपाने से (प्रयत्नात्) प्रयत्न-पूर्वक (तपसि) तप के संबंध में (या वृत्तिः) जो प्रवृत्ति है, वह (अविवरा लघ्वी) छिद्र रहित छोटी (नौ:इव) नौका के समान (भव उदन्वत: तरणी) संसार-सागर से पार करने वाली नौका है, यही वीर्याचार है। (ऊर्जितगुणं) प्रबल गुणों से सहित (सताम् अर्चितम्) सज्जनों के पूज्य (तं वीर्याचारं) उस वीर्याचार को मैं (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिस प्रकार लोक व्यवहार में समुद्र पार करने के लिए छिद्ररहित नौका आवश्यक है उसी प्रकार संसार समुद्र से पार करने के लिये वीर्याचाररूपी नौका आवश्यक है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन सहित

मुनिराज का अपनी शक्ति को न छिपाकर तप में प्रवृत्ति करना, शक्ति को नही छिपाना यही वीर्याचार है। जिस प्रकार छिद्ररहित नौका समुद्र से पार कर गन्तव्य को पहुँचाती है, उसी प्रकार यह वीर्याचार संसार-सागर से पार करने वाली छिद्ररहित नौका है। इसका आश्रय लेने वाले यति/मुनि गन्तव्य स्थल मुक्ति को प्राप्त होते है। यह वीर्याचार अनेक श्रेष्ठ गुणों से युक्त है, साधु पुरुषो/सज्जनों से पूज्य है। इस वीर्याचार को मैं नमस्कार करता हूँ।

चारित्राचार का स्वरूप

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्चव्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं, पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपते, वीरं नमामो वयम्॥७॥

अन्वयार्थ—(तनुमनोभाषा निमित्त उदयाः) शरीर, मन और वचन के निमित्त उदय होने वाली (तिस्रः) तीन (सत्तमगुप्तयः) श्रेष्ठ गुप्तियाँ (ईयादि समाश्रयाः) ईर्यागमन आदि के आश्रय से होने वाली (पञ्च-समितयः) पाँच समितियाँ (अपि) और (पञ्चव्रतानि) अहिंसा आदि पॉच महाव्रत (इति) इस प्रकार (त्रयोदशतयं चारित्र उपहितं) तेरह प्रकार के चारित्र से सहित (आचारं) आचार को (वयं) हम (नमामः) नमस्कार करते हैं जो (परमेष्ठिनः) परम पद मे स्थित (वीरं जिनपतेः) महावीर तीर्थंकर से (परैः पूर्वं) पूर्व अन्य तीर्थंकरों के द्वारा (न दृष्टम्) नहीं देखा गया अथवा नहीं कहा गया।

भावार्थ—मन-वचन-काय तीन प्रकार की श्रेष्ठ गुप्तियाँ, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना पाँच समितियाँ और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच महाव्रत ये १३ प्रकार का चारित्राचार है। इन १३ प्रकार के चारित्राचार से पूर्ण, इनसे सहित आचार को हम नमस्कार करते है। यहाँ पूज्यपाद आचार्य के अनुसार इन तेरह प्रकार के चारित्राचार का उपदेश अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने ही दिया, उनके पूर्व तेईस तीर्थंकरों ने नहीं दिया। क्योंकि महावीर भगवान् के समय के जीव वक्रपरिणामी हो गये हैं, जबकि शेष तीर्थंकरों

के समय जीव सरल-परिणामी थे अत: एकमात्र सर्वसावद्य निवृत्ति रूप मात्र एक प्रकार के चारित्र का ही उपदेश उन्हें दिया गया।

किन्ही विद्वानों के अनुसार अथवा अन्यत्र प्रसिद्ध गुरु उपदेशानुसार वृषभदेव व महावीर स्वामी ने ही छेदोपस्थापना चारित्र का उपदेश दिया अन्य २२ तीर्थंकरों ने नही। क्योंकि आदिनाथ तीर्थंकर के समय जीव भद्र परिणामी थे अत: ग्रहण किये चारित्र में दोष लग जाते थे और महावीर भगवान् के समय में जीव वक्र परिणामी हैं अत: ग्रहण किये चारित्र में दोष लग जाते हैं। यही वजह रहा कि उन्हें छेदोपस्थापना चारित्र का उपदेश देना पड़ा। २२ तीर्थंकरों के समय जीव सभ्य, समभावी रहे, उनके द्वारा गृहीत संयम में कभी दोष नहीं लगता था अत: छेदोपस्थापना चारित्र के उपदेश की उन्हें आवश्यकता ही नहीं रही।

मुक्ति का साक्षात् कारण चारित्राचार है, चारित्राचार की आराधना के बिना तीर्थंकर भी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाते। क्षायिक सम्यक्त्व की व क्षायिक ज्ञान/केवलज्ञान की पूर्णता हो जाने पर भी क्षायिकचारित्र, यथाख्यात-व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान की पूर्णता के बिना मुक्ति की प्राप्ति नही होती। अत: तीर्थंकरों के द्वारा भी आचरणीय ऐसे चारित्राचार को आचार्य देव नमस्कार करते हैं।

पञ्चाचार पालने वालों की वन्दना

आचारं सह-पञ्चभेदमुदितं, तीर्थं परं मंगलम्,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्रमहतो, वंदे समग्रान्यतीन्।
आत्माधीन सुखोदया-मनुपमां, लक्ष्मीमविध्वंसिनीम्,
इच्छन्केवलदर्शनावगमन, प्राज्य प्रकाशोज्वलाम्॥८॥

अन्वयार्थ—(आत्माधीन सुख-उदयां) आत्माश्रित सुख के उदय से सहित (अनुपमां) उपमारहित (केवलदर्शन-अवगमन-प्राज्य-प्रकाश-उज्ज्वलां) केवलदर्शन और केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट प्रकाश से उज्ज्वल (अविध्वंसिनी) अविनाशी (लक्ष्मीं) मोक्षलक्ष्मी की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ मैं (परं तीर्थमङ्गलम्) उत्कृष्ट तीर्थ तथा मङ्गलरूप (उदितं) कहे गये (सह पञ्चभेदं) पाँच भेदों से सहित (आचारं) आचार को तथा (सच्चरित्रमहत:) सम्यक् चारित्र से महान् (समग्रान्) सम्पूर्ण (निर्ग्रन्थान्) परिग्रहरहित (यतीन् अपि) मुनियों को भी (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—ये दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार और चारित्राचार रूप पंचाचार संसाररूपी महार्णव से पार होने के लिये घाट सम होने से परमतीर्थ हैं, अत: पंचाचार मंगलरूप हैं। जिस प्रकार तीर्थ का आश्रय लेने वाला, तीर्थ की वन्दना करने वाला जीव जन्म-मरण के चक्कर से छूटकर संसार-समुद्र से तिर जाता है, उसी प्रकार पंचाचाररूपी तीर्थ का आश्रय लेने वाला भी संसाररूपी तीर को पा जाता है अत: पंचाचार मंगल रूप उत्तम तीर्थ हैं। इन पंचाचारों का सदा उत्साहपूर्वक आचरण करने वाले मुनिराज भी मंगलस्वरूप हैं। मैं आत्माश्रित अनन्तसुख केवलज्ञान, केवलदर्शन रूप उत्कृष्ट ज्योति व अविनाशी मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति करने के लिये उस पञ्चाचार को सदा नमस्कार करता हूँ। तथा उसके आराधक मुनियों को भी नमस्कार करता हूँ।

चारित्र पालने में दोषों की आलोचना

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा,
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवं, चैनो निराकुर्वति।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं,
तन्मिथ्या गुरुदुष्कृतं भवतु मे, स्वंनिंदितो निंदितम्।।१।।

अन्वयार्थ—मैंने (अज्ञानात्) अज्ञान से (नियमिनः) मुनियों को (यत्) जो (अन्यथा अवीवृतं) आगमानुकूल प्रवृत न करा प्रतिकूल प्रवृतन कराया हो (च) अथवा (अवर्तिषि अहं) मैंने स्वयं आगम के प्रतिकूल वर्तन किया हो (तस्मिन्) उस अन्यथा वर्तन में (अर्जितम् एन:) संचित पापों को (अस्याति) नष्ट करने वाले (च) और (प्रतिनवं) प्रतिक्षण नवीन-नवीन बँधने वाले (एन:) पापों को (निराकुर्वति) निराकरण करने अर्थात दूर करने वाले (सुतपसां) श्रेष्ठ तपस्वियों की (अद्भुतं निधिं सप्ततयीं ऋद्धि) आश्चर्यकारी निधिरूप सात प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त कराने वाले (वृत्ते) ग्रहण किये संयम में जो अन्यथा प्रवृत्ति हुई है (निन्दितम्) निन्दा के पात्र (स्वं) अपने आपकी (निन्दित:) निन्दा करने वाले (मे) मेरे (तत्) वह (गुरु-दुष्कृतं) भारी पाप (मिथ्या भवतु) मिथ्या हो।

भावार्थ—चारित्र की शुद्धि प्रायश्चित, आलोचना, निन्दा गर्हा आदि

से होती है। संयम को निर्दोष पालना उत्तम है, यदि कदाचित् गृहीत-संयम में कोई दोष हो जावे तो उसे प्रायश्चित, निंदा, गर्हा, आलोचना आदि के द्वारा दूर कर निर्दोषव्रताचरण करना चाहिये। यह चारित्र ही उत्तम सप्तर्द्धि—"बुद्धि-विक्रिया-तप-बल-औषधि-रस-क्षिति" को प्राप्त कराता है। हे भगवन्! इस चारित्र के आचरण में जो कोई बड़ा भारी घोर अपराध/पाप मुझसे हुआ है वह मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। मैं पापों को दूर करने के लिये—निंदा, गर्हा, आलोचना आदि करता हूँ।

चारित्र धारण करने का उपदेश

संसार-व्यसनाहतिप्रचलिता, नित्योदय प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न विमुक्तयः सुमतयः, शान्तैनसः प्राणिनः।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं, सोपानमुच्चैस्तराम्,
आरोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं, जैनेन्द्र-मोजस्विनः ।।१०।।

अन्वयार्थ—जो (संसार-व्यसन-आहति-प्रचलिता) जो संसार के कष्टों/दुःखों के प्रहार से भयभीत हैं, (नित्य-उदय-प्रार्थिनः) निरन्तर, शाश्वत उदय रूप रहने वाली मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं (प्रत्यासन्न विमुक्तयः) जो आसन्न भव्य हैं अर्थात् निकट भविष्य में मुक्ति को प्राप्त करने वाले हैं (सुमतयः) जिनकी बुद्धि रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग में आकृष्ट होने से उत्तम है (शान्त ऐनसः) जिनके पाप-कर्मों का उदय शान्त हो गया है (ओजस्विनः) जो तेजस्वी, महाप्रतापी हैं ऐसे (प्राणिनः) भव्य प्राणी/भव्य जीव (मोक्षस्य एव कृतं) मोक्ष के लिये ही किये गये (विशालं) विस्तार को प्राप्त (अतुलं) अनुपम (उच्चैः) उन्नत (सोपानम्) सीढ़ी स्वरूप (जैनेन्द्रं) जिनेन्द्रदेव कथित (इदम्) इस (उत्तमम् चारित्रम्) उत्तम चारित्र पर (आरोहन्तु तराम्) अच्छी तरह आरोहण करें।

भावार्थ—यहाँ स्तुति-कर्ता श्री पूज्यपाद स्वामी भव्यजीवों को सम्बोधन देते हुए प्रेरित कर रहे हैं कि "हे भव्यात्माओं! यदि तुम संसार के जन्म-मरण आदि दुःखों के प्रहार से भयभीत हो शाश्वत सुख की प्राप्ति करना चाहते हो तो जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रतिपादित १३ प्रकार के उत्तम चारित्र को अंगीकार करो, यह चारित्र मुक्ति-महल पर पहुँचने के लिये विशाल अनुपम सोपान/सीढ़ी स्वरूप है। इस उत्तम चारित्र सीढ़ी पर चढ़ने

के लिये पाप-कर्मो की शान्ति, मोक्षमार्ग में बुद्धि का होना आत्मबल की सम्पन्नता और निकट भव्यता अति आवश्यक है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चारित्त भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचउं सम्मणाणजोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पञ्चमहव्वयसंपण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पञ्चसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स, सम्म-चारित्तस्स णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहि-मरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—(भंते !) हे भगवन् ! मैने (चारितभक्ति काउस्सग्गो कओ) चारित्र-भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। (तस्स आलोचेउं) उस सम्बन्धी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (सम्मणाणुज्जोयस्स) जो सम्यक्ज्ञान रूप उद्योत/प्रकाश से सहित है (सम्मत्ताहिट्ठियस्स) सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित है (सव्वपहाणस्स) सबमें प्रधान है (णिव्वाण-मग्गस्स) मोक्षका मार्ग है (कम्म-णिज्जर-फलस्स) कर्मों की निर्जरा ही जिसका फल है (खमाहारस्स) क्षमा जिसका आधार है (पंचमहव्वय-संपण्णस्स) पाँच महाव्रतो से सुशोभित है (तिगुत्ति-गुत्तस्स) तीन गुप्तियों से रक्षित है, (पंचसमिदि-जुत्तस्स) पाँच समितियों से युक्त है (णाणज्झाण साहणस्स) ज्ञान और ध्यान का मुख्य साधन है (समया इव पवेसयस्स) समता का प्रवेश जिसके अन्तर्गत है, ऐसे (सम्मचारित्तस्स) सम्यक्-चारित्र की मैं (सदा) सदा (अंचेमि) अर्चा करता हूँ (पूजेमि) पूजा करता हूँ (वंदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो, (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमणं) सुगतिमें गमन हो, (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (जिणगुणसंपति होऊ मज्झं) मुझे जिनेन्द्र देवों के गुणों की संप्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! चारित्र भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके उसकी

आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो चारित्र सम्यक्ज्ञानरूप प्रकाश युक्त है, सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित है; वही मोक्ष का प्रधान कारण व कर्म निर्जरा का मूल नियामक हेतु है। १३ प्रकार का यह चारित्र ज्ञान, ध्यान का प्रमुख साधन है। जो चारित्र, आराधक के हृदय में समता का प्रवेश कराता है। ऐसे उस सम्यक्चारित्र की मैं त्रिकाल, अर्चा, पूजा, वन्दना करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो। मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्रदेव के शाश्वत अनन्त गुणों की प्राप्ति हो।

।। इति श्री चारित्र भक्ति ।।

श्री योगि भक्ति

कैसे साधु वन का आश्रय लेते हैं ?

दुवई छन्द

जातिजरोरुरोग मरणातुर, शोक सहस्रदीपिताः,
दुःसहनरकपतन सन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्धचेतसः ।
जीवितमंबु बिंदुचपलं, तडिदभ्रसमा विभूतयः,
सकलमिदंविचिन्त्यमुनयः, प्रशमायवनान्तमाश्रिताः ।।१।।

अन्वयार्थ—मुनिराज (जाति जरोरुरोग-मरण-आतुर-शोक सहस्रदीपिताः) जन्म-जरा-मरण विशाल और रोग से दुखी होकर जो हजारों शोकों से प्रज्वलित हैं, (दुःसहनरकपतन संत्रस्तधियः) असह्य वेदना युक्त घोर नरकों मे गिरने के दुःखों से जिनकी बुद्धि अत्यन्त पीड़ित/भयभीत है तथा (प्रतिबुद्धचेतसः) जिनके हृदय में हेय-उपादेय का विवेक जागृत हो रहा है (जीवितम् अम्बुबिन्दुचपलं) जो जीवन को जल की बिन्दु के समान अत्यन्त चंचल तथा (तडित् अभ्र समा विभूतयः) संसार की समस्त विभूतियों को बिजली व मेघ के समान क्षणिक हैं (इदं सकलं) यह सब (विचिन्त्य) विचार कर (प्रशमाय) आत्मिक, अलौकिक शान्ति के लिये (वनान्तम् आश्रिताः) वन के मध्य में आश्रय लेते हैं।

भावार्थ—मुनिराज संसार के जन्म-जरा-मरण इष्ट वियोगज-अनिष्ट संयोगज रूप सहस्रों दुःखों से नरक की असह्य वेदनओं से भयभीत हो, संसार की बिजली व बादल सम क्षणस्थायी विभूतियों को त्यागकर तथा जीवन को जलबिन्दु सम निर्णय कर अनन्त अलौकिक आत्मिक शान्ति की प्राप्ति के लिये वन का आश्रय लेते हैं।

वन में जाकर साधु क्या करता है ?

भद्रिका छन्द

व्रतसमिति गुप्ति संयुताः, शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः ।
ध्यानाध्ययनवशंगताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ।।२।।

अन्वयार्थ—(वीतमोहाः) नष्ट हो चुका है मोह जिनका ऐसे वे मुनिराज (व्रत-समिति-गुप्ति-संयुताः) पाँच महाव्रत, पाँच समितियों,

तीन गुप्तियों से सहित हो (ध्यान-अध्ययन वशं-गताः) ध्यान और स्वाध्याय के वशीभूत हो (मनसि) मन में (शिव सुखम्-आधाय) मोक्षसुख को धारण कर (कर्मणां विशुद्धये) कर्मों के क्षय के लिये (तपश्चरन्ति) तपश्चरण करते हैं।

भावार्थ—निर्मोही मुनिराज १३ प्रकार के चारित्र सहित हो, ध्यान-अध्ययन में लीन होते हुए संसार-भ्रमण से, मुक्ति के सुखों की इच्छा करते हुए कर्मों को क्षय करने के लिये तपश्चरण करते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में मुनिराज क्या करते हैं ?

दुबई छन्द

दिनकर किरणनिकरसंतप्त, शिलानिचयेषु निष्पृहाः,
मलपटलावलिप्त तनवः, शिथिली कृतकर्म बंधनाः ।
व्यपगतमदनदर्प रतिदोष, कषाय विरक्त मत्सराः,
गिरिशिखरेषुचंडकिरणाभि, मुखस्थितयो दिगम्बराः ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(मल-पटल-अवलिप्त-तनवः) जिनका शरीर मैल के समूह से लिप्त हो रहा है, (शिथिलीकृत-कर्मबन्धनाः) जिन्होंने कर्मों के बन्धनों को शिथिल कर दिया है (व्यपगत-मदन-दर्प-रति-दोष-कषाय-विरक्तमत्सराः) जिनके काम, अहंकार, रति/राग मोह आदि दोष तथा कषाय नष्ट हो चुके हैं तथा जो मात्सर्य भाव से रहित हैं ऐसे (दिगम्बराः) दिशारूपी अम्बर को धारण करने वाले निर्ग्रन्थ मुनिराज (निस्पृहाः) शरीर से ममत्व रहित व भोगोपभोग की इच्छा से रहित होकर (दिनकर-किरण-निकर-संतप्त शिलानिचयेषु) सूर्य की किरणों के समूह से संतप्त शिलाओं के समूह से युक्त (गिरि-शिखरेषु) पर्वतों के शिखरों पर (चण्ड-किरण-अभिमुख-स्थितयः) सूर्य के सन्मुख स्थित हो (तपश्चरन्ति) तपश्चरण करते हैं।

भावार्थ—अस्नान व्रत के धारक जिन दिगम्बर सन्तों का शरीर घने मैल से लिप्त हो रहा है, तपश्चर्या के फलस्वरूप जिनके कर्मों के जड़ बन्धन भी शिथिल हो चुके हैं, जिनके कामवेदना, मान, राग, मोह आदि दोष व कषायें नष्ट हो चुकी हैं तथा जो मात्सर्य/ईर्ष्या-डाह से रहित हैं, ऐसे

दिगम्बर महासाधु शरीर से ममत्वरहित हो, संसार के भोगो की आशंका से रहित होकर ग्रीष्म-ऋतु मे जेठ मास मे सूर्य किरणो के समूह से संतप्त शिलाओ के समूह से युक्त, पर्वतो के शिखरो पर सूर्य की प्रचण्ड किरणो के सामने खड़े हो आतापन योग धारण कर घोर तपश्चरण करते हैं।

मुनिराज भयंकर आतप की वेदना कैसे सहते हैं ?

भद्रिका छन्द

सज्ज्ञानामृतपायिभिः, क्षान्तिपयः सिञ्च्यमानपुण्यकायैः ।
धृतसंतोषच्छत्रकैः, तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ।।४।।

अन्वयार्थ—(सत् ज्ञान-अमृत-पायिभिः) जो मुनिराज निरन्तर सम्यक् ज्ञानरूपी अमृत का पान करते है (क्षान्तिपय-सिञ्च्यमान-पुण्यकायैः) क्षमारूपी जल से जिनका पुण्यमय/पुनीत/पवित्र शरीर सीचा जा रहा है (धृत-सन्तोष-छत्रकैः) जिन्होने सन्तोषरूपी छत्र को धारण किया है, ऐसे (मुनीन्द्रैः) महासाधुओ के द्वारा (तीव्रः अपि तापः) घोर संताप भी (सह्यते) सहन किया जाता है।

भावार्थ—संसार-शरीर-भोगो से विरक्त दिगम्बर महामुनि सतत सम्यक्ज्ञान-रूपी अमृत का पान करते हुए ऊँचे-ऊँचे शिखरो पर ज्येष्ठ मास की गर्मी मे आतापन योग धारण करते है। क्योकि उन्होने अपने बाह्य शरीर को क्षमारूपी जल से सीचा है और अन्तरंग मे सन्तोषरूपी छत्र की छाया को प्राप्त किया है। सत्य है ऐसे सन्तो के द्वारा ही उपसर्ग-परीषह आदि को साम्य भाव से सहन किया जा सकता है।

वर्षा ऋतु में मुनिराज क्या करते हैं ?

दुबई

शिखिगलकज्जलालिमलिनै, र्विबुधाधिपचापचित्रितैः,
भीमरवैर्विसृष्टचण्डा शनि, शीतल वायु वृष्टिभिः ।
गगनतलं विलोक्य जलदैः, स्थगितं सहसा तपोधनाः,
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु, निशासु विशंकमासते ।।५।।

अन्वयार्थ—(शिखिगल-कज्जल-अलिमलिनैः) मयूर के कण्ठ, काजल और भ्रमर के समान काले (विबुध-अधिप-चाप-चित्रितैः) जो

इन्द्र-धनुष से चित्रित (भीमखैः) भयंकर गर्जना करने वाले (विसृष्ट-चण्ड-अशनि-शीतल-वायु-वृष्टिभिः) प्रचण्ड वज्र, शीतल हवा व वर्षा को छोड़ने वाले ऐसे (जलदैः) मेघों के द्वारा (स्थगितं) आच्छादित (गगनतलं विलोक्य) आकाश तल को देखकर (तपोधनाः) तपस्वी मुनिगण (सहसा) शीघ्र ही (विशङ्कं) भयरहित हो (विषमासु निशासु) विषम याने भयानक रात्रियों में (पुनरपि) बारबार (तरुत्तलेषु) वृक्षों के नीचे (आसते) विराजते हैं।

भावार्थ—वर्षाऋतु में जब बादल घनघोर घटा रूप में छा जाते हैं उस समय का वर्णन करते हुए आचार्य देव यहाँ कहते हैं—वर्षा ऋतु में जो श्याम वर्ण के बादल आते हैं वे मयूर के कण्ठ समान या काजल सम अथवा भ्रमर के समान काले होते हैं, तथा वे बादल अनेक इन्द्र-धनुष से स्थान-स्थान पर सुशोभित रहते हैं, वे बादल भयंकर शब्दों की गर्जना करते हैं, बिजली गिराते हैं, वायु को शीतल करते हैं, घनघोर वर्षा करते हैं, ऐसे भयानक घनघोर घटायुक्त बादलों से आच्छादित आकाश को देखकर भी वे मुनिराज निर्भय होकर विषम रात्रियों में वर्षायोग/वृक्षमूल योग धारण कर निर्भय हो विराजते हैं।

भद्रिका

जलधाराशरताडिता, न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः ।
संसार दुःख भीरवः, परीषहा-राति-घातिनः प्रवीराः ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—(जलधाराशरताडिता) जो जल की धारारूपी बाणों से ताड़ित हैं, (संसार-दुख-भीरवः) संसार के दुःखों से भयभीत हैं तथा (परीषह-आराति-घातिनः) परीषहरूपी शत्रुओं का घात करने वाले हैं, ऐसे (प्रवीराः) धैर्यवान आत्मबली (नृसिंहाः) श्रेष्ठ मुनिराज (सदा चरित्रतः न चलन्ति) सदा चरित्र से विचलित नहीं होते।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में वृक्षमूल योग धारक वे आत्मबलसम्पन्न महामुनिराज जल-धारारूपी बाणों से ताड़ित, संसार के दुःखों से भयभीत परीषहरूपी शत्रुओं का घात करने वाले हैं, वे धैर्यवान, आत्मबली, श्रेष्ठ मुनिराज कभी भी अपने चारित्र से विचलित नहीं होते।

शीतकाल में वे मुनिराज क्या करते हैं ?

दुबई छन्द

अविरतबहल तुहिनकण, वारिभिरंघ्रिपपत्र पातनै-
रनवरतमुक्तसात्काररवैः, परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः ।
इह श्रमणा धृतिकंबलावृताः शिशिरनिशां,
तुषार विषमां गमयन्ति, चतुःपथे स्थिताः ।।७।।

अन्वयार्थ—(अविरत-बहल-तुहिन-कण-वारिभिः) निरन्तर अत्यधिक हिमकण मिश्रित जल से सहित है अर्थात् जिस काल में ओलों की जलवृष्टि हो रही है (अङ्घ्रि-पपत्रपातनैः) जिनसे वृक्षों के पत्ते गिर रहे हैं और (अनवरत-मुक्त-सात्काररवैः) उससे निरन्तर "सायँ-सायँ" ऐसा बड़ाभारी शब्द होता रहता है (अथ) तथा (परुषैः अनिलैः) कठोर वायु के द्वारा (शोषित-गात्र-यष्टयः) सूख गयी है शरीर यष्टि दुर्बल है शरीर जिनका ऐसे (श्रमणाः) निर्ग्रन्थ महासाधु (इह) इस लोक में (धृति-कम्बलावृताः) धैर्यरूपी कम्बल से ढके हुए (तुषार-विषमां) हिमपात से विषम (शिशिर-निशां) शीतकाल की रात्रि को (चतुःपथे) चौराहे में (स्थिताः) स्थित हो (गमयन्ति) व्यतीत करते हैं।

भावार्थ—शीतकाल में जो वायु चलती है, वह सदा बरफ, ओलों की बड़ी-बड़ी बूँदो से भरी रहती है, शीतकाल की वायु वृक्षों के सब पत्ते गिरा देती है, उससे सदा "सायँ-सायँ" ऐसे बड़े भारी शब्द होते हैं, वायु अत्यन्त कठोर चलती है। झंझा वायु से जिनकी शरीररूपी लकड़ी सूख गई है, ऐसे वे मुनिराज चौराहे पर चौड़े मैदान मे विराजमान होकर और सन्तोषरूपी कम्बल को धारण कर बड़े सुख से शीतकाल की रात्रि को व्यतीत कर देते हैं।

स्तुति फल की याचना

भद्रिका

इति योगत्रयधारिणः, सकलतपशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः ।
परमानन्दसुखैषिणः, समाधिमग्र्यं दिशंतु नो भदंताः ।।८।।

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (योगत्रय-धारिणः) आतापन-वृक्षमूल-अभ्रावकाश योगों को धारण करने वाले (सकल तपः शालिनः) समस्त

तपों से शोभायमान (प्रवृद्ध-पुण्यकाया:) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त पुण्य के समूह से सहित और (परम-आनन्द-सुख-ऐषिण:) परमानन्द-अव्याबाध सुख की इच्छा करने वाले (भदन्ता:) भगवान् मुनिराज (न:) हम सबको (अग्र्यं) उत्कृष्ट (समाधिं) परम शुक्लध्यान (दिशन्तु) प्रदान करें।

भावार्थ—उष्ण ऋतु में आतापन योग, वर्षा ऋतु में वृक्षमूल योग और शीतकाल में अभ्रावकाश योग को धारण करने वाले, बारह तपों से शोभायमान, पुण्य के कीर्तिस्तंभ, निराबाध सुख के इच्छुक सन्त, भगवन्त महामुनि हम सबको उत्कृष्ट परमशुक्ल ध्यान प्रदान करें।

क्षेपकश्लोकानि:

योगीश्वरान् जिनान्सर्वान्योगनिर्धूत कल्मषान्।
योगैस्त्रिभिरहं वंदे, योगस्कंध प्रतिष्ठितान्॥१॥

अन्वयार्थ—(योगनिर्धूत कल्मषान्) धर्म्यध्यान शुक्लध्यानरूप योग से पापरुपी कल्मष को नष्ट करने वाले (योगस्कंधप्रतिष्ठितान्) धर्म्यध्यान शुक्लध्यान से प्रतिष्ठित/सुशोभित (सर्वान्) सभी (जिनान्) जिनों को (योगीश्वरान्) योगीश्वरों को (अहं) मैं (त्रिभि: योगै:) मन-वचन-काय तीन योगों के द्वारा (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—धर्म-शुक्लध्यान रूप योग से सुशोभित इन्हीं योगों से पापरूपी कल्मष को नष्ट करने वाले सभी जिनों को, योगीश्वरों को मैं मन-वचन-काय तीन योगों के द्वारा नमस्कार करता हूँ।

प्रावृट्कालेसविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासा:।
हेमंते रात्रिमध्ये, प्रतिविगतभयाकाष्ठवत् त्यक्तदेहा:॥१॥
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता, गिरिशिखरगता: स्थानकूटान्तरस्था:।
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनि:श्रेणिभूता:॥२॥

अन्वयार्थ—(प्रावृट्काले) वर्षा काल में (सविद्युत्प्रपतितसलिले) बिजली की कड़कड़ाहट के साथ जलवृष्टि होने पर (वृक्षमूलाधिवासा:) वृक्ष के नीचे अधिवास किया/योग धारण किया (हेमन्ते रात्रिमध्ये) शीत/ठंडी/हेमन्त ऋतु में रात्रि के समय (प्रतिविगतभया) भय से रहित

हो (काष्ठवत्त्यक्तदेहाः) काष्ठ/लकड़ी समान हो अपने शरीर से मोह को त्यागकर अभ्रावकाश धारण करते हुए (ग्रीष्मे) ग्रीष्म ऋतु में (सूर्यांशुतप्ता) जब सूर्य की किरणें संतप्त हों (गिरिशिखरगताः स्थानकूटान्तरस्थाः) पर्वत के शिखर पर ऊँची टेकरी पर जहाँ गर्मी अधिक हो, खड़े रहकर वहाँ योग धारण कर तपश्चरण करते हुए (मोक्षनिःश्रेणिभूताः) मोक्षरूप मंदिर की ऊपरी मंजिल पर चढ़कर (मुनिगणवृषभाः) मुनिसमूह में श्रेष्ठ हुए हैं (ते) वे मुनिश्रेष्ठ (मे) मुझे / मेरे लिये (धर्मं प्रदद्युः) प्रकृष्ट हितकर धर्म देवे।

भावार्थ—वर्षा-काल में जब बिजली गिर रही है, पानी बरस रहा है जिन्होंने वृक्षमूल योग धारण किया है और वृक्ष के नीचे अपना योग स्थापन किया है शीत ऋतु में निर्भय हो जिन्होंने अभ्रावकाश योग धारण कर खुले आकाश में अपना स्थान बनाया है तथा ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य संतप्त हो रहा है, आतापन योग धारण कर ऊँचे पर्वतों के शिखर, ऊँची टेकरी आदि स्थानों पर जहाँ अधिक उष्णता लगती है अपना स्थान बनाया है—मुनिसमूह में श्रेष्ठ मुनिराज जो मोक्ष मंजिल के ऊपर पहुँच चुके हैं; वे मुनिश्रेष्ठ मुझे/मेरे लिये प्रकृष्ट अहिंसामयी जिनधर्म प्रदान करें।

गिम्हे गिरिसिहरत्था, वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्चं ।।३।।

अन्वयार्थ—(गिह्ने गिरिसिहरत्था) ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर (वरिसायाले रुक्खमूल) वर्षा-काल में वृक्ष के नीचे (सिसिरे) ठंडी/शीत ऋतु में (रयणीसु) रात्रि में (वाहिरसयणा) खुले मैदान में ध्यान करते हैं (ते साहू) उन साधुजनों की (णिच्चं) नित्य (वंदिमो) वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—जो निर्ग्रंथ वीतरागी साधु ग्रीष्म ऋतु में पर्वतों के शिखर पर अधिक उष्ण स्थानों पर खड़े होकर ध्यान करते हैं, वर्षा ऋतु में वृक्षों के नीचे तपश्चरण करते हैं तथा शीत ऋतु में खुले मैदान में रात्रि में ध्यान करते हैं उन साधु श्रेष्ठों/मुनिज्येष्ठों की मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

गिरिकंदर दुर्गेषु, ये वसंति दिगंबराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।४।।

अन्वयार्थ—(ये) जो (दिगंबरा) दिगंबर/वीतरागी/निर्ग्रंथ साधु (गिरिकंदर दुर्गेषु) गिरि/पर्वतों में, पर्वतों की कन्दराओं में और (दुर्गेषु) भीषण जंगलों में (वसंति) रहते हैं (पाणिपात्र पुटाहारा:) हाथरूपी पात्र की अञ्जुली में आहार लेते हैं (ते) वे (परमां गतिम्) [मरणोत्तर/समाधि कर] उत्तम गति को (यांति) जाते है।

भावार्थ—जो दिगम्बर वीतरागी सन्त तीनों ऋतुओं में योग धारण करते हुए पर्वतों में, पर्वत की कन्दराओं, गुफा आदि में तथा भयानक जंगलों में निवास करते हैं वे समाधि कर उत्तम देवगति या मोक्ष-पद को प्राप्त करते हैं।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! योगि-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं अड्डाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु, आदावणरुक्खमूलअब्भो-वासठाणमोण-विरासणेक्कपास कुक्कुडासण चउछपक्ख-खवणादि जोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! मैंने (योगिभत्ति काउस्सग्गो कओ) योगभक्ति का कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउं) उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ। (अड्डाइज्जदीव-दोसमुद्देसु) अढाई द्वीप और दो समुद्रों में (पण्णारस-कम्मभूमिसु) पन्द्रह कर्मभूमियों में (आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-विरासणेक्कपास-कुक्कुडासण-चउ-छ-पक्ख-खवणादि जोग-जुत्ताणं सव्वसाहूणं) आतापन-वृक्षमूल-अभ्रावकाश योग, मौन, वीरासन, एकपार्श्व, कुक्कुटासन, पक्षोपवास आदि योगों से युक्त समस्त साधुओं की (णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि) वंदामि, णमस्सामि) नित्य सदाकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, उनको नमस्कार करता हूँ, मेरे (दुक्खक्खओ कम्मक्खओ) दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) उत्तम गति में गमन हो, (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (जिणगुण संपत्ति होऊ मज्झं) मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणों की प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने योगिभक्तिसम्बंधी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जम्बूद्वीप-धातकीखंड द्वीप और अर्द्ध पुष्कर इस प्रकार अढाई द्वीपों व पाँच भरत, पाँच ऐरावत, पाँच विदेह, १५ कर्मभूमियों में ग्रीष्मऋतु में आतापन योग, वर्षाऋतु में वृक्षमूल योग व शीत ऋतु में अभ्रावकाश योग [खुले आकाश के नीचे बैठना] तीनों योगों को धारण करने वाले, मौन धारण करने वाले, वीरासन, एक पार्श्व [एक कर्वट से सोना] और कुक्कुटासन [मुर्गे के समान आसन] आदि अनेक आसन लगाकर तपश्चरण करने वाले, बेला-बेला २ उपवास तेला-तेला ३ उपवास, पक्षोपवास और इनसे अधिक उपवास करने वाले समस्त मुनिराजों की मैं अर्चा, पूजा, वन्दना, आराधना करता हूँ। इनकी आराधना के फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और अन्त में जिनेन्द्रदेव के उत्तम गुणों की मुझे प्राप्ति हो।

।। इति श्रीयोगिभक्तिः ।।

आचार्य भक्ति

स्कन्द अथवा आर्यागीति छन्द

सिद्ध-गुण-स्तुति निरता-नुद्धूत-रुषाग्नि-जालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णान् मुक्ति युतःसत्यवचनलक्षितभावान् ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(सिद्धगुण-स्तुति-निरतान्) जो सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तों के गुणों की स्तुति में सदा लीन रहते हैं, (उद्धूत-रुषाग्निजाल-बहुल-विशेषान्) जिन्होंने क्रोधरूपी अग्नि समूह के अनन्तानुबंधी आदि अनेक विशेष भेदों को नष्ट कर दिया है, (गुप्तिभिः अभिसम्पूर्णान्) जो गुप्तियों से परिपूर्ण हैं (मुक्ति युक्तः) जो मुक्ति से सम्बद्ध हैं या मुक्ति लक्ष्मी से सदा सम्बन्ध रखने वाले है (सत्य-वचन-लक्षित-भावान्) सत्य वचनों से जिनके प्रशस्त, निर्मल भावों का परिचय प्राप्त होता है, ऐसे आचार्य परमेष्ठी भगवन्तों को (अभिनौमि[१]) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो आचार्य पद में स्थित हो सदा सिद्ध परमेष्ठी की स्तुति किया करते हैं, उनके सम्यक्त्व आदि आठ गुण व अनन्त गुणों का स्मरण किया करते हैं, जिन्होंने क्रोध कषायरूपी अग्नि के विभिन्न भेदों—अनन्तानुबंधी क्रोध, अप्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यान क्रोध आदि अथवा कषायरूपी अग्नि के अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ आदि अनेक भेदों को नष्ट कर दिया है, जो मन-वचन-काय गुप्ति के पालन में पूर्ण दक्ष हैं, जिनका सम्बन्ध सदा मुक्ति लक्ष्मी से बना हुआ है अर्थात् जो निकट भव्यता को प्राप्त हैं, सत्य, समीचीन वचनों से शुभ, निर्मल, पुण्य भावों से जिनके कुल-शील व चारित्र का परिचय प्राप्त होता है, ऐसे उत्तम गुणों के स्वामी आचार्य परमेष्ठी को मैं (पूज्यपाद) नमस्कार करता हूँ।

मुनिमाहात्म्य विशेषान्, जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो, बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान् ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(मुनि-माहात्म्य-विशेषान्) जो मुनियों के माहात्म्य विशेष को प्राप्त है अर्थात् जिन्हें मुनियों का विशिष्ट माहात्म्य प्राप्त है

१-यद्यपि श्लोक में नमस्कार सूचक कोई वाक्य नहीं है तथापि यह वाक्य श्लोक ग्यारहवें से लिया गया है, ११वें श्लोक तक यह सम्बन्ध लगाते जाना है।

(जिनशासन-सत् प्रदीप-भासुर-मूर्तीन्) जिनशासनरूपी समीचीन दीपक के प्रकाश से जिनका शरीर देदीप्यमान है अथवा जिनका देदीप्यमान शरीर जिनशासन को प्रकाशित करने के लिये समीचीन दीपकवत् है (सिद्धि प्रपित्सुमनसः) जिनका उत्तम, शुभ मन सिद्धि की प्राप्ति को चाहता है तथा जो (बद्ध-रजः-विपुल-मूल-घातन-कुशलान्) बँधे हुए कर्मो के विशाल मूल कारणों को घातने में कुशल हैं ऐसे उन आचार्य भगवन्तों को (अभिनौमि) मै मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो मुनियों में विशिष्ट माहात्म्य को प्राप्त हैं अर्थात् जो मुनिसमूह मे श्रेष्ठ हैं, जिनका रत्नत्रय से दीप्तिमान शरीर जिनशासन का लोक में उद्योतन के करने के लिये समीचीन दीपक के समान है। जिनका उत्तम मन सदा मुक्ति की प्राप्ति में ही लगा रहता है तथा जो अनादिकाल से आत्मा से बद्ध कर्मरज को मूल से क्षय करने में कुशल हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी को मेरा नमस्कार है।

गुणमणिविरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चितस्यधातॄन्सततम्।
रहितप्रमादचर्यान्, दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टि करान्।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(गुणमणि-विरचित-वपुषः) जिनका शरीर गुणरूपी मणियों से विरचित है, जो (सततम्) सदाकाल (षट्-द्रव्य-विनिश्चितस्य धातॄन्) छह द्रव्यों के निश्चय को धारण करने वाले हैं (रहित प्रमाद चर्यान्) प्रमाद चर्या से रहित हैं (दर्शनशुद्धान्) सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं तथा (गणस्य संतुष्टिकरान्) गण को अर्थात् साधु संघ को सन्तुष्ट करने वाले हैं (अभिनौमि) उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्त को मेरा नमस्कार है।

भावार्थ—जिन आचार्य परमेष्ठी भगवन्त का शरीर रत्नत्रय गुणरूपी मणियों से रचा गया है, जो सदाकाल छह द्रव्यों के चिन्तन में लगे हुए, मन में गाढ़ श्रद्धा को धारण करते हैं, निष्प्रमाद-प्रमादरहित चर्या से सुशोभित हैं, अर्थात् जिनकी चर्या में इन्द्रिय विषय, विकथा आदि प्रमादों की गंध भी नहीं है, जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं तथा जो सदा चतुर्विध संघ को सन्तुष्ट करने वाले हैं उनको मेरा नमस्कार है।

मोहच्छिदुग्रतपसः, प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभन व्यवहारान्।
प्रासुकनिलयाननघानाशा विध्वंसिचेतसो हतकुपथान्।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(मोहच्छित् उग्रतपस:) जिनका उग्र तप मोह का अथवा अज्ञान का नाश करने वाला है (प्रशस्त-परिशुद्ध-हृदय-शोभन-व्यवहारान्) प्रशस्त, शुभ और शुद्ध हृदय से जिनका व्यवहार उत्तम है, पर-उपकारक है, (प्रासुक निलयान्) जिनका निवास सम्मूर्च्छन जीवों से रहित प्रासुक रहता है (अनघान्) जो पापों से रहित है (आशा विध्वंसि चेतस:) जिनका चित्त आशा-तृष्णा, आकांक्षा को नष्ट करने वाला है और (हत-कुपथान्) जिन्होंने कुमार्ग को नष्ट कर दिया है, उन आचार्य परमेष्ठी की मैं अभिवन्दना करता हूँ।

भावार्थ—जिन्होंने बाह्य-अभ्यन्तर उग्र तपों के द्वारा मोह व अज्ञान का नाश कर दिया है। जिनका हृदय सदा शुभोपयोग व शुद्धोपयोग से आर्द्र रहता है, जिनका सदा सुयोग्य व स्व-पर उपकारक व्यवहार सदा रहता है, जो सदा जीवरहित भूमि में निवास करते है, जो पाँच पापो से रहित हैं, जिन्होंने आशा, तृष्णा आदि को तिलाञ्जलि दे दी है और जो कुमार्ग का खंडन करने वाले हैं या जिनका कुमार्ग/मिथ्यामार्ग नष्ट हो चुका है उन आचार्य भगवन्त की मैं स्तुति करता हूँ।

धारितविलसन्मुण्डान्वर्जितबहु दण्डपिण्डमण्डल निकरान्।
सकलपरीषहजयिन:, क्रियाभिरनिशंप्रमादत: परिरहितान्।। ५ ।।

अन्वयार्थ—(धारित-विलसत्-मुण्डान्) जिन्होंने शोभायमान दस मुण्डों मन-वचन-काय-पञ्चेन्द्रियाँ-हस्त-पाद को धारण किया है (वर्जित-बहु-दण्ड-पिण्ड-मण्डल-निकरान्) अधिक प्रायश्चित्त लेने वाले या अधिक अपराधी व अधिक प्रायश्चित्त लेने वाले आहार का ग्रहण करने वाले मुनियों के समूह से जो सदा रहित रहते हैं (सकल-परीषह-जयिन:) जो समस्त बाईस परीषहों को जीतने वाले है और (अनिशं) निरन्तर (प्रमादत: क्रियाभि:) प्रमाद से होने वाली क्रियाओं से (परिरहितान्) रहित हैं, उन आचार्य भगवन्तों को मेरा नमस्कार है।

भावार्थ—जिनके दस मुण्ड-मन-वचन-काय-पञ्चेन्द्रियाँ, हाथ व पैर पाप से रहित होने से सदा शोभा को प्राप्त होते हैं, अर्थात् जिनका सर्वांग पाप क्रियारहित होने से शोभायमान है, जो उन मुनियो के सम्पर्क से रहित हैं–जिनका समुदाय अपराधों की बहुलता के कारण बहुदण्ड,

बहुप्रायश्चित्त को ग्रहण करता है अथवा जिन मुनियों का समुदाय सदा दूषित आहार को ग्रहण करता है। जो सदा व्रत, उपवास आदि के द्वारा क्षुधादि परीषहों को जीतने मे ही लगे रहते हैं।

जो निरन्तर प्रमादरहित हो अपनी क्रियाओं में गतिशील रहते हैं, उन सदा निष्प्रमादी आचार्य को मेरा नमस्कार है।

अचलान्व्यपेतनिद्रान्, स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्या हीनान् ।
विधिनानाश्रितवासा-नलिप्तदेहान्विनिर्जितेन्द्रियकरिण: ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जो (अचलान्) उपसर्ग-परीषहों के आने पर भी अपने गृहीत संयम से कभी चलायमान नहीं होते हैं (व्यपेतनिद्रान्) जो विशेषकर निद्रारहित होते हैं अथवा जो विशेष नहीं मात्र अल्प निद्रा लेते हैं (स्थान-युतान्) खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करते हैं (कष्ट-दुष्ट-लेश्या हीनान्) जो अनेक प्रकार के दु:खों को देनेवाली कष्टदायी कृष्णादि अशुभ लेश्याओं से रहित हैं (विधि-नानाश्रित-वासान्) जो चरणानुयोग की विधि के अनुसार पर्वत, मंदिर, गुफा, शून्यगृह आदि नाना स्थानों में निवास करते हैं (अलिप्त-देहान्) जिनका शरीर केशर-चन्दन-भस्म आदि के लेप से रहित है तथा (विनिर्जित-इन्द्रियकरिण:) जिन्होंने इन्द्रियरूपी हाथियों को जीत लिया है, उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तों को मैं मन-वचन काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो घोर उपसर्ग परीषहों को जीतने में जो पर्वत समान अचल हैं, प्रमाद, आलस्य, निद्रारहित हैं, कायोत्सर्ग सहित हैं, कष्टकर, दु:ख देनेवाली नीच गति में ले जाने वाली कृष्ण-नील-कापोत ऐसी तीन अशुभ लेश्यारूपी परिणामों से जो रहित हैं, जिन्होंने चरणानुयोग में कथित विधि अनुसार पर्वत-मंदिर-गुफा आदि अनेक स्थानों में निवास किया है अथवा विधिवत् घर का त्याग कर "अनाश्रितवास" किया है जो घर रहित हैं, जिनका शरीर केशर-चन्दन-कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों या भस्म आदि से लिप्त नहीं है, जो इन्द्रियरूपी हाथियों को वश कर विजेता कहलाते हैं उन आचार्य परमेष्ठियों को मेरा शतशत नमन स्वीकार हो।

अतुलानुत्कुटिकासान्विविक्त चित्तानखंडितस्वाध्यायान् ।
दक्षिणभावसमग्रान्, व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—जो (अतुलान्) उपमारहित (उत्कुटिकासन्) उत्कुटिका आदि आसनों से तपश्चरण करते हैं (विविक्त-चित्तान्) जिनका हृदय सदा पवित्र है, हेयोपादेय बुद्धि से जागृत है (अखण्डित-स्वाध्यायान्) जो नियमित स्वाध्याय करने से अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी हैं (दक्षिणभाव-समग्रान्) जो सरल-छल-कपट रहित परिणामों से सहित हैं (व्यपगत-मद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान्) जो मान, राग, लोभ, अज्ञान और मात्सर्य/ईर्ष्याभाव से रहित हैं, उन आचार्यों को मेरा नमस्कार हो।

भावार्थ—अनुपम गुणों के धनी, पद्मासन, खड्गासन, गोदूहन, मृतकासन आदि नाना प्रकार के आसनों को लगाते हुए जो तप की आराधना में लगे रहते हैं, जिनका हृदय सदा हेय-उपादेय के विवेक से शोभायमान होने से अति पवित्र हैं जो अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग की ज्ञानधारा में सतत गोते लगाते रहते हैं, जिनके परिणाम छल-कपट-मायाचार आदि से रहित सरल हैं, जो सदा मान, राग, लोभ, अज्ञान व ईर्ष्या आदि कलुषित परिणामों से रहित होते हैं अथवा इन्हें जिन्होंने नष्ट कर दिया है उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तों को मेरा सम्यक् प्रकारेण नमस्कार है।

भिन्नार्तरौद्रपक्षान्संभावित, धर्मशुक्लनिर्मल हृदयान्।
नित्यंपिनद्धकुगतीन्, पुण्यान्गण्योदयान्विलीनगार वचर्यान्।। ८ ।।

अन्वयार्थ—(भिन्न-आर्त्त-रौद्र-पक्षान्) जिन्होंने आर्त्त और रौद्रध्यान के पक्ष को नष्ट कर दिया है, (सम्भावित-धर्म्य-शुक्ल-निर्मल-हृदयान्) जिनका हृदय यथायोग्य धर्म्यध्यान व शुक्लध्यान से निर्मल है, (नित्यं-पिनद्ध-कुगतीन्) जिन्होंने नरक आदि कुगतियों के द्वार को सदा के लिये बन्द कर दिया है (पुण्यान्) जो पुण्य रूप हैं, (गण्य-उदयान्) जिनका तप व ऋद्धि आदि का अभ्युदय गणनीय, प्रशंसनीय व स्तुत्य है (विलीन-गारव-चर्यान्) जिनके रस-ऋद्धि और सात इन तीन गारवों/अहंकारों का विलय हो चुका है, उन आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो सदा आर्त्त-रौद्र दोनों प्रकार के अशुभ ध्यान का त्याग कर धर्म व शुक्ल ऐसे शुभ व शुद्ध ध्यानों में लीन रहते हैं। जिनके लिये नरक-तिर्यञ्च गति रूप अशुभ गतियों के द्वार बन्द हो चुके हैं, जिनका आत्मा पवित्र है, तप व ऋद्धियों के अभ्युदय को प्राप्त जो सदाकाल

प्रशंसनीय हैं, तीन गारव रूप अहंकारों से रहित उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तों को मेरा नमस्कार है।

तरुमूलयोगयुक्ता-नवकाशातापयोगराग सनाथान्।
बहुजन हितकर चर्या- नभयाननघान्महानुभाव विधानान्।।९।।

अन्वयार्थ—जो (तरुमूल-योग-युक्तान्) वर्षा काल में वृक्ष के नीचे ध्यान कर "तरुमूलयोग" को धारण करते हैं (अवकाश-आतप-योग-राग-सनाथान्) शीतकाल में खुले आकाश में ध्यान कर अभ्रावकाश योग व ग्रीष्मकाल में सूर्य के सम्मुख खड़े हो ध्यान करते हुए आतापन योग सम्बन्धी राग से सहित है (बहुजन-हितकर-चर्यान्) जिनकी चर्या अनेक जनों का हित करने वाली है, जो (अभयान्) सप्त प्रकार के भयों से रहित हैं (अनघान्) जो पापों से रहित हैं (महानुभाव-विधानान्) जो बहुत भारी प्रभाव से युक्त है, उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो आचार्य परमेष्ठी वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे जहाँ पानी की एक-एक बूँद तलवार की तीक्ष्ण धारा सम गिर रही हैं, ध्यान करते हैं, शीत ऋतु में खुले आकाश में ध्यान कर अभ्रावकाशयोग की साधना करते हैं, ग्रीष्म ऋतु में आतापन योग धारण करते हैं, ऐसे त्रियोगों की धारणा में ही जिनका अनुराग सदा लगा रहता है, जिनकी चर्या बहुत लोगों का उपकार करने वाली है, जो निर्भय हो सदा विचरण करते हैं, जो पाँचों पापों से सर्वथा रहित हैं, जिनका लोक में बहुत भारी प्रभाव है, ऐसे आचार्य परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो।

ईदृशगुणसंपन्नान् युष्मान्भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्।
विधिनानारतमग्र्यान्- मुकुलीकृतहस्तकमल शोभित शिरसा ।।१०।।
अभिनौमि सकलकलुष, प्रभवोदय जन्म जरामरण बंधन मुक्तान्।
शिवमचल मनघमक्षय- मव्याहत मुक्ति सौख्यमस्त्विति सततम् ।।११।।

अन्वयार्थ—(ईदृशगुण-सम्पन्नान्) इस प्रकार ऊपर कहे गुणों से युक्त (स्थिर-योगान्) जो स्थिर योगी हैं अथवा मन-वचन-काय तीनों योग जिनके स्थिर हैं अथवा जो स्थिर ध्यान के धारक हैं, (अनारतम्) जो निरन्तर (अग्र्यान्) लोकोत्तर है तथा (सकल-कलुष-प्रभव-उदय-

जन्म-जरा-मरण-बन्धन-मुक्तान्) जो समस्त पापों या कलुषित परिणामों के कारण उत्पन्न होने वाले जन्म-जरा-मरण के बन्धन से मुक्त होने वाले हैं ऐसे (युष्मान्) आप आचार्य परमेष्ठी को (विशालया भक्त्या) बड़ी भारी भक्ति से (विधिना) विधिपूर्वक (मुकुलीकृत-हस्त-कमल-शोभित-शिरसा) अञ्जलिबद्ध हस्त-कमलो से सुशोभित शिर से (अभिनौमि) नमस्कार करता हूँ, मुझे (शिवम्) कल्याणरूप (अचलं) अविनाशी (अनघं) पापरहित (अक्षयं) क्षय रहित (अव्याहत-मुक्ति-सौख्यम् अस्तु इति) कभी नाश नही होने वाला मुक्ति सुख प्राप्त हो, इस प्रकार भावना करता हूँ।

भावार्थ—इस प्रकार ऊपर कहे गये महान् गुणों से युक्त, गुणों की प्रधानता से शोभायमान, घोर उपसर्ग परीषह में भी स्थिरयोगी, गुणों के धारक होने से लोक में प्रभाव है जो सदा गण में प्रधान नायक पद पर आसीन रहते हैं, जो अलौकिक हैं अर्थात् जिनकी अलौकिक चर्या है, जो पूर्वसंचित कर्मों के विपाक से प्राप्त जन्म-जरा-मरण आदि दोषों से अप्रभावित हैं, ऐसे आचार्य भगवन्तों को मैं विधिपूर्वक दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर हस्तकमलों से शिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ। हे आचार्य भगवन्त ! आपकी स्तुति के प्रसाद से मुझे अक्षय-अविनाशी-निर्दोष मुक्ति सुख प्राप्त हो।

क्षेपकश्लोकानि

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरित तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ।। १ ।।

अन्वयार्थ—जो (श्रुतजलधिपारगेभ्यः) श्रुतरूपी समुद्र के तीर को प्राप्त हैं (स्वपरमतिविभावनापटुमतिभ्यः) स्वमत-परमत के विचार करने में जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर है (सुचरिततपोनिधिभ्यो) सम्यक्चारित्र तप, जिनकी निधियाँ हैं (गुणगुरुभ्यः) जिनके पास पुष्कल/बहुत मात्रा में गुण हैं (गुरुभ्यो नमः) ऐसे गुरुओं को, आचार्यों को नमस्कार है।

भावार्थ—जो श्रुतरूपी समुद्र में पारंगत हैं, स्याद्वादमत जैनमत व एकान्तरूप परमत के विचार में, ज्ञान में जिनकी बुद्धि चतुर है, अति प्रखर

है, सम्यक्चारित्र और तप निधियाँ हैं तथा जिनके पास अतिमात्र में गुण हैं, ऐसे आचार्यों, गुरुओं को मेरा नमस्कार हो।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरण संदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिये सदा वंदे॥ २॥

अन्वयार्थ—जो (छत्तीसगुणसमग्गे) छत्तीस मूलगुणों से पूर्ण है (पंचविहारचारकरण संदरिसे) पंचप्रकार के आचार का स्वयं आचरण करते हैं तथा शिष्यों से कराते हैं (सिस्साणुग्गहकुसले) शिष्यों पर अनुग्रह करने में जो निपुण हैं ऐसे (धम्माइरिये) धर्माचार्य की (सदा वंदे) मैं सदा वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—जो आचार्य परमेष्ठी १२ तप १० धर्म ६ आवश्यक ३ गुप्ति और ५ आचार रूप ३६ मूलगुणों से पूर्ण हैं, पंचाचार-दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का स्वयं आचरण करते हैं शिष्यो से भी आचरण करवाते हैं, शिष्यों पर अनुग्रह करने में निपुण है; ऐसे धर्माचार्य की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

गुरुभत्ति संजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति॥ ३॥

अन्वयार्थ—(गुरुभत्ति संजमेण य) गुरुभक्ति और संयम से [जीव] (घोरं संसारसायरं) घोर/भीषण संसार-सागर को (तरंति) पार करते हैं (अट्ठकम्मं छिण्णंति) अष्टकर्मों का क्षय करते हैं (जम्मणमरणं ण पावेंति) जन्म-मरण को नहीं पाते हैं।

भावार्थ—हे भव्यात्माओं ! गुरुभक्ति व संयम की आराधना से जीव संसाररूपी भीषण समुद्र को पार करते हैं, व अष्टकर्मों का क्षय कर जन्म-मरण के दु:खों से छूट जाते हैं।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्नि होत्राकुला:।
षट्कर्माभिरतास्तपोधन धना:, साधुक्रिया: साधव:॥
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क तेजोऽधिका:।
मोक्षद्वार कपाट पाटनभटा: प्रीणंतु मां साधव:॥ ४॥

अन्वयार्थ—(ये) जो आचार्य परमेष्ठी (नित्यं) नियम से (व्रतमंत्र

होमनिरता) व्रतरूपी मंत्रों से कर्मों का होम करने में निरत/लगे हुए हैं। (ध्यानाग्नि होत्राकुला:) ध्यानरूपी अग्नि के कर्मरूपी हवी/ ईंधन को देते हैं। (षट्कर्माभिता: तपोधनधना:) जो तपोधन, छह आवश्यक कर्मों में सदा लगे रहते हैं तथा तपरूपी धन जिनके पास है (साधुक्रिया: साधव:) पुण्य कर्मों के करने मे सदैव तत्पर रहते हैं (शीलप्रावरणा) अठारह हजार शील ही जिनके ओढने को वस्त्र है (गुणप्रहरणा:) छत्तीस मूलगुण व चौरासी लाख उत्तरगुण ही जिनके पास शस्त्र हैं (चन्द्र-अर्क तेज: अधिका:) जिनका तेज सूर्य और चन्द्रमा से भी अधिक है (मोक्षद्वार कपाट पाटनभटा:) मोक्ष के द्वारको उघाड़ने/खोलने में जो शूर हैं ऐसे (साधव:) आचार्य परमेष्ठी/साधुजनों (मां) मुझ पर (प्रीणंतु) प्रसन्न होवें।

भावार्थ—जो आचार्य परमेष्ठी व्रतरूपी मंत्रों से कर्मों का होम करते हैं, ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी ईंधन को देते हैं, षट् आवश्यक क्रियाओं में सदा तत्पर रहते हैं, तपरूपी धन जिनका सच्चा धन है, पुण्य कर्मों में कुशल हैं, अठारह हजार शीलों की चुनरिया जिनका वस्त्र है, मूल व उत्तर-गुण जिनके पास शस्त्र हैं, सूर्य और चन्द्र का तेज भी जिनके सामने लज्जित हो रहा है, मोक्षमंदिर के द्वार को खोलने में शूर हैं, ऐसे वे तपोधन मुझ पर प्रसन्न होवें।

गुरव: पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शन नायका: ।
चारित्रार्णव गंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशका: ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—जो (ज्ञानदर्शन नायका:) सम्यक्ज्ञान व सम्यग्दर्शन के स्वामी हैं, (चारित्र) सम्यक्चारित्र के पालने में (आर्णवगंभीरा) समुद्र के समान गंभीर हैं (मोक्षमार्गोपदेशका:) भव्यों को मुक्तिमार्ग का उपदेश देने वाले हैं वे (गुरव:) आचार्यदेव/गुरुदेव (वो) हमारी (पान्तु) रक्षा करें।

भावार्थ—सम्यक्ज्ञान व दर्शन के स्वामी, चारित्र पालन में समुद्रवत् गंभीर, मोक्षमार्गोपदेशक आचार्यगुरुदेव हमारी रक्षा करें।

क्षेपक श्लोक

प्राज्ञ: प्राप्तसमस्त शास्त्र हृदय, प्रव्यक्तलोकस्थिति: ।
प्रास्ताश: प्रतिभापर प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तर: ।।

प्राय: प्रश्नसह: प्रभु: परमनो हारी परानिन्दया ।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधि:, प्रस्पष्ट मिष्टाक्षर: ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जो (प्राज्ञ:) बुद्धिमान हैं (प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय:) समस्त शास्त्रों के रहस्य के ज्ञाता हैं (प्रव्यक्तलोकस्थिति:) लोकव्यवहार के उत्तमरीति से जानने वाले अथवा लोक स्थिति के प्रकट ज्ञाता हैं (प्रास्ताश:) संसार मे निस्पृह है (प्रतिभापर:) समयानुसार द्रव्य-क्षेत्र-काल के परख/ आगे-आगे होने वाले शुभाशुभ को जानने में प्रतिभासम्पन्न (प्रशमवान्) राग-द्वेष रहित (प्रागेव दृष्टोत्तर:) प्रश्नों के उत्तर पहले ही जिनके मन में तैयार रहते हैं (प्राय: प्रश्नसह:) किसी के द्वारा बहुत प्रश्नों के पूछे जाने पर भी जिन्हें कभी क्रोध नही आता (प्रभु:) सब लोगों पर जिनका प्रभाव है (परमनोहारी) दूसरो के मन को जो हरने वाले हैं (पर अनिन्दया) दूसरो मे निन्दा से रहित है (धर्मकथां ब्रूयाद्) धर्मकथा को कहने वाले है (गुणनिधि:) गुणो के खानि हैं (प्रस्पष्ट मिष्टाक्षर:) अच्छी तरह स्पष्ट व मधुर वाणी जिनकी है ऐसे गुणों से युक्त (गणी) आचार्य परमेष्ठी होते है ।

भावार्थ—विद्वान्, समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ, लोकज्ञ, निस्पृह, प्रतिभावान/ समय सूचकतामे पारंगत, समभावी, प्रश्नों के पूर्व उत्तर ज्ञाता, बहु प्रश्नो को सहने मे समर्थ, दूसरो के मन को हरने वाले/मनोज्ञ, पर-निन्दा से रहित, मधुर व स्पष्ट वक्ता,गुण निधि ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं ।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने ।
परिणतिरुरुद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ ।।
बुधनुतिरनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा ।
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—(श्रुतं अविकलं) पूर्ण ज्ञान (शुद्धा वृत्ति:) शुद्ध आचरण (पर प्रतिबोधने वृत्ति) दूसरों को उपदेश देने में प्रवृत्ति (परिणतिरुरुद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ) भव्यजीवों को समीचीन मार्ग में लगाने में विशेष पुरुषार्थ करना (बुधनुति:) विद्वानों से पूज्य (अनुत्सेक:) मार्दव भावी (लोकज्ञता) लोकव्यवहार के ज्ञाता (मृदुता) कोमलता (अस्पृहा) निस्पृहता (गुणा) गुण (यस्मिन्) जिनमें हैं (यतिपति स:) वह मुनियों

का स्वामी (सताम् गुरुः) सज्जनों का गुरु है (न अन्ये च) और अन्य नहीं।

भावार्थ—पूर्णज्ञान, शुद्ध आचरण, परोपदेशक, भव्यों को समीचीन पथ में लगाना, विद्वन्मन्य, विनयवान, मार्दवता, लोकज्ञता, निस्पृहता गुण जिनमें है वे मुनियों के स्वामी ही सज्जनो के गुरु आचार्य हो सकते हैं, दूसरे अन्य कोई नही।

विशुद्धवंशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियोधर्मकथाप्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभेष्वविसक्तचित्तो बुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—जो (विशुद्धवंशः) विशुद्ध वंश मे उत्पन्न हुए हैं (परमाभिरुपः) सुन्दर, सुडौल रूप के धारक हैं (जितेन्द्रियः) इन्द्रिय-विजेता है (धर्मकथाप्रसक्तः) धर्मकथाओं के उपदेश में रत हैं (सुख-ऋद्धि-लाभेषु-विसक्त-चित्तः) सुख, ऋद्धि/ऐश्वर्य आदि के लाभो में जिनके मन में आसक्ति/इच्छा उत्पन्न नही होती है ऐसे यति (सदाचार्य) सच्चे आचार्य हैं (इति) इस प्रकार (बुधैः) बुद्धिमानों के द्वारा (प्रशस्तः) कहा गया है।

भावार्थ—जो शुद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं, सुन्दर, सुडौल, रूपवान् हैं, इन्द्रियविजेता हैं, धर्म-कथाओं के उपदेशक हैं, सुख, ऋद्धि आदि लाभ में आसक्त रहित हैं ऐसे यति आचार्य हैं ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

विजितमदनकेतुं निर्मलं निर्विकारं,
रहितसकलसंगं संयमासक्त चित्तं।
सुनयनिपुणभावं ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चम्,
जननमरणभीतं सद्गुरु नौमि नित्यम् ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—जिनने (विजितमदनकेतुं) कामदेव की ध्वजा को जीत लिया है (निर्मलं) शुद्ध हैं (निर्विकारं) विकाररहित हैं (रहितसकल संगं) समस्त परिग्रह से रहित हैं (संयमासक्त चित्तम्) संयम में जिसका चित्त आसक्त है (सुनयनिपुणभावं) समीचीन नयों के वर्णन करने में जो चतुर हैं (ज्ञाततत्त्वप्रपंचम्) जान लिया है तत्त्वों के विस्तार को जिसने (जननमरणभीतं) जन्म-मरण से जो भयभीत हैं उन (सद्गुरु) सच्चे गुरु को (नित्यम्) सदाकाल (नौमि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—कामदेव के विजेता, शुद्ध, विकाररहित, समस्त परिग्रह के त्यागी, द्रव्य-भाव संयम या इन्द्रिय-प्राणी संयम में मन को लगाने वाले, समीचीन नयों के वर्णन में निपुण, पूर्ण तत्त्वज्ञ, जन्म-मृत्यु से भयभीत सच्चे निर्ग्रंथ गुरुओं को मै सदा नमस्कार करता हूँ।

सम्यग्दर्शन मूलं, ज्ञानस्कंधं चारित्रशाखाढ्यम्।
मुनिगणविहगाकीर्ण-माचार्य महाद्रुमम् वन्दे ।।१०।।

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनमूलं) सम्यग्दर्शन जिसकी जड़ है (ज्ञानं स्कंधं) ज्ञान जिसका स्कन्ध है (चारित्रशाखाढ्यम्) चारित्ररूपी शाखा से जो युक्त है (मुनिगण-विहगाकीर्णं) मुनिसमूहरूपी पक्षियों से जो युक्त हैं उन (आचार्यमहाद्रुमम्) आचार्यरूप महावृक्ष को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—आचार्य परमेष्ठी को एक विशाल वृक्ष की उपमा दी गई है। वह आचार्यरूपी वृक्ष कैसा है—सम्यग्दर्शन उसकी जड़, ज्ञान उसका स्कन्ध है, चारित्र–विविध प्रकार के सामायिक आदि चारित्र इसकी शाखाएँ हैं, मुनिरूपी पक्षीगण इसमें सदा धर्म्यध्यान में लीन रहकर चहकते रहते है ऐसे इस आचार्य रूपी महावृक्ष को मैं नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण, सम्मदंसण सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं, उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं, सव्वसाहूणं, णिच्चकालं : अंचेमि, पूजेमि, , वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ-मज्झं।

अर्थ—(भंते!) हे भगवन्! मैंने (आयरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ) आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउं) उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त जुत्ताणं) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त (पंचविहाचाराणं आयरियाणं) पञ्चाचार के पालक आचार्य परमेष्ठी की (आयारादि

सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं) आचाराङ्ग द्वादशांग श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्याय परमेष्ठी की (तिरयणगुणपालणरयाणं) रत्नत्रयरूपी गुणों के पालन करने में सदा तत्पर ऐसे (सव्वसाहूणं) सभी साधु परमेष्ठी की मैं (णिच्चकालं) सदाकाल (अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे (दुक्खक्खओ-कम्मक्खओ) दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमणं) उत्तम गति में गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो, तथा (जिणगुणसंपत्ति होऊ मज्झं) मेरे लिये जिनेन्द्रदेव के गुणों की प्राप्ति हो।

भावार्थ—मैं आचार्यभक्ति सम्बंधी कायोत्सर्ग के बाद उसकी आलोचना करता हूँ। रत्नत्रयधारक, पञ्चाचारपालक आचार्य परमेष्ठी, द्वादशांग श्रुत के उपदेशक उपाध्याय परमेष्ठी तथा रत्नत्रयरूप गुणों से मण्डित साधु परमेष्ठी की मैं सदा काल अर्चा, पूजा, वन्दना, आराधना करता हूँ, इनके फलस्वरूप मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिपूर्वक मरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुणों की प्राप्ति हो।

।। इत्याचार्यभक्तिः ।।

पञ्चमहागुरुभक्तिः

आर्याछन्दः

श्रीमदमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित-मणि-किरण-वारि-धाराभिः ।
प्रक्षालित-पद-युगलान्, प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्-अमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित-मणि-किरण-वारि-धाराभि) श्रीमान्-अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग लक्ष्मी से शोभायमान, इन्द्रो के मुकुटो मे जडे हुए मणियो की किरणरूप जल धाराओ से (प्रक्षालित-पद-युगलान्) प्रक्षालित हुए है चरण-युगल जिनके ऐसे (जिनेश्वरान्) अरहन्त देव को (भक्त्या) भक्ति से (प्रणमामि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—अन्तरङ्ग मे अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी व बाह्य समवसरण विभूति से शोभा को प्राप्त भवनवासियो के ४०, व्यन्तर देवो के ३२, कल्पवासियो के २४, ज्योतिषियो के २, मनुष्यो का चक्रवर्ती व तिर्यञ्चो का सिंह इस प्रकार १०० इन्द्रो से वन्दित है चरण-कमल जिनके ऐसे वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी अरहन्त परमात्मा को मै भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अष्टगुणैः समुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन् ।
सिद्धान् सतत-मनन्तान्- नमस्करो-मीष्ट तुष्टि संसिद्ध्यै ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जिनके (प्रणष्ट-दुष्ट-अष्ट-कर्मरिपु-समितीन्) दुष्ट आठ कर्मरूपी शत्रुओ का समूह पूर्ण क्षय को प्राप्त हो गया है जो (अष्टगुणैः समुपेतान्) आठ गुणो से युक्त है ऐसे (अनन्तान् सिद्धान्) अनन्त सिद्धो को (सततम्) सदा /निरन्तर, (ईष्ट-तुष्टि-संसिद्ध्यै) इच्छित, सन्तोष की समीचीन सिद्धि के लिये (नमस्करोमि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिन्होने ज्ञानावरण आदि आठ दुष्ट कर्मो के समूह का पूर्ण क्षय कर दिया जो आठ कर्मो के अभाव मे सम्यक्त्व आदि आठ महागुणो से शोभायमान है ऐसे अनन्त सिद्धो को मै इच्छित, तुष्टिकारक, समीचीन सिद्धि की प्राप्ति के लिये सदा नमस्कार करता हूँ।

साचार-श्रुत-जलधीन्- प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम् ।
आचार्याणां पदयुग- कमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(साचार-श्रुत-जलधीन्) आचारवान होकर श्रुतरूपी समुद्र को (प्रतीर्य) उत्कृष्टपने तैरकर जो (शुद्ध-उरु-चरण-निरतानां) शुद्ध, निर्दोष, आचरण/चारित्र के पालन करने सदा निरत/लगे हुए है। ऐसे (आचार्याणाम्) आचार्यो के (पद-कमल-युगलानि) चरण कमलो को (अहं) मै (मे शिरसि) अपने शिर पर (दधे) धारण करता हूँ। अर्थात् उनके चरणो मे सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो आचाराङ्ग सहित पूर्ण द्वादशांग श्रुतरूपी समुद्र मे पारंगत हो, निर्दोष, शुद्ध पंचाचार के पालन करने मे सदा तत्पर रहते है, ऐसे आचार्य भगवन्तो के पुनीत चरण-युगल को मै अपने सिर पर धारण करता हूँ। उन्हे भक्ति से सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

मिथ्या-वादि-मद्रोग्र-ध्वान्त-प्रध्वन्सि-वचन-संदर्भान् ।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(मिथ्यावादी-मद-उग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचन-सन्दर्भान्) जिनके वचनो के सन्दर्भ, प्रकरण मिथ्यावादियो के बढते हुए अहंकार व अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले है, ऐसे (उपदेशकान्) उपाध्याय परमेष्ठियो को "मै" (मम दुरित-अरिप्रणाशाय) अपने पापरूपी शत्रुओ का नाश करने के लिये (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूँ। अर्थात् मै अपने पापो की शान्ति के लिये उनकी शरण मे जाता हूँ।

भावार्थ—उपाध्याय परमेष्ठी स्वसमय-पर समय के ज्ञाता, नित्य धर्मोपदेश मे निरत रहते है उनके हित-मित-प्रिय प्रवचनो के प्रकरण को सुनते ही मिथ्यावादियो का मान गलित हो जाता है, अज्ञान, अंधकार विलीन हो जाता है। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी की शरण मे मै भी जाता हूँ। आपके चरण-कमलो के सम्पर्क से, शरणार्थी के पापो का क्षय हो।

सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशका-मेय-बोध-सम्भूताः ।
भूरि-चरित्र-पताकास्ते साधु-गणास्तु मां पान्तु ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—जो (सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशका) सम्यग्दर्शनरूपी दीपक को प्रकाशित करने वाले है, (मेय बोध-संभूताः) जो जीवादि ज्ञेय पदार्थो के समीचीन ज्ञान से सम्पन्न है (भूरि-चरित्र-पताकाः) उत्कृष्ट चारित्ररूपी

पताका से सहित है (ते) वे (साधुगणा·) साधु समूह (मां पान्तु) मेरी रक्षा करे।

भावार्थ—"दिगम्बर साधुओ का शरीर चैत्यगृह है"। जो सम्यग्दर्शन-रूपी दीपक को प्रकाशित कर भव्य जीवो के अनादि-कालीन मिथ्यात्व के अन्धकार को नष्ट करने वाले है। जो साधुगण जीवादि नौ पदार्थो के ज्ञान से सम्पन्न है, जिनकी उत्कृष्ट चारित्र-रूपी ध्वजा लोक मे फहरा रही है, उन साधुगण/ महासाधुओ की शरण मे मै जाता हूँ, ये साधुसमूह मेरी रक्षा करे।

जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधु-वरानमल गुण गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कार-पदै-स्त्रि-सन्ध्य-मभिनौमि मोक्ष-लाभाय।। ६ ।।

अन्वयार्थ—(अमल-गुणगण-उपेतान्) निर्मल अनन्त गुणो से युक्त (जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधुवरान्) अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा उत्तम साधु पञ्च परमेष्ठियो को (मोक्ष-लाभाय) मोक्ष की प्राप्ति के लिये (पञ्च-नमस्कार-पदै.) पञ्च नमस्कार पदो के द्वारा (त्रिसन्ध्यम्) तीनो संध्याओ मे (अभिनौमि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो अनन्त निर्मल गुणो से शोभायमान है ऐसे अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय तथा उत्तम साधु इन पञ्च परमेष्ठियो को मै मोक्ष की प्राप्ति के लिये णमोकार मन्त्र रूप पॉच पदो के द्वारा तीनो सन्ध्याओ मे नमस्कार करता हूँ। *अर्थात् अनन्त गुणो के समुद्र पञ्चपरमेष्ठी की आराधना* मुक्ति की प्राप्ति के लिये एकमात्र अमोघ कारण है।

अनुष्टुप

एषः पञ्चनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं भवेत्।। ७ ।।

अन्वयार्थ—(एष· पञ्चनमस्कार:) यह पञ्चनमस्कार मन्त्र (सर्व-पाप प्रणाशन·) सब पापो का नाश करने वाला है (च) और (सर्वेषां मङ्गलानां) सब मंगलो मे (प्रथमं मङ्गलं) पहला मङ्गल माना गया है।

भावार्थ—परमेष्ठी वाचक, अनादि निधन यह पञ्च नमस्कार मन्त्र सब पापो को नाश करने वाला, लोक में सब मंगलो मे श्रेष्ठ प्रथम मंगल है।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायाः सर्वसाधवः ।
कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे, निर्वाण परमश्रियम् ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—(अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्यायः) अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय (सर्वसाधवः) समस्त साधु (सर्वे) ये सभी (मङ्गलाः) मङ्गल रूप है अतः ये पापो के नाशक है, ये मेरे लिये (निर्वाण परमश्रियं) मोक्षरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी को (कुर्वन्तु) करे । मुझे मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करे ।

भावार्थ—तीनो लोको मे मङ्गलरूप-पापो के नाशक, सुख के प्रदायक, अर्हन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु ये पञ्चपरमेष्ठी मेरे लिये उत्कृष्ट मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करे ।

आर्याछन्द

सर्वान् जिनेन्द्र चंद्रान्, सिद्धानाचार्य पाठकान् साधून् ।
रत्नत्रयं च वंदे, रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—मै (रत्नत्रयसिद्धये) रत्नत्रय की सिद्धि के लिये (सर्वान् जिनेन्द्र चन्द्रान्) सभी अरहन्त भगवन्तो को (सिद्धान्-आचार्य-पाठकान्) सब सिद्धो को, सब आचार्यो, उपाध्यायो को (साधून्) सब साधुओ को (च) और (रत्नत्रयं) रत्नत्रय को (भक्त्या) भक्ति से (वन्दे) नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—मै भक्तिपूर्वक समस्त अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय व साधुओ की तथा रत्नत्रय की वन्दना करता हूँ, मुझे रत्नत्रय की सिद्धि हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो ।

पांतु श्रीपादपद्मानि, पञ्चानां परमेष्ठिनां ।
लालितानि सुराधीश, चूडामणि मरीचिभिः ।।१०।।

अन्वयार्थ—(पञ्चानां परमेष्ठिनां) पॉचो परमेष्ठियो के (सुर-अधीश चूडामणि मरीचिभिः) देवो के स्वामी इन्द्र के चूड़ामणि की किरणो से (लालितानि) सेवित या सुशोभित (श्रीपादपद्मानि) श्री चरण-कमल (पान्तु) मेरी रक्षा करे ।

भावार्थ—देवो का अधिपति इन्द्र भी जिनके चरण-कमलो की सेवा

में नतमस्तक रहता है, ऐसे पञ्चपरमेष्ठी भगवान् के पावन चरण-कमल मेरी रक्षा करें।

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगांगैरष्टभिः स्तुवे ।।११।।

अन्वयार्थ—(प्रातिहार्यैः) आठ प्रातिहार्यों से (जिनान्) अरहन्तों की (गुणैः) अष्टगुणों से (सिद्धान्) सिद्धों की (स्वमातृभिः) अष्ट प्रवचन मातृकाओं से (सूरीन्) आचार्यों की (विनयैः) चार प्रकार के विनयों के द्वारा (पाठकान्) उपाध्यायों की और (अष्टभिः योग अङ्गैः) आठ प्रकार के योग के अङ्गों से (साधून्) साधुओं की (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—जो अरहन्त भगवान् अशोक वृक्ष, सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौसठ चँवर और दुंदुभिनाद इन आठ प्रातिहार्यों से शोभायमान हैं, जो सिद्ध भगवान् सम्यक्त्व, दर्शन, क्षायिक ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्य और निराबाधत्व इन आठ गुणों से शोभायमान हैं, जो आचार्य परमेष्ठी ५ समिति व तीन गुप्तियों इन आठ प्रवचन मातृकाओं से शोभित हैं, जो उपाध्याय परमेष्ठी दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधना रूप ४ प्रकार के विनयों से शोभायमान हैं तथा जो साधु परमेष्ठी यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा व समाधि से शोभित हैं उन साधु परमेष्ठी की मैं स्तुति, वन्दना करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं, अरहंताणं, अट्ठ-गुण-सम्पण्णाणं, उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, सिद्धाणं, अट्ठ-पवय-णमउ संजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण पालणरदाणं सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! मैंने (पंचमहागुरुभति काउस्सग्गो

कओ) पञ्चमहागुरु भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया (तस्सालोचेउं) उनकी आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। (अट्ठ-पाडिहेर संजुत्ताणं अरहंताणं) आठ प्रातिहार्यो से युक्त अरहन्तो को (अट्ठ-गुण संपण्णाणं) आठ गुणो से सम्पन्न (उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं) उर्ध्वलोक के मस्तक पर स्थित सिद्धो को (अट्ठ पवयण-मउ-सजुत्ताणं) अष्ट प्रवचन मातृकाओ से युक्त (आयरियाणं) आचार्यो को (आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं) आचाराङ्ग आदि श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायो को (तिरयणगुणपालणरदाण सव्वसाहूण) रत्नत्रय गुणो के पालन करने मे सदा रत रहने वाले सब साधुओ को (णिच्चकालं) नित्यकाल (अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, मेरे (दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण, समाहिमरणं) दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो (जिनगुणसंपत्ति होऊ मज्झं) मुझे जिनेन्द्रदेव के अनुपम अनन्त गुणो की प्राप्ति हो।

भावार्थ–" मै गुणो से मंडित पञ्चपरमेष्ठी भगवन्तो की पूजा, अर्चा, वन्दना करता हूँ।" मेरे दुखो का, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति, उत्तम गति की प्राप्ति हो, समाधि की प्राप्ति हो तथा जिनेन्द्र देव के गुणो की प्राप्ति हो।

।। इति पञ्च गुरु भक्तिः ।।

शान्ति भक्ति

''शान्त्यष्टकम्''

शार्दूलविक्रीडितम्

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजाः,
हेतुस्तत्र विचित्र दुःख निचयः संसार घोरार्णवः ।
अत्यन्त स्फुरदुग्र रश्मि निकर व्याकीर्ण भूमण्डलो,
ग्रैष्मः कारयतीन्दु पाद सलिल-च्छायानुरागं रविः ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(भगवन्!) हे भगवन्! (प्रजाः) संसारी भव्य जीव (ते पादद्वयं) आपके दोनों चरणों की (शरणं) शरण को (स्नेहात्) स्नेह से (न प्रयान्ति) प्राप्त नहीं होते हैं। (तत्र) उसमें (विचित्र दुःख निचयः) विचित्र प्रकार का कर्मों का समूह ऐसा (संसार घोर आर्णवः हेतुः) संसाररूपी घोर/भयानक समुद्र ही एकमात्र कारण है। उचित ही है (अत्यन्त स्फुरत्-उग्ररश्मि-निकर-व्याकीर्ण-भूमण्डलः) अत्यन्त देदीप्यमान प्रचण्ड किरणों के समूह से पृथ्वी मण्डल को व्याप्त करने वाला (ग्रैष्मः रविः) ग्रीष्म ऋतु का सूर्य (इन्दु-पाद-सलिल-च्छाया-अनुरागं) चन्द्रमा की किरण, जल व छाया से अनुराग को (कारयति) करा देता है।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो! संसारी भव्यजीव आपके चरण-कमलों की शरण में मात्र स्नेह से नहीं आते हैं किन्तु जिस प्रकार ज्येष्ठ मास में सूर्य की तप्तायमान प्रचण्ड किरणों से जहाँ भूमण्डल तपित हुआ है वहाँ उस स्थिति में मानव चन्द्रमा की शीतल चाँदनी/किरणों, शीतल जल व वृक्षों की सघन छाया से स्वयं ही स्वाभाविक रूप से अनुराग करने लगता है; ठीक उसी प्रकार संसाररूपी भयानक समुद्र में निधत्ति, निकाचित आदि विविध कर्मों से पीड़ित, संतप्त ऐसे भव्य जीव शान्ति की प्राप्ति के लिये स्वयं ही आपके पुनीत शान्तिप्रदायक दोनों चरण-कमलों की शरण को प्राप्त होते हैं। अर्थात् जैसे संसारी जीवो का गर्मी का संताप शीतल चन्द्र किरण, जल आदि के द्वारा शान्त होता है वैसे ही भव्यजीवों का कर्मों का भयानक दुख आपके चरण-शरण में आने से दूर होता है।

प्रणाम करने का ऐहिक फल

क्रुद्धाशीर्विष दष्ट दुर्जय विषय ज्वालावली विक्रमो,
विद्या भेषज मन्त्र तोय हवनै र्याति प्रशान्तिं यथा ।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज युग स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्,
विघ्नाःकायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मयः ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार (क्रुद्ध-आशीर्विष-दष्ट-दुर्जयविषय-ज्वालावली-विक्रमः) अत्यन्त क्रोध को प्राप्त साँप के द्वारा डसे मनुष्य के दुर्जेय विष, ज्वालाओं के समूह का प्रभाव, महाशक्ति (विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनैः) विद्या, औषधि, मन्त्र, जल और हवन के द्वारा (प्रशान्तिं याति) पूर्ण शान्ति को प्राप्त हो जाता है—नाश को प्राप्त हो जाता है (तद्वत्) उसी प्रकार (ते) आपके (चरणारुणाम्बुज-युगः) दोनों चरणकमलों की (स्तोत्र-उन्मुखानां) स्तुति के सन्मुख जीवों के (विघ्नाः) समस्त/नाना प्रकार के विघ्न (च) और (कायः विनायकाः) शरीरिक बाधाएँ पीड़ाएँ या शरीर सम्बन्धी रोग आदि (सहसा) शीघ्र ही (शाम्यन्ति) शान्त हो जाते हैं (अहो ! विस्मयः) यह अत्यधिक आश्चर्य की बात है ।

भावार्थ—लोक में जिस प्रकार प्रचण्ड क्रोध को प्राप्त ऐसे सर्प से डसे गये मनुष्य का असह्य, भयानक विष भी गारुड़ी विद्या या गारुड़ी मुद्रा के दिखाने से, विषनाशक नागदमनी आदि औषधियो के सेवन से, मन्त्रित किये गये जल या जिनाभिषेक के जल को लगाने से व हवन आदि उचित अनुष्ठानों के करने से दूर हो जाता है, उसी प्रकार वीतराग प्रभो ! आपके चरण-कमलों की स्तुति, भक्ति, आराधना करने से जीवों के समस्त विघ्न, बाधाएँ, शरीरिक कष्ट-वेदनाएँ शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अर्थात् वीतराग जिनेन्द्रदेव की स्तुति करने से समस्त शारीरिक-मानसिक बाधाएँ क्षणमात्र में दूर हो जाती हैं।

प्रणाम करने का फल

सन्तप्तोत्तम काञ्चन क्षितिधर श्री स्पर्द्धि गौरद्युते,
पुंसां त्वच्चरणप्रणाम करणात्पीडाः प्रयान्तिक्षयं ।
उद्यद्भास्कर विस्फुरत्कर शतव्याघात निष्कासिता,
नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(संतप्त उत्तम-काञ्चन-क्षितिधर श्री-स्पर्द्धि-गौरद्युते !) तपाये हुए उत्तम स्वर्ण के पर्वत की शोभा के साथ ईर्ष्या करने वाली पीत कान्ति से युक्त हे शान्ति जिनेन्द्र ! (त्वत् चरण प्रणाम करणात्) आपके चरणों में प्रणाम करने से (पुंसां) जीवों की (पीड़ाः) पीड़ा उसी तरह (क्षयं प्रयान्ति) क्षय को प्राप्त होती है (यथा) जिस प्रकार (उद्यद् भास्कर-विस्फुरत् कर शत व्याघात-निष्कासिता) उदय को प्राप्त सूर्य देदीप्यमान सैकड़ों किरणों के आघात से निकली हुई (नाना-देहि-विलोचन-द्युतिहरा) अनेक प्राणियो के नेत्रों की कान्ति को हरने वाली (शर्वरी) रात्रि (शीघ्रं क्षयं प्रयाति) शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ—तपाये हुए उत्तम स्वर्ण की कान्ति के सम दीप्तिमान तेज के धारक जिनके शरीर की पीत कान्ति सुमेरु पर्वत की कान्ति को भी फीका कर रही है ऐसे हे शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! जिस प्रकार उगते हुए सूर्य की तेजोमयी किरणों के आघात से भयानक रात्रि शीघ्र नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आपके श्रीचरणों में प्रणाम, वन्दन, नमन, स्तवन करने वाले मनुष्यों की समस्त पीड़ाएँ क्षणमात्र में क्षय को प्राप्त हो जाती हैं।

मुक्ति का कारण जिन-स्तुति

त्रैलोक्येश्वर भंग लब्ध विजयादत्यन्त रौद्रात्मकान्,
नाना जन्म शतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्र दावानलान्,
न स्याच्चेत्तव पाद पद्म युगल स्तुत्यापगा वारणम् ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्य-ईश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजयात्) अधोलोक, मध्यलोक व ऊर्ध्वलोक के अधिपतियों के नाश से प्राप्त हुई विजय से जो (अत्यन्त-रौद्रात्मकात्) अत्यधिक क्रूरता को प्राप्त हुआ है, ऐसे (काल-उग्र-दावानलात्) मृत्युरूपी प्रचण्ड दावाग्नि से (नाना-जन्म-शत-अन्तरेषु) अनेक प्रकार के सैकड़ों जन्मों के बीच (इह) इस जगत् में (कः) कौन (केन विधिना) किस विधि से (प्रस्खलति) बच सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। (चेत्) यदि (संसारिणः जीवस्य) संसारी जीवों के (पुरतः) आगे (तव) आपके (पादपद्म-युगल-स्तुति-आपगा) दोनों चरणकमल की स्तुतिरूपी नदी (वारणं) निवारण करने वाली (न स्यात्) नहीं होती।

भावार्थ—हे भगवन् ! अधोलोक के स्वामी धरणेन्द्र, मध्यलोक के स्वामी चक्रवर्ती व ऊर्ध्वलोक के स्वामी इन्द्र इनके विनाश से प्राप्त विजय से जो अत्यन्त भयानक रूप को प्राप्त कर चुका है, ऐसे मृत्युरूपी विकराल काल से कौन कैसे बच सकता है ? यदि आपके पावन चरण-कमल युगल की स्तुतिरूपी नदी ससागी जीवो के आगे उसकी रक्षक न हो। अर्थात् भयानक दावानल की गति नदी सामने आने पर रुक जाती है या दावानल नदी का सम्पर्क पा बुझ जाता है उसी प्रकार मृत्युरूपी दावानल भी आपकी स्तुति करने से मन्दगति वाला हो, शान्त हो जाता है। भावार्थ यह है कि जो भव्य जीव आपकी स्तुति करते है, वे काल याने मृत्यु को सदा-सदा के लिये जीतकर मुक्ति को प्राप्त करते है।

स्तुति से असाध्य रोगों का नाश

लोकालोक निरन्तर प्रवितत् ज्ञानैक मूर्ते विभो !
नाना रत्न पिनद्ध दण्ड रुचिर श्वेतातपत्रत्रय।
त्वत्पाद द्वय पूत गीत रवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामया,
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीम निनदाद् वन्या यथा कुञ्जराः ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-निरन्तर-प्रवितत्-ज्ञान-एक-मूर्ते) लोक और अलोक मे निरन्तर विस्तृत ज्ञान ही जिनकी एक अद्वितीय मूर्ति है। (नानारत्न-पिनद्ध-दण्ड-रुचिर-श्वेत-आतपत्र-त्रय) जिनके सफेद छत्रत्रय नाना प्रकार के रत्नो से जडित सुन्दर दण्ड वाले है, ऐसे (विभो!) हे अलौकिक विभूति के स्वामी शान्ति जिनेन्द्र ! (त्वत्-पाद-द्वय-पूत-गीत-रवत) आपके चरण युगल के पावन स्तुति के शब्दो से (आमया) रोग (शीघ्रं) शीघ्र (द्रवन्ति) भाग जाते है। (यथा) जिस प्रकार (दर्पाध्मात-मृगेन्द्र-भीम-निनदात्) अहकारी सिंह की भयानक गर्जना से (वन्या कुञ्जरा) जगली हाथी।

भावार्थ—हे लोकालोक के ज्ञाता, केवलज्ञानमयी अनुपम मूर्ते ! हे रत्नो जडित तीन छत्रो से शोभायमान शान्ति जिनेन्द्र ! आपके पावन चरण-युगल की स्तुति के पावन निर्मल शब्दो की आवाज मात्र से भव्यजीवो के असाध्य रोग भी तत्काल उसी प्रकार भाग जाते है, जिस प्रकार भयानक जंगल मे मदमस्त सिंह की भयंकर गर्जना सुनकर वन के जंगली हाथी तितर-बितर हो जाते है।

स्तुति से अनन्त सुख

दिव्य स्त्री नयनाभिराम विपुल श्री मेरु चूडामणे,
भास्वद् बाल दिवाकर-द्युतिहर प्राणीष्ट भामण्डल।
अव्याबाध मचिन्त्यसार मतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतम्,
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द युगल स्तुत्यैव सम्प्राप्यते ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—(दिव्यस्त्री-नयन-अभिराम) हे देवाङ्गनाओं के नयनों के प्रिय लगनेवाले उनके नयनवल्लभ ! (विपुलश्रीमेरुचूडामणे !) हे विशाल अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी के श्रेष्ठ चूड़ामणि ! (भास्वत्-बाल दिवाकर-द्युतिहर-प्राणी-इष्ट-भामण्डल) हे शोभायमान बाल सूर्य की कान्ति के हरने वाले, भव्य प्राणियों के इष्ट भामण्डल से सहित भगवन् ! (अव्याबाधम्-अचिन्त्य-सारम्-अतुलम्) बाधाओं से रहित, अचिन्तनीय, सारभूत, अतुल्य/ तुलना रहित (त्यक्त-उपमम्) उपमातीत (शाश्वतं) अक्षय, अनन्त, अविनाशी (सौख्यं) सुख (त्वत् चरण-अरविन्द-युगलः) आपके श्री-चरण कमल युगल की (स्तुति-एव सम्प्राप्यते) स्तुति से ही प्राप्त होता है।

भावार्थ—हे शान्ति जिनेन्द्र ! आपका नयनाभिराम, सौम्य, जगत्, प्रिय रूप देवाङ्नाओं को भी प्रिय लगने वाला है अत: हे देवाङ्गनाओ के नयनवल्लभ ! हे अन्तरङ्ग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी के स्वामी तथा बहिरंग समवसरण प्रातिहार्य आदि श्रेष्ठ लक्ष्मी के चूडामणि !, उगते हुए, प्रात:कालीन, बाल सूर्य के समान कान्तियुक्त ऐसे भामण्डल से युक्त हे भगवन् ! आपकी स्तुति की महिमा अपरम्पार है। निर्बाध, अचिन्तनीय, सारभूत, तुलनारहित, उपमाओं से रहित अक्षय, अविनश्वर, अतीन्द्रिय सुख आपके पावन परम वन्दनीय श्रीचरण-कमलो की स्तुति से ही प्राप्त हो सकता है। अर्थात् आत्मा का सच्चा सुख वीतराग जिनेन्द्रदेव की आराधना से ही प्राप्त होता है।

भगवान् के चरण-कमल प्रसाद से पापों का नाश

यावन्नोदयते प्रभा परिकरः श्रीभास्करो भासयंस्,
तावद् धारयतीह पंकज वनं निद्रातिभार श्रमम्।
यावत्त्वच्चरणाद्वयस्य भगवन्! नस्यात् प्रसादोदय-
स्तावज्जीव निकाय एव वहति प्रायेण पापं महत् ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—(प्रभापरिकर·) किरणो के तेज समूह से युक्त (भासयन्) दिशा-विदिशाओ को प्रकाशमान करने वाला (श्रीभास्कर:) शोभायमान सूर्य (यावत्) जब तक (न उदयते) उदित न होता (तावत्) तब तक (इह) इस लोक मे (पङ्कजवनं) कमल वन (निद्रा-अतिभार-श्रमम्) निद्रा की अधिकता से उत्पन्न खेद को अर्थात् मुकुलित अवस्था को (धारयति) धारण करता है, इसी प्रकार (भगवन्) हे भगवन् (यावत्) जब तक (त्वत चरण-द्वयस्य) आपके दोनो चरण-कमलो के (प्रसाद-उदय) प्रसाद का उदय (न स्यात्) नही होता (तावत्) तब तक (एष जीवनिकाय) यह जीवो का समूह (प्रायेण) प्राय (महत् पापं) बहुत भारी पाप को (वहति) धारण करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार इस लोक मे सर्व दिशाओ को प्रकाशित करने वाला शोभायमान ऐसा सूर्य जब तक उदय को प्राप्त नहीं होता है तब तक ही कमलो का समूह "मुकुलित, अविकसित" अवस्था के भार को वहन कर खेद को प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार, हे भगवन्! आपके चरण-कमलो का कृपा प्रसाद जब तक इस जीव समूह को प्राप्त नही होता तब तक ही वह मिथ्यात्व, कषाय, अज्ञान आदि पापो के महाभार को धारण करता है। अर्थात् जैसे सूर्य की किरणो का सम्पर्क पाते ही कमल विकसित हो जाता है, वैसे ही जिनसूर्य के चरण-कमलरूपी किरणो का सम्पर्क पाते ही भव्यप्राणियो का समूह मिथ्यात्व का वमन कर सम्यक्त्व को प्राप्त कर अनन्त संसार के कारण महापापो से बचकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

स्तुति का फल याचना

शान्तिं शान्ति जिनेन्द्र शान्त, मनसस्त्वत्पाद पद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवी तलेषु बहवः, शान्त्यर्थिनः प्राणिनः ।।
कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वय दैवतस्य गदतः, शान्त्यष्टकं भक्तितः ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—(शान्ति जिनेन्द्र) हे शान्तिनाथ भगवन्! (पृथिवी-तलेषु) पृथ्वी तल पर (शान्त मनस:) शान्त मन के धारी ऐसे (शान्त्यर्थिन:) शान्ति के इच्छुक (बहव: प्राणिन:) अनेको प्राणी (त्वत्-पाद-पद्म-आश्रयात्) आपके चरण-कमलो के आश्रय से (शान्ति सम्प्राप्ता:) शान्ति

को सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हैं, हुए हैं। (विभो !) हे भगवन् ! (त्वत् पादद्वय-दैवतस्य) आपका चरण युगल ही जिसका आराध्य देवता है, (भाक्तिकस्य) आपका भक्त और (भक्तितः) भक्ति से जो (शान्ति अष्टक) शान्ति अष्टक का स्पष्ट उच्चारण कर रहा है, ऐसे (मम) मेरे (दृष्टिं) सम्यक्त्व को (कारुण्यात्) दयाभाव से (प्रसन्नां कुरु) निर्मल करो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवन् ! इस पृथ्वी तल पर शान्ति के इच्छुक, समता भावी अनेकों प्राणी आपके चरण-कमलों के स्मरण, स्तवन, वन्दन से ही पूर्ण शान्ति, मुक्ति-सुख को प्राप्त हुए हैं। हे भगवन् ! मैं आपका भक्त, आप ही मेरे एकमात्र आराध्य देवता हैं। मैं भक्तिपूर्वक इस "शान्त्यष्टक" शान्तिभक्ति के माध्यम से आपके महागुणों का स्पष्ट उच्चारण कर रहा हूँ। आप करुणा करके मेरे सम्यक्त्व को निर्मल कीजिये। आप अनुकम्पा कर मेरी दृष्टि को पवित्र कीजिये।

शान्ति भक्तिः

दोधकवृत्तम्

शान्ति जिनं शशि निर्मल वक्त्रं, शीलगुण व्रत संयम पात्रम्।
अष्टशतार्चित लक्षण गात्रं, नौमि जिनोत्तम-मम्बुज नेत्रम्।। १।।

अन्वयार्थ—(शशिनिर्मलवक्त्रं) चन्द्रमा के समान निर्मल मुख के धारक (शीलगुण-व्रत-संयम-पात्रम्) जो १८००० शील के स्वामी, गुणों के, व्रतों के व संयम पालक होने से पात्र हैं (अष्ट-शत-अर्चित-लक्षण-गात्रं) जिनका शरीर १०८ लक्षणों से शोभा को प्राप्त है (जिनोत्तम) जिनों में श्रेष्ठ होने से जो तीर्थंकर हैं अथवा तीर्थंकर, चक्रवर्ती व कामदेव त्रिपदधारी होने से जो जिनोत्तम हैं (अम्बुज नेत्रम्) कमलसम सुन्दर, विशाल विकसित नेत्र से जो शोभित हो रहे है ऐसे (शान्तिजिनं) शान्तिनाथ भगवान को (नौमि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो शान्तिनाथ भगवान् चन्द्रमा समान निर्मल मुख वाले हैं जो १८ हजार शील, ८४ लाख गुण, व्रत, संयम के अधिनायक हैं, जिनका शरीर १०८ लक्षणों से शोभायमान है, जो जिनों में श्रेष्ठ तीर्थंकर

होने से जिनोत्तम हैं [४थे गुणस्थान से १३ गुणस्थान तक सब जीव जिन संज्ञा के धारक कहे गये है अत: उनमें आप श्रेष्ठ हैं, अथवा १३वें गुणस्थान में सामान्य जिन अनेक हैं उनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव तीन पदो के धारक होने से भी आप जिनोत्तम है] । कमल के पुष्प सम विकसित, सुन्दर विशाल जिनके नेत्र है, ऐसे शान्तिनाथ भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

पञ्चम-मीप्सित-चक्रधराणां, पूजित-मिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च ।
शान्तिकरं गण-शान्ति-मभीप्सुः, षोडश-तीर्थकरं-प्रणमामि ।।१०।।

अन्वयार्थ—(पञ्चमम्-ईप्सित-चक्रधराणां) जो अभिलषित बारह चक्रवर्तियो में पञ्चम चक्रवर्ती थे (इन्द्र-नरेन्द्र-गणै: च) जो इन्द्र और नरेन्द्रो के समूहों से (पूजितम्) पूजित हैं (शान्तिकरं) जो शान्ति को करने वाले है (गणशान्तिं अभीप्सुः) महाशान्ति का इच्छुक (षोडश-तीर्थकरं-प्रणमामि) मै उन शान्तिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो गृहस्थावस्था में इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्तियो मे पञ्चम चक्रवर्ती थे। दीक्षित हो संयमी बनकर वे इन नरेन्द्रो के परिवारो, समूहों से पूजा का प्राप्त हुए जो प्राणीमात्र में शान्ति को करने वाले हैं, उन शान्तिनाथ भगवान को मैं पूर्ण शान्ति, महाशान्ति का इच्छुक नमस्कार करता हूँ।

दिव्यतरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टि- र्दुन्दुभिरासन-योजन घोषौ ।
आतप-वारण-चामर-युग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः ।।११।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिन शान्तिनाथ भगवान के (दिव्यतरुः) अशोक वृक्ष (सुरपुष्पसुवृष्टिः) देवों द्वारा उत्तम सुगन्धित पुष्पों की वर्षा, (दुन्दुभिः) दुन्दुभिनाद (आसन-योजन घोषौ) सिंहासन तथा एक योजन तक सुनाई देने वाली दिव्यध्वनि (आतपवारण-चामर युग्मे) छत्रत्रय, दोनो ओर चँवर ढुरना (च) और (मण्डलतेजः) भामण्डल का तेज ये आठ प्रातिहार्य (विभाति) सुशोभित हैं।

भावार्थ—जो तीर्थंकर शान्तिनाथ भगवान समवशरण सभा में अशोक वृक्ष, देवों द्वारा उत्तम सुगन्धित फूलों की वर्षा, दुन्दुभि बाजों का बजना,

सिंहासन, एक योजन तक सुनाई देने वाली भव्यों के कल्याणदायिनी दिव्यध्वनि, तीन छत्र, दोनों ओर ३२-३२ ऐसे ६४ चँवर और भामण्डल के अप्रतिम तेजयुक्त अष्टप्रातिहार्यो से सदा सुशोभित रहते हैं, उनके भी चरणों में मेरा नमस्कार है।

शंका–तीन छत्र किस विशेषता के परिचायक हैं, उन्हें अरहंत प्रतिमा के ऊपर किस प्रकार लगाना चाहिये ? समाधान—भगवान के सिर पर तीन छत्र तीन लोक के स्वामीपने को सूचित करते हैं (सबसे नीचे अधोलोक के स्वामीपने का परिचायक सबसे बड़ा छत्र, मध्य में मध्यलोक के स्वामीपने का परिचायक उससे छोटा और ऊर्ध्वलोक के स्वामित्व का परिचायक अन्त में सबसे छोटा छत्र लगाना चाहिये।

तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं, शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्व गणाय तु यच्छतु शान्तिं, मह्यमरं पठते परमां च ।।१२।।

अन्वयार्थ—(शान्तिकरं) शान्ति को करनेवाले (तं) उन (जगत् अर्चितं) तीनों लोको के जीवो से पूज्य (शान्तिजिनेन्द्रं) शान्तिनाथ भगवान को (शिरसा प्रणमामि) मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। (सर्वगणाय) समस्त समूह को (शान्ति यच्छतु) शान्ति दीजिये (तु) और (पठते मह्यं) स्तुति पढ़ने वाले मुझे (अरं परमां च) शीघ्र तथा उत्कृष्ट शान्ति दीजिये।

भावार्थ—तीन जगत् के वन्दनीय, सर्वजीवों के लिये शान्ति को देने वाले शान्तिनाथ भगवान को मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। हे शान्तिनाथ भगवन् ! समस्त समूह को शान्ति प्रदान कीजिये तथा स्तुति पाठक मुझ पर विशेष कृपा दृष्टिकर शीघ्र ही उत्कृष्ट शान्ति प्रदान कीजिये।

वसन्ततिलका

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः,
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपाः,
तीर्थंकराः सतत शान्तिकरा भवन्तु ।।१३।।

अन्वयार्थ—(सुरगणैः स्तुत पादपद्माः) जिनके चरण-कमल देवो के समूहो से स्तुत है तथा (ये) जो जन्मादि कल्याणको के समय (शक्रादिभिः मुकुट कुण्डलहार-रत्नैः) इन्द्रो के द्वारा मुकुट-कुण्डल-कर्णाभरण, हार और रत्नो से (अभ्यर्चिताः) पूजित हुए थे (ते) वे (प्रवरवंशजगत् प्रदीपाः) वे उत्कृष्ट वंश तथा जगत् को प्रकाशित करने वाले (तीर्थकराः जिनाः) तीर्थंकर जिनेन्द्र (मे) मेरे लिये (सतत शान्तिकरा भवन्तु) निरन्तर शान्ति करने वाले होवे।

भावार्थ—जिनके चरण-कमल सौ इन्द्रो से वन्दनीय है, पञ्चकल्याणक की मंगल बेला मे जो विविध आभूषणो के धारक देवो, इन्द्रो आदि के द्वारा पूजित हुए है, वे उत्तम वंश मे उत्पन्न त्रिजगत् को प्रकाशित करने वाले ऐसे तीर्थंकर शान्तिनाथ भगवान मेरे लिये निरन्तर शान्ति प्रदान करे।

उपजाति

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवन्-जिनेन्द्रः ।।१४।।

अन्वयार्थ—(भगवन् जिनेन्द्रः) जिनेन्द्र भगवान् (सम्पूजकानां) सम्यक् प्रकार से पूजा करने वालो को (प्रतिपालकानां) धर्मायतनो की रक्षा करने वालो को (यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्) मुनीन्द्र, आचार्य तथा तपस्वियो को (देशस्य, राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः) देश, राष्ट्र, नगर और राजा को (शान्ति करोतु) शान्ति करे।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव! श्रद्धा से आपकी आराधना करने वाले आराधको को, धर्म के आयतन-देव, शास्त्र, गुरु और तीर्थो की रक्षा करने वालो को, आचार्यो, सामान्य तपस्वियो, मुनियो आदि सर्व संयमियो को, देश, राष्ट्र, नगर, प्रजा सभी को शान्ति प्रदान कीजिये।

स्रग्धरा

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु, बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग् वितरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।।
दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां, मास्मभूज्जीव - लोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्व - सौख्य - प्रदायि ।।१५।।

अन्वयार्थ—(सर्वप्रजानां क्षेमं) समस्त प्रजा का कल्याण हो (भूमिपाल: बलवान् धार्मिक: प्रभवतु) राजा बलवान व धार्मिक हो (मघवा काले-काले च सम्यग वितरतु) बादल समय-समय पर जल की वृष्टि करें (व्याधय: नाशम् यान्तु) बीमारियाँ क्षय को प्राप्त हो (जीवलोके) जगत् में (दुर्भिक्षं चौरमारि) दुष्काल, चोरी, मारी, हैजा आदि रोग (जगतां क्षणम् अपि मास्मभूत्) जगत् के जीवो को क्षण भर के लिये भी न हो और (सर्वसौख्य प्रदायि जैनेन्द्रं धर्मचक्रं सततं प्रभवतु) समस्त सुखो को देने वाला जिनेन्द्रदेव का धर्मचक्र निरन्तर प्रवाहशाली बना रहे–सदा प्रवर्तमान, शक्तिशाली बना रहे।

भावार्थ—हे प्रभो ! लोक में समस्त प्रजा का कल्याण हो, राजा बलवान् और धार्मिक हो, सर्व दिग्दिगन्त में समय-समय पर मेघ यथायोग्य जलवृष्टि करते रहे, कही भी, कभी भी अतिवृष्टि रूप प्रकोप न हो, मानसिक-शारीरिक बीमारियो का नाश हो, तथा लोक मे जीवों को कभी भी क्षण-मात्र के लिये भी दुष्काल, चोरी, मारी रोग, हैजा, मिरगी आदि न हो। वीतराग जिनेन्द्रदेव का धर्मचक्र जो प्राणीमात्र के लिये सुखप्रदायक है, सदा प्रभावशाली बना रहे। हे विभो ! आपका जिनशासन सर्वलोक मे विस्तृत हो , लोकव्यापी जिनधर्म कल्याणकारी हो।

तद् द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभ: स देश:,
संतन्यतां प्रतपतां सततं सकाल: ।
भाव: स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण,
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे ।।१६।।

अन्वयार्थ—(यत् अनुग्रहेण) जिनके अनुग्रह से (इह) यहाँ (मुमुक्षुवर्गे) मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनिजनों में (रत्नत्रयं) रत्नत्रय (अव्ययम्) अस्खलित (प्रसपति) प्रकाशित रहे ऐसा (तद् द्रव्यम्) वह द्रव्य (उदेतु) उत्पन्न होओ (स शुभ देश:) वह शुभ देश/शुभ स्थान [मुनियों को मिले] (सततं) सदा उन मुनियों के रत्नत्रय (सन्तन्यतां प्रतपतां) समीचीन तप की वृद्धि हो (स काल:) वह उत्तमकाल [मुनियों को प्राप्त हो] तथा (सदा नन्दतु) सदा आत्मा के निर्मल परिणामों से प्रसन्न हों (स भाव:) वह भाव मुनियों को प्राप्त हो।

भावार्थ—जिनके अनुग्रह से मोक्ष के इच्छुक मुनिजनों का निर्दोष रत्नत्रय प्रकाशमान हों वह द्रव्य उत्पन्न हो। अर्थात् निर्दोष आहार, औषध आदि व संयम के उपकरण पिच्छी-कमंडलु आदि ऐसा वह शुभ द्रव्य है तथा मुनियों को यह निर्दोष रत्नत्रय की वृद्धि करने वाला द्रव्य जिस क्षेत्र में प्राप्त हो वह शुभ देश/क्षेत्र है। दिगम्बर मुनियों के सदा उत्तम रत्नत्रय की वृद्धि जिस काल में हो वह शुभ काल है तथा उन मुनियों के सदा आत्मानन्द की प्राप्ति से प्राप्त निर्मल परिणाम का होना शुभ भाव है। अर्थात् जिनके योग से मुनियों का रत्नत्रय उन्नतिशील बने वही शुभद्रव्य, शुभक्षेत्र, शुभकाल व शुभभाव है ऐसा जानना चाहिये।

अनुष्टुप

प्रध्वस्त घाति कर्माणः, केवलज्ञान भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः ।।१७।।

अन्वयार्थ—(प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः) जिन्होंने घातिया कर्मों का क्षय कर दिया है जो (केवलज्ञान-भास्कराः) केवलज्ञानरूपी सूर्य से शोभायमान हैं ऐसे (वृषभाद्या जिनेश्वराः) वृषभ आदि तीर्थंकर (जगतां शान्ति कुर्वन्तु) संसार के समस्त जीवों को शान्ति प्रदान करें।

भावार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का जिन्होंने समूल क्षय कर दिया है तथा जो केवलज्ञान-रूपी सूर्य से सर्वजगत् को प्रकाशित करते हुए शोभा को प्राप्त हैं ऐसे वृषभनाथ को आदि लेकर तीर्थंकर महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर जगत् के समस्त प्राणियों को शान्ति, सुख, क्षेम, कुशल प्रदान करें।

क्षेपक श्लोकानि

शांति शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां,
शान्तिः निरन्तर तपोभव भावितानां।
शान्तिः कषाय जय जृम्भित वैभवानां,
शान्तिः स्वभाव महिमानमुपागतानाम् ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(जिनेश्वर शासनानाम्) जिनेन्द्रदेव की आज्ञा को (शिरोधृत) मस्तक पर धारण करने वालों को (शान्तिः) शान्ति प्राप्त

हो। (निरन्तर तपोभवभावितानाम्) अखंडतपश्चरण कर मोक्ष की आराधना करने वालों को (शान्तिः) शान्ति प्राप्त हो/कल्याण हो। (कषायजयजृंभितवैभवानाम्) कषायों को जीतकर आत्मिक वैभव से शोभायमान मुनियों को (शान्तिः) समता रस की प्राप्ति हो (स्वभावमहिमानमुपागतानाम्) आत्मा के स्वभाव की महिमा को प्राप्त ऐसे यतियों को (शान्तिः) सिद्ध अवस्था प्राप्त हो/उनका कल्याण हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवान् ! जिनशासन की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले भव्यजीवों को शान्ति/सुख की प्राप्ति हो। अखंडरूप से तप मे लीन मोक्ष के इच्छुक मुनियों को शान्तरस रूप शुक्लध्यान की प्राप्ति हो। कषायों को जीतकर आत्मानन्द को प्राप्त करने वालों को समतारस-रूप शान्ति प्राप्त हो तथा जो आत्मस्वभाव की महिमा को प्राप्त कर चुके हैं ऐसे यतियोंको शाश्वतशान्तिरूप सिद्धपद की प्राप्ति हो।

जीवन्तु संयम सुधारस पान तृप्ता,
नंदंतु शुद्ध सहसोदय सुप्रसन्नाः।
सिद्ध्यंतु सिद्धि सुख संगकृताभियोगाः,
तीव्रं तपन्तु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञा ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(संयम सुधारस पानतृप्ता) संयमरूपी अमृत को पीकर तृप्त हुए मुनिवर्ग (जीवंतु) सदा जीवन्त रहें। (शुद्ध सहसोदय सुप्रसन्नाः) शुद्ध आत्मतत्त्व की जागृति से प्रसन्नता को प्राप्त मुनिजन (नन्दन्तु) आनन्द को प्राप्त हों। (सिद्धि सुख-संगकृताभियोगाः) सिद्धि लक्ष्मी के सुख के लिये किया है पुरुषार्थ/उद्योग जिनने वे उसके माहात्म्य से (सिद्धयन्तु) सिद्धि को प्राप्त हों। (त्रितये) तीन लोक में (अर्हत् आज्ञा) अर्हन्त-देव की आज्ञा उनका शासन (जगतां) सर्वत्र/पृथ्वीतल पर (तीव्रं तपन्तु) विशेष प्रभाव प्रकट हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवन् ! संयमरूपी अमृत का पान करने से पूर्ण तृप्त ऐसा मुनिसमूह सदा जीवन्त रहे अर्थात् पृथ्वी पर सदा मुनिजनों का विचरण होता रहे। आत्मानन्द के उदय से सदा प्रसन्न रहने वाले यतिगण शाश्वत आनन्द को प्राप्त हों। मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये उपसर्ग, परिषहों को सहनकर घोर तपश्चरण का उद्योग करने में तत्पर

मुनिराज सिद्धिसुख को प्राप्त हों, तथा अर्हन्त देव का शासन तीन लोक में सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल पर विशेष प्रभावना को प्राप्त हो।

शान्तिः शं तनुतां समस्त जगतः, संगच्छतां धार्मिकैः।
श्रेयः श्री परिवर्धतां नयधरा, धुर्यो धरित्रीपतिः ।।
सद्विद्यारसमुद्गिरन्तु कवयो, नामाप्यघस्यास्तु मां।
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव, शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(शांतिः) शान्तिनाथ तीर्थंकर (समस्त जगतः तनुतां) सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों को (शं संगच्छतां) सुखी करो (धार्मिकैः) धर्मात्मा जीवों को (श्रेयः श्री परिवर्धतां) कल्याणकारी स्वर्ग-मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करो (नयधरा) नीति की जगत् में बाढ हो (धरित्रीपतिः धुर्यो) राजा पराक्रमी-शूर-वीर हो (सद्वियारसम् उद्गिरन्तु कवयो) विद्वद्जनों में समीचीन/उत्तम विद्या का [लोक में] प्रसार करो (नाम अपि अघस्य आस्तु मां) पाप का नाम भी देखने का न रहे/पाप का समूल नाश हो। (वा) और (प्रार्थ्यं कियत्) माँगने के लिये क्या (एक एव) एक ही हो (अर्हताम्) जिनेश्वर का (शिवकृत् धर्मः) मोक्षदायक धर्म (जयतु) जयवन्त हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ प्रभो! तीन लोक के समस्त प्राणी सुखी हों, धर्मात्मा जीवों को कल्याणकारी स्वर्ग-मुक्त लक्ष्मी प्राप्त हो, नीति न्याय का घर-घर में प्रचार हो, पृथ्वी का राजा शूर-वीर हो। विद्वान् लोग उत्तम शिक्षा का प्रसार करें जिससे कोष में पाप का नाम भी न रहे/पृथ्वी पर पाप का नाम भी न रहे और अन्त में क्या माँगूँ, बस एक ही माँगता हूँ, वह यह कि "वीतराग जिनदेव/अर्हन्त भगवन्त का मोक्षदायक "जिनधर्म" सदा पृथ्वी-मंडल पर जयवन्त रहे।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पञ्च-महा-कल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेर-सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय मउड मत्थय महियाणं बलदेव वासुदेव चक्कहर रिसि-मुणि-जदि-अणगारोव गूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महापुरिसाणं णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ,

सुगइगमणं, समाहि-मरणं जिण-गुण सम्पत्ति होदु मज्झं ।

अर्थ—(भंते) हे भगवन्! मैंने (संतिभत्ति काउस्सग्गो कओ) शान्तिभक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया (तस्सालोचेउं इच्छामि) तत्संबंधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो (पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं) पाँच महाकल्याणकों से सम्पन्न है (अट्ठमहा-पाडिहेरसहियाणं) आठ महाप्रातिहार्यों से सहित हैं, (चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं) ३४ अतिशय विशेषों से संयुक्त हैं (बत्तीस-देवेंद-मणिमय-मउड-मत्थय महियाणं) बत्तीस इन्द्रों के मणिमय मुकुटों से युक्त मस्तक से पूजित (बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोव गूढाणं) बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति, और अनगारों से परिवृत हैं और (थुइसयसहस्स-णिलयाणं) लाखों स्तुतियों के घर हैं, ऐसे (उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महापुरिसाणं) वृषभदेव को आदि ले महावीरपर्यन्त मङ्गलमय महापुरुषों की मैं (णिच्चकालं) नित्यकाल (अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दु:खों का क्षय हो, (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमणं) उत्तम गति में गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो (जिणगुणसंपत्ति) जिनेन्द्रदेव के गुण रूप सम्पत्ति (होऊ मज्झं) मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवन्! मैंने शान्तिभक्ति का कायोत्सर्ग पूर्ण किया अब मैं उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान व मोक्ष कल्याणक के स्वामी हैं, आठ प्रातिहार्यो व चौंतीस अतिशयों से शोभायमान है, भवनवासी के १०, व्यन्तरों के ८, वैमानिक देवों के १२, ज्योतिषी देवों के सूर्य-चन्द्र २, इन ३२ देवों से वन्दनीय हैं, बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि और अनगारों से परिवृत हैं और लाखों स्तुतियों से स्तुत्य हैं, एक वृषभदेव से महावीर-पर्यन्त २४ तीर्थंकरों की जो मंगलरूप हैं, मैं सदा उनकी अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तम गति प्राप्त हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुण रूप अनन्त गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

श्री समाधि भक्ति

प्रिय भक्तिः

स्वात्माभिमुख-संवित्ति, लक्षणं श्रुत-चक्षुषा,
पश्यन्पश्यामि देव त्वां केवलज्ञान-चक्षुषा ।।१।।

अन्वयार्थ—(देव !) हे वीतराग देव (स्व-आत्मा-अभिमुख-संवित्ति-लक्षणं) अपनी आत्मा के संवेदन रूप लक्षण से युक्त (त्वां) आपको (श्रुत-चक्षुषा) श्रुतज्ञानरूपी चक्षु से (पश्यन्) देखते हुए (केवलज्ञान चक्षुषा पश्यामि) अब आपको केवलज्ञान चक्षु से मण्डित देख रहा हूँ।

भावार्थ—हे वीतराग जिनेन्द्र देव स्वकीय आत्मा के संवेदन रूप लक्षण से युक्त अथवा स्वसंवेदन लक्षण युक्त आपको श्रुतज्ञान के माध्यम से देखते हुए, आपके सामान्य स्वरूप का चिन्तन करता हुआ, मैं आज आपकी साक्षात् केवलज्ञान मण्डित अवस्था का ही दर्शन कर रहा हूँ। ऐसा मुझे अनुभव में आ रहा है। अथवा

जो भव्य जीव श्रुतज्ञान रूप चक्षु से आगम के अनुसार आपकी आराधना करता है, वह केवलज्ञानरूपी नेत्र से सर्वलोक का अवलोकन करता है अर्थात् केवलज्ञान को अवश्य प्राप्त करता है।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः, संगति सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगण-कथा, दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे,
संपद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ।।२।।

अन्वयार्थ—(शास्त्र-अभ्यासः) शास्त्रों का अभ्यास (जिनपतिनुतिः) जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति/ नमस्कार (सर्वदा) हमेशा (आर्यैःसंगति) सज्जन, श्रेष्ठ आर्य पुरुषों के साथ समागम (सद्वृत्तानां गुण-गणकथा) सदाचारी/संयमियों/सम्यक्चारित्रधारियों के गुणों की चर्चा (दोषवादे च मौन) और उन चारित्रधारियों के दोष वर्णन करने में मौन (सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचः) समस्त जीवों में प्रिय-हितकर वचन (च) और (आत्म-तत्त्वे भावना) आत्मतत्त्व की भावना (एते) ये सब बातें (यावत् अपवर्गः) जब तक मुक्ति/मोक्ष प्राप्त होता है तब तक (मम) मुझे (भवभवे) प्रत्येक भव में (सम्पद्यन्ताम्) प्राप्त होती रहें।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव ! मैं जब तक मुक्त अवस्था को प्राप्त न हो जाऊँ तब तक प्रत्येक भव में मैं जिनेन्द्रकथित सच्चे आगम का अभ्यास करता रहूँ। तब तक आपके चरणों में नतमस्तक हुआ, आपकी स्तुति करता रहूँ, हमेशा साधु मनुष्यों की, आर्य पुरुषों की संगति करता रहूँ। आपके चरणों की आराधना का एकमात्र फल यही हो कि रत्नत्रयधारियों, सदाचारियों के दोषों के कथन में मै मौन रहूँ। प्राणीमात्र मे हितकर-प्रिय वचनों से वार्तालाप करूँ और अन्त में यही प्रार्थना है कि मैं अपने आत्मतत्त्व की भावना मुक्ति-पर्यन्त भाता रहूँ।

जैनमार्गरुचिरन्यमार्ग निर्वेगता, जिनगुणस्तुतौ मतिः ।
निष्कलंक विमलोक्ति भावनाः, संभवन्तु मम जन्म-जन्मनि ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(जैन-मार्ग-रुचिः) जिनेन्द्रकथित मुक्तिमार्ग में श्रद्धा, (अन्य-मार्ग-निर्वेगता) अन्य एकान्त मिथ्यामार्ग में विरक्ति, अश्रद्धा, (जिनगुण-स्तुतौ-मतिः) जिनेन्द्रदेव गुणों की स्तुति करने में बुद्धि (निष्कलङ्क-विमल-उक्ति-भावनाः) निर्दोष, निर्मल, जिनेन्द्रकथित वाणी–जिनवाणी मे भावना (मम) मुझे (जन्म-जन्मनि) जन्म-जन्मों-प्रत्येक भव में (सम्भवन्तु) प्राप्त होती रहे।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! मुक्तिपर्यन्त प्रत्येक भव में मुझ में जिनेन्द्रकथित रत्नत्रय-रूप मुक्ति मार्ग के प्रति अविचल श्रद्धा बनी रहे। एकान्त, मिथ्यामतों मे या संसार-मार्ग में मेरी रुचि अत्यन्त दूर रहे। मेरी बुद्धि सदा जिनेन्द्रदेव के अनुपम अतुल गुणों के स्तवन में लगी रहे तथा निर्दोष, निष्कलंक, निर्मल ऐसी जिनेन्द्रवाणी—जिनवाणी मुझे जन्म-जन्म में प्राप्त होती रहे। यह प्रार्थना करता हूँ।

गुरुमूले यति-निचिते-चैत्यसिद्धान्त वार्धिसद्घोषे ।
मम भवतु जन्म जन्मनि, सन्यसन समन्वितं मरणम् ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—हे भगवन् ! (जन्म-जन्मनि) प्रत्येक जन्म में (मम) मेरा (संन्यसन-समन्वितं मरणम्) संन्याससहित मरण (यति निचिते) यतियो के समूह में (गुरुमूले) गुरु के पादमूल में और (चैत्य-सिद्धान्त-वार्धि -सद्घोषे) जिनप्रतिमा तथा जैन सिद्धान्त रूप समुद्र के जयघोष में हो।

भावार्थ—हे वीतराग जिनदेव ! मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि जब तक मुक्ति की प्राप्ति न हो तब तक मेरा भव-भव में ऐसे समागम में समाधिपूर्वक मरण हो जहाँ वीतरागी दिगम्बर साधुओं का समूह विराजमान हो, गुरु का पादमूल हो, व जिनप्रतिमा मेरे सामने हो तथा जिनेन्द्रकथित जैन सिद्धान्तरूपी समुद्र का जयघोष हो रहा हो।

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटि समार्जितम्.
जन्ममृत्युजरामूलं, हन्यते जिनवंदनात् ।।५।।

अन्वयार्थ—(जिन-वन्दनात्) जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने से (जन्म कोटि समार्जितम्) करोड़ों जन्मों में संचित किया गया तथा (जन्म-मृत्यु-जरामूलं) जन्म-मृत्यु और वृद्धावस्था का मूल कारण ऐसा (जन्म-जन्म-कृतं पापं) अनेक जन्मों में किया हुआ पाप (हन्यते) नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके वन्दन, दर्शन की महिमा अपार है। आपके चरण-कमलों की वन्दना करने से भव्यजीवों के अनेकों जन्मों से संचित पाप, जो जन्म-जरा-मृत्युरूपी तापत्रय के मूल हेतु हैं; एक क्षण मात्र में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

आबाल्याज्जिनदेवदेव ! भवतः, श्री पादयोः सेवया,
सेवासक्तविनेयकल्पलतया, कालोऽद्ययावद्गतः ।
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना, प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने, कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम ।।६।।

अन्वयार्थ—(देव, देव जिन !) हे देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् ! (मम) मेरा (आबाल्यात्) बाल्य-अवस्था से लेकर (अद्य यावत्काल) आज तक का काल (सेवा-आसक्त-विनेय-कल्पलतया) सेवा में समर्पित भक्तजनों के लिये कल्पबेल समान (भवतः) आपके (श्रीपदयोः) श्री चरणों की (सेवया) सेवा-आराधना पूर्वक (गतः) बीता है (अधुना) इस समय (त्वां) आप श्री से (तस्याः फलं अर्थये) उस सेवा-आराधना के फल की याचना करता हूँ। (तद्) वह यह कि (प्राण-प्रयाण-क्षणे) प्राणों के विसर्जन काल—मृत्यु समय में (मम कण्ठ) मेरा कण्ठ (त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्ण-पठने) आपके नाम से सम्बद्ध वर्णों के पढ़ने में (अकुण्ठ अस्तु) अवरुद्ध न हो—सामर्थ्यवान बना रहे।

भावार्थ—हे वीतराग, देवाधिदेव, जिनेन्द्र प्रभो ! मैंने बाल्यकाल से लेकर आजतक का समय आप वीतराग प्रभु की आराधना, अर्चना, वन्दना मे व्यतीत किया। आपकी आराधना, श्रद्धावनत भक्तों को इच्छित फल देने वाली कल्पलता है। आपकी आराधना आराधक को इष्ट का संयोग कराती है। हे प्रभो ! आज मै आपके श्रीचरणो मे उस भक्ति और आराधना का अनुपम फल माँगने आया हूँ। वह मेरी याचना यह है कि "हे प्रभो ! प्राणो के विसर्जन काल मे, मृत्यु की अन्तिम बेला मे मेरा कण्ठ आपके गुणो का स्मरण करता रहे। अर्थात् अन्तिम क्षण में मै आपके नाम का उच्चारण करते हुए प्राणों का त्याग करूँ। मेरा कण्ठ एक क्षण के लिये भी अवरुद्ध न हो। "हो सिद्ध-सिद्ध मुख में जब प्राण तन से निकले"। बस यही भावना है।

तवपादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः ॥७॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र (यावत्) जबतक (निर्वाणसम्प्राप्तिः) निर्वाण की प्राप्ति हो (तावत्) तबतक (तव पादौ) आपके दोनों चरण-कमल (मम हृदये) मेरे हृदय में व (मम हृदयं) मेरा हृदय (तव-पद-द्वये) आपके दोनो चरण-कमलों मे (लीनम्) लीन हो (तिष्ठतु) स्थित रहें।

भावार्थ—हे देवाधिदेव जिनेन्द्र ! मुझे जबतक निर्वाणपद की प्राप्ति हो तबतक आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय स्थित हों तथा मेरा हृदय भी आपके चरण-कमलो में समर्पित रहे। मेरा हृदय आपके चरणों में ही स्थित रहे। अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति पर्यन्त मैं आपका ही ध्यान करता रहूँ, बस यही प्रार्थना है।

एकापि समर्थेयं, जिनभक्ति-दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥८॥

अन्वयार्थ—(कृतिनः) कर्तव्यपरायण, जिनभक्त की (इयम्) यह (एक अपि जिनभक्तिः) एकमात्र, एक ही जिनभक्ति (दुर्गतिं निवारयितुम्) नरकादि दुर्गतियों का निवारण करने के लिये (पुण्यानि पूरयितुं) पुण्यों को पूर्ण करने के लिये (च) और (मुक्ति श्रियं दातु) मुक्ति लक्ष्मी को देने के लिये (समर्था) समर्थ है, पर्याप्त है।

भावार्थ—जिस कर्तव्यशील मानव ने देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में समर्पण दिया है जो षट् आवश्यकों को पालन करने वाला है उसकी एकमात्र जिनेन्द्रभक्ति ही उसको नरक-तिर्यञ्च रूप अशुभ गतियों से बचाने के लिये, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, देवेन्द्र जैसे महापुण्यों को पूर्ण करने तथा मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कराने में पर्याप्त है। अर्थात् एक ही जिनभक्ति समस्त स्वर्ग-मोक्ष सुखों को देने में समर्थ है।

पञ्चअरिंजयणामे पञ्च, य मदि-सायरे जिणे वन्दे।
पञ्च जसोयरणामे, पञ्चय सीमंदरे वन्दे।।९।।

अन्वयार्थ—मैं पञ्चमेरु सम्बन्धी (पंच अरिंजयणामे) अरिंजय नाम के पाँच (य) और (मदिसायरे पंच) मतिसागर नाम के पाँच (जिणे वंदे) जिनेन्द्र की वन्दना करता हूँ (य) और (पंच जसोयरणामे) यशोधर नामके पाँच तथा (पंच सीमंदरे) सीमंदर नाम के पाँच (जिणे वंदे) तीर्थंकरों की वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—पाँच मेरु संबंधी अरिंजय नाम के पाँच, मतिसागर नाम के पाँच, यशोधर नाम के पाँच तथा सीमंदर नाम के पाँच ऐसे बीस तीर्थंकरों की वन्दना करता हूँ।

रयणत्तयं च वंदे, चउवीस जिणे च सव्वदा वंदे।
पञ्चगुरूणां वंदे, चारणचरणं सदा वंदे।।१०।।

अन्वयार्थ—(च) और मैं (रयणत्तयं वंदे) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय को नमस्कार करता हूँ (च) और (चउवीसजिणे सव्वदा वंदे) वृषभ आदि वीरान्त चौबीस तीर्थंकरों की सदा वन्दना करता हूँ (पंच गुरूणां वंदे) पञ्च-परमेष्ठी रूप पञ्च महागुरुओं का सदा वन्दन करता हूँ तथा (चारण-चरणं सदा वंदे) चारण ऋद्धि धारक मुनियों के चरणों की सदा आराधना करता हूँ।

भावार्थ—हे वीतराग देव! मैं सदा रत्नत्रय की आराधना/वन्दना करता हूँ, प्रथम वृषभ तीर्थंकर से अन्तिम महावीरपर्यन्त चौबीसों तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ, अर्हत्-सिद्ध आचार्य-उपाध्याय व सर्वसाधु पञ्चपरमेष्ठी रूप पञ्च महागुरुओं की सदा वन्दना करता हूँ तथा चारण ऋद्धि के धारक युगल मुनियों के चरणों की सदा आराधना, वन्दना-नमन, करता हूँ।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे ।।११।।

अन्वयार्थ—हम (ब्रह्म-वाचकं) शुद्ध आत्म स्वरूप का कथन करने वाले (सिद्ध-चक्रस्य परमेष्ठिनः) सिद्ध परमेष्ठी के समूह के अथवा सिद्ध परमेष्ठी के (सद्बीजं) समीचीन उत्तम बीजाक्षर (अर्हम्) अर्हम् (इति अक्षर) इस अक्षर का (सर्वतः) पूर्ण रूप से (प्रणिदध्महे) ध्यान करते है ।

भावार्थ—हम सिद्ध परमेष्ठी के ब्रह्मवाचक अर्हम् बीजाक्षर का सदा ध्यान करते है । तात्पर्य "अर्हम्" एक बीजाक्षर है । यह बीजाक्षर आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वाचक है तथा शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति करने वाले अनन्त सिद्धो का वाचक है । ऐसे इस बीजाक्षर का हम ध्यान करते है । [समस्त भव्यात्माओं को भी इसका ध्यान अवश्य करना चाहिये ।]

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ।।१२।।

अन्वयार्थ—(कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं) अष्टकर्मो से पूर्ण रहित (मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम्) मुक्ति लक्ष्मी के घर तथा (सम्यक्त्व-आदि गुण-उपेतं) सम्यग्दर्शन आदि गुणो से युक्त (सिद्धचक्रं) सिद्ध परमेष्ठियों के समूह को (नमामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिन्होंने ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण के क्षय से अनन्तदर्शन, वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधत्व, मोहनीय के क्षय से अनन्तसुख, आयु के क्षय से अवगाहनत्व, नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्त्व, गोत्रकर्म के क्षय से अगुरुलघुत्त्व तथा अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त वीर्य इस प्रकार आठ कर्मो के क्षय से आठ महागुणों को प्रकट कर लिया है, जो मोक्ष लक्ष्मी के घर, आलय, स्थान हैं ऐसे सिद्ध समूह, अनन्त सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तो को मैं नमस्कार करता हूँ।

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यताम्,
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम्,
पायात्पञ्च नमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता ।।१३।।

अन्वयार्थ—(या) जो (सुरसम्पदां आकृष्टिं) देवों की विभूति का आकर्षण (मुक्तिश्रियः वश्यतां) मुक्ति लक्ष्मी का वशीकरण (चतुर्गति भुवां विपदाम् उच्चाटं) चारों गतियों मे होने वाली विपत्तियों का उच्चाटन-नाश (आत्मा-ऐनसां-विद्वेषं) आत्मा संबंधी पापों का विद्वेष-अभाव (दुर्गमनं-प्रति प्रयततः स्तम्भं) दुर्गतियो मे जाने वालो का स्तंभन–रोकथाम और (मोहस्य संमोहनं) मोह का संमोहन (विदधते) करती है (सा पञ्चनमस्क्रिया-अक्षरमयी) वह पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र के अक्षर रूप (आराधना देवता) आराधना देवी (पायात्) मेरी रक्षा करे।

भावार्थ—पञ्चपरमेष्ठी वाचक अक्षरों से बना हुआ णमोकार मन्त्र महा-आराध्य मंत्र है। इस महामन्त्र की अपूर्व महिमा है। यह एक ही मंत्र आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तम्भन व सम्मोहन मंत्र है। इस महामंत्र की आराधना से देवों की विभूति का आकर्षण होता है अतः यह आकर्षण मंत्र है। आराधक के लिये मोक्ष लक्ष्मी वश हो जाती है अतः यह वशीकरण मन्त्र है। इसकी आराधना से आराधक के चतुर्गति संबंधी विपत्तियों का नाश होता है अतः यह उच्चाटन मन्त्र है। इस मन्त्र का आराधक आत्मा के द्वारा होवे राग-द्वेष-मोह आदि पापों को करने से भयभीत हो, उनमें अरति भाव को प्राप्त होता है अतः यह विद्वेषण मन्त्र है। इस मंत्र की आराधना करने वालों का नरक-तिर्यञ्च दुर्गतियों को जाने का द्वार बन्द हो जाता है, अतः यह स्तम्भन मन्त्र है। इस मंत्र के आराधक पुरुष का मोह स्वयं मूर्च्छित हो जाता है अतः संमोहन मन्त्र है। ऐसा महामन्त्र हमारी रक्षा करे।

अनन्तानन्त संसार, संततिच्छेद कारणम्।
जिनराजपदाम्भोज, स्मरणं शरणं मम ।।१४।।

अन्वयार्थ—(अनन्तानन्त संसार-सन्ततिच्छेदकारणम्) अनन्तानन्त संसार की परम्परा को छेदने का कारण (जिनराज-पदाम्भोज-स्मरणं) जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों का स्मरण ही (मम) मेरा (शरणं) शरण है।

भावार्थ—वीतराग जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों का स्मरण, स्तवन, वन्दन, प्रणमन ही पञ्चपरावर्तन रूप अनन्त संसार की अनादि-कालीन

परम्परा का विच्छेद करने मे समर्थ है। हे प्रभो ! आप के चरण-कमल ही मेरे लिये एकमात्र शरण है। ये ही मेरे रक्षक है। मेरी भव-बाधा को हरने वाले भी ये ही है।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर ! ।।१५।।

अन्वयार्थ—(जिनेश्वर !) हे जिनदेव ! (मम) मेरे (अन्यथा) अन्य प्रकार से (शरणं न अस्ति) शरण-रक्षा नही है (त्वम् एव शरणं) आप ही मेरे लिये शरण है। (तस्मात्) इसलिये (कारुण्यभावेन) करुणा भाव से (रक्ष-रक्ष) मेरी रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे वीतराग स्वामिन् ! इस दु.खद संसार मे आप ही मेरे शरण है, आप ही मेरे रक्षक है। आपको छोड़कर मेरा कोई अन्य शरण नही, रक्षक नही। प्रभो ! अत. मुझ पर करुणा कीजिये। कारुण्य भाव से मुझे शरण दीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।

नहित्रांता नहित्राता, नहित्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।१६।।

अन्वयार्थ—(जगत्त्रये) तीनो लोको मे (नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता) आपके सिवाय अन्य कोई रक्षक नही है, रक्षक नही है, रक्षक नही है (वीतरागात् परः देवः) वीतराग से भिन्न अन्य कोई देव (न भूतो) भूतकाल मे नही हुआ (न भविष्यति) न भविष्य मे होगा।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! तीनो लोको मे आपको छोड़कर अन्य कोई भी मेरा रक्षक नही है, नही है, नही है। वीतराग देव ही महादेव/देवाधिदेव है। इनसे बढ़कर अन्य कोई देव न भूतकाल में हुआ, न वर्तमान मे कोई है और न ही भाविकाल मे कोई होगा।

जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्दिने दिने।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे ।।१७।।

अन्वयार्थ—(भवे भवे) भव-भव मे (दिने-दिने) प्रतिदिन (मे) मेरी (जिनेभक्तिः जिनेभक्तिः जिनेभक्तिः) जिनेन्द्रदेव मे भक्ति हो, जिनेन्द्रदेव मे भक्ति हो, जिनेन्द्रदेव मे भक्ति हो। (सदा मे अस्तु, सदा मे अस्तु, सदा मे अस्तु) मेरी भक्ति जिनदेव मे सदा हो, सदा हो, सदा हो।

भावार्थ—हे प्रभो ! मेरी वीतराग देव, देवाधिदेव में भक्ति प्रतिदिन हो, भव-भव मे हो, सदा काल हो। मैं सदाकाल आपकी भक्ति में भावना करता रहूँ।

याचेऽहं याचेऽहं, जिन ! तव चरणारविंदयोर्भक्तिम् ।
याचेऽहं याचेऽहं, पुनरपि तामेव तामेव ।।१८।।

अन्वयार्थ—(जिन !) हे जिनदेव ! (अहम्) मैं (तव) आपके (चरण-अरविन्दयो: भक्तिम्) चरण-कमलों की भक्ति की (याचेऽहं) याचना करता हूँ (याचेऽहं याचेऽहम्) याचना करता हूँ। याचना करता हूँ। (पुनर् अपि) बारंबार (ताम् एव ताम् एव) उस ही आपके चरणों की भक्ति की (याचेऽहम्) याचना करता हूँ (याचेऽहम्) याचना करता हूँ।

भावार्थ—हे प्रभो ! मैं बारम्बार आपके चरण-कमलों की भक्ति की याचना करता हूँ, उसीकी प्राप्ति की बार-बार इच्छा करता हूँ। बस आपके चरण-कमलों में लगन लगी रहे यही याचना करता हूँ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः ।
[1]विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ।।१९।।

अन्वयार्थ—(स्तूयमाने जिनश्वरे) जिनेश्वर की स्तुति करने पर (विघ्नौघा:) विघ्नों का समूह तथा (शाकिनी-भूत-पन्नगा:) शाकिनी, भूत, सर्प (प्रलयं यान्ति) नष्ट हो जाते है, इसी तरह (विषं निर्विषतां याति) विष निर्विषता को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—जिनेश्वरदेव की स्तुति करने से विघ्नों का जाल समाप्त हो जाता है, शाकिनी, भूत, सर्प आदि की बाधाएँ क्षण भर में क्षय को प्राप्त हो जाती हैं तथा भयानक विष भी दूर हो जाता है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं [2]रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ, मज्झं ।

१. विषं पाठ भी है, २. रयणत्तयपरूव पाठ भी है।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! मैने (समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ) समाधिभक्ति सम्बंधी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउं) उस सम्बन्धी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ (रयणत्तयपरूव-परमप्पज्झाणलक्खणं-समाहिभत्तीए) इस समाधिभक्ति में रत्नत्रय को निरूपण करने वाले शुद्ध परमात्मा के ध्यान रूप शुद्ध आत्मा की मैं (णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि) नित्यकाल, सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दु:खों का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमणं) उत्तम गति में गमन हो (समाहिमरणं) समाधिमरण हो तथा (जिणगुणसंपत्ति होऊ मज्झं) जिनेन्द्रदेव के गुणों-रूपी सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। समाधिभक्ति में रत्नत्रय के प्ररूपक शुद्ध परमात्मा के ध्यानरूप विशुद्ध आत्मा की मैं सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन व समाधिमरण हो तथा वीतराग जिनदेव के महागुणरूपी सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

।। इति- समाधिभक्तिः ।।

निर्वाणभक्ति

आर्या

विबुधपति-खगपतिनरपतिधनदोरगभूतयक्ष पतिमहितम् ।
अतुलसुखविमलनिरुपमशिवमचलमनामयं हि संप्राप्तम् ।।१।।
कल्याणैः-संस्तोष्ये पञ्चभिरनघं त्रिलोक परमगुरुम् ।
भव्यजनतुष्टिजननैर्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या ।।२।।

अन्वयार्थ—जो (विबुधपति-खगपति-नरपति-धनद-उरग-भूत-यक्षपति-महितम्) देवेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, कुबेर, धरणेन्द्र, भूत व यक्षो के स्वामियो से पूजे जाते है (अचलम्) अविनाशी (अनामयं) निरोगता (अतुल सुख) अतुल्य सुख रूप (विमल-निरुपमशिवम्) निर्मल, उपमातीत, जो मोक्ष है उसको (सम्प्राप्तम्) सम्यक् प्रकार से प्राप्त है (अनद्यं) जो निर्दोष है (त्रिलोक परमगुरुम्) तीन लोको के श्रेष्ठ गुरु है ऐसे (सन्मतिं नत्वा) भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार करके (भव्यजन-तुष्टि-जननैः) भव्यजनो को सन्तोष उत्पन्न करने वाले (दुरवापैः) अत्यन्त दुर्लभ (पञ्चभिःकल्याणैः) गर्भादि पॉच कल्याणको के द्वारा (सस्तोष्ये) उन वीरप्रभु की अच्छी तरह से स्तुति करूँगा ।

भावार्थ—जो महावीर भगवान् इन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, कुबेर, धरणेन्द्र, भूत व यक्षो के स्वामियो से पूज्य है। मुक्ति पद से लौटकर संसार मे नही आयेंगे अतः अचल है, जो शारीरिक, मानसिक समस्त रोगो से रहित होने से अनामय है, जिनका अतीन्द्रिय सुख तुलनातीत है, अतः जो अतुल्य है, जिनके सुख की संसार मे कोई उपमा न होने से जो उपमातीत है, जो मुक्ति पद प्राप्त हो चुके है, जो कलंक रहित है, वीतरागी होने से जो तीनो लोको के उत्तम गुरु है; ऐसे वीरप्रभु को नमस्कार करके भव्य जीवो के संतोष के प्रदायक ऐसे अत्यन्त दुर्लभ गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान व मोक्ष कल्याणको के द्वारा मै उन वीरप्रभु की अच्छी तरह से स्तुति करूँगा ।

आषाढसुसितषष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रितेशशिनि ।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वापुष्पोत्तराधीशः ।।३।।

सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे ।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् संप्रदर्श्य विभुः ।।४।।

अन्वयार्थ—(पुष्पोत्तर-अधीश·) पुष्पोत्तर विमान का स्वामी (विभुः) भगवान महावीर का जीव (आषाढ-सुसित-षष्ठ्यां) आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन (शशिनि) चन्द्रमॉ के (हस्तोत्तर-मध्यम-आश्रिते) हस्तोत्तरा नक्षत्र के मध्य स्थित होने पर (स्वर्गसुखं-भुक्त्वा) स्वर्ग के सुखो को भोगकर (भारतवास्ये) भारतवर्ष मे (विदेहकुण्डपुरे) विदेह क्षेत्र के कुण्डपुर नगर मे (सु-स्वप्नान् संप्रदर्श्य) उत्तम स्वप्नो को दिखाकर (प्रियकारिण्यां) प्रियंकारिणी (देव्यां) देवी (सिद्धार्थ-नृपति-तनयः) सिद्धार्थ राजा का पुत्र होता हुआ (आयातः) आया था।

भावार्थ—वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी का जीव पूर्व भव मे १६वें अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान का स्वामी था। वहॉ २२ सागर की आयुपर्यन्त स्वर्ग के सुखो को भोगकर इसी भरत क्षेत्र बिहार प्रान्त मे विदेह देश मे कुण्डपुर नामक नगर मे राजा सिद्धार्थ की महादेवी प्रियंकारिणी, दूसरा प्रसिद्ध नाम त्रिशला देवी के गर्भ मे आया। वह शुभ दिन आषाढ़ शुक्ला षष्ठी का था। [1]इस समय चन्द्रमा हस्त तथा उत्तरा नक्षत्र के मध्यमे स्थित था।

गर्भ मे आने के पहले पिछली रात्रि मे प्रियंकारिणी माता ने शुभफलदायक ऐसे १६ स्वप्न देखे थे—१. सफेद हाथी, २ सुन्दर सफेद बैल, ३. सिंह, ४.कलश करती हुई लक्ष्मी, ५. दो मालाएँ, ६. सूर्य मण्डल, ७. चन्द्र मण्डल ८. मीनयुगल, ९. कनक कलश १०. कमलयुक्त सरोवर, ११. लहरोयुक्त सागर, १२. सिंहासन, १३. देवविमान, १४. धरणेन्द्र विमान, १५. रत्नो की राशि और १६. निर्धूम अग्नि।

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम् ।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ।।५।।
हस्ताश्रिते शशांके चैत्र ज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे ।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ।।६।।

[1]—महापुराण ग्रन्थ के अनुसार गर्भकल्याणक काल मे चन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्र पर स्थित था।

अन्वयार्थ—(चैत्र-सित-पक्ष-फाल्गुनि-शशांकयोगे-त्रयोदश्याम् दिने) चैत्रमास शुक्लपक्ष तेरस के दिन जब उत्तरा-फाल्गुनी नामक चन्द्र योग था (सौम्येषु ग्रहेषु स्व-उच्चस्थेषु-जज्ञे) शुभग्रह अपने-अपने उच्चस्थान पर स्थित थे, (शुभलग्ने) शुभलग्न था (शशांङ्के हस्ताश्रिते)[1] चन्द्रमा हस्त नक्षत्र पर स्थित था तथा (चैत्र ज्योत्स्ने) चैत्रकी चांदनी छिटकी हुई थी—तभी शुभ बेला मे महावीर भगवान् का जन्म हुआ था (चतुर्दशी दिवसे) चतुर्दशी के दिन (पूर्वाह्णे) प्रात:काल मे (विबुधेन्द्रा:) देवोके इन्द्र-देवेन्द्रो ने (रत्नघटै: अभिषेकं चक्रु:) इन्द्रो ने रत्नमय कलशो से उन वीर जिन का अभिषेक किया था।

भावार्थ—चैत्र मास शुक्ल पक्ष त्रयोदशी/तेरस, उत्तराफाल्गुनी चन्द्रयोग मे, जब शुभ व उच्च ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान पर स्थित थे, लग्न भी शुभ, चन्द्रमा हस्तनक्षत्र पर स्थित था कुबेर के द्वारा रची गई सुन्दर कुण्डपुर नगरीमे जब चैत्र माह की चॉदनी बिखर रही थी, शुभ बेला मे वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थकर भगवान वर्धमान का जन्म हुआ था। चतुर्दशी के दिन प्रात:काल की मंगल बेला मे देवेन्द्रो ने १००८ विशाल रत्नमयी मंगल कलशो से सुमेरुपर्वत की पाण्डुक-शिला पर उन वर्धमान जिनेन्द्र का जन्म-अभिषेक कर उस जन्माभिषेक के द्वारा जन्मकल्याणक का अनुष्ठान किया।

भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनंत गुणराशि: ।
अमरोपनीतभोगान्सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्यु: ।।७।।
नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम् ।
चन्द्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनि: क्रान्त: ।।८।।
मार्गशिरकृष्णदशमी हस्तोत्तर मध्यमाश्रिते सोमे ।
षष्ठेन त्वपराह्णे भक्तेन जिन: प्रवव्राज ।।९।।

अन्वयार्थ—जो वर्धमान स्वामी (अनन्त-गुण-राशि:) अनन्त गुणों के राशि स्वरूप अर्थात् अनन्त गुणो के स्वामी थे वे वीर प्रभु (कुमारकाले)

---

१. तिलोयपण्णत्ति—४/५२६-५४९
हरिवंशपुराण—६०/१८२-२०५ के अनुसार चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पर स्थित था तब भगवान वीर का जन्म हुआ।

कुमार अवस्था मे (त्रिंशत् वर्षाणि) तीस वर्षों तक (अमर-उपनीत-भोगान् - भुक्त्वा) देवो के द्वारा लाये गये भोगों को भोगकर (सहसा-अभिनिबोधितः) अचानक प्रतिबोध/वैराग्य को प्राप्त हो गये तथा (अन्येद्युः) दूसरे दिन (नानाविध रूपचितां) विविध प्रकार के चित्रो से चित्रित (विचित्र-कूटोच्छ्रितां) विचित्र ऊँचे-ऊँचे शिखरो से ऊँची/विशाल (मणि-विभूषाम्) मणियो से विभूषित, सुशोभित ऐसी (चन्द्रप्रभाख्य-शिविकाम्-आरुह्य) चन्द्रप्रभा नामक पालकी पर आरोहण करके/चढ़कर के (पुरात् विनिष्क्रान्तः) कुण्डपुर नगर से बाहर निकल गये।

(मार्ग-शिर-कृष्ण-दशमी-हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते सोमे) मक्सर/मगसिर/अगहन/मार्गशिर माह मे कृष्ण पक्ष की दशमी के शुभ दिन जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर था, उन्होने (षष्ठेन भक्तेन तु अपराह्ले जिनः प्रवव्राज) दो उपवास का नियम ले अपराह्न काल में जैनेश्वरी निर्ग्रंथ दीक्षा को धारण किया।

भावार्थ—जन्म से दस अतिशय के धारक १००८ लक्षणों से सुशोभित तीर्थंकर महावीर पृथ्वीतल पर अनन्तगुणों की राशि से सम्पन्न थे। उनके पुण्य की महिमा वर्णनातीत है। कुमार अवस्था के ३० वर्षों पर्यन्त उन्होंने देवों द्वारा लाये गये दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्यभोजन आदि रूप भोगों का उपभोग किया था। तथापि उन भोगों मे अरुचि को प्राप्त वे निमित्त पाते ही वैराग्य को प्राप्त हो गये। लौकान्तिक देवों द्वारा उनके वैराग्य की प्रशंसा की गई। तभी दूसरे दिन विविधप्रकार के सुन्दर-सुन्दर चित्रों से मण्डित, शिखरों से सुशोभित, रत्न, मणियों से विभूषित चन्द्रप्रभा नाम की शिविका-पालकी पर बैठकर वीर प्रभु वैरागी बन नगर से बाहर, वन की ओर निकल पड़े तथा अगहन/मगसिर/मार्गशिर माह की कृष्णपक्ष की दसमी तिथि के दिन अपराह्न काल की मंगल बेला में, जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर स्थित था, दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा कर निर्ग्रन्थ, जैनेश्वरी दीक्षा को प्राप्त हुए।

ग्रामपुर खेटकर्वटमटंब घोषाकरान्प्रविजहार।
उग्रैस्तपोविधानैर्द्वादशवर्षाण्यमर पूज्यः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अमर पूज्यः) देवो से पूज्य भगवान् वर्धमान ने (उग्रैः तपोविधानैः) उग्र तपो के विधान से (द्वादश-वर्षाणि) बारह वर्ष तक (ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषा-करान्) ग्राम, पुर, खेट, कर्वट, मटम्ब, घोष और आकर आदि में (प्रविजहार) अच्छी तरह/ प्रकृष्ट विहार किया।

भावार्थ—देव-इन्द्र आदि जीवों से पूजित वीर भगवान् ने उग्र-उग्र तपश्चरण करते हुए ग्राम, पुर, खेट आदि विभिन्न स्थानों पर बारह वर्षों तक निर्विघ्न विहार किया।

ग्राम—जो स्थान कँटीली बाड़ी से वेष्टित होता है, उसे ग्राम कहते हैं।

पुर—चार गोपुरों से शोभा को प्राप्त तथा कोट से वेष्टित हो उसे पुर कहते हैं।

खेट—जो स्थान नदी व पर्वत से युक्त हो उसे खेट कहते हैं।

कर्वट—जो पर्वत से युक्त हो उसे कर्वट कहते हैं।

मटंब—जो पाँच सौ ग्रामो से सम्बद्ध हो उसे मटम्ब कहते हैं।

घोष—अहीरों की बस्ती को घोष कहते हैं।

आकर—सोना-चाँदी-रत्न आदि की खानि को आकर कहते हैं। (यहाँ उपलक्षण से द्रोण-पत्तन-संवाहन आदि का भी ग्रहण होता है)

द्रोण—दो पर्वतों के बीच में बसा नगर द्रोण कहलाता है।

पत्तन—समुद्र-तट पर बसा नगर पत्तन कहलाता है।

संवाहन—पर्वत पर बसा नगर संवाहन कहलाता है।

ऋजुकूलायास्तीरे शाल्मद्रुम संश्रिते शिलापट्टे ।
अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ।।११।।

अन्वयार्थ—(ऋजुकूलायाः तीरे) ऋजुकूला नदी के किनारे पर (खलु जृम्भिकाग्रामे) जृम्भिका नामक ग्राम्य में (शाल्मद्रुम संश्रिते शिलापट्टे) शालवृक्ष के नीचे स्थित शिलापट्ट पर (अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य) अपराह्ण काल में दो दिन का उपवास ग्रहण कर विराजमान हो गए।

भावार्थ—छद्मस्थ अवस्था में निर्ग्रन्थ मुनि लिंग के धारक वीरप्रभु १२ वर्ष तक विहार करते हुए ऋजुकूला नदी के समीप जृम्भिका ग्राम पहुँचे। यहाँ आप शालवृक्ष के नीचे शिलापट्ट पर अपराह्न काल में दो दिन का उपवास लेकर विराजमान हो गये। पश्चात्

वैशाखसितदशम्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चन्द्रे।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम्।।१२।।

अन्वयार्थ—(वैशाखसितदशम्यां) वैशाख शुक्ल दसमी (हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चन्द्रे) जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर स्थित था (क्षपक श्रेण्यारूढस्य उत्पन्नं केवलज्ञानम्) क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ उन वीर भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—साधना-रत वीर भगवान् ने क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो, शुक्लध्यान के बल पर, वैशाख शुक्ल दसमी के शुभ दिन, जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर स्थित था, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय चार घातिया कर्मो का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त किया।

अथ भगवान संप्रापद्-दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम्।
चातुर्वर्ण्य सुसंघस्तत्राभूद् गौतमप्रभृति।।१३।।

अन्वयार्थ—(अथ) केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् (भगवान) ज्ञान से सम्पन्न वीर प्रभु (दिव्यं रम्यं वैभारपर्वतम् सम्प्रापत्) विशाल, सुन्दर, मनोज्ञ ऐसे वैभार-विपुलाचल पर्वत पर पधारे (तत्र) वहाँ (गौतमप्रभृतिः) गौतम स्वामी को आदि लेकर (चातुर्वर्ण्य संघः अभूत्) चातुर्वर्ण्य मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका अथवा ऋषि, यति, मुनि व अनगार रूप चार प्रकार का संघ एकत्रित हुआ।

भावार्थ—पूर्ण ज्ञान-कैवल्य विभूति को प्राप्त वीरप्रभु विहार करते हुए विशाल चट्टानों से रम्य, सुन्दर, मनोहर ऐसे वैभार-विपुलाचल पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ गौतम गणधर सहित ऋषि-यति-मुनि-अनगार अथवा मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका के रूप चार प्रकार के विशाल संघ के साथ समवशरण सभा में आप शोभा को प्राप्त हो रहे थे।

छत्राशोकौ घोषं सिंहासन दुंदुभि कुसुमवृष्टिम् ।
वरचामर　भामण्डलदिव्यान्यन्यानि　चावापत् ।।१४।।

अन्वयार्थ—वहाँ (छत्र-अशोकौ) दिव्य, सुन्दर छत्र, अशोक वृक्ष (घोषं) दिव्यध्वनि (सिंहासन-दुन्दुभी) सिंहासन और दुन्दुभि बाजे (कुसुमवृष्टिं) सुगन्धित सुमनो की वर्षा (वर-चामर-भामण्डल-दिव्यानि-अन्यानि च) उत्तम चॅवर, भामण्डल और अन्य अनेक दिव्य वस्तुओ को आपने (अवापत्) प्राप्त किया ।

भावार्थ—१ योजन के विशाल समवशरण मे आप सुन्दर, देवोपनीत तीन मणिमय छत्रो, अशोक वृक्ष, सप्तभंगमयी दिव्यध्वनि, रतनजड़ित सिंहासन, दुन्दभि बाजे. सुगन्धित विविध पुष्पों की वर्षा, उत्तम चंवर, प्रभामण्डल इन आठ प्रातिहार्यो तथा अन्य अनेक दिव्य, रम्य वस्तुएँ की शोभा को प्राप्त हुए थे । अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होते ही भगवान् १४ देवकृत अतिशय व दस केवलज्ञान के अतिशयों से मण्डित हो समवशरण सभा मे शोभायमान हो रहे थे ।

दसविधमनगाराणामेकादशधोत्तर तथा धर्मम् ।
देशयमानो व्यवहरंस्त्रिशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ।।१५।।

अन्वयार्थ—(अथ) वैभार पर्वत पर, प्रथम दिव्य देशना के पश्चात् (जिनेन्द्र·) भगवान् महावीर स्वामी ने (दशविधम् अनगारणाम्) दस प्रकार के मुनि धर्म का (तथा) और (एकादशधा उत्तरं धर्मं) ग्यारह प्रकार—ग्यारह प्रतिमा के बारह व्रत आदि रूप श्रावक धर्म का (देशयमान:) उपदेश देते हुए (त्रिंशद् वर्षाणि) तीस वर्षो पर्यन्त (व्यवहरत्) विशेष-रीत्या विहार किया ।

भावार्थ—भगवान् महावीर की प्रथम दिव्य देशना विपुलाचल पर्वत पर खिरी । पश्चात् वहाँ से विभिन्न ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मटम्ब, घोष, आकर, द्रोण, पत्तन, संवाहन आदि मे चतुर्विध संघ सहित तीस वर्षों तक विहार करते हुए आपने भव्य जीवो को मुनियो के उत्तमक्षमादि दस धर्मो का तथा प्रथम दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषध प्रतिमा आदि श्रावक धर्म की ११ प्रतिमाओ व बारह व्रतो, पाँच अणुव्रत,

तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतों का मंगल-पापनाशक उपदेश दिया। इस प्रकार महती धर्मप्रभावना आपके मंगल-विहार से स्थान-स्थान पर हुई।

पद्मवनदीर्घिकाकुल विविध द्रुमखण्ड मण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ।।१६।।

अन्वयार्थ—(स:मुनि) वे केवलज्ञानी, स्नातक मुनि, सकल परमात्मा भगवान महावीर (पद्मवन-दीर्घिकाकुल-विविध-द्रुम-खंड-मण्डिते) कमलवन समूह, वापिका/बावड़ी समूह और अनेक प्रकारो के वृक्ष समूह से शोभायमान (पावानगरे उद्याने) पावानगर के उद्यान में (व्युत्सर्गेण स्थित:) कायोत्सर्ग से स्थित हो गये।

भावार्थ—यहाँ पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच प्रकार के मुनि उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र में कहे उनमें केवलज्ञानी अरहंत देव स्नातक मुनि कहलाते हैं। ऐसे स्नातक सकल परमात्मा मुनि भगवान महावीर ने कमलवन समूह से युक्त विशाल बावड़ी और अनेक प्रकार के वृक्षों के समूह सुशोभित पावानगर के उद्यान में कायोत्सर्ग धारण किया।

कार्तिककृष्णा स्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्यकर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ।।१७।।

अन्वयार्थ—वे सकलपरमात्मा महावीर (कार्तिक-कृष्णास्य-अन्ते) कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष के अन्त में (स्वातौ ऋक्षे) स्वाति नक्षत्र के काल में (अवशेषं कर्मरज: निहत्य) सम्पूर्ण अघातिया कर्मों की प्रकृतियो का क्षय करके (वि-अजरम् अमरम् अक्षयम् सौख्यम्) जरा-मरण से रहित अक्षय, अविनाशी, शाश्वत सुख को (संप्रापद्) प्राप्त किया।

भावार्थ—महावीर भगवान ने [१]कार्तिक माह में कृष्ण पक्ष की अमावस्या के दिन जब चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर स्थित था, नाम-गोत्र-आयु और वेदनीय इन अघातिया कर्मों का पूर्ण क्षय करके जन्म-जरा-मरण से रहित शाश्वत सुख रूप मुक्ति-पद को प्राप्त किया।

---

१. किन्हीं आचार्यों के मत से कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के अन्तिम काल/मुहूर्त मे महावीर भगवान ने सिद्धपद प्राप्त किया व उनका मोक्षकल्याण उत्सव अमावस्या को मनाया गया।

परिनिर्वृत्तं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधाह्यथासु चागम्य ।
देवतरु रक्तचन्दन कालागरु सुरभिगोशीर्षैः ।।१८।।
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभि धूपवरमाल्यैः ।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गतादिवं खं च वनभवने ।।१९।।

अन्वयार्थ—(अथ हि) तत्पश्चात् (जिनेन्द्रं परिनिर्वृत्तं ज्ञात्वा) वीर जिनेन्द्र को मुक्त हुए जानकर (विबुधाः) चारो निकाय के देवो ने (आशु आगम्य) शीघ्र आकर के (देवतरु-रक्त चन्दन-कालागुरु-सुरभिगोशीर्षैः) देवदारु, लाल चन्दन, कालागुरु और सुगन्धित गोशीर्ष-चन्दनो से (अग्नीन्द्रात्) अग्निकुमार देवो के स्वामी "अग्नीन्द्र" के (मुकुट-अनल-सुरभि-धूप वार-माल्यैः) मुकुट से प्राप्त अग्नि, सुगन्धित धूप व उत्कृष्ट मालाओ के द्वारा (जिनदेहं) जिनेन्द्र देव के शरीर की (अभ्यर्च्य) पूजा की, उनका अग्नि संस्कार या अन्तिम संस्कार किया। तथा (गणधरान् अपि अभ्यर्च्य) गणधरो की भी पूजा की इसके बाद (दिवं खं च-वनभवने) सभी देव स्वर्ग को, आकाश को, वन और भवनो को चले गये।

भावार्थ—अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के मुक्ति-प्राप्ति का सुसमाचार जानकर चारो निकायो—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी व कल्पवासी देवो ने शीघ्र ही पावानगर के उद्यान मे पधारकर, जिनेन्द्रदेव की पूजा की तथा देवदारु, लालचन्दन, कालागुरु और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दनो से, अग्निकुमार देवो के इन्द्र के मुकुट से निकली अग्नि से तथा सुगंधित धूप और उत्तम मालाओ से भगवान के शरीर का अन्तिम संस्कार किया। पश्चात् उन देवो ने गणधरो की दिव्य पूजा की। उसके बाद कल्पवासी देव स्वर्ग को, ज्योतिषी देव आकाश को, व्यन्तर देव भूतारण्यवन को, भवनवासी देव अपने-अपने भवनो को चले गये।

प्रहर्षिणी छन्द

इत्येवं भगवति वर्धमान चन्द्रे,
यः स्तोत्रं पठति सुसंध्ययोर्द्वयोर्हि ।
सोऽनन्तं परमसुखं नृदेवलोके,
भुक्त्वान्ते शिवपदमक्षयं प्रयाति ।।२०।।

अन्वयार्थ—(इति एवं) इस प्रकार (भगवति वर्धमान चन्द्रे) भगवान् महावीर से सम्बन्धित (स्तोत्रं) स्तोत्र को (यः) जो (द्वयोः हिं) दोनों ही (सुसन्ध्ययोः पठति) सन्ध्याओं से पढ़ता है (सः) वह (नृ-देव-लोके) मनुष्य और देवलोक में (परमसुखं भुक्त्वा) उत्तम सुखों को भोगकर (अन्ते) अन्त मे (अक्षयं-अनन्तं-शिवपदं) अविनाशी, शाश्वत ऐसे मोक्ष पद को (प्रयाति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—वर्धमान प्रभु के इस मंगल स्तोत्र को जो भव्यात्मा दोनों ही सन्ध्याकालों में पढ़ता है वह मनुष्य और देवलोक के उत्तम सुखों को भोगकर अन्त में अविनाशी, अक्षय अनन्त मोक्ष पद के अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करता है।

बसन्त-तिलका

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां,
निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम्।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः,
संस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ।।२१।।

अन्वयार्थ—(इह) यहाँ जम्बूद्वीप में (यत्र) जहाँ (भारतवर्षजानाम्) भारत देश में उत्पन्न (अर्हतां, गणभृतां, श्रुतपारगाणां निर्वाणभूमिः) अर्हन्तों, तीर्थंकरों की गणधरों और श्रुत के पारगामी-श्रुतकेवली की निर्वाणभूमि हैं (संस्तोतुम् उद्यत-मतिः) उन भूमियों की सम्यक् प्रकार स्तुति करने के लिये तत्पर बुद्धि वाला हुआ मैं (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (ताम्) उनको (अद्य) आज अभी (शुद्ध-मनसा-क्रियया-वचोभिः) शुद्ध मन, वचन, क्रिया-काय से (परिणौमि) अच्छी तरह नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ— इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र आर्यखण्ड में होने वाले २४ तीर्थंकरों की निर्वाणभूमियों, सामान्य केवलियों की निर्वाणभूमियों, गणधरों की निर्वाणभूमियों तथा श्रुतकेवलियों की निर्वाणभूमियों एवं अन्य सर्व मुनियों की जो-जो निर्वाणभूमियाँ हैं, उन सब मंगलमय, भूमियों की स्तुति करने का इच्छुक मैं आज भक्तिपूर्वक निर्मल मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

कैलाश शैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ,
शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा ।
चम्पापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान्,
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः ।।२२।।

अन्वयार्थ—(शैलेशिभावम् उपपद्य) अठारह हजार शीलों के स्वामीपने को प्राप्त करके (असौ महात्मा वृषः) ये महान आत्मा वृषभदेव (कैलास-शैल-शिखरे) कैलाश पर्वत के शिखर पर (परिनिर्वृतः) निर्वाण को प्राप्त हुए (गत-रागबन्धः सुधीमान्) राग के बन्ध से रहित अतिशय-ज्ञानी–केवलज्ञानी (वसुपूज्यसुतः) राजा वसुपूज्य के सुपुत्र-भगवान् वासुपूज्य ने चम्पापुर में (परां सिद्धिं उपगतः) उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त किया।

भावार्थ—अठारह हजार शीलों की पूर्णता होते ही ये "शैलेशि भाव" से सम्पन्न इस युग के आदि तीर्थंकर श्री वृषभदेव कैलाश-पर्वत से मुक्ति-पद को प्राप्त हुए तथा वीतरागी, केवलज्ञानी भगवान वासुपूज्य ने सिद्धक्षेत्र चम्पापुर में उत्कृष्ट मोक्षस्थल को, सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया।

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः,
पाखण्डिभिश्च परमार्थगवेषशीलैः ।
नष्टाष्ट कर्म समये तदरिष्टनेमिः,
संप्राप्तवान् क्षितिधरे वृहदूर्जयन्ते ।।२३।।

अन्वयार्थ—(विबुधेश्वराद्यैः) इन्द्र आदि देवों के द्वारा (च) और (परमार्थ-गवेषशीलैः-पाखण्डिभिः) आत्मा की खोज करने वाले/मुक्ति की खोज करने वाले अन्य लिंगधारियों के द्वारा भी (यत् शिवम् प्रार्थ्यते) जिस मोक्ष की इच्छा/प्रार्थना की जाती है (तत्) उस मोक्ष को (अयं अरिष्टनेमिः) इन अरिष्टनेमि-नेमिनाथ भगवान ने (नष्ट-अष्ट-कर्म समये) अष्ट कर्मों का क्षय करते ही, अयोगी गुणस्थान के अन्त समय में (वृहत्-उर्जयन्ते क्षितिधरे) गिरनार/उर्जयन्त नामक विशाल पर्वतराज पर (संप्राप्तवान्) समीचीन रूप से प्राप्त किया।

भावार्थ—शाश्वत सुख के स्थान जिस मोक्ष को प्राप्त करने के लिये इन्द्रादिक देव भी सदा प्रार्थना/भावना करते रहते हैं। जिस मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा परमार्थ के खोजी अन्य लिंगियों द्वारा भी की जाती उस परम

स्थान को १८ हजार शीलों की पूर्णता को प्राप्त अरिष्टनेमि/नेमिनाथ भगवान् ने अष्टकर्मों का क्षय कर १४वें गुणस्थान मे गिरनार पर्वत से प्राप्त किया। अर्थात् नेमिनाथ भगवान् गिरनार पर्वत से मुक्त हुए।

पावापुरस्य बहिरुन्नत भूमिदेशे,
पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्री वर्द्धमान जिनदेव इति प्रतीतो,
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ।।२४।।

अन्वयार्थ—(पावापुरस्य बहिः) पावापुर के बाहर (पद्म-उत्पला-कुलवतां) कमल व कुमुदों से व्याप्त/भरे हुए (सरसां हि मध्ये) तालाब के बीच में ही (उन्नतभूमिदेशे) ऊँचे भूमि प्रदेश पर (श्रीवर्धमान-जिनदेव इति प्रतीतो भगवान्) श्री वर्धमान इस नाम से प्रसिद्ध भगवान् ने (प्रविधूतपाप्मा निर्वाणमाप) समस्त पापो का क्षय करके मुक्त अवस्था की प्राप्ति की।

भावार्थ—बिहार प्रान्त के पावापुर नगर के बाहर सूर्य की किरणों को प्राप्तकर विकसित होने वाले कमल और चन्द्रमा की शीतल किरणों को पाकर विकसित होने वाले कुमुदों से युक्त विशाल मनोहर तालाब के ठीक मध्य में ऊँचे टीले पर स्थित, केवलज्ञान से शोभा को प्राप्त सर्वाधिक प्रसिद्ध महावीर वर्धमान भगवान् समस्त कर्मों/समस्त पापों का नाश करके मुक्ति को पधारे।

शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला,
ज्ञानार्क भूरि किरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारित सौख्यनिष्ठं,
सम्मेद पर्वततले समवापुरीशाः ।।२५।।

अन्वयार्थ—(जितमोहमल्लाः) जीत लिया है मोहरूपी मल्ल को जिनने ऐसे (शेषास्तु ते जिनवराः ईशाः) जो शेष तीर्थंकर हैं, भगवान् हैं वे (ज्ञान-अर्क-भूरि-किरणैः लोकान् अवभास्य) ज्ञानरूपी सूर्य की अनेकानेक किरणों से लोकों को प्रकाशमान करके (सम्मेद-पर्वत-तले) सम्मेदाचल पर्वत पर (निरवधारित-सौख्यनिष्ठं परं स्थानं) अनन्त सुख से व्याप्त उत्कृष्ट स्थान मोक्ष को (सम् अवापुः) अच्छी तरह से प्राप्त हुए।

भावार्थ—शेष अजितनाथ आदि बीस तीर्थंकर मोह शत्रु को पछाड़कर, केवलज्ञानरूपी किरणों से तीनों लोकों को प्रकाशित कर तीर्थराज सम्मेद-शिखर से अनन्त सुख के उत्तम स्थान मुक्ति अवस्था को प्राप्त हुए।

आद्यश्चतुर्दशदिनैर्विनिवृत्त योगः,
षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिन वर्द्धमानः।
शेषाविधूत घनकर्म निबद्धपाशाः,
मासेन ते यतिवरांस्त्वभवन्वियोगाः ।।२६।।

अन्वयार्थ—(आद्यः) प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव ने (चतुर्दशदिनैः विनिवृत्त योगः) चौदह दिनों द्वारा योग निरोध किया (जिन वर्द्धमानः) वर्द्धमान जिनेन्द्र ने (षष्ठेन-निष्ठित कृतिः) षष्ठोपवासी, बेला-२ उपवास द्वारा योगों का निरोध किया (शेषा ते यतिवराः तु मासेन) शेष २२ तीर्थंकर एक माह के द्वारा योग निरोध कर (विधूत-घन-कर्म-निबद्ध-पाशाः) अत्यन्त दृढ़ कर्मबद्ध रूप जाल को नाश कर मुक्त (अभवन्) हुए।

भावार्थ—आदि तीर्थंकर वृषभदेव ने आयु पूर्ण होने के चौदह दिनों पूर्व योगों का निरोध किया, अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी ने आयु पूर्ण होने के दो दिनों पूर्व योग निरोध किया तथा शेष २२ तीर्थंकरों ने आयु पूर्ण होने के एक माह पूर्व योगों का निरोध किया और सभी तीर्थंकर कर्मों के दृढ़ बन्धन को काटकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुए।

यहाँ योग निरोध से तात्पर्य समवशरण का विघटन होना, विहार व दिव्यध्वनि का बन्द कर एक स्थान पर स्थित हो योग धारण करना लेना चाहिये क्योंकि मन-वचन-काय रूप योगो का निरोध तो १४वें अयोगी गुणस्थान में ही होती है।

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा-
न्यादाय मानसकरैरभितः किरन्तः।
पर्येम आदृतियुता भगवन्निषद्याः,
संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः ।।२७।।

अन्वयार्थ—(वाक् स्तुतिमयैः कुसुमैः) वचनों के स्तुतिमय पुष्पों

के द्वारा (सुदृब्धानि माल्यानि) गूँथी हुई सुन्दर मालाओं को (मानसकरैः आदाय) मनरूपी हाथों के द्वारा ग्रहण करके (अभितः) चारों ओर (किरन्तः) बिखरते हुए (इमे) ये (वयम्) हम (भगवन् निषद्याः आदृतियुता पर्येम) भगवन्तों की निर्वाणभूमियों की आदरसहित परिक्रमा/प्रदक्षिणा करते हैं तथा (ताः परमां गतिं सम्प्रार्थिता) उनसे उत्तम सिद्धभूमि, सिद्धगति की प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—वचनों के स्तुतिमयी पुष्पों से गूँथी हुई सुन्दर आपके गुणरूपी मालाओं को मनरूपी हाथों से ग्रहण करके, चारों ओर बिखरते हुए, हम २४ भगवान् की समस्त निर्वाणभूमियों की आदरसहित परिक्रमा करते हैं तथा उनसे (भगवन्तों से) शाश्वत सुख का स्थान सिद्धभूमि की प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। हे प्रभो ! सिद्ध भगवन्तों की निर्वाणभूमियों की भक्ति- पूर्वक वन्दना करने वाले हमें सिद्धपद की प्राप्ति हो।

शत्रुञ्जये नगवरे दमितारिपक्षाः,
पण्डोः सुताः परमनिर्वृतिमभ्युपेताः।
तुंग्यां तु संगरहितो बलभद्रनामा,
नद्यास्तटे जिनरिपुश्च सुवर्णभद्रः ।।२८।।
द्रोणीमति प्रबलकुण्डल मेढ्रके च,
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च,
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ।।२९।।
सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे,
दण्डात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः,
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्य भूवन् ।।३०।।

अन्वयार्थ—(दमित अरिपक्षाः पण्डोः सुताः) शत्रु पक्ष को नष्ट करने वाले पाण्डुपुत्र पाण्डव (शत्रुञ्जये नगवरे परमनिर्वृत्तिम्-अभ्युपेताः) शत्रुञ्जय नामक श्रेष्ठ पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त हुए (संग रहितः बलभद्र-नामा तु तुंग्यां) समस्त परिग्रह से रहित बलभद्रनामा मुनि तुङ्गीगिरि से तथा (जितरिपुः सुवर्णभद्रः) कर्मशत्रुओं को जीतने वाले मुनि सुवर्णभद्र (नद्याः तटे) नदी के किनारे से मुक्ति को प्राप्त हुए।

(द्रोणीमति) द्रोणगिरि (प्रवर-कुण्डल-मेढ्रके च) प्रकृष्ट कुण्डलगिरि और मेढ्रगिरि दूसरा नाम मुक्तागिरि (वैभार-पर्वततले) वैभारपर्वत के तलभाग में (वर-सिद्धकूटे) उत्कृष्ट सिद्धकूट-सिद्धवरकूट में (ऋषि-अद्रिके) ऋषि याने श्रमणों का पर्वत श्रमणगिरि-सोनागिरि (विपुलाद्रि-बलाहके च) विपुलाचल व बलाहक पर्वत (विन्ध्ये) विन्ध्याचल में (वृषदीपके पौदनपुरे च) और धर्म को प्रकाशित करने वाले पोदनपुर में।

(सह्याचले) सह्य पर्वत (सुप्रतिष्ठे हिमवति अपि) अतिप्रसिद्ध हिमालय पर्वत (दण्डात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ। दण्डाकार गजपंथा और वंशस्थ पर्वत पर (ये साधवः) जो साधु (हतमलाः) कर्मो का क्षय कर (सुगतिं प्रयाताः) उत्तम सिद्धगति को प्राप्त हुए है (जगति) संसार में (तानि स्थानानि) वे सभी स्थान (प्रथितानि अभूवन्) प्रसिद्ध हुए।

भावार्थ—घातिया-अघातिया कर्मो को क्षय करने वाले युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तीनो भाई विशाल शत्रुञ्जय पर्वत से मुक्त हुए। बाह्य-अभ्यन्तर २४ परिग्रहो से रहित बलंदेव, तुंगीगिरि सिद्धक्षेत्र से मुक्त हुए। द्रव्य-भाव कर्मरूपी शत्रुओ का नाश करने वाले सुवर्णभद्र मुनिराज नदी के किनारे मे (पावागिरि पर्वत के समीप चेलना नदी के किनारे से) मुक्त हुए, द्रोणगिरि पर्वत, कुण्डलाकार कुण्डलगिरि, मेढ्रागिरि (मुक्तागिरि) पंचम पहाड़ी, राजगृही वैभार पर्वत, उत्तम सिद्धवर कूट, श्रमणगिरि, विपुलाचल, बलाहक पर्वत, विन्ध्याचल, धर्म प्रकाशक पोदनपुर, सह्यपर्वत, अत्यधिक प्रसिद्ध हिमालय पर्वत, दण्डाकार गजपंथा और वंशस्थ पर्वत पर जो-जो दिगम्बर सन्त शुभाशुभ कर्मो का क्षयकर मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए है, लोक में ये सभी सिद्धक्षेत्र प्रसिद्धि को प्राप्त हुए, पूज्यता को प्राप्त हुए हैं।

इक्षोर्विकार रसपृक्त गुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषै-रुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ।।३१।।

अन्वयार्थ—(यद्वत्) जिसप्रकार (लोके) लोक में (इक्षोः विकार रसपृक्त गुणेन) ईख के/गन्ना के रस से निर्मित मिष्ट शक्कर या गुड़ से मिश्रित (पिष्टः) आटा (अधिकं मधुरताम्) अधिक मधुरता को (उपयाति)

प्राप्त हो जाता है (तद्वत् च) उसी प्रकार (पुण्यपुरुषैः उषितानि) पुण्य पुरुषो/महापुरुषों से आश्रित (तानि स्थानानि) वे स्थान (इह जगतां नित्यं पावनानि) इस पृथ्वीतल को, इस संसार को सदैव पवित्र करने वाले होते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार आटा स्वभाव से मीठा है, किन्तु वही आटा ईख/गन्ना के रस से बने गुड़ या शक्कर का सम्पर्क पाकर अधिक मिठास को, अधिक स्वादिष्टपने को प्राप्त होता है ठीक उसी प्रकार तीर्थंकर, गणधर, केवलीभगवान व सामान्य मुनियों ने जहाँ-जहाँ विहार किया है, जहाँ-जहाँ निवास किया है, जहाँ तीर्थंकर व केवली भगवन्तों की दिव्यध्वनि खिरी है, समवशरण पधारा है, सामान्य मुनियों, गणधरों ने प्रवचन दिये हैं, वे सभी स्थान इन महान आत्माओं के सम्पर्क से नित्य ही अधिक पवित्रता को प्राप्त हो, प्राणी मात्र का कल्याण करने वाले, पवित्र हो जाते हैं।

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां,
प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति भूमि देशाः ।
तेमे जिना जितभया मुनयश्च शांताः,
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ।।३२।।

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (मया) मेरे द्वारा (अत्र) यहाँ—इस निर्वाणभक्ति स्तोत्र में (अर्हतां शमवतां च महामुनीनां) तीर्थंकर जिन, और साम्यभाव को प्राप्त महामुनियों के (परिनिर्वृत्ति भूमिदेशाः प्रोक्ताः) निर्वाण-स्थलों को कहा गया (ते जितभयाः जिनाः शान्ताः मुनयः च) वे सप्तभयों को जीतने वाले तीर्थंकर जिन और शान्त अवस्था प्राप्त मुनिराज (मे) मेरे लिये (आशु) शीघ्र (निरवद्यसौख्यम् सुगतिं दिश्यासुः) निर्दोष सुख से युक्त, उत्तम मोक्षगति को प्रदान करने वाले हों।

भावार्थ—यहाँ स्तुति कर्ता पूज्यपाद स्वामी स्तुति के फल की इच्छा करते हुए कहते हैं—

इस प्रकार मैंने घातिया कर्मों के नाशक, तीर्थप्रवर्तक तीर्थंकर जिन और पूर्ण शान्त भाव, पूर्ण साम्यभाव को प्राप्त महामुनियों, निर्वाण स्थलियों

का स्मरण किया है। वे मेरी भक्ति के आधार भयमुक्त जिनेन्द्रदेव और शान्तरस में लीन मुनिवृन्द मुझे शीघ्र ही दोषरहित, विशुद्ध, बाधारहित सुख से सहित ऐसी उत्तम गति—मोक्ष गति को प्रदान करें।

क्षेपक श्लोकानि

कैलाशाद्रौ मुनीन्द्रः पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूतः।
चंपायां वासुपूज्यस्त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयंते ।।१।।
पावायां वर्धमानस्त्रिभुवनगुरवो विंशतिस्तीर्थनाथाः।
सम्मेदाग्रे प्रजग्मुर्ददतु विनमतां निर्वृत्तिं नो जिनेन्द्राः ।।२।।

अन्वयार्थ—(अपदुरितः) पापों से मुक्त (प्रणूतः) नमस्कार को प्राप्त (मुनीन्द्रः पुरु) मुनियों के स्वामी पुरुदेव-ऋषभनाथ स्वामी (कैलाशाद्रौ) कैलाश पर्वत पर (मुक्तिम् आप) मुक्ति को पधारे। (त्रिदशपतिनुतः वासुपूज्य चंपायां) इन्द्रों के द्वारा नमस्कृत वासुपूज्य भगवान् चम्पापुर से मोक्ष पधारे (नेमिः अपि ऊर्जयन्ते) श्री नेमिनाथ भगवान् ऊर्जयन्त-गिरनार पर्वत से मोक्ष पधारे (पावायां वर्धमानः) श्री वर्धमान स्वामी पावापुरी से मुक्त हुए तथा (त्रिभुवनगुरवः विंशतिः तीर्थनाथाः) तीन लोकों के गुरु शेष २० तीर्थंकर (सम्मेदाग्रे प्रजग्मुः) सम्मेदचल-सम्मेदशिखर से मुक्ति को प्राप्त हुए (जिनेन्द्राः) ये सभी २४ तीर्थंकर भगवान् (विनमतां नः) नमस्कार करने वाले हम सबको (निवृत्तिं ददतु) निर्वाण पद देवें।

भावार्थ—युग के आदितीर्थंकर जो पाँच पापों से, अष्ट कर्मों से रहित हैं, मुनियों, गणधरों के भी स्वामी हैं, उनके वन्दनीय हैं, श्री ऋषभदेव कैलाश पर्वत से मुक्त हुए। सौ इन्द्रों से वन्दनीय प्रथम बालयति श्री वासुपूज्य तीर्थंकर चम्पापुर पुर-मन्दारगिरि से निर्वाण को प्राप्त हुए। अरिष्ट नेमिप्रभु गिरनार क्षेत्र से मोक्ष पधारे। अन्तिम तीर्थंकर, वर्तमान शासनाधिपति श्री महावीर भगवान पावापुरी से अचल पद को प्राप्त हुए तथा तीनों लोकों में प्रधान, तीन लोकों के गुरु अजितनाथजी, संभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, पुष्पदन्तजी, शीतलजी, श्रेयांसजी, विमलजी, अनन्तजी, धर्मनाथजी, शान्तिनाथजी, कुन्थुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथजी व पार्श्वनाथजी सम्मेदाचल के शिखर से मुक्ति धाम को प्राप्त हुए। इन २४ तीर्थंकरों की हम वन्दना

करते हैं। वन्दना के फलस्वरूप ये भगवान् हम सबको निर्वाण पद प्रदान करें।

गोर्गजोश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गंडो महिष सूकरौ।।३।।
सेधा वज्रमृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शंखो नागराजश्च केसरी।।४।।

अन्वयार्थ—(गो: गज: अश्व:) बैल, हाथी, घोड़ा (कपि: कोक: सरोज: स्वस्तिक: शशी) बन्दर, चकवा, कमल, साथिया, चन्द्रमा (मकर:) मगर (श्रीयुत: वृक्ष) कल्पवृक्ष (गण्ड: महिष-शूकरौ) गेंडा, भैंसा, सुअर (सेधा-वज्र-मृगच्छागा:) सेही, वज्र, हिरण, बकरा (पाठीन: कलश: तथा) मीन तथा कलश (कच्छप: च उत्पलं) कछुआ और लाल कमल (शंख: नागराज: च केसरी) शंख, सर्प और सिंह ये क्रमश: चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न है।

भावार्थ—१. आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का बैल, २. अजितनाथजी का हाथी, ३. संभवनाथजी का घोड़ा, ४. अभिनन्दननाथजी का बन्दर, ५. सुमतिनाथजी का चकवा, ६, पद्मप्रभजी का कमल, ७. सुपार्श्वनाथजी का साथिया, ८. चन्द्रप्रभजी का चन्द्रमा, ९. पुष्पदन्तजी का मगर, १०.शीतलनाथजी का कल्पवृक्ष, ११. श्रेयांसनाथजी का गेंडा, १२. वासुपूज्यजी का भैंसा, १३. विमलनाथजी का सूकर, १४. अनन्तनाथजी का सेही, १५. धर्मनाथजी का वज्रदण्ड, १६. शान्तिनाथजी का हिरण, १७. कुन्थुनाथजी का बकरा १८. अरनाथजी की मछली, १९. मल्लिनाथ जी का कलश २०. मुनिसुव्रतजी का कछुआ, २१. नमिनाथजी का लाल कमल, २२. नेमिनाथजी का शंख, २३. पार्श्वनाथजी का सर्प और २४. वर्धमान स्वामी का सिंह। इस प्रकार ये चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न हैं, इनसे तीर्थंकरों की पहचान होती है।

शान्ति कुन्थ्वर कौरव्या यादवौ नेमिसुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः।।५।।

अन्वयार्थ—(शान्ति-कुन्थु-अर-कौरव्या) शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थङ्कर कुरुवंश में उत्पन्न हुए हैं (नेमि सुव्रतौ) नेमिनाथ

और मुनिसुव्रत ये दो तीर्थंकर (यादवौ) यदुवंश में उत्पन्न हुए हैं (पार्श्ववीरौ उग्रनाथौ) पार्श्वनाथजी उग्र वंश में तथा भगवान महावीर नाथवंश में पैदा हुए हैं (शेषा इक्ष्वाकु वंशजाः) तथा शेष सत्रह तीर्थंकर इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुए हैं।

भावार्थ—वर्तमान चौबीसी में शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ व अरनाथ स्वामी ने कुरुवंश को पवित्र किया। नेमिनाथ व मुनिसुव्रत तीर्थंकरों ने यदुकुल/यदुवंश को उज्ज्वल किया। पार्श्वनाथजी ने उग्र वंश को प्रसिद्ध किया तथा भगवान महावीर ने नाथवंश का यश फैलाया। शेष सत्रह तीर्थंकर पावन इक्ष्वाकु वंश के कीर्तिस्तंभ हुए।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्मि, अवसप्पिणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए कत्तिय मासस्स किण्ह चउदसिए रत्तीए सादीए, णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो। तिसुवि लोएसु, भवणवासिय-वाणविंतर जोयिसिय कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति परिणिव्वाण महाकल्लाण पुज्जं करंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहि-मरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—(भंते !) हे भगवन् ! मैंने (परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ) परिनिर्वाणभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउं इच्छामि) उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। (इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए) इस अवसर्पिणी सम्बन्धी चतुर्थकाल के पिछले भाग में (आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि) साढे तीन माह कम चार वर्ष काल शेष रहने पर (पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं

गदो) पावानगरी में कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में स्वाति नक्षत्र रहते हुए प्रभात काल में भगवान् महति महावीर वर्धमान निर्वाण को प्राप्त हुए। (तिसुवि लोएसु भवणवासिय वाणविंतर जोयसियकप्पवासिय-त्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण) तीनों लोकों में जो भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इस प्रकार चार प्रकार के देव दिव्य जल, दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फलों के द्वारा (णिच्चकालं अंचेति, पुज्जंति, णमंसंति, परिणिव्वाण-महाकल्लाण पुज्जं करेंति) नित्यकाल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं, परिनिर्वाण महाकल्याण पूजा करते हैं। (अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं । णिच्चकाल अंचमि पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि) मैं भी यहाँ रहते हुए वहाँ स्थित निर्वाण क्षेत्रों की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। (दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं) मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो (जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं) मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणरूपी सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन्! मैंने निर्वाणभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। इस अवसर्पिणी काल के दुषमा-सुषमा काल अर्थात् जब चतुर्थ काल में तीन वर्ष साढे आठ माह शेष रहे थे तब पावापुर नगर से कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के पिछले भाग में प्रातःकाल की शुभ बेला में स्वाति नक्षत्र में भगवान् महावीर मुक्ति को पधारे। उस मंगलमय बेला में तीनों लोकों में निवास करने वाले भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इन चार प्रकार के देव अपने सपरिवार आकर दिव्य जल, दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फल आदि से नित्यकाल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं और निर्वाण कल्याणक की पूजा करते हैं, मैं भी यहाँ रहकर अष्टद्रव्यों का थाल चढ़ाकर सदाकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे

समस्त दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा उत्तम मोक्षगति मे गमन हो, समाधिमरण हो। मुझे वीतराग जिनदेव के समस्त गुणों की प्राप्ति हो।

।। इति निर्वाण भक्तिः ।।

नन्दीश्वर भक्ति

आर्यागीति·

त्रिदशपतिमुकुट तट गतमणि,
गणकर निकर सलिलधाराधौत ।
क्रमकमलयुगलजिनपति रुचिर,
प्रतिबिम्बविलय विरहितनिलयान् ।।१।।
निलयानहमिह महसां सहसा,
प्रणिपतन पूर्वमवनौम्यवनौ ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्धया निसर्ग,
शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(इह) यहाँ (त्रय्याँ) तीनों लोकों में (महसां निलयान्) जो तेज के गृह है (निसर्ग शुद्धान्) स्वभाव से शुद्ध हैं (त्रिदशपति-मुकुट-तटगत-मणिगण-कर-निकर-सलिल धारा धौतक्रम-कमल-युगल-जिनपति-रुचिर-प्रतिबिम्ब-विलय-विरहित-निलयान्) इन्द्रों के मुकुटों के किनारे पर लगी मणिसमूह के किरण कलापरूपी जल की धारा से प्रक्षालित चरण-कमल युगल वाले जिनेन्द्र की मनोज्ञ सुन्दर प्रतिमाओं के विनाश रहित, अविनाशी जिनमन्दिरों को (सहसा) शीघ्र (अवनौ) पृथ्वी पर (प्रणिपतनपूर्वम्) गिरकर (त्रय्याशुद्ध्या) मन-वचन-काय की शुद्धि से (घनरजसाम् विशुद्धये) सुदृढ़ कर्म पटल/कर्मरज की विशुद्धि के लिये अर्थात् कर्मक्षयार्थ (अवनौमि) नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—इन्द्रों के मुकुटो के तट पर लगी हुई मणियों के किरणों के समूहरूपी जलधारा से प्रक्षालित हैं चरण-युगल ऐसी समस्त-तीन लोक सम्बन्धी अकृत्रिम, अविनाशी मनहर सुन्दर जिनप्रतिमाओं, जिनमन्दिरों को मैं मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक, ज्ञानावरण आदि कर्मों की रज को दूर करने के लिये, पृथ्वी से मस्तक का स्पर्श करते हुए नमस्कार करता हूँ । अर्थात् जिन चरण-युगलों में सौ इन्द्र सदैव मस्तक रखकर नमस्कार करते हैं; उन अविनाशी वीतराग जिनबिम्बों व जिनालयों को मेरा मस्तक झुकाकर नमस्कार है ।

भवनवासियों के विमानों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

भावनसुर-भवनेषु, द्वासप्तति-शत-सहस्र-संख्याभ्यधिका: ।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता, भवनानां भूरि-तेजसां भुवनानाम् ।।३।।

अन्वयार्थ—(भावनसुर-भवनेषु) भवनवासी देवो के भवनो मे (भूरितेजसां भवनानाम्) अत्यधिक तेज से/दीप्ति से युक्त भवनो मे (भुवनानाम्) चैत्यालय की संख्या (द्वासप्तति-शतसहस्र-संख्याभ्यधिका· सप्तकोट्य:) बहत्तर लाख संख्या से अधिक सात करोड़ (प्रोक्ता) कही गई है।

भावार्थ—अधोलोक मे भवनवासी देव निवास करते हैं। वहाँ प्रत्येक देव के भवनो मे जिन चैत्यालय है। अत: वहाँ देवो के भवनो में कुल चैत्यालय सात करोड़ बहत्तर लाख है। ये सभी चैत्यालय विशेष तेज व दीप्ति से युक्त है। चैत्यालयो की विस्तृत भिन्न-भिन्न संख्या पृ० २९६ पर देखिये।

व्यन्तर देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

त्रिभुवन - भूत - विभूनां, संख्यातीतान्यसंख्य-गुण-युक्तानि ।
त्रिभुवन-जन-नयन-मनः, प्रियाणिभवनानि भौम-विबुध-नुतानि ।।४।।

अन्वयार्थ—(असंख्य गुण-युक्तानि) असंख्यात गुणो से युक्त (त्रिभुवन-जन-नयन-मन: प्रियाणि) तीन लोक सम्बन्धी जीवो के नेत्र व मन को प्रिय (भौम-विबुध-नुतानि) व्यन्तर देवो के द्वारा नमस्कृत (त्रिभुवन-भूत-विभूनाम्) तीन लोक के समस्त प्राणियो के नाथ/स्वामी/विभु श्री जिनेन्द्र देव के (भवनानि) अकृत्रिम चैत्यालय (संख्या-अतीतानि) संख्यातीत-असंख्यात है।

भावार्थ—वीतरागता आदि असंख्यात गुणो से प्राणीमात्र के नेत्र व मन को प्रिय लगने वाले, व्यन्तर देवो के द्वारा सदा स्तुति, वन्दना, आराधना किये जाने वाले, ऐसे तीन लोकोके समस्त जीवो के ईश्वर, अरहन्त भगवान के असंख्यात चैत्यालय व्यन्तर देवो के भवनो मे है।

ज्योतिष्क तथा वैमानिक देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योति-र्लोकाधिदेवताभिनुतानि ।
कल्पेऽनेक-विकल्पे, कल्पातीतेऽहमिन्द्र-कल्पानल्पे ।।५।।

विंशतिरथ त्रिसहिता, सहस्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता ।
चतुरधिकाशीतिरतः, पञ्चक-शून्येन विनिहतान्यनघानि ।।६।।

अन्वयार्थ—(यावन्ति सन्ति) ज्योतिषी देवों के जितने विमान हैं, उतने ही उनके विमानों में अकृत्रिम चैत्यालय हैं, और वे सब चैत्यालय (कान्तज्योतिर्लोक-अधिदेवता-अभिनुतानि) ज्योतिर्लोक के सुन्दर अधिदेवताओं के द्वारा नमस्कार को, स्तुति को प्राप्त हैं।

(अनेक-विकल्पे-कल्पे) अनेक भेद वाले कल्पों-कल्पवासी देवों के सोलह स्वर्गों में (अहमिन्द्र कल्पे) अहमिन्द्रों की कल्पना वालों में व (अनल्पे) विस्तार को प्राप्त (कल्पातीते) कल्पातीत देवों—नौ ग्रैवेयको, नौ अनुदिशों और पाँच अनुत्तर विमानों में (अनघानि) पापों से मुक्त जिनालयों की संख्या (चतुरधिकाशीतिः अतः पंचकशून्येन च सप्तनवति सहस्र गुणिता विनिहतानि अथ त्रिसहिता विंशतिः प्रोक्ता) पाँच शून्य से गुणा किये गये चौरासी अर्थात् ८४ लाख एक हजार से गुणा किये गये संतानवे अर्थात् ९७ हजार और तीन सहित बीस अर्थात् २३ अर्थात् कल्पवासी और कल्पातीत देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या ८४ लाख ९७ हजार २३ है। देवों के विमानों में चैत्यालयों की भिन्न संख्या पृ०२९५-२९६ पर देखिये।

भावार्थ—ज्योतिषी देवों के असंख्यात विमानों में असंख्यात अकृत्रिम चैत्यालय हैं तथा वे सब चैत्यालय ज्योतिर्लोक के सुन्दर देवताओं के द्वारा प्रतिदिन पूजे जाते हैं, नमस्कार किये जाते हैं। अर्थात् ज्योतिषी देव प्रतिदिन चैत्यालयों की आराधना करते हैं।

इन्द्र-सामानिक आदि अनेक भेदों वाले कल्पवासी देवों के सोलह-सौधर्म आदि स्वर्गों में तथा कल्पातीत देवों के नौ ग्रैवेयकों, नौ अनुदिशों, पाँच अनुत्तर विमानों में पापनाशक कुल ८४ लाख ९७ हजार २३ अकृत्रिम, मनोहर वीतराग जिनबिम्बों से शोभायमान जिनालय हैं। उनमें चौरासी लाख छ्यानवे हजार सात सौ चैत्यालय कल्पवासियों के हैं तथा मात्र तीन सौ तेईस चैत्यालय कल्पातीत देवों के विमानों में हैं। ये सभी जिनालय भव्यजीवों के पापों का क्षय करने वाले हैं।

मनुष्य क्षेत्र के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या

अष्टापञ्चाशदतश्-चतुःशतानीह मानुषे च क्षेत्रे।
लोकालोक-विभाग-प्रलोकनाऽऽलोक-संयुजां जय-भाजाम् ।।७।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-विभाग-प्रलोकनालोक-संयुजां) लोक और अलोक के विभाग को देखने वाले प्रकाशपुञ्ज—केवलज्ञान-दर्शन से सहित (जयभाजां) घातिया कर्मरूपी शत्रु का नाश कर सर्वत्र विजय को प्राप्त ऐसे भगवान् अरहन्त देव के अकृत्रिम जिनालय (इह मानुषे च क्षेत्रे) इस मनुष्य लोक मे (अष्टापञ्चाशदत· चतु· शतानि) चार सौ अठावन है।

भावार्थ—मनुष्य लोक मे अढाई द्वीप मे ३९८, नन्दीश्वर द्वीप मे ५२, कुण्डलगिरि पर ४ और रुचकगिरि पर ४ कुल मिलाकर तिर्यक्लोक के ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय है।

सुदर्शन मेरु सम्बन्धी ७८ जिनालय है—सुदर्शन मेरु के चार वनो मे १६, विजयार्ध पर्वतो पर ३४, वक्षार पर्वतो पर १६, गजदन्तो पर ४, कुलाचलो पर ६, जम्बू और शाल्मलि वृक्षो पर २ इस प्रकार एक मेरु सम्बन्धी ७८ जिनालय है। पॉच मेरु सम्बन्धी ७८×५=३९० अकृत्रिम चैत्यालय है।

इनमे इष्वाकार पर्वतो के ४, मानुषोत्तर पर्वत के ४, नन्दीश्वरद्वीप के ५२, कुण्डलगिरि के ४ और रुचकगिरि के ४ जिनालय मिलाने पर ३९०+४+४+५२+४+४=४५८ चैत्यालय है।

इन चैत्यालयो मे भी ढाई द्वीप मानुषोत्तर पर्वत तक के जिनालयो के दर्शन देव, विद्याधर तथा चारणऋद्धिधारक मुनियो को ही हो सकते है तथा इसके आगे के अकृत्रिम चैत्यालयो के दर्शन देवो को ही हो सकते है, मनुष्यो को कभी नही।

तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या

नव-नव-चतुःशतानि च, सप्त च नवतिः सहस्र-गुणिताः षट् च।
पञ्चाशत्पञ्च - वियत्, प्रहताः पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ताः ।।८।।
एतावन्त्येव सता-मकृत्रि-माण्यथ जिनेशिनां भवनानि।
भुवन-त्रितये-त्रिभुवन-सुर-समिति - समर्च्यमान - सत्प्रतिमानि ।।९।।

अन्वयार्थ—तीनों लोकों में (त्रिभुवन-सुर समिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि) तीनों लोकों के देवों के द्वारा पूजा की जाने वाली वीतराग प्रतिमाएँ (सतां जिनेशिनां) वीतराग जिनेन्द्र के (अकृत्रिमाणि अथ भवनानि) अकृत्रिम जिनालय (नव नव) नौ से गुणित नौ अर्थात् ९×९=८१ (चतु:शतानि च) और चार सौ अर्थात् ४८१ (सहस्रगुणिता: सप्तनवति: च) और हजार से गुणित संतानवे अर्थात् संतानवे हजार (पञ्चवियत् प्रहता: षट् च पञ्चाशत्) और पाँच शून्यों से गुणित छप्पन अर्थात् ५६०००००० छप्पन लाख (पुन: अत्र अष्टो कोट्य:) पुन: आठ करोड़ अर्थात् ८ करोड़ ५६ लाख ९७ हजार ४८१ (एतावन्ति एव प्रोक्ता:) इतने ही कहे गये हैं।

भावार्थ—तीनो लोकों में चतुर्णिकाय के समस्त देवों से पूज्य जिनेन्द्र देव के अधोलोक सम्बन्धी ७७२०००००, मध्यलोक सम्बन्धी ४५८ व ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी ८४९७०२३ अकृत्रिम चैत्यालय हैं अत: इस प्रकार कुल मिलाकर ८५६९७४८१ अकृत्रिम चैत्यालय हैं तथा व्यन्तर व ज्योतिषी देवों के विमानों में असंख्यातासंख्यात चैत्यालय हैं। इन सभी जिनालयों में वीतराग मनहर जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इन तीन लोक संबंधी ८५६९७४८१ चैत्यालयों में जिनप्रतिमाओं की संख्या—

नवकोडिसया पणवीसा लक्खा, तेवण्ण सहस्स सगवीसा।
नवसय तह अडयाला जिणपडिमाकिट्टिमां वंदे।।

९२५५३२७९४८ नौ सौ पच्चीस करोड़, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार नौ सौ अड़तालीस हैं। इन समस्त अकृत्रिम प्रतिमाओं की मैं वन्दना करता हूँ।

मध्यलोक के ४५८ चैत्यालय

वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्य-नगोत्तर-कुलेषुकारनगेषु।
कुरुषु च जिनभवनानि,त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या।।१०।।

अन्वयार्थ—(वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्यनग-उत्तर-कुल-इषुकार-नगेषु) वक्षारगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, रजताचल/विजयार्ध, मानुषोत्तर,

कुलाचल और इष्वाकार पर्वतो पर (च) तथा (कुरुषु) देवकुरु-उत्तरकुरु मे (षड्विंशत्या अधिकानि त्रिशतानि तानि जिनभवनानि) वे अकृत्रिम चैत्यालय छब्बीस अधिक तीन सौ—३२६ है।

भावार्थ—पॉच मेरु सम्बन्धी अस्सी वक्षार पर्वतो पर ८०, बीस गजदन्तो पर २०, रुचकगिरि पर ४, कुण्डलगिरि पर ४, एक सौ सत्तर रजताचलो पर १७०, मानुषोत्तर पर ४, तीस कुलाचलो पर ३०, इष्वाकार पर्वतो पर ४, तथा पॉच विदेह सम्बन्धी, पॉच उत्तर कुरु, पॉच देवकुरु के १० इस प्रकार सब मिलाकर ३२६ अकृत्रिम चैत्यालय है। [इनमे पॉच मेरु सम्बन्धी ८० तथा नन्दीश्वर संबंधी ५२ चैत्यालय मिलाने कुल ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय है]

विशेष—एक-एक विदेह मे क्षेत्र मे १६-१६ वक्षारगिरि तथा ४-४ गजदंत है अत. सौ पर्वतो पर १०० अकृत्रिम जिनालय है। ढाई द्वीप मे १७० कर्मभूमियॉ है उनमे १७० ही विजयार्ध पर्वत है अत: उन पर १७० अकृत्रिम चैत्यालय है। जम्बूद्वीप मे ६ कुलाचल, धातकीखंड मे १२ और पुष्करार्द्ध मे १२ कुलाचल है, सब मिलाकर ३० कुलाचल है, इन पर ३० अकृत्रिम चैत्यालय है। देवकुरु मे ५ व उत्तर कुरु मे ५ कुल १० उत्तम भोगभूमियो मे १० अकृत्रिम चैत्यालय है।

वक्षारगिरि के	८०
गजदन्त के	२०
कुण्डलगिरि के	४
रुचकगिरि	४
विजयार्द्ध के	१७०
मानुषोत्तर के	४
कुलाचल के	३०
इष्वाकार के	४
उत्तरकुरु देवकुरु के	१०

३२६+५२ नंदीश्वर के+८० पॉचमेरु के=४५८ मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालय है।

नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालय

नन्दीश्वर - सद्द्वीपे, नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते धृत-शोभे ।
चन्द्र-कर-निकर-सन्निभ-रुन्द्र-यशो वितत-दिङ्-मही-मण्डलके ।।११।।
तत्रत्याञ्जन - दधिमुख - रतिकर - पुरु-नग-वराख्य-पर्वत-मुख्याः ।
प्रतिदिश - मेषा - मुपरि, त्रयो-दशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ।।१२।।

अन्वयार्थ—(चन्द्रकर-निकर-संनिभ-रुन्द्र-यशो-वितत-दिङ-महीमंडलके) चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान सघन यश से जिसने समस्त दिशाओं का समूह और समस्त पृथ्वीमंडल व्याप्त कर दिया है अर्थात् जिसकी कीर्ति पृथ्वी पर फैल रही है (नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते) नन्दीश्वर नामक सागर से घिरा हुआ (धृतशोभे) जो शोभा को धारण करने वाला है, ऐसे (नन्दीश्वर सद्द्वीपे) नन्दीश्वर नामक शुभ द्वीप में (प्रतिदिशं) प्रत्येक दिशा में (तत्रत्या-अञ्जन-दधिमुख-रतिकर पुरु नग-वराख्य) वहाँ के अञ्जनगिरि, दधिमुख, रतिकर इन श्रेष्ठ नाम वाले (त्रयोदश पर्वत मुख्याः) तेरह मुख्य पर्वत हैं (एषाम् उपरि) इनके ऊपर (इन्द्र अर्चितानि) इन्द्रों से पूजित (त्रयोदश-जिनभवनानि) तेरह जिनभवन हैं ।

भावार्थ—जिस नन्दीश्वर द्वीप की अवर्णनीय शोभा समस्त पृथ्वी-मंडल में व्याप्त है, जिसकी कीर्ति समस्त दिशाओं में फैल रही है, नंदीश्वर नामक सागर से जो चारों ओर से घिरा हुआ है, जो अवर्णनीय शोभा से युक्त है । ऐसे नन्दीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा में एक अञ्जनगिरि उसके चारों ओर चारों दिशाओं में वापिकाओं के मध्य दधिमुख और वापिकाओं के बाह्य कोणों पर आठ रतिकर सब मिलकर तेरह प्रमुख पर्वत हैं । एक दिशा में १३ पर्वत हैं अत: चारों दिशाओं में ५२ पर्वत हैं । इन ५२ पर्वतों पर इन्द्रों से पूजित ५२ अकृत्रिम चैत्यालय हैं । इन चैत्यालयों से यह द्वीप अत्यधिक शोभा को प्राप्त हो रहा है तथा इस द्वीप की अकृत्रिम मनहर प्रतिमाओं और विशाल चैत्यालयों का मधुर सरस यशोगान समस्त दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो रहा है ।

आषाढ़-कार्तिकाख्ये, फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः ।
आरभ्याष्ट-दिनेषु च, सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयो भक्त्या ।।१३।।

तेषु महामह-मुचितं प्रचुराक्षत-गन्ध-पुष्प-धूपै-र्दिव्यैः।
सर्वज्ञ - प्रतिमाना-मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्व-हितम्॥१४॥

अन्वयार्थ—(आषाढ-कार्तिकाख्ये फाल्गुन मासे च) आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन माह में (शुक्ल पक्षे अष्टम्याः आरभ्य) शुक्लपक्ष में अष्टमी से प्रारम्भ होकर के (अष्टदिनेषु च) और आठ दिनो में (सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयः) सौधर्म इन्द्र को आदि लेकर समस्त इन्द्र (भक्त्या) भक्ति से (तेषु) उन ५२ अकृत्रिम चैत्यालयो में (दिव्यैः प्रचुर अक्षत गन्ध पुष्प धूपैः) अत्यधिक मात्रा में दिव्य अक्षत, चन्दन, पुष्प और धूप से (अप्रतिमानाम्) उपमातीत (प्रतिमानां) प्रतिमाओं की (सर्वहितम्) सब जन हितकारी (उचितं) योग्य (महामहं प्रकुर्वते) महामह नामक जिनेन्द्र पूजा को रचाते हैं।

भावार्थ—एक वर्ष में अष्टाह्निका पर्व तीन बार आता है-आषाढ़, कार्तिक व फाल्गुन मास में। तीनों अष्टाह्निका शुक्लपक्ष अष्टमी से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा पर्यन्त होती है। यह पर्व सब पर्वों से बड़ा पर्व है। इन दिनों में चतुर्निकाय के देव वहाँ जाकर दिव्य अक्षत-गन्ध-पुष्प और धूप आदि से उन अनुपम उपमातीत वीतरागमयी सुन्दर प्रतिमाओं की निरन्तर पूजा करते हैं। इनमें इतना विशेष है कि नन्दीश्वर द्वीप के चारों दिशा सम्बन्धी चैत्यालयों में चारों निकायों के इन्द्र अपने-अपने परिवार के साथ सर्वप्राणियों के लिये हितकर ऐसी विशाल महापूजा दो दो पहर तक करते हैं। तीनों अष्टाह्निका पर्व में नंदीश्वर में निरन्तर पूजा होती रहती है।

भेदेन वर्णना का, सौधर्मः स्नपन-कर्तृता-मापन्नः।
परिचारक-भावमिताः, शेषेन्द्रा-रुन्द्र-चन्द्र-निर्मल-यशसः॥१५॥
मंगल-पात्राणि पुनस्तद्-देव्यो बिभ्रतिस्म शुभ्र-गुणाढ्याः।
अप्सरसो नर्तक्यः, शेष-सुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः॥१६॥

अन्वयार्थ—(भेदेन वर्णना का) विशेष रूप से अलग-अलग वर्णन क्या कहें ? (सौधर्मः) सौधर्म इन्द्र (स्नपनकर्तृताम्-आपन्नः) अभिषेक के कर्तृत्व को प्राप्त करता है (रुन्द्र-चन्द्र-निर्मल यशसः शेष-इन्द्राः) पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान जिनका निर्मल यश फैला है ऐसे अन्य इन्द्र (परिचारक भावम् इताः) सहयोग भाव को प्राप्त होते हैं, (शुभ्र-गुणाढ्याः

तद्देव्यः) उज्ज्वल गुणों से युक्त उनकी देवियाँ (मङ्गल पात्राणि बिभ्रति स्म) अष्ट मंगल द्रव्यों को धारण करती हैं, (अप्सरसः नर्तक्यः) अप्सराएँ नृत्य करती हैं तथा (शेषसुराः) अन्य देवगण (तत्र) वहाँ (लोकन व्यग्रधियः) उस अभिषेक के दृश्य को देखने में दत्तचित्त रहते हैं।

भावार्थ—उस अवर्णनीय शोभासम्पन्न अष्टम नन्दीश्वर द्वीप का अलग-अलग विशेष वर्णन कहाँ तक करें जहाँ सौधर्म इन्द्र प्रमुख रहता है तथा वही स्वयं समस्त जिनप्रतिमाओं का दिव्य जल आदि सुगन्धित द्रव्यों से अभिषेक करता है तथा चन्द्रमा सम निर्मल यश के धारक शेष इन्द्रों का समूह परिचारक के रूप में सौधर्म इन्द्र की अभिषेक में सहायता करता है। गुणों से युक्त उनकी देवियाँ अष्ट मंगल द्रव्यों को हाथों में लेकर खड़ी रहती हैं, अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं तथा शेष देवों का समूह अभिषेक के इस महा उत्सव को देखने में एकाग्र हो जाता है।

अष्टमंङ्गल द्रव्य—

छत्रं ध्वजं कलश चामर सुप्रतीक, भृंगार-ताल मतिनिर्मल दर्पणं च।
शंसंति मङ्गलमिदं निपुणस्वभावाः, द्रव्य स्वरूपमिह तीर्थकृतोऽष्टधैव।।

१. छत्र २. ध्वजा ३. कलश ४. चंवर ५. स्वस्तिक ६. झारी ७. घंटा और ८. स्वच्छ दर्पण।

वाचस्पति-वाचामपि, गोचरतां संव्यतीत्य यत्-क्रममाणम्।
विबुधपति-विहित-विभवं, मानुष-मात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्।।१७।।

अन्वयार्थ—(यत्) जो महामह पूजन (विबुधपति-विहित-विभवं) इन्द्रों के द्वारा विशेष वैभव से सम्पन्न होता है (वाचस्पति-वाचाम्-अपि) वृहस्पति के वचनों की भी (गोचरतां) विषयता को (संव्यतीत्य) उल्लंघन कर (क्रममाणं) प्रवर्तमान है (स्तोतुं) उस महामह पूजन की स्तुति करने के लिये (कस्य मानुष मात्रस्य शक्तिः) किस मनुष्य मात्र की शक्ति/सामर्थ्य हो सकती है ?

भावार्थ—नन्दीश्वर द्वीप में सौधर्म आदि इन्द्रों के द्वारा अष्टह्निका पर्व के आठ दिनों में जो महामह-पूजा निरन्तर महावैभव के साथ, विशेष भक्ति, नृत्य, गान आदि के साथ की जाती है, उस पूजन की शोभा और

भक्ति का वर्णन बृहस्पति भी अपनी वाणी से नहीं कर सकता, फिर उन चैत्यालयों की स्तुति करने के लिये सामान्य मनुष्य में सक्षमता कैसे आ सकती है अर्थात् उनकी स्तुति करना मानव मात्र की समर्थता/शक्ति के बाहर है।

निष्ठापित - जिनपूजाश्-चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः।
सुरपतयो नन्दीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः ।।१८।।
पञ्चसु मंदरगिरिषु, श्रीभद्रशालनन्दन-सौमनसम्।
पाण्डुकवनमिति तेषु, प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव ।।१९।।
तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ।।२०।।

अन्वयार्थ—(चूर्णस्नपनेन) सुगन्धित चूर्ण से जिन्होंने अभिषेक पूर्वक (निष्ठापित जिनपूजाः) जिनेन्द्र पूजा पूर्ण की है—पूजा में हर्ष से भाव-विभोर होने से महा आनन्द आ रहा है उस आनंद से (दृष्ट-विकृत विशेषाः) जिनकी आकृति कुछ विकृत हो गई है, ऐसे (सुरपतयः) इन्द्र (पुनः) पूजा के बाद फिर (नन्दीश्वर जिनभवनानि) नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालयों की (प्रदक्षिणी कृत्य) प्रदक्षिणा करके पश्चात् वे इन्द्र—"१८"

(पंचसु-मन्दरगिरिसु श्रीभद्रशाल नंदन सौमनसम् पाण्डुकवनं इति) पाँचों मेरु सम्बन्धी श्री भद्रसालवन, नन्दनवन, सौमनस वन और पाण्डुक वन इस प्रकार (तेषु चत्वारि एव प्रत्येकं जिनगृहाणि) उन चारों ही वनों में प्रत्येक में चार-चार जिन चैत्यालयों की (अथ तानि परीत्य) प्रथम प्रदक्षिणा देकर (च) और (तानि नमसित्वा) उनको नमस्कार करके (तत्र अपि) वहाँ भी (कृत सुपूजनाः) अभिषेक, पूजा आदि उत्तम रीति से करते हैं तथा (सर्वे) सभी देव (स्वास्पदमूल्यं संगृह्य) अपने-अपने योग्य पुण्य का संचय करके (स्वास्पदं ईयुः) अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं।

भावार्थ—सुगन्धित चूर्ण से जिनेन्द्रदेव का महाअभिषेक व पूजा में भावविभोर हो नृत्य, गान रूप भक्ति के रंग में रंग जाने से महाआनन्द आ रहा है उस आनन्द से जिनकी आकृति कुछ विकृत हो रही है ऐसे इन्द्र नन्दीश्वरद्वीप के समस्त चैत्यालयों की प्रदक्षिणा करते हैं उसके पश्चात् पाँच

मेरु सम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुकवन इस प्रकार चारों वनों के चार-चार कुल ८० जिनालयों की प्रदक्षिणा देकर उनकी दिव्य जलादि द्रव्यों से उत्तम रीत्या पूजा करते हैं। पूजा अभिषेक से महापुण्य का सञ्चय कर वे देवगण अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं।

एक-एक मेरु पर्वत पर चार-चार वन हैं। भ्रदशाल, नन्दन, सौमनस और पांडुक। मेरु पर्वतों के सबसे नीचे चारों ओर भद्रशाल वन है, इनके ऊपर मेरु पर्वत के चारों ओर नन्दन वन हैं उसके ऊपर तीसरी कटनी पर चारों ओर सौमनस वन है और उनके ऊपर चारों ओर पांडुक वन हैं। इस प्रकार पाँचों मेरु सम्बन्धी बीस वन हैं। इन वनों की चारों दिशाओं में एक-एक अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इस प्रकार पाँच मेरु पर्वतों पर अस्सी चैत्यालय हैं।

नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालयों की विभूति

सहतोरणसद्वेदी - परीतवनयाग - वृक्ष - मानस्तम्भः।
ध्वजपंक्तिदशकगोपुर, चतुष्टयत्रितय-शाल-मण्डप-वर्यैः ॥२१॥
अभिषेकप्रेक्षणिका, क्रीडनसंगीतनाटकालोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पन-सकल्पातीत-कल्पनैः समुपेतैः ॥२२॥
वापी सत्पुष्करिणी, सुदीर्घिकाद्यम्बुसंसृतैः समुपेतैः।
विकसितजलरुहकुसुमै-र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥२३॥
भृंगाराब्दक-कलशा, द्युपकरणैरष्टशतक-परिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः, कृतझणझणनिनद-वितत-घंटाजालैः ॥२४॥
प्रविभाजंते नित्यं, हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि।
गंधकुटीगतमृगपति, विष्टर-रुचिराणि-विविध-विभव-युतानि ॥२५॥

अन्वयार्थ—वे अकृत्रिम चैत्यालय (सहतोरण-सद्वेदी-परीतवन-यागवृक्ष-मानस्तम्भ-ध्वजपंक्ति-दशक-गोपुर-चतुष्टय-त्रितयशाल मण्डपवर्यैः) अकृत्रिम तोरणों से, चारों ओर रहने वाले वनों से, यागवृक्षों से, मानस्तम्भों से, दस-दस प्रकार की ध्वजाओं की पंक्तियों से, चार-चार गोपुरों से, तीन परिधियों वाले श्रेष्ठ मण्डपों से (शिल्पिविकल्पित-कल्पन-संकल्पातीत-कल्पनैः) चतुर शिल्पियों से कल्पित संकल्पातीत रचनाओं से (समुपेतैः) सहित (अभिषेक-प्रेक्षणिका-क्रीडन-संगीत-नाटक-आलोकगृहैः) अभिषेक-

दर्शन, क्रीड़ा, संगीत और नाटक देखने के गृहो से (विकसित-जलरुह-कुसुमैः शरदि) खिले हुए कमल पुष्पो के कारण शरद ऋतु मे (शशि-ग्रह-ऋक्षैः) चन्द्रमा, गृह तथा ताराओ से (नभस्यमानैः) आकाश के समान दिखने वाले (वापीसत्पुष्करिणी-सुदीर्घिका-आदि-अम्बुसंश्रयैः) वापिका, पुष्पकारिणी तथा सुन्दर दीर्घिका आदि जलाशयो से (समुपेतैः) प्राप्त (प्रत्येक अष्टशत परिसंख्यानैः) प्रत्येक एक सौ साठ, एक सौ आठ संख्या वाले (भृङ्गाराब्दक-कलशादि-उपकरणैः) झारी, दर्पण तथा कलश आदि उपकरणो से और (चित्रगुणैः) आश्चर्यकारी गुणो से युक्त (कृत झणझणनिनद-वितत-घण्टाजालैः) झण-झण शब्द करते हुए घंटाओ के समूहो से (गन्धकुटीगत मृगपति विष्टर रुचिराणि) गन्धकुटी-गर्भगृह मे स्थित सिंहासनो से सुन्दर तथा (विविध-विभव-युतानि) नाना प्रकार के वैभव से सहित (ईश्वरेशिनां) जिनेन्द्रदेव के (हिरण्यमयानि तानि भवनानि) स्वर्णमय वे जिन भवन/अकृत्रिम चैत्यालय (नित्यँ प्रविभाजन्ते) नित्य ही प्रकृष्ट शोभा को प्राप्त होते है।

भावार्थ—नन्दीश्वर द्वीप के सभी अकृत्रिम चैत्यालय स्वर्णमयी है वे सभी चैत्यालय तोरणो, वेदी, वन, उपवन, चैत्यवृक्ष, मानस्तम्भ, ध्वजाओ की दस-दस पंक्तियो, गोपुरो तीन-तीन कोटो, तीन-तीन शालाओ से उत्तम-उत्तम मंडपो से सुशोभित है। जिन मंडपो मे बैठकर अभिषेक देखते है ऐसे अभिषेक मण्डप, क्रीड़ा स्थान, संगीतभूमि, नाटकशालाओ से सुशोभित है। प्रफुल्ल/खिले हुए कमलो से युक्त, जलाशयो से सहित है, झारी आदि अष्टमंगल द्रव्यो से सहित है। दूर-दूर तक झन-झन की आवाज करने वाले घण्टाओ के समूह से सुशोभित है तथा गन्धकुटी के भीतर रत्नमयी सिंहासन, छत्रचमर आदि अनेक प्रकार की विभूतियो ये युक्त जिनेन्द्रदेव के अकृत्रिम चैत्यालय सदैव ही दैदीप्यमान रहते है, शोभायमान होते है।

नन्दीश्वर के चैत्यालयों में स्थित प्रतिमाओं का वर्णन

येषु-जिनानां प्रतिमाः, पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनक-रजतविकृता, दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहाः ।।२६।।

तानि सदा वंदेऽहं, भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिश-मतिशय-शोभा-विभाञ्जि पापविभाञ्जि ।।२७।।

अन्वयार्थ—(येषु) जिन अकृत्रिम जिनालयों में (जिनानां प्रतिमा:) जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाँएँ (पञ्चशतशरासन-उच्छ्रिता:) ५०० धनुष ऊँची है (सत्प्रतिमा:) सुन्दर, समीचीन आकार वाली, अत्यन्त मनोहर (मणिकनक-रजत-विकृता) मणि-स्वर्ण-चाँदी से बनी हुई हैं तथा (दिनकर-कोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहा:) करोड़ों सूर्यों की प्रभा से भी अधिक प्रभावाले शरीर से युक्त है (तानि) उन जिनेन्द्र भवनों, जिनालयों को (अहं सदा वन्दे) मैं सदा नमस्कार करता हूँ। इसके साथ ही (प्रतिदिशं) प्रत्येक दिशा में (यशसां महसां) यश और तेज की (अतिशय-शोभा-विभाञ्जि) अत्यधिक शोभा को प्राप्त तथा (पाप-विभाञ्जि) पाप को नष्ट करने वाले (भानु प्रतिमानि) सूर्य के समान (यानि कानि च) जितने भी अन्य मन्दिर हैं (तानि) उन सबको (अहं) मैं (सदा वन्दे) हमेशा नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—नन्दीश्वर द्वीप के ५२ अकृत्रिम जिनालयों में जिनेन्द्रदेव के समस्त वीतराग जिनबिम्ब ५०० धनुष ऊँचे, सुन्दर आकार वाले व मनोज्ञ हैं। सभी जिनबिम्ब अपनी तेज कान्ति से करोड़ों सूर्यों की प्रभा से भी अधिक दीप्ति से देदीप्यमान कान्ति के धारक हैं तथा मणि-स्वर्ण व चाँदी के बने हुए हैं, इनके अलावा प्रत्येक दिशाओं में भी यश और कान्ति को विस्तृत करने वाले, पापनाशक, सूर्यसम तेजके धारक समस्त जिनमन्दिरों को मैं नित्य, सदाकाल वन्दन करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। इन सब चैत्यालयों की वन्दना से मेरे समस्त पापों का क्षय हो।

तीर्थङ्करों की स्तुति

सप्तत्यधिक-शतप्रिय, धर्मक्षेत्रगत-तीर्थकर-वर-वृषभान्।
भूतभविष्यत्संप्रति- काल- भवान् भवविहानये विनतोऽस्मि ।।२८।।

अन्वयार्थ—(भूत-भविष्यत्-सम्प्रतिकाल-भवान्) अतीतकाल, भावीकाल और वर्तमान काल में होने वाले (सप्तति-अधिक-शत-प्रियधर्म-क्षेत्र-गत-तीर्थकर-वर-वृषभान्) जिन क्षेत्रों में धर्म अत्यन्त प्रिय है ऐसे १७० प्रिय धर्मक्षेत्रों–आर्यखण्डों में स्थित अतिशय श्रेष्ठ तीर्थंकरों को मैं

(भव-विहानये) संसार-भ्रमण का छेद करने के लिये (विनतः अस्मि) विनयपूर्वक, विधिवत् नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मनुष्य लोक मे ५ भरत, ५ ऐरावत व ५ विदेह क्षेत्रो मे १५ कर्मभूमियाँ है। इन पन्द्रह भूमियो मे भरत-ऐरावत के चतुर्थ काल मे व विदेह क्षेत्र मे सदाकाल तीर्थकरो के द्वारा तीर्थ की प्रवर्तना होती रहती है। एक विदेह मे ३२ आयखण्ड है, अत: एक विदेह मे ३२ तीर्थकर होते है अत: पॉच विदेह सम्बन्धी १६० आर्यखण्ड भूमियो के १६० तीर्थकर हुए तथा ५ भरत संबंधी, ५ ऐरावत सम्बन्धी १०, आर्यखण्डक्षेत्रो के १० तीर्थकर हुए। इस प्रकार सब मिलाकर १७० आर्यखण्डो के १७० तीर्थकर हुए। ऐसे भूत-भावी वर्तमान के १७० तीर्थकरो को मै नमस्कार करता हूँ। यदि एकसाथ अधिक से अधिक तीर्थकर अढाई द्वीप मे हो तो १७० हो सकते है अधिक नही।

भगवान् वृषभदेव की स्तुति

अस्यामवसर्पिण्यां, वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।
अष्टापदगिरिमस्तक, गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः ।।२९।।

अन्वयार्थ—(अस्याम् अवसर्पिण्याम्) इस अवसर्पिणी काल मे (प्रथम तीर्थकर्ता) तीर्थ के आदि कर्ता प्रथम तीर्थकर (वृषभजिनः स्वामी) वृषभनाथ स्वामी (कर्ता-भर्ता) असि-मसि-कृषि-शिल्प-वाणिज्य और कला इन छः कर्मो के उपदेशकर्ता व जनता के पोषक थे। (अष्टापद-गिरिमस्तक गत-स्थितः पापात् मुक्तः) कैलाश पर्वत के शिखर पर पद्मासन से स्थित हो पापो से छूटकर (मुक्तिम् आप) मोक्ष को प्राप्त हुए।

भावार्थ—इस हुण्डावसर्पिणी काल मे जब तृतीय काल के तीन वर्ष साढे आठ माह शेष थे, तब युग के आदि तीर्थंकर वृषभदेव घातिया व अघातिया दोनो ही दुष्कर्मो का क्षय करके कैलाश पर्वत के शिखर से पद्मासन से मुक्त हुए। वृषभदेव ने राज्यावस्था में प्रजा को असि-मसि-कृषि-वाणिज्य-शिल्प और कला इन षट्कर्मों को करने का उपदेश दिया था अतः वे "प्रजापति" कहलाते थे।

भगवान वासुपूज्य की स्तुति

श्रीवासुपूज्यभगवान्, शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानाम् ।
चम्पायां दुरित-हरः, परमपदं प्रापदापदा-मन्तगतः ।।३०।।

अन्वयार्थ—(शिवासु पूजासु) शोभा को प्राप्त, कल्याणकारी पञ्चकल्याणक रूप पूजाओ मे (त्रिदशानां पूजितः) इन्द्रों व देवो से पूजा को प्राप्त (श्रीवासुपूज्य भगवान्) अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी के स्वामी वासुपूज्य भगवान् (आपदाम् अन्तगतः) विपत्तियों के अन्त को प्राप्त हो, (दुरितहरः) पापों का क्षय करते हुए (चम्पायाम्) चम्पापुरी में मन्दारगिरि पर्वत से (परमपदं प्रापत्) परम पद/मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए।

भावार्थ—अतिशय शोभासम्पन्न सर्व कल्याणकारी गर्भआदि पञ्चकल्याणकपूजाओं में देवों के परिवार के द्वारा पूजित, १०० इन्द्रों से वन्दित, श्री प्रथम बालयति वासुपूज्य भगवान् संसार के समस्त दुखो का अन्त करते हुए, अष्टकर्मों का अतिशय क्षय करके चम्पापुर में मन्दारगिरि पर्वत से परमोत्कृष्ट सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

नेमिनाथ स्वामी की स्तुति

मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जित कषायरिपुरथ जातः ।
वृहदूर्जयन्त-शिखरे, शिखामणिस्त्रिभुवनस्य-नेमिर्भगवान् ।।३१।।

अन्वयार्थ—(मुदित-मति-बल-मुरारि-प्रपूजितः) बलदेव और श्रीकृष्ण ने जिनकी प्रसन्नचित्त हो पूजा की है (च) और (जित कषाय रिपुः) कषायरूपी शत्रुओं को जिन्होंने जीत लिया है ऐसे (नेमिः भगवान्) नेमिनाथ भगवान् (वृहत्-उर्जयन्त-शिखरे) विशाल गिरनार पर्वत के शिखर पर (त्रिभुवनस्य शिखामणिः जातः) तीन लोक के शिखामणि हुए अर्थात् उत्तम मुक्तिपद को प्राप्त हुए।

भावार्थ—राजा समुद्र विजय के पुत्र नेमिनाथ भगवान् थे तथा उनके छोटे भाई वसुदेव के पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण थे। बलराम और श्रीकृष्ण, बलभद्र व नारायण पद के धारी थे। नेमिनाथजी के ये चचेरे भाई थे। आयु में भी नेमिनाथ जी से बड़े थे तथापि बलराम और श्रीकृष्ण अपने कुल में तीर्थंकर का जन्म हुआ है यह विचार कर सदा नेमिनाथ जी

को देख प्रसन्नचित्त रहते थे। तथा केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी सदा उनकी पूजा-वन्दना किया करते थे।

अर्थात् जो नेमिनाथ भगवान श्रीकृष्ण व बलराम से पूज्य थे। जिन्होंने कषायों को जीत लिया था ऐसे श्री नेमिनाथ भगवान् ऊर्जयन्त/गिरनार/रैवतक पर्वत के शिखर से मुक्ति को प्राप्त हुए।

श्री महावीर स्वामी की स्तुति

पावापुरवरसरसां, मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसाम्।
वीरो नीरदनादो, भूरि-गुणश्चारु शोभमास्पद-मगमत्।।३२।।

अन्वयार्थ—(सिद्धि-वृद्धि-तपसां महसां मध्यगतः) सिद्धि-वृद्धि-तप और तेज के मध्य में स्थित (नीरदनादः) मेघ की गर्जनासम जिनकी दिव्यध्वनि का शब्द है (भूरिगुणः) अनन्त गुणों से युक्त (वीरः) अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने (पावापुर वर सरसां मध्यगतः) पावापुर के उत्कृष्ट सरोवर के मध्य में स्थित हो (चारुशोभं) उत्कृष्ट शोभा से युक्त (आस्पदम्) मुक्तिस्थल को (अगमत्) प्राप्त किया।

भावार्थ—जो इच्छित कार्यों को पूर्ण करने में, उत्तमक्षमादि गुणों का उत्कर्ष करने में तथा अनशन आदि बारह महातपश्चरण करने में महान् होने से सिद्धि, वृद्धि और तेजपुञ्ज हैं जिनकी दिव्यध्वनि मेघों की गर्जना के समान है। जो अनन्त गुणों से युक्त हैं ऐसे वर्तमान शासन कालीन तीर्थंकर महावीर पावापुरी उत्कृष्ट सरोवर में स्थित को उत्तम श्री शोभा सम्पन्न मुक्तिस्थल को प्राप्त हुए।

अवशेष बीस तीर्थङ्करों की स्तुति

सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थंकराः, कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन्।।३३।।

अन्वयार्थ—(कीर्तिभृतः) कीर्ति को धारण करने वाले (शेषाः ये तीर्थंकराः) शेष जो बीस तीर्थंकर हैं वे (विस्तीर्णे) विशाल फैले हुए (सम्मद-करि वन परिवृत-सम्मेद-गिरीन्द्र मस्तके) मदोन्मत्त हाथियों से युक्त वन से घिरे हुए सम्मेद गिरिराज के शिखर पर (प्रार्थितार्थ-सिद्धि) अभिलषित मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि को (अवापन्) प्राप्त हुए।

भावार्थ—जिनका यश सर्वत्र फैल रहा है, ऐसे अनन्तकीर्ति के स्वामी वृषभनाथ, वासुपूज्यजी, नेमिनाथ व महावीर स्वामी को छोड़कर शेष बीस तीर्थंकर विशाल, विस्तार को प्राप्त बड़े-बड़े हाथियों से घिरे हुए गिरिराज सम्मेद-शिखर से मोक्ष पुरुषार्थ की उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुए।

अन्य सिद्ध स्थानों से मंगल प्रार्थना

शेषाणां केवलिना-मशेषमतवेदिगणभृतां साधूनां।
गिरितलविवरदरीसरि-दुरुवनतरु-विटपिजलधि-दहनशिखासु **।।३४।।**
मोक्षगतिहेतु-भूत-स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मंगलभूतान्येता - न्यंगीकृत - धर्मकर्मणामस्माकम्।।३५।।

अन्वयार्थ—(शेषाणाम् केवलिनाम्) तीर्थंकर केवलियों के सिवाय अन्य सामान्य केवली आदि के (अशेषमतवेदि-गणभृताम्) सम्पूर्ण मतों के ज्ञाता गणधरों (साधूनाम्) मुनियों के (गिरितल-विवर-दरीसरि-दुरुवन-तरुविवर-विटपि-दहन-शिखासु) पर्वतों के तल/उपरितन प्रदेश, अधस्तन प्रदेश, बिल, गुफा, नदी, विशाल वन, वृक्षो की शाखा, समुद्र तथा अग्नि की ज्वालाओं में (सुरेन्द्र-रुद्र-भक्ति-नुतानि) इन्द्रों के द्वारा अत्यधिक भक्ति से स्तुति, नमस्कार को प्राप्त (मोक्षगति-हेतुभूत-स्थानानि) मोक्षगति के कारणभूत स्थान हैं (एतानि) ये सब (अङ्गीकृत-धर्मकर्मणां अस्माकम्) धर्म-कर्म को स्वीकृत करने वाले हमारे (मङ्गलभूतानि) मङ्गलस्वरूप हैं।

भावार्थ—तीर्थंकर केवलियों के अलावा अन्य उपसर्ग केवली, सामान्य केवली अन्तकृत केवली, मूककेवली आदि सर्वकेवलियों, समस्त ३६३ अन्य मतों के ज्ञाता गणधर, मुनिवृन्दों के निर्वाण-स्थलो–पर्वतों के शिखर, बिल गुफा, नदी, वन, वृक्षों की शाखा, समुद्र, अग्नि की ज्वालाओ में इन्द्रो के द्वारा स्तुति, नमस्कार को प्राप्त ऐसे समस्त मुक्तिस्थल, जिनकी स्तुति, नमस्कार करने वालों को मुक्ति प्राप्त करने वाली है, धर्म पुरुषार्थ मे तत्पर रहने वाले हम भक्तजनों के पापों का क्षय करने में सहायक हों। अर्थात् तीर्थंकर मुनियों की निर्वाण-भूमियों की वन्दना-नमस्कार करने से भव्यो के पापों का प्रक्षालन होता है तथा शीघ्र मुक्ति की प्राप्ति होती है।

जिनपतयस्तत्-प्रतिमा- स्तदालयास्तन्निषद्यका स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भव-घात-हेतवो भव्यानाम्।।३६।।

अन्वयार्थ—(जिनपतय:) जिनेन्द्रदेव (तत्प्रतिमा:) जिन प्रतिमाएँ (तत् आलया:) उनके मन्दिर और (तत् निषद्यका-स्थानानि) उनके निर्वाण स्थान है। (ते ता: च तानि च) वे जिनेन्द्रदेव, उनकी प्रतिमाएँ, जिनमन्दिर और उनके निर्वाण-स्थल (भव्यानाम्) भव्यजीवो के (भवघातहेतव) संसार क्षय के कारण होवे।

भावार्थ—जो भव्यात्मा जिनेन्द्रदेव, जिन-प्रतिमाओ, जिन-मन्दिर व जिनेन्द्रदेव के निर्वाणस्थलो की पूजा, आराधना, स्तुति-वन्दना आदि करते है वे संसार संतति का शीघ्र क्षयकर मुक्ति को प्राप्त करते है। अत: मुमुक्ष भव्य बन्धुओ को इनकी स्तुति, वन्दना, आराधना यथाशक्ति अवश्य करना चाहिये।

तीनों समय नन्दीश्वर भक्ति करने का फल

सन्ध्यासु तिसृषु नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्र-मेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं, लघु लभते श्रुतधरेडितं पद-ममितम्॥३७॥

अन्वयार्थ—(य:) जो (उत्तम यशसाम्) उत्कृष्ट यश के पुञ्ज (सर्वज्ञानां) सर्वज्ञ देवो के (एतत् सार्व स्तोत्रं) इस सर्व हितंकर स्तोत्र को (यदि) यदि (नित्यं तिसृषु सन्ध्यासु) प्रतिदिन तीनो सन्ध्याओ मे (पठेत्) पढ़ता है वह (लघु) शीघ्र ही (श्रुतधर-इडितं) श्रुतके धारक शास्त्रज्ञ गणधरादि मुनियो के द्वारा पूज्यता, स्तुति को प्राप्त होकर (अमितम् पदम्) शाश्वत अनन्त, स्थान मोक्ष को (लभते) प्राप्त होता है।

भावार्थ—इस जिन स्तुति के पुण्य पाठ को जो भव्यजीव श्रद्धा-भक्ति से प्रतिदिन तीनो संध्याकालो मे पढ़ते है वे निकट काल मे मुक्ति के भाजन, भव्यात्मा शीघ्र ही मुक्ति लक्ष्मी के अनन्त सुखो को प्राप्त करते है।

अरहंतों के शरीर सम्बन्धी दश अतिशय

आर्याछन्द

नित्यं नि:स्वेदत्वं, निर्मलता क्षीर-गौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृति-संहनने, सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम्॥३८॥
अप्रमित-वीर्यता च, प्रिय-हित वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।
प्रथिता दश-विख्याता, स्वतिशय-धर्मा स्वयं-भुवो देहस्य॥३९॥

अन्वयार्थ—(नित्यं नि:स्वेदत्वं) कभी पसीना न आना (निर्मलता) कभी मल-मूत्र नही होना (च क्षीरगौररुधिरत्वं) दूध के समान सफेद खून का होना (स्वाद्याकृति संहनने) समचतुरस्त्रसंस्थान व वज्रवृषभनाराच संहनन का होना (सौरुप्यं) सुन्दर रूप का होना (सौरभं च) सुगन्धमय शरीर का होना (सौलक्ष्यम्) उत्तम लक्षणो से युक्त होना (अप्रमितवीर्यता च) और अतुल्य बल (प्रियहितवादित्वं) प्रिय व हितकारी मधुर वचनों का बोलना (दस विख्याता स्वतिशय धर्मा:) ये १० प्रसिद्ध अतिशय व (अन्यनत् आमित गुणस्य) अन्य अपरिमित, अनन्त गुण (स्वयंभुव: देहस्य) तीर्थंकर के शरीर के में (प्रथिता) कहे गये हैं।

भावार्थ—तीर्थंकर भगवान् जन्म से दस अतिशय के धारक होते हैं—१. शरीर मे कभी भी पसीना नहीं आना २. मल-मूत्र नहीं होना ३. दूध के समान सफेद खून का होना ४. समचतुरस्त्रसंस्थान ५. वज्रवृषभ-नाराचसंहनन ६. सुन्दर रूप ७. सुगन्धित शरीर ८. शरीर में १००८ लक्षणो का होना ९. अतुल्यबल और १०. हित-मित-प्रिय वचनों का बोलना। इनके अलावा भी वे अन्य अनन्त गुणों के स्वामी होते।

जो विशेषता दूसरों में नहीं पायी जावे, वह अतिशय कहलाता है। तीर्थंकरों के दश अतिशय जन्म काल से ही होते हैं अत: इन्हे जन्मातिशय कहते हैं।

केवलज्ञान के दश अतिशय

गव्यूति-शत-चतुष्टय-सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवध: ।
भुक्त्युपसर्गाभाव -श्चतुरास्यत्वं च सर्व-विद्येश्वरता ।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख-केशत्वम् ।
स्वतिशय-गुणा भगवतो, घाति-क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव ।।४१।।

अन्वयार्थ—(गव्यूति-शत-चतुष्टय-सुभिक्षता) चार सौ कोश तक सुभिक्ष का होना (गगन गमनम्) आकाश में गमन होना (अप्राणिवध:) किसी जीव का वध न होना/हिंसा का अभाव (भुक्ति-उपसर्ग अभाव:) कवलाहार का नहीं होना, उपसर्ग का नहीं होना (चतु: आस्यत्वं) चार मुख दिखना (सर्व-विद्या-ईश्वरता) सब विद्याओं का स्वामी होना

(अच्छायत्वम्) छाया का नही पड़ना (अपक्ष्म-स्पन्दः) नेत्रो के पलक नही झपकना (समप्रसिद्ध-नख-केशत्वं) नख और केशो को नही बढ़ना (घातिक्षयजा) घातिया कर्मो के क्षय से होने वाले (स्वतिशय गुणा भगवतः) भगवान् के ये स्वाभाविक गुण उत्तम अतिशय है (ते अपि दश एव) वे भी दश ही होते है।

भावार्थ—घातिया कर्मो के क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होते ही तीर्थकर भगवान् पॉच हजार धनुष ऊपर जाकर शोभा को प्राप्त होते है। वही इतना ऊॅचाई पर सुन्दर विशाल समवशरण की रचना होती है। समवशरण मे भगवान् का एक मुख चारो दिशाओ मे दिखाई देता है। केवलज्ञान होते ही १० अतिशय उनमे प्रकट होते है—

१. तीर्थकर का जहॉ विहार होता है–वहॉ से ४०० योजन [चारो दिशाओ मे १००-१०० योजन] तक सुभिक्ष होता २. आकाश मे गमन होना ३. किसी जीव का वध नही होना ४ कवलाहार का अभाव ५ उपसर्ग का अभाव ६. चारो दिशाओ मे मुख दिखना ७. सब विद्याओ का स्वामित्व होना ८. शरीर की छाया नही पड़ना ९. नेत्रो की पलक नही झपकना १०. नख व केशो का नही बढ़ना।

केवली भगवान् के औदारिक शरीर से समस्त निगोदिया जीवो का निर्गमन हो जाता है अत· उनका शरीर परमौदारिक, स्फटिक के समान शुद्ध हो जाता है। कवलाहार के अभाव मे भी उनका शरीर ८ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व तक स्थिर रह सकता है।

देवकृत चौदह अतिशय

सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्व-जनता-विषया।
सर्वर्तु-फल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरु-परिणामाः ।।४२।।
आदर्शतल - प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः, परमानन्दश्च भवति सर्व-जनस्य ।।४३।।

अन्वयार्थ—(सार्वार्धमागधीया भाषा) समस्त प्राणियो का हित करने वाली अर्धमागधी भाषा, (सर्वजनताविषया मैत्री च) समस्त जन समूह मे मैत्री भाव (सर्व ऋतु फल-स्तबक प्रवाल कुसुमोपशोभित-तरु-

परिणामा) छहो ऋतुओ के फलो के गुच्छे, पत्ते और फूलो से सुशोभित वृक्षो से युक्त होना (च मही रत्नमयी मनोज्ञा आदर्श तल प्रतिमा जायते) और पृथ्वी का रत्नमयी, सुन्दर, दर्पण के समान निर्मल होना (अनिलः विहरणम् अन्वेति) वायु का विहार के अनुकूल चलना (च सर्वजनस्य परम-आनन्दः भवति) और समस्त जीवो का परम आनन्दित होना।

भावार्थ—केवलज्ञान के पश्चात् समवशरण सभा मे विराजमान जिनेन्द्र-देव की सभी प्राणियो के लिये हितकारी ऐसी दिव्यध्वनि अर्द्धमागधी भाषा मे खिरती है, जहाँ भी समवशरण का/केवली भगवान् का विहार होता है समवशरण मे समस्त जाति विरोधी जीव भी बैर-भाव को छोड़कर मित्रता से रहते है, शरद, शीत, हेमन्त, वर्षा, उष्ण व बसन्त इन छहो ऋतुओ के फल-फूल जहाँ भी तीर्थकरो, केवली भगवन्तो का विहार होता है एक-साथ आते है, जिस ओर तीर्थकर देव का विहार होता है समस्त पृथ्वी सुन्दर, रत्नमयी, दर्पणवत् स्वच्छ हो जाती है, वायु जिस ओर भगवान् का विहार होता है उन्ही का अनुकरण करती हुए मन्द-मन्द बहती है तथा चारो ओर सभी जीव परम आनन्द का अनुभव करते है।

मरुतोऽपि सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम्।
व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ।।४४।।
तदनु स्तनितकुमारा,विद्युन्माला-विलास -हास-विभूषाः ।
प्रकिरन्ति सुरभि-गन्धिं, गन्धोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः ।।४५।।

अन्वयार्थ—(सुरभिगन्ध व्यामिश्रा मरुतःअपि) सुगंधित वायु भी (योजनान्तरं भूभागं) एक योजन के अन्तर्गत पृथ्वी के भाग को (व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करा-उपलं) धूलि, कण्टक, तृण, कीट, रेत, पाषाणरहित (प्रकुर्वन्ति) करते है (तदनु) उसके बाद (त्रिदशपतेः) इन्द्र की (आज्ञया) आज्ञा से (विद्युत्-माला-विलास-हास-विभूषाः) बिजलियो के समूह की चमकरूपी हास्य-विनोद रूप वेषभूषा से युक्त (स्तनितकुमाराः) स्तनितकुमार जाति के देव अर्थात् बादलो की गर्जना ही जिनके आभूषण है ऐसे स्तनितकुमार जाति के देव मेघ का रूप धारणकर (सुरभिगन्धि) मनोहर गन्ध से युक्त (गन्धोदक वृष्टिं) सुगन्धित जल की वर्षा (प्रकिरन्ति) करते है।

भावार्थ—तीर्थंकर का विहार आकाश में होता है और भक्तजन/ भव्य जनसमूह पृथ्वी पर गमन करता है। इन्द्र की आज्ञा से विहार की भूमि को वायुकुमार देव धूलि, कण्टक आदि रहित करते हैं तथा स्तनितकुमार-देव सुगन्धित जल से पृथ्वी को सीचता है।

वर-पद्मराग-केसर-मतुल-सुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयम्।
पादन्यासे पद्मं सप्त, पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवन्ति।।४६।।

अन्वयार्थ—विहार के समय (पादन्यासे) चरण रखने के स्थान में (वरपद्मराग केसरं) उत्कृष्ट पद्मराग मणि जिसमें केशर है (अतुलसुख-स्पर्श-हेममय-दलनिचयं) जिनका स्पर्श अत्यन्त सुखकर है सुवर्णमय पत्तों के समूह युक्त (पद्मं) एक कमल रहता है तथा ऐसे ही (सप्तपुरः) सात कमल आगे (च) और (सप्तपृष्ठतः) सात कमल पीछे (भवन्ति) होते है।

भावार्थ—तीर्थंकर भगवान् ज़ब विहार करते हैं तब देव उन चरण-कमलों के नीचे स्वर्णमय पत्तो से युक्त तथा पद्मरागमणिमय केसरयुक्त सुन्दर कमलो की रचना करते है। इनमे एक कमल चरण के नीचे रहता है तथा सात कमल आगे और सात कमल पीछे रहते हैं। इस प्रकार १५ कमलों की पक्तियाँ होती हैं। इस प्रकार सब मिलाकर २२५ कमलों की रचना देवगण करते हैं। उनकी यह शोभा अवर्णनीय होती है।

फलभार-नम्र-शालि-ब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा।
परिहृषितेव च भूमि-स्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती।।४७।।

अन्वयार्थ—(त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती) तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव के वैभव को देखती हुई (भूमिः) पृथ्वी (परिहृषित इव) हर्ष-विभोर होती हुई के समान (फलभार नम्रशालि-ब्रीहि-आदि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा) विविध प्रकार के फलो के भार से झुकी हुई, शालि, ब्रीहि आदि समस्त धान्यों को धारण करती हुई रोमाञ्च को प्राप्त हो उठी थी।

भावार्थ—विहार के समय जिस ओर तीन लोक के स्वामी जिनेन्द्र-देव का विहार होता था वहाँ की पृथ्वी तीन लोक के नाथ की अनुपम सम्पदा को देखकर अत्यधिक हर्ष को प्राप्त होती हुई षट्ऋतुओं के फलों

के भार से झुकी हुई, नाना प्रकार के शालि, ब्रीहि आदि धान्यों से व्याप्त ऐसे मालूम होती जैसे रोमाञ्च को प्राप्त हो उठी हो।

शरदुदय - विमल - सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलम्।
जहति च दिशस्तिमिरिकां, विगतरजः प्रभृति जिह्मताभावं सद्यः ।।४८।।

अन्वयार्थ—(शरदुदय-विमल-सलिलं सर इव विगत मलं गगनं) शरद ऋतु के काल में निर्मल सरोवर के समान धूलि आदि मल से रहित आकाश (विराजते) सुशोभित होता है (च) और (दिशः) दिशाएँ (सद्यः) शीघ्र ही (तिमिरिकां जहति) अंधकार को छोड़ देती हैं तथा (विगतरज प्रभृति जिह्मताभावं) धूलि आदि की मलिनता के अभाव को प्रकट करती हुई शीघ्र निर्मल हो जाती हैं।

भावार्थ—तीर्थंकर परमदेव के विहार काल में जिसका कीच नीचे बैठ गया है ऐसे शरद ऋतु के तालाब के समान आकाश बादलों रहित स्वच्छ व निर्मल हो जाता है तथा दशों दिशाएँ भी अंधकार व मलिनता से रहित स्वच्छ हो जाती हैं। कहा भी है "निर्मलदिश-आकाश"।

एतेतेति त्वरितं ज्योति-र्व्यन्तर-दिवौकसा-ममृतभुजः ।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ।।४९।।

अन्वयार्थ—(कुलिशभृदाज्ञापनया) इन्द्र की आज्ञा से (अन्ये अमृतभुजः) अन्य देव (त्वरितं एत-एत इति) शीघ्र आओ, शीघ्र आओ इस प्रकार (ज्योतिः व्यन्तर-दिवौकसां) ज्योतिष्क, व्यन्तर और वैमानिक देवों का (समन्ततः) सब ओर (व्याह्वानम्) बुलाना (कुर्वन्ति) करते हैं।

भावार्थ—तीर्थंकर प्रभु के विहार काल में इन्द्र की आज्ञा से भवनवासी देव अन्य समस्त देवों को जल्दी आओ, जल्दी आओ कहकर चारों ओर से बुलाते हैं।

स्फुर-दरसहस्र-रुचिरं, विमल-महारत्न-किरण-निकर-परीतम् ।
प्रहसित-किरण-सहस्र-द्युति-मण्डल-मग्रगामि-धर्म-सुचक्रम् ।।५०।।

अन्वयार्थ—(स्फुरत्-अर-सहस्र-रुचिरं) दैदीप्यमान एक हजार आरों से शोभायमान (विमल-महारत्न-किरण-निकर-परीतम्) निर्मल महारत्नों के किरण समूह से व्याप्त और (प्रहसित-सहस्र-किरण-द्युति-मण्डलम्)

सहस्र रश्मि सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करता हुआ (धर्म-सुचक्रम्) उत्तम धर्म-चक्र (अग्रगामि) आगे-आगे चलता है।

भावार्थ—जिस समय तीर्थंकर भगवान् का विहार होता है उस समय कान्तिमान एक हजार आरो से सुशोभित, निर्मल महारत्नों की किरणों के समूह से व्याप्त, अपनी कान्ति से सूर्य की तेज दीप्ति को भी तिरस्कृत करने वाला ऐसा उत्तम धर्मचक्र भगवान के आगे-आगे चलता है।

इत्यष्ट-मंगलं च, स्वादर्श-प्रभृति-भक्ति-राग-परीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशै-रेतेऽपि-निरुपमातिशयाः ।।५१।।

अन्वयार्थ—विहार काल में (इति) इसी प्रकार (स्वादर्शप्रभृति अष्टमङ्गलं च) दर्पण को आदि ले आठ मंगल द्रव्य भी साथ में रहते हैं (एते अपि) ये आठ मङ्गल द्रव्य भी आगे-आगे रहते हैं (निरुपम अतिशयाः) उपमातीत विशेष अतिशय भी (भक्तिराग परीतैः) भक्ति के राग में रँगे हुए (त्रिदशैः) देवों के द्वारा (उपकल्प्यन्ते) किये जाते हैं।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के विहारकाल में एक सहस्र आरों वाले दैदीप्यमान धर्मचक्र के समान ही, अनुपम शोभा से युक्त दर्पण आदि आठ मङ्गल द्रव्य भी आगे चलते हैं। इस प्रकार उपमातीत ये १४ अतिशय जिनभक्ति के राग मे रंजित देवो के द्वारा किये जाते हैं।

इस प्रकार अरहन्त भगवान् के जन्म के दश अतिशय, केवलज्ञान के दस अतिशय और देवकृत चौदह अतिशय ऐसे कुल ३४ अतिशय होते हैं। इनमें १. अर्धमागधीभाषा २. आपस में मित्रता ३. षट्‌ऋतु के फल-फूल एक काल में फलना ४. दर्पण सम पृथ्वी का होना ५. मन्द सुगन्ध हवा चलना ६. भूमि कण्टक रहित होना ७. सृष्टि में हर्ष होना ८. सुगन्धित जल की वृष्टि होना ९. चरण-कमलों के नीचे स्वर्ण कमलों की रचना होना १०. आकाश का निर्मल होना ११. दिशाओं का निर्मल होना १२ आकाश में जयघोष रूप दुन्दुभिनाद होना १३. धर्मचक्र का आगे-आगे चलना और १४ अष्टमंगल द्रव्यों का आगे-आगे चलना ये १४ अतिशय भक्ति के राग में रंजित देवों के द्वारा प्रीतियुक्त हो किये जाते हैं।

आठ प्रातिहार्यों का वर्णन

अशोक वृक्ष

वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदु-पल्लवोपशोभित-शाखः ।
श्रीमानशोक-वृक्षो वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः ।।५२।।

अन्वयार्थ—(वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदुपल्लव-उपशोभित शाखः) सुन्दर वैडूर्यमणियो से बनी शाखाओ, पत्तों और कोमल कोपलों से शोभित उपशाखाओं से सहित और (वरमरकतपत्रगहन-बहल-च्छायः) श्रेष्ठ हरित मणियों से निर्मित पत्तों की सघन छाया से युक्त (श्रीमान् अशोकवृक्षः) श्री शोभायुक्त ऐसा अशोकवृक्ष था।

भावार्थ—अरहन्तदेव के आठ प्रातिहार्य होते हैं उनमें प्रथम अशोक वृक्ष है। जिस वृक्ष के नीचे भगवान् को केवलज्ञान होता है वह समवशरण में अशोक वृक्ष होता है। यह अशोक वृक्ष अनेक प्रकार की मणियों से बना होता है, इसकी शाखाएँ वैडूर्यमणि की होती है, पत्ते हरित मणियों से बने होते हैं तथा यह कोमल कोपल व उपशाखाओं से युक्त होता है। ऐसा शोभासम्पन्न अशोक वृक्ष भक्तजनो के चित्त को आकर्षित करता हुआ रहता है।

पुष्पवृष्टि

मन्दार-कुन्द-कुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः ।
समद-भ्रमर-परीतै-र्व्यामिश्रा पतति कुसुम-वृष्टि-र्नभसः ।।५३।।

अन्वयार्थ—(समद-भ्रमर-परीतैः) मदोन्मत्त भ्रमरों के गुंजार से युक्त (मन्दार-कुन्द-कुवलय-नील-उत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः) मन्दार-कुन्द, कुमुद [रात्रि में विकसित होने वाले कमल] नील कमल, श्वेत कमल, मालती, बकुल आदि (व्यामिश्रा) मिले हुए पुष्पों के द्वारा (नभसः) आकाश से (कुसुमवृष्टिः पतति) पुष्प वृष्टि होती रहती है।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के ऊपर जिनकी सुगन्ध से आकर्षित हो मदोन्मत्त भँवरे जिन पर गुंजार कर रहे हैं ऐसे मन्दार, कुन्द, रात्रि विकासी कमल-कुमुद, नीलकमल, सफेद कमल, मालती, बकुल आदि से मिले सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की वर्षा सदा होती रहती है।

चामर

कटक-कटि-सूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषितांगौ स्वंगौ ।
यक्षौ कमल-दलाक्षौ, परि-निक्षिपतः सलील-चामर-युगलम् ।।५४।।

अन्वयार्थ—(कटक-कटिसूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषिताङ्गौ) स्वर्णमय कड़ा-मेखला, करधनी–कंदोरा, कुण्डल–कर्णाभरण और बाजूबन्द आदि आभूषणों से सुशोभित अंग/ शरीर वाले (स्वङ्गौ) सुन्दर शरीर सम्पन्न तथा (कमल-दल-अक्षौ) कमल के दल समान नेत्रो वाले (यक्षौ सलील चामर-युगलम्) दो यक्ष लीलापूर्वक चामर युगल को (परिनिक्षिपतः) ढोरते हैं।

भावार्थ—स्वर्णमय कड़ा, मेखला, करधनी, कर्णकुण्डल, बाजूबन्द आदि अनेक प्रकार के आभूषणों से जिनके शरीर की शोभा बढ़ रही है, जिनके नेत्र कमल कलिका के समान विशाल व सुन्दर हैं ऐसे सुन्दर आकृति के धारक दो यक्ष जिनेन्द्रदेव के दोनों ओर खड़े होकर निरन्तर चामर ढोरते हैं।

भामण्डल

आकस्मिक-मिव युगपद्-दिवसकर-सहस्र-मपगत-व्यवधानम् ।
भामण्डल-मविभावित-रात्रिन्दिव-भेद-मतितरामाभाति ।।५५।।

अन्वयार्थ—(अपगतव्यवधानं) आवरणरहित (आकस्मिक) सहसा/ अकस्मात् (युगपत्) एकसाथ उदित हुए (दिवसकर-सहस्रम् इव) हजारों सूर्यों के समान (अविभावित-रात्रिं-दिवभेदं) रात-दिन के भेद को विलुप्त/ अस्त करने वाला (भामण्डलं अतितराम् आभाति) भामण्डल अत्यधिक शोभा को प्राप्त होता है।

भावार्थ—समवशरण में तीर्थंकर प्रभु के पीछे एक सहस्रों सूर्यों के तेज को भी तिरस्कृत करने वाला दैदीप्यमान भामण्डल होता है। इस भामण्डल की आभा/कान्ति के सामने रात-दिन का भेद भी समाप्त हो जाता है ऐसा यह जिनेन्द्रदेव का भामण्डल नामक प्रातिहार्य है। इस भामण्डल में जीवों के सात भव दिखाई देते हैं।

दुन्दुभिवाद्य

प्रबल-पवनाभिघात-प्रक्षुभित-समुद्र-घोष-मन्द्र-ध्वानम् ।
दन्ध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिस्तालसमम् ।।५६।।

अन्वयार्थ—(प्रबल-पवन-अभिघात-प्रक्षुभित-समुद्र-घोष-मन्द्र ध्वानम्) कठोर वायु के आघात से क्षुभित समुद्र के शब्द के समान गम्भीर स्वर वाला (सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिः) प्रशस्त वीणा और बाँसुरी आदि उत्तम वाद्यों से सहित दुन्दुभि (ताल समं) ताल के अनुसार (दंध्वन्यते) बार-बार गम्भीर शब्द करता है।

भावार्थ—समवशरण में अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वीणा, बाँसुरी आदि वाद्यों का कर्णप्रिय दुंदुभिनाद ताल के अनुसार व गंभीर आवाज में होता रहता है। यह जिनदेव का दुन्दुभिनाद नामक प्रातिहार्य है।

तीन छत्र

त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छन-मिन्दुत्रय-तुल्य-मतुल-मुक्ता-जालम् ।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त-दण्ड-मधिक-मनोज्ञम् ।।५७।।

अन्वयार्थ—(त्रिभुवन-पतितालाञ्छनं) तीनों लोकों के चिह्नरूप (इन्द्रत्रयतुल्यं) तीन चन्द्रमाओं के समान (अतुल मुक्ताजालम्) अनुपम मोतियों के जाल से सहित (सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त दण्डं) बहुत विशाल नीलमणि निर्मित दण्ड से युक्त तथा (अधिक मनोज्ञं) अत्यन्त सुन्दर (छत्रत्रयं) तीन छत्र शोभायमान होते हैं।

भावार्थ—समवशरण में तीन लोकों के स्वामीपने को सूचित करने वाले तीन पूर्ण चन्द्रमाओं के समान सुन्दर मोतियों की लटकती मालाओं से युक्त, नीलमणि से निर्मित दण्ड से शोभित अत्यन्त सुन्दर तीन छत्र भगवान् के सिर पर सदा शोभायमान होते हैं।

दिव्यध्वनि

ध्वनिरपि योजनमेकं, प्रजायते श्रोतृ-हृदयहारि-गम्भीरः ।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनितमिव प्रविततान्त-राशावलयम् ।।५८।।

अन्वयार्थ—(श्रोतृहृदय हारिगंभीरः) कर्ण और हृदय को हरने वाली गम्भीर (ध्वनिः अपि) दिव्यध्वनि भी (एक योजनं) एक योजन तक

(प्रजायते) होती है (ससलिल-जलधर पटल ध्वनितम् इव) सजल मेघ पटल की गर्जना के समान (प्रवितत-अन्तर-आशावलयं) दिशाओ के अन्तराल को व्याप्त करने वाली होती है।

भावार्थ—समवशरण मे जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि पानी से भरे बादलो की गर्जना के समान, दशो-दिशाओ के समूह मे व्याप्त व कर्णप्रिय, हृदयहारी/मनको सुख देने वाली एक-एक योजन तक गूँजती है।

सिंहासन

स्फुरितांशु-रत्न-दीधिति-परिविच्छुरिताऽमरेन्द्र-चापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः-स्फटिक-शिला-घटित-सिंह-विष्टर-मतुलम्।।५९।।

अन्वयार्थ—(स्फुरित-अंशुरत्न-दीधिति-परिविच्छुरित-अमरेन्द्र-चापच्छायं) देदीप्यमान किरणो वाले रत्नो की किरणो से इन्द्रधनुष की कान्ति को धारण करने वाला (अतुलम्) अनुपम (स्फटिक शिला घटित सिंह विष्टरम्) स्फटिक की शिला से निर्मित सिंहासन (मृगेन्द्रवर्यैः) श्रेष्ठ सिहो के प्रतीको से (ध्रियते) धारण किया जाता है।

भावार्थ—समवशरण मे रंग-बिरंगे विविध मणियो से जड़ित स्फटिक मणि से निर्मित सिंहासन होता है, उस सिंहासन मे पाये सिंह के आकार होते है, यह सिंहासन प्रातिहार्य है। समवशरण मे तीर्थंकर भगवान् सिंहासन से चार अंगुल ऊपर अधर विराजमान होते है।

यस्येह चतुस्त्रिंशत्-प्रवर-गुणा प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुण-महते।।६०।।

अन्वयार्थ—(इह) इस जगत् मे (यस्य) जिसके (चतुस्त्रिशत् प्रवर गुणा) ३४ अतिशय श्रेष्ठ गुण (च) और (अष्टौ प्रातिहार्य लक्ष्म्यः) आठ प्रतिहार्य लक्ष्मियाँ है (तस्मै) उन (गुण महते) गुणो से महान् देवाधिदेव (भगवते) भगवान् (त्रिभुवन परमेश्वर अर्हते) तीन लोक के नाथ अर्हन्त परमेष्ठी को (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य और चार अनन्त चतुष्टय ४६ गुणो से अर्हत् परमेष्ठीपद मे शोभायमान, तीन लोक के स्वामी अर्हन्त परमेष्ठी को नमस्कार हो। अर्हन्त परमेष्ठी के ४२ गुण बाह्य,

पुण्याश्रित है तथा ४ अनन्त चतुष्टय—अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य ये आत्माश्रित गुण हैं।

क्षेपक-श्लोका:

अर्हन्तदेव की महिमा

गत्वा क्षितेर्वियति पंचसहस्रदण्डान्,
सोपान-विंशतिसहस्र-विराजमाना।
रेजे सभा धनद यक्षकृता यदीया,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥१॥

अन्वयार्थ—(वियति) आकाश मे (क्षिते:) पृथ्वी से (पंचसहस्रदण्डान्) पॉच हजार धनुष [ऊपर] (गत्वा) जाकर (सोपान-विंशति सहस्र विराजमाना) बीस हजार सीढ़ियाँ सुन्दर है ऐसी (यदीया) जिनकी (सभा) समवशरण सभा (धनद यक्षकृता) कुबेर रचित है उस सभा मे (रेजे) शोभायमान (तस्मै) उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनेश्वर के लिये (नम:) नमस्कार हो।

भावार्थ—आकाश मे पृथ्वी से ५००० धनुष ऊपर जाकर सुन्दर २० हजार सीढ़ियो पर तीन लोक के नाथ जिनदेव की कुबेररचित समवशरण सभा है। उस समवशरण सभा मे जो विराजमान है उन तीर्थंकर प्रभु के लिये नमस्कार हो।

समवशरण मंडप की रचना

सालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि सालो,
वेदिश्च साल इह वेदिरथोऽपि साल:।
वेदिश्च भाति सदसि क्रमतो यदीये,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥२॥

अन्वयार्थ—(यदीये) जिनके समवशरण मे (साल:) कोट पश्चात् (वेदि:) वेदी (अथ) पश्चात् (वेदिरत: अपि शाल:) पुन: वेदी और फिर शाल/कोट (च) और (वेदि:) वेदी (शाल) कोट (इह) इस प्रकार (वेदिरथोऽपि शाल:) पुन: वेदी फिर शाल (च) और (वेदि:) वेदी (क्रमत:) क्रम से (भाति सदसि) सभा मे शोभायमान है (तस्मै)

उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव की समवशरण सभा की रचना इस प्रकार है कि उसमें सबसे पहले धूलिसाल नामका कोट-तट है, उसके बाद एक वेदी है। उसके बाद पुनः एक वेदी है। इस वेदी के बाद दूसरा सुवर्ण का एक कोट/तट है, उस तट के आगे पुनः वेदी है तथा इस वेदी के बाद तृतीय रूपा का तट है। उसके आगे पुनः वेदी है, उसके बाद पुनः स्फटिकमणि का तट है और उसके आगे पुनः वेदी है। इस प्रकार की रचना से जिनका समवशरण सुशोभित है उन जिनेश्वर के लिये नमस्कार हो।

प्रासाद-चैत्य-निलयाः परिखात-वल्ली,
प्रोद्यानकेतुसुरवृक्षगृहाङ्‌ गणाश्च।
पीठत्रयं सदसि यस्य सदा विभाति,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।३।।

अन्वयार्थ—(प्रासाद) महल (चैत्यनिलया) चैत्यालय (परिखा) खातिका (अथ) पश्चात् (वल्लि) लता (प्रोद्यान) उद्यान (केतु) ध्वजा (सुरतृक्ष) कल्पवृक्ष (च) और (गृहाङ्गणाः) गृहसमूह (पीठत्रयं) तीन पीठ (यस्य) जिनकी (सदसि) सभा में (सदा) हमेशा (विभाति) शोभायमान हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन भुवन के स्वामी (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नमः) नमस्कार है।

भावार्थ—उस समवशरण सभा में प्रथम धूलिशाल कोट और वेदि के मध्य में सुन्दर महल व चैत्यालय है अतः इसे चैत्यप्रासाद भूमि कहते हैं। प्रथम व द्वितीय वेदी के आगे खातिका भूमि है। पश्चात् दूसरी वेदी और स्वर्ण के कोट के मध्य में मल्लिका आदि लताओं के वन हैं अतः इसे लता भूमि कहते हैं। स्वर्ण के कोट और तीसरी वेदी दोनें के मध्य में सुन्दर बगीचे हैं अतः उस भूमि को उद्यानभूमि कहते हैं। पुनः वेदि और चांदी के कोट के मध्य में ध्वजाओं की पंक्ति सुशोभित है अतः इस भूमि को ध्वजा भूमि कहते हैं। उसके आगे वेदी के मध्य भाग में कल्पवृक्ष व चैत्यवृक्ष है अतः इस भूमि को कल्पवृक्ष भूमि कहते हैं। चौथी वेदी और स्फटिक मणि के कोट के मध्य में "महल" हैं अतः इस भूमि को गृहांग भूमि कहते हैं।

इस प्रकार १. चैत्य प्रसाद भूमि २. खातिका भूमि ३. लताभूमि ४. उद्यानभूमि ५. ध्वजा भूमि ६. कल्पवृक्ष भूमि और ७. गृहांग भूमि के बाद स्फटिक मणि के कोट के आगे बारह सभाएँ हैं। उसके बाद ३ मेखला व कमलयुक्त सिंहासन है उस सिंहासन पर चार अंगुल अधर बैठकर तीर्थकर भगवान् उपदेश देते है। इस प्रकार की शोभा से सुशोभित जिन अरहंत देव की सभा है उन तीन लोक के स्वामी जिनदेव के लिये नमस्कार हो।

समवशरणसभा में १० प्रकार की ध्वजाएँ

माला-मृगेन्द्र-कमलाम्बर वैनतेय-
मातंगगोपतिरथांगमयूरहंसाः।
यस्य ध्वजा विजयिनो भुवने विभान्ति,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।६।।

अन्वयार्थ—(यस्य विजयिनः) जिन जितेन्द्रिय अरहंत देव का समवशरण (मालामृगेन्द्रकमलाम्बर वैनयतेय मातंग गोपतिरथांग मयूर-हंसा) माला, मृगेन्द्र, कमल, वस्त्र, गरुड़, हस्ति, बैल, चक्रवाल/चकवा पक्षी, मोर व हंस इन चिह्नों युक्त १० प्रकार की (ध्वजा) ध्वजाओं से (भुवने) लोक में (विभान्ति) सुशोभित हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के स्वामी (जिनाय) जिनदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण सभा में माला, मृगेन्द्र, कमल, वस्त्र, गरुड़, हस्ति, बैल, चकवा, मोर और हंस ये दस प्रकार की ध्वजाएँ सुशोभित होती है।

समवशरण की १२ सभा

निर्ग्रंथ-कल्प-वनिता-व्रतिका भ-भौम,
नागस्त्रियो भवन-भौम-भ-कल्पदेवाः।
कोष्ठस्थिता नृ-पशवोऽपिनमन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।५।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके चरण-कमलों में (कोष्ठस्थिता) बारह सभाओं में स्थित (निर्ग्रंथकल्पवनिताव्रतिका भभौम नागस्त्रियों भवन भौम-भ-कल्पदेवाः नृ-पशवः अपि) १. मुनि २. कल्पवासिनी देवियाँ ३. आर्यिका ४. ज्योतिषी देवियाँ ५. व्यन्तर देवियाँ ६. भवनवासी देवियाँ ७. भवनवासी

देव ८. व्यन्तर देव ९. ज्योतिषी देव १०. कल्पवासी देव ११. मनुष्य और १२ तिर्यञ्च भी (नमान्त) नमस्कार करते हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवन-प्रभवे) तीन लोक के स्वामी (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण में १. मुनि २. कल्वपवासिनी देवियाँ ३. आर्यिका ४. ज्योतिषी देविगॉ ५. व्यन्तर देवियॉ ६. भवनवासी देवियॉ ७. भवनवासी देव ८. व्यन्तर देव ९. ज्योतिषी देव १०. कल्पवासी देव ११. मनुष्य १२. तिर्यञ्च ये १२ सभाएँ होती हैं।

समवशरण में आठ प्रातिहार्य

भाषा-प्रभा-वलयविष्टर-पुष्पवृष्टिः,
पिण्डिद्रुमस्त्रिदशदुन्दुभि-चामराणि।
छत्रत्रयेण सहितानि लसन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय।।४।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जो जिनेन्द्रदेव (भाषा-प्रभावलय-विष्टर-पुष्पवृष्टिः पिण्डद्रुमः त्रिदशदुंदुभि चामराणि-छत्रत्रयेण) दिव्यध्वनि, भामंडल, सिंहासन, पुष्पवृष्टि, अशोकवृक्ष, देवदुंदुभि, ६४ चँवर, तीन छत्र रूप आठ प्रातिहार्योंसे (सहितानि) सहित हो (लसंति) शोभा को प्राप्त हो रहे हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण में १. मुनि २. कल्पवासिनी देवियाँ ३. ३. सिंहासन ४. पुष्पवृष्टि ५. अशोकवृक्ष ६. देव-दुंदुभि ७. चामर और ८. तीन छत्र ये आठ प्रातिहार्य शोभायमान होते हैं।

समवसरण में अष्टमंगलद्रव्य

भृंगार-ताल-कलश-ध्वजसुप्रतीक-
श्वेतातपत्र-वरदर्पण-चामराणि।
प्रत्येक-मष्टशतकानि विभान्ति यस्य,
तस्मैनम-स्त्रिभुवन-प्रभवेजिनाय।।७।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जो त्रिलोकीनाथ (भृंगार-ताल-कलश-ध्वज-

सुप्रतीक-श्वेत-आतपत्र-वरदर्पण-चामराणि) झारी, पंखा, कलश, ध्वजा, स्वस्तिक, सफेद तीन छत्र, श्रेष्ठ दर्पण, ६४ चँवर इन (प्रत्येकम् अष्टशतकानि) प्रत्येक मंगल द्रव्य १०८-१०८ से (विभांति) शोभा को प्राप्त हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण मे जिनदेव झारी, पंखा, कलश, ध्वजा, स्वस्तिक, सफेद तीन छत्र, निर्मल दर्पण और ६४ चँवर ये ८ मंगलद्रव्य सुशोभित रहते हैं।

समवसरण में अन्य मंगलसमाग्री

स्तंभ-प्रतोलि-निधि-मार्ग-तडाग-वापी-
क्रीडाद्रि-धूप-घट-तोरण-नाट्य-शालाः ।
स्तूपाश्च चैत्य-तरवो विलसन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।८।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनकी समवशरण सभा में (स्तंभ-प्रतोलि-निधि-मार्ग-तडाग-वापी-क्रीडाद्रि-धूपघट-तोरण-नाट्यशाला स्तूपाः च चैत्यतरवः) मानस्तंभ, गोपुर, नवनिधि, मार्ग/रास्ते, तालाब, वापिका, क्रीड़ापर्वत, धूपघट, तोरण, नाट्यशालाएँ और अनेक प्रकार के स्तूप तथा चैत्यवृक्ष (विलसंति) शोभा को प्राप्त हो रहे हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवन-प्रभवे) तीनलोक के स्वामी (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण सभा में मानस्तम्भ, गोपुर, नवनिधि, मार्ग, तालाब, वापिकाएँ, क्रीड़ापर्वत, धूपघट, तोरण, नाट्यशालाएँ और अनेक स्तूप चैत्यवृक्ष सुशोभित रहते हैं।

१४ रत्नों के स्वामी से वन्दनीय

सेनापति स्थपति-हर्म्यपति-द्विपाश्व,
स्त्री-चक्र-चर्म-मणि-काकिणिका-पुरोधाः ।
छत्रासि-दंडपतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।९।।

अन्वयार्थ—(सेनापति-स्थपति-हर्म्यपति-द्विप-अश्व-स्त्री-चक्र-चर्म-मणि-काकिणिका-पुरोधा-छत्र-असि-दंड-पतयः) सेनापति, स्थपति/उत्तम कारीगर, हर्म्य पति/ घर का सभी हिसाब आदि रखने वाला, हाथी, घोड़ा, स्त्रीरत्न/चक्रवर्ती की पट्टरानी, सुदर्शनचक्र, चर्मरत्न, चूड़ामणिरत्न, काकिणीरत्न, पुरोहितरत्न, छत्र, तलवार और दंड इन १४ रत्नो के स्वामी चक्रवर्ती भी (यस्य प्रणमन्ति) जिनको नमस्कार करते है (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के स्वामी (जिनाय) जिनदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के समवशरण में सेनापति, स्थपति, हर्म्यपति, हाथी, घोड़ा, स्त्रीरत्न, सुदर्शनचक्र, चर्मरत्न, चूड़ामणिरत्न, काकिणी-रत्न, पुरोहित रत्न, छत्र, तलवार एवं दंड रत्न के स्वामी चक्रवर्ती भी आकर नमस्कार करते हैं फिर साधारण लोगो को तो नमस्कार करना ही चाहिये।

९ निधि के स्वामी से वन्दित

पद्मः कालो महाकालः सर्वरत्नश्च पांडुकः,
नैसर्पो माणवः शंखः पिंगलो निधयो नव।
एतेषां पतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।१०।।

अन्वयार्थ—(पद्मः कालः महाकालः सर्वरत्नः च पांडुकः नैसर्पः माणवः शंखः पिंगला) पद्म, महापद्म, काल, महाकाल, सर्वरत्न, पांडुक, नैसर्प, माणव, शंख, पिंगला ये (नवनिधयः) नव निधियाँ हैं (एतेषां पतयः) इन निधियों के स्वामी चक्रवर्ती (यस्य) जिनके चरणों में (प्रणमन्ति) नमस्कार करते हैं (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नमः) नमस्कार हो।

अर्हन्त का स्वरूप

खविय-घण-घाइ-कम्मा,
चउतीसातिसयविसेसपंचकल्लाणा।
अट्ठवरपाडिहेरा ,
अरिहंता मंगला मज्झं ।।११।।

अन्वयार्थ—(खवियघणघाइकम्मा) क्षय कर दिया है अत्यंत दुष्ट ऐसे घातिया कर्मो का समूह जिसने जो (चउतीसा अतिसयविसेसपंचकल्लाणा) ३४ अतिशय विशेष व गर्भादि पंचकल्याणक से युक्त हैं (अट्ठवर पाडिहेरा) उत्कृष्ट आठ प्रातिहार्यो को प्राप्त हुए है ऐसे (अरिहंता) अर्हन्त परमेष्ठी (मज्झं) मेरे लिये (मंगला) मंगल करो।

भावार्थ—जिन्होने दुष्कर चार घातिया कर्मो का क्षय कर दिया है। जो जन्म के १०व केवलज्ञान के १० तथा देवकृत १४ अतिशय इस प्रकार ३४ अतिशयो को प्राप्त हुए है, देवो ने जिनके गर्भादि पॉच कल्याणक किये है, जो आठ प्रातिहार्य से सहित हैं ऐसे अरहंत परमेष्ठी मेरे लिए मंगल करें। मेरे लिये मंगलस्वरूप हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। णंदीसरदीवम्मि, चउदिस विदिसासु अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं अक्खेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं दीवेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं, आसाढ-कत्तियफागुण-मासाणं अट्ठमिमाइं, काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। णंदीसरमहाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इह संतो तत्थासंताइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—(भते !) हे भगवन् ! (णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ) मैंने नन्दीश्वर भक्ति का कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउं इच्छामि) तत्सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ (णंदीसरदीवम्मि) नन्दीश्वरद्वीप में (चउदिस विदिसासु) चारों दिशाओं, विदिशाओं में (अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु) अञ्जनगिरि, दधिमुख व रतिकर नामक श्रेष्ठ पर्वतों में (जाणि जिणचेइयाणि) जितनी जिन प्रतिमाएँ हैं (ताणि सव्वाणि) उन सबको (तिसुवि लोएसु) त्रिलोकवर्ती (भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा) भवनवासी, व्यन्तर,

ज्योतिषी और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव परिवार सहित (दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं अक्खेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं दीवेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं) दिव्य सुगन्धित जल, दिव्य गंध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप और दिव्य फलो (आसाढ-कत्तिय-फागुण-मासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति) आषाढ, कार्तिक व फागुन मास की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त (णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमस्संति णंदीसर-महाकल्लाण-पुज्जं करंति) नित्यकाल अर्चना करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, नन्दीश्वर महापर्व का महाउत्सव करते हैं, (अहम् अवि) मै भी (इह संतो) यहाँ रहता हुआ (तत्थासंताइयं) वहाँ स्थित जिन चैत्यालय प्रतिमाओं की (णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमस्सामि) नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ। नमस्कार करता हूँ मेरे (दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिनगुण संपत्ति होउ मज्झं) दुःखो का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र देव के गुणरूप सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन्! नन्दीश्वर भक्ति का कायोत्सर्ग करके तत्सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। नन्दीश्वर द्वीप के अंजनगिरि, दधिमुख व रतिकर पर्वतों पर एक-एक दिशा सम्बन्धी १३-१३ कुल ५२ जिनालयों में ५००-५०० धनुष ऊँची रत्नमयी जिनप्रतिमाएँ हैं। एक-एक मन्दिर में १०८-१०८ प्रतिमाएँ हैं। इन जिनप्रतिमाओं के साक्षात् दर्शन मनुष्य नही कर सकता है। चार प्रकार के देव ही कार्तिक, आषाढ़ और फाल्गुन मास में अष्टमी से पूर्णिमापर्यन्त आठ दिनों तक वहाँ जाकर निरन्तर जिनप्रतिमाओं की दिव्य जल, गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप व फलों से अर्चन, पूजन, वन्दन, नमन करते हैं। यहाँ भरत क्षेत्र में स्थित मैं भक्ति-पूर्वक सर्व जिनबिम्ब व जिनालयों की नित्यकाल अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार करता हूँ। जिनेन्द्रदेव की मंगल आराधना से मेरे समस्त दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुणों रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।